

॥ श्री ३ म् ॥

॥ लघुकौमुदी व्याकरणम् ॥

नत्वा सरस्वतीं देवीं शुद्धां गुण्यां करोम्यहम् ।

पाणिनीयप्रवेशाय लघुसिद्धान्तकौमुदीम् ॥ १ ॥

प्रथम इस ग्रन्थ के बनानेवाले वरदराज भट्ट जी ग्रन्थ प्रतिपाद्य श्री वाग्देवी की प्रार्थना करते हैं, कि मैं स्वच्छ वर्ण और शुभ गुणों से युक्त (बुद्धिस्थ अज्ञान को नाश करने वाली) जो सरस्वती देवी हैं, तिसे नमस्कार कर बालकों को पाणिनीय व्याकरण में प्रवेश के लिये लघुसिद्धान्तकौमुदी नामक ग्रन्थ बनाता हूँ ॥

॥ महेश्वर सूत्राणि ॥

१ अइउण् । ञलृक् । एओङ् । ऐऔच् । ह्यवरट् । लण् ।
अमङ्गानम् । भभञ् । घढधष । जघगडदश् । खफछठथचटतव् । कपर्य् ।
शषसर् । हल् ॥ इति माहेश्वराणी सूत्राणि अणादिसंज्ञार्थानि ॥

ये महेश्वर के १४ सूत्र अण् आदि ४२ प्रत्याहारों के बनाने के लिये काम आते हैं । जिस से पाणिनिजी ने अष्टाध्यायी बनाया और जो उस में कुछ अल्प था, उसे कात्यायन ने वार्तिक बनाकर पूरा किया, और इन्ही दोनों के विचार के लिये पतञ्जली भगवान ने महाभाष्य बनाया । यहाँ प्रत्याहार शब्द का यौगिक अर्थ नहीं लिया जाता यह परिभाषिक शब्द है, प्रत्याहार उसे कहते हैं, जो सन्ना उस (५) सूत्र से बनाई जाती है ॥

२ एषामन्त्याद्भतः हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः लण्मध्ये
त्वितसञ्ज्ञकः ॥

इन १४ सूत्रों के अन्त्य अक्षर इत हैं । जैसे अइउण् सूत्र में णकार इत् । ञलृक् में ककार इत्यादि । इत् यह पाणिनी जीका परिभाषिक शब्द है, इसी तीर अनेक शब्द इस ग्रन्थ में आवेंगे जैसा टि, घू, नदी, भू, इत्यादि इनके यौगिक अर्थ नहीं लिये जाते और फल भी दृश्यकर होते हैं, जहा इन्हें लिखेंगे, वही उन के फल भी लिखेंगे । पूर्वोक्त १४ सूत्रों के दो भाग हैं, एक अच्, और दूसरा हल् । अच् उण् से लेकर ऐ औच तक अच् और ह्यवरट् से हल् तक हल् है । जो हल् वर्णों में स्वर लगाने गये हैं, जैसें ह, य, व

धीर र इत्यादिकों में अकार है यह जोबल उनमें उच्चारण के लिये ही धीर अर्थात् सिये अर्थात् अर्थात् न ही किन्तु स्वयंके उगाने का तात्पर्य यह है कि इन का -

होवे क्योंकि बिना स्वर के इसी का उच्चारण ही नहीं हो सक्ता है धीर यही महाभाष्य कारण से सिखा है किन के उच्चारण में दूसरे वर्णों की सहायता की वषात् न होने उन्हें स्वर कहते हैं स्वयं उच्यते इति स्वरः" ध्यञ्जन उनको कहते हैं किन उच्चारण बिना स्वर के नहीं होसकता । "अन्वयमवति स्वञ्जनम् ॥

४ इच्छन्त्यम् । १ । १ । १ । उपदेशेऽन्त्यं इच्छित् स्यात् । उपदेशाद्योच्चारणम् । सूत्रेष्ववहृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवतनीयं सवच ॥

उपदेश में जो अन्त्य अक्षर है वह इत्संज्ञक होय । पाणिनी कल्प्यापन धीर एव वक्षि का जो प्रथम उच्चारण उसे उपदेश कहते हैं । पाणिनीजी ने जो मूत्र बनाये हैं उनमें ने इन को ऐसे क्रम से सिखा है कि पहिला मूत्र अगले की सहायता कर । अर्थात् इत् है किन्तुने की आवश्यकता यह है कि इस अन्त्य के पढ़ने वाले प्राण सूत्रों के अर्थों का अर्थ अन्त्य में न पड़े बीसा इच्छन्त्यम् मूत्र है उसकी वृत्ति में उपदेश यह दिया है यह तो, सूत्र में है ही नहीं वृत्ति में जैसे पाया यह पहिले मूत्र से आया है धीर इस से आने ॥ अनुवृत्ति कहते हैं । इसी भांति सब सूत्रों में जानना । अब मूत्र में जो अकार है वह उच्चारण के लिये नहीं किन्तु उसकी वृत्त संज्ञा होती है । धीर उस का पद आगे लिखेंगे ।

४ अदर्शनं शीपः । १ । १ । १ । प्रसक्तस्याऽऽद्यर्न शीपः स्यात् । तस्य शीप १ । १ । १ । तस्येति शीप स्यात् । आदेशोऽच्चाद्यर्था ॥

जो वस्तु है उसमें न रहने की शीप कहते हैं । जिसकी इत्संज्ञा होती है तिसका शीप होय । जो अक्षर इत् इत्यादि मिय सूत्रों के अन्त्य में अक्षर इत्यादि इत् हैं सो अक्ष, इक्ष, अक्ष इत्यादि प्रत्याहारों के लिये हैं । अब प्रत्याहार बनाने का क्रम लिखते हैं ।

५ आदिरन्त्येन सञ्ज्ञेता । १ । १ । ७१ । अन्त्येनता सहित आदिर्मध्यगता स्वस्य च सञ्ज्ञा स्यात् । यथाऽविति अक्ष उ वर्णानां संज्ञा, एवमक्ष इक्ष अक्षित्याद्व ॥

प्रत्येक प्रत्याहार अन्त्य इत्संज्ञक वर्णों के सहित आदि वर्णों के सम्बन्ध वर्णों का बीच होता है । बीसा अक्ष (१) मूत्र से अक्षी इत्संज्ञा होती है फिर (२) अन्त्य इत्संज्ञक वर्ण है अक्ष के साथ आदि वर्ण है अक्ष के सम्बन्ध वर्ण है इत् अक्षोंत् अक्ष कहने से अक्ष इत् का बीच भवा अक्ष का बीच होजाता है । (३) इसी रीति अक्ष इत् अक्ष इत्यादि प्रत्याहारों की माधना । ये इत् प्रत्याहार हैं -

अण् १, अण् २, अक् ३, अच् ४, अट् ५, अम् ६, अण् ७, अल् ८, इक् ९, इण् १०, इच् ११, उक् १२, एच् १३, एङ् १४, ऐच् १५, ख्य १६, खर् १७, छम् १८, चर् १९, च्य २०, छक् २१, ज्य २२, झल् २३, झप् २४, झर् २५, झय् २६, झम् २७, म्य २८, भप् २९, यण् ३०, य्य ३१, यञ् ३२, यम् ३३, यर् ३४, रल् ३५, र्य ३६, रण् ३७, व्य ३८, वल् ४०, हल् ४१, ह्य ४२ ॥

६ उ ३ कालोऽङ्गस्वदीर्घप्लुतः । १ । २ । २७ । उश्च कश्च

उ ३ श्च व. वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद् स्वदीर्घप्लुत-
सञ्जा स्यात् । स प्रत्येकमुदात्तादिभेदेन त्रिधा ॥

अङ्गुष्ठ के मूल की नाडी की गति जितने कालमें एकवार होती है, उतने काल में ऊँस्व, उस से दूने काल में दीर्घ, और उस से तिगुन कालमें प्लुत का उच्चारण करना चाहिये । उदात्त, अनुदात्त और स्वरित भेद से प्रत्येक स्वर तीन प्रकार के हैं ॥

७ उच्चैरुदात्तः । १ । २ । २९ ॥

तास्वादि स्थान के ऊपर के भाग में जो अच् निष्पन्न होता है, उसे उदात्त कहते हैं ।

८ नीचैरनुदात्तः । १ । २ । ३० ॥

तास्वादि स्थान के अधोभाग में जो अच् निष्पन्न होता है उसे अनुदात्त कहते हैं ॥

९ समाहार स्वरित । १ । २ । ३१ । स नवविधोऽपि प्रत्ये-
कमनुनासिकाऽननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा ॥

उदात्तत्व और अनुदात्तत्व ये दोनों वर्ण धर्म जिस में मिले हों उसे स्वरित कहते हैं । उदात्त, अनुदात्त और स्वरितये स्वर के गुण हैं, और इन का काम केवल वेद में पड़ता है । अनुनासिक और अननुनासिक भेद से स्वरों की संख्या द्विगुण होती है ॥

१० मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः । १ । १ । ८ । मुखसहि-
तनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्यात् । तदित्यम्
अ इ उ ऋ एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टादश भेदाः लृवर्णस्य द्वादश
तस्य दीर्घाऽभावात् । एचामपि द्वादश तेषां ह्रस्वाऽभावात् ॥

मुख सहित नासिका से जिस वर्ण का उच्चारण होता है, उसे अनुनासिक और जिस का नहीं होता उसे अननुनासिक कहते हैं । पूर्वोक्त अच् अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, ए १८ प्रकार के हैं । जैसे एक अ, के उदात्त, अनुदात्त, स्वरित ये तीन भेद हैं । जब इन प्रत्येक के ऊँस्व, दीर्घ और प्लुत भेदों से नव भेद हुए, तब नव अनुनासिक और ८ अननु

धीर र इत्यादिकीं में अकार है यह केवल इनके लक्षण के लिये है धीर अर्थात् लिये लिये अर्थात् अर्थात् न ही किन्तु इस्वर के लगाने का तात्पर्य यह है कि इन का लक्षण होने क्योंकि बिना स्वर के इनकी या लक्षण ही नहीं हो सदा है धीर यही लक्षण प्रथमाप्य कारणे सिद्धा है किन के लक्षण में दूसरे वर्णों की सहायता की अपेक्षा न होने उन्हें स्वर कहते हैं "स्वयं राजन्त इतिस्वर" व्याख्यान इनकी कहते हैं किनके लक्षण बिना स्वर के नहीं होसकता । "अन्वगभवति व्यञ्जनम्" ॥

३ इत्तन्त्यम् । १ । २ । ३ । उपदेशेऽन्त्यं इलित् स्यात् । उपदेशाधीनकारणम् । सूत्रेष्वष्टौ पदं सूत्रान्तगाद्नुवतमीयं सवच ॥

उपदेश में जो अन्त्य इत् है वह इत्संज्ञक होय । पाणिनी कात्यायन धीर पर लक्षि का जो प्रथम लक्षण उसे उपदेश कहते हैं । पाणिनीजी ने जो मूत्र बनाये है लक्षण ने इनकी ऐसे क्रम से सिद्धा है कि पहिला मूत्र अकार की सहायता करे । यहाँ इस लक्षण की आवश्यकता यह है कि इस अन्त्य के पढ़ने वाले क्षण मूर्त्तों के अर्थों को देख सन्देश में न पढ़ी जैसा इत्तन्त्यम् मूत्र है उसकी इति में उपदेश पर दिया है वह तं मूत्र में ही नहीं इति में जैसे पाया वह पिछले मूत्र से आया है धीर इस लक्षण के अनुसृति कहते हैं । इसी मान्ति सब मूर्त्तों में आगता । अर्थात् मूत्र में जो अकार है या लक्षण के लिये नहीं किन्तु उसकी इत् संज्ञा होती है । धीर इस का फल पाये लिये

४ आदर्शर्म लोपः । १ । १ । ६० । प्रसक्तस्याऽदशन ले। ५५ स्यात् । तस्य लोप १ । २ । ६ । तस्येता लोप स्यात् । आदेशोऽप्याद्या ॥

जो मूर्त्तु है उसके न रहने का लोप कहते हैं । किनकी इत्संज्ञा होती है तिसके लोप होय । जो अ इ ए अकार इत्यादि मूत्र मूर्त्तों के अन्त्य में ए अ इत्यादि इत् है अ ए अ इ अ इत्यादि प्रत्याहारों के लिये है । अब प्रत्याहार लगाने का क्रम लिखते हैं

५ आदिरन्त्येन सहेता । १ । १ । ७१ । अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगामां स्वस्य च सञ्जा स्यात् । यथाऽपिति अ इ उ वर्णानां संज्ञा, एवमश् इत् अलित्यादयः ॥

प्रथम प्रत्याहार अन्त्य इत्संज्ञक वर्णों के सहित आदि वर्णों के मध्यम वर्ण का दोष होता है । जैसा अ इ (२) मूत्र अ इ की इत्संज्ञा होती है फिर (३) अन्त्य इत्संज्ञक वर्ण है ए उस के साथ आदि वर्ण है ए उस के मध्यम वर्ण है इ उ अकार अ इ कहने में ए इ उ का लोप भवा ए का लोप होजाता है । (४) इसी रीति अ इ अ इ इत्यादि प्रत्याहारों को आगता । ये ३० प्रत्याहार हैं —

अण् १, अण् २, अण् ३, अण् ४, अण् ५, अण् ६, अण् ७, अण् ८, अण् ९, अण् १०, अण् ११, अण् १२, अण् १३, अण् १४, अण् १५, अण् १६, अण् १७, अण् १८, अण् १९, अण् २०, अण् २१, अण् २२, अण् २३, अण् २४, अण् २५, अण् २६, अण् २७, अण् २८, अण् २९, अण् ३०, अण् ३१, अण् ३२, अण् ३३, अण् ३४, अण् ३५, अण् ३६, अण् ३७, अण् ३८, अण् ३९, अण् ४०, अण् ४१, अण् ४२ ॥

६ उ ३ कालोऽङ्गस्वदीर्घप्लुतः । १ । २ । २७ । उश्च कश्च

उ ३ श्च व. वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद् स्वदीर्घप्लुत-
सञ्जा स्यात् । स प्रत्येकमुदात्तादिभेदेन त्रिधा ॥

अङ्गुष्ठ के मूल की नाडी की गति जितने काल में एकवार होती है, उतने काल में इस्व, उस से दूने काल में दीर्घ, और उस से तिगुन काल में प्लुत् का उच्चारण करना चाहिये । उदात्त, अनुदात्त और स्वरित भेद से प्रत्येक स्वर तीन प्रकार के हैं ॥

७ उच्चैरुदात्तः । १ । २ । २८ ॥

तालवादि स्थान के ऊपर के भाग में जो अच् निष्पन्न होता है, उसे उदात्त कहते हैं ।

८ नीचैरनुदात्तः । १ । २ । ३० ॥

तालवादि स्थान के अधोभाग में जो अच् निष्पन्न होता है उसे अनुदात्त कहते हैं ॥

९ समाहार. स्वरितः । १ । २ । ३१ । स नवविधोऽपि प्रत्ये-

कमनुनासिकाऽननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा ॥

उदात्तत्व और अनुदात्तत्व ये दोनों वर्ण धर्म जिस में मिले हों उसे स्वरित कहते हैं । उदात्त, अनुदात्त और स्वरितये स्वर के गुण हैं, और इन का काम केवल वेद में पड़ता है । अनुनासिक और अननुनासिक भेद से स्वरों की संख्या द्विगुण होती है ॥

१० मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः । १ । १ । ८ । मुखसङ्घि-

तनासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्यात् । तदित्यस्
अ इ उ ऋ एषां वर्णानां प्रत्येकमष्टोदश भेदाः लृवर्णस्य द्वादश
तस्य दीर्घाऽभावात् । एचामपि द्वादश तेषां ह्रस्वाऽभावात् ॥

मुख सङ्घित नासिका से जिस वर्ण का उच्चारण होता है, उसे अनुनासिक और जिस का नहीं होता उसे निरनुनासिक कहते हैं । पूर्वोक्त अच् अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, ए, १८ प्रकार के हैं । जैसे एक अ, के उदात्त, अनुदात्त, स्वरित ये तीन भेद हैं । जब इन प्रत्येक के इस्व, दीर्घ और प्लुत भेदों से नव भेद हुए, तब नव अनुनासिक और ८ अननु

नासिका इस भेद से १८ भेद हुए । कृपर्व १२ प्रकार का है क्योंकि बि इस को दीर्घ नहीं है
य, यी, ये, यी, ये भी १२ प्रकार के हैं क्योंकि इन का उच्चारण नहीं होता ।

११ तुषयास्यप्रयत्नं सवर्णम् । १ । १ । ६ । ताल्त्रादिस्थाने
माभ्यन्तरप्रयत्नश्चेत्येतद्द्वयं यस्य येन तुषयं तन्मिथ सवर्णसंज्ञं स्यात्
(वा०) ऋक्षृवर्णयोर्मिथ सवर्णं वाच्यम् ॥

जिन वर्णों के तात्पर्य रथान और आभ्यन्तर प्रयत्न ये दोनों समान हैं इन
को परस्पर सवर्ण संज्ञा होती है । वर्तिकाकार के मत में ऋ और ऋ इन दोनों वर्णों को
परस्पर सवर्ण संज्ञा होती है ॥

१२ अकुहविसजनीयानां कषठ । इषुषशानां ताक्षु । षट्
पाषां मूर्धा । कृतुषसागां दन्ता । उपपध्मानीयानामोष्ठौ । असङ्
नागां नासिका ष । एदौतो कषठताक्षु । ओदौतो कषठीष्ठम् । वका
रस्य दन्तोष्ठम् । जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् । नासिकाऽनुस्वारस्य ॥

अ षा ष इ क ख ग घ ङ च और विभक्त इन वर्णों का कषठ स्थान है । इ ष
इ इ च ख क म्र य और य इन वर्णों का तामु स्थान है । ऋ ऋ ऋ इ उ उ उ ऋ र
और य इन वर्णों का मूर्धा स्थान है । मृ मृ इ त क ड घ न ल और न इन वर्णों का दन्त
स्थान है । उ ऊ उ इ ष ष म म और उपध्मानीय इन वर्णों का ओष्ठ स्थान है । ङ
च न म इन का अपने वर्णों से अक्षिप्त इन नासिका स्थान है । ए ऐ का कषठ और
ताक्षु स्थान है । ओ औ का कषठ और ओष्ठ स्थान है । व का दन्त और ओष्ठ स्थान है
जिह्वा मूली का स्थान जिह्वा का मूल है । अनुस्वार का स्थान नासिका है ॥

१३ प्रयत्नो द्विधा । आभ्यन्तरो वाह्यश्च । वाद्यः पञ्चधा ।
स्पृष्टेपद्स्पृष्टेपद्विहतविहतसंघतभेदात् । तत्र स्पृष्टप्रयत्नं स्पर्शानाम् ।
इपत्स्पृष्टमन्त म्यानाम् । र्ध्वपद्विहतमूष्मणाम् । विहतं स्वराणाम् ।
इस्वस्याऽव्यस्य प्रयोगे संघतम् । प्रक्रियाद्गारां तु विहतमेव ।
त्रोष्ठस्त्रिकाद्गधा । विचारः संवारः श्वासो नादो घोषोऽर्घोषोऽल्प
प्राप्सो मघाप्राप्य उदात्तो ऽनुदात्तः स्वरितश्चेति । खरो विधाराः
श्रामा अधोपाश्च । इगः संवारा नादा घोषाश्च । वर्णाणां प्रथम

तृतीपञ्चमो यणश्चाल्पप्राणाः । कादयो भावसानाः स्पर्शा ।
यणाऽन्तस्थाः शल उष्माणः अचः स्वराः । < क > ख इति कखास्यां
प्रागर्द्धविसर्गसदृशो जिह्वामूलीयः । < प > फ इति पफाभ्यां
प्रागर्द्धविसर्गसदृश उपध्मानीयः । अं अः इत्यचः परावन्स्वारविसर्गौ ॥

प्रयत्न दो प्रकार के हैं । आभ्यन्तर और बाह्य । प्रथम आभ्यन्तर प्रयत्न पांच प्रकार का है । स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषत्द्विद्वत, विद्वत और सहत । स्पर्श वर्णोंका स्पृष्ट प्रयत्न है । अन्तस्थ वर्णों का ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न है । उष्मा वर्णों का ईषत्द्विद्वत प्रयत्न है । स्वर वर्णों का विद्वत प्रयत्न है । ङस्व अकार के प्रयोग में सहत प्रयत्न होता है । परन्तु साधनिका दशा में वह विद्वत कहाता है । बाह्य प्रयत्न श्यारह प्रकार का है । जैसे विवार, सवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्प-प्राण, महाप्राण उदात्त, अनुदात्त, और स्वरित । खर प्रत्याहार में जितने अक्षर हैं (क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ, श, ष और स) तिनका विवार स्वास और अघोष प्रयत्न है । हश् प्रत्याहार में जितने अक्षर हैं (ह, य, व, र, ल, ज, म, ड, ण, न, झ, भ, घ, ङ, ध, ज, ष, ग, ङ और द) तिनका सवार नाद और घोष प्रयत्न है । वर्णों के पहिले तीसरे और पाचवें वर्ण (क, ग, ङ, च, ज, ज, ट, ड, ण, त, द, न, प, ब और म और यण (य, व, र, और ल) का अल्प-प्राण प्रयत्न है । वर्णों के जो दूसरे और चौथे अक्षर हैं अर्थात् (ख, घ, छ, झ, ठ, ड, थ, ध, फ, भ) और शल् श, ष, स और ह का महा प्राण प्रयत्न है । ककार से लेके मकार पर्यन्त जो अक्षर हैं, तिन्हे स्पर्श कहते हैं । (यण य, व, र, ल) को अन्तस्थ कहते हैं । शल् (श, ष, स और ह) को उष्म कहते हैं, अच् (अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, और औ) को स्वर कहते हैं । ककार वा खकार से पूर्व जो आधा विसर्ग के समान चिन्ह हैं, वह जिह्वामूलीय कहाता है । पकार वा फकार के पूर्व जो आधा विसर्ग के समान चिन्ह है, वह उपध्मानीय कहाता है । स्वर के ऊपर जो एक विन्दु • यह अनुस्वार और उस के आगे जो दो विन्दु : हैं वह विसर्ग कहाता है ॥

१४ अणुदित् सवर्णस्य चाप्रत्ययः । १ । १ । ६६ अविधीय-
मानो ऽणुदिच्च सवर्णस्य सञ्ज्ञा स्यात् । अत्रैवाण् परेण णकारेण ।
कु चु टु तु पु एते उदितः । तवदेस इत्यष्टादशानां णा णस समुदाय-
कारोकारौ । ऋकारश्चिञ्शतः । एवं लृकारे । अन्त्य में संगो (१६)
अनुनासिकाननुनासिकाभेदेन यवला द्विनिर्दिष्टोऽन्त्यस्यादेशः
द्वयोर्द्वयोः संज्ञा ॥

जो कार्य पठनान्त से काटा गया होय वह अन्त्य अक्षर होय । इस सिद्धि से यकार ही का लोप पाया ।

२५ (वा०) यथा प्रतिषेधीवाच्य । सुष्ठुपास्य । मद्ध्यरि । धातुर्वा । साकृति ॥

आख्यायन मुनि ने इस (२५) सूत्र पर यह कहा है कि यदि संयोजनान्त पर क अन्त्य अक्षर यक्ष प्रत्याहार का होवे तो उसका लोप न होय । इस सिद्धि से यकार का लोप न भया । तब = सुष्ठुपास्य मनु + धरि = मद्ध्यरि । धातु + र्वा धातुर्वा + साकृति = साकृति ॥

२६ एषोऽययायाव । ६ । १ । ७८ । एषः क्रमादय् अय् आव् आव् एते स्युरधि ॥

अय् परे रहे तो एय् के स्थान में क्रम से अय् अय् आय् आव् आदेम होय ॥

२७ यथासंख्यमनुदेश समानाम् । १ । १ । १० । समसम्बन्धी विधिवर्षा संख्यं स्यात् । हरये । विष्णवे । नायक । पापक ।

'समसम्बन्धी जो कार्य वह यथा संख्या से होय वैसे वैसे कहा ए य् प्रत्याहार में चार वर्ष है ए, ओ, ऐ और औ इन जो चार आदेश परोत् अय् अय् आय् और आव् औ क्रम से ही वैसे एषो अय् भी ओ अय् ऐ ओ आव् और औ ओ आय् इरे + य + इरे । विष्णो × ए = विष्णवे । नै + यक = नायक । पो + यक = पापक ॥

२८ वान्तो वि प्रत्यये । ६ । १ । ७९ । यकारादौ प्रत्यवे परे औदौतोरव् आव् एषौ स्त । गव्यम् नाव्यम् ॥

यदि ऐसा प्रत्य परे हो कि जिसका पहिला अक्षर यकार हो तो ओकार भी अय् और ओकार ओ आव् आदेम होय । उदा । पो + यम् = गव्यम् औ + यम् = नाव्यम् ।

२९ अष्टवपरिमाणे च । गव्यति ॥

जब जो गव्य के आठे युति अष्ट मार्ग के परिमाण अक्षर में मिले तो अष्टवे ओकार भी अय् आदेश होय । वैसे गा × युति = गव्यति (जो वीय)

३० अष्टेऽङ्गुष । १ । १ । २ । अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्वात् ॥

अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्वात् ॥

३१ तपरस्तत्कालस्य । १ । १ । ७ । तः एषो यस्मात् स च

तात् पररौच्यार्थमाहः समकालस्यैव संज्ञा स्यात् ॥

जिस स्वर से परे तकार हो, वा तकार से परे जो स्वर हो, सो उसी काल के सवर्ण का बोधक होय ।

॥ ३२ ॥ आङ्गुणः । ६ । १ । ८७ । अवर्णादचि परे पूर्वपरयो-
रेको गुणादेशः स्यात् । उपेन्द्रः । गङ्गोदकम् ॥

अवर्ण से अच् प्रत्यहार परे हो, तो पूर्व पर के स्थान में गुण एकादेश होय ।
उप-इन्द्रः = उपेन्द्रः । गङ्गोदकम् ॥

॥ ३३ ॥ उपदेशेऽनुनासिक इत् । १ । ३ । २ । उपदेशे
ऽनुनासिको ऽजित्संज्ञः स्यात् । प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः ।
लण् सूत्रस्थावर्णेन सहीच्चार्यमाणो रेफो रलयोः संज्ञा ॥

उदेश में अनुनासिक अच् इत्संज्ञक होय । पाणिनी के छात्र उसे अनुनासिक
जानें जिसे पाणिनी जी ने अनुनासिक माना है ।

लण् सूत्र में जो अनुनासिक इत्संज्ञक अकार है, तिस के साथ रेफ मिलकर र
और ल का बोधक भया अर्थात् र कहने से र, ल का बोध भया ।

॥ ३४ ॥ उरण् रपर, । १ । १ । ५१ । ऋ इति त्रिंशतः संज्ञे
त्युक्तं तत्स्थाने यो ऽण् सरपरः सन्नेव प्रवर्तते । कृष्णर्द्धिः । तवलकारः ।

ऋ तीस का बोधक पहिले कहा गया है, उस के स्थान में जो अण् आदेश सो
रपर होय अर्थात् ऋ को र और लृ को ल होय । जैसा कृष्ण + ऋद्धिः । यहा (३२) से
गुण पाया तब इस सूत्र से अकार और ऋकार मिलकर अर् गुण भया कृष्णर्द्धिः ।
ऐसे ही तव + लृकार, = तवलृकार, ॥

॥ ३५ ॥ लीप. शाकल्यस्य । ८ । ३ । १६ । अवर्णपूर्वयोः
पदान्तयोर्यवयोर्वा लीपोऽग्नि परे ॥

अकार से परे जो पद के अन्त में यकार वा वकार तिसका लोप विकल्प से होय
यदि उस के आगे कोई अश् प्रत्याहार का वर्ण रहे । हर + इह = (२६) हरय् + इह =
हर इह वा हरयिह । विष्णो + इह (२६) = विष्णव् + इह = विष्ण इह ॥ वीं विष्णविह ॥

॥ ३६ ॥ पूर्वत्रासिद्धम् । ८ । २ । १ । सपादसप्ताध्यायीं प्रति
त्रिपादसिद्धा त्रिपाद्यामपि पूर्वं प्रति परं शास्त्रमसिद्धम् । हर इह ।
हरयिह । विष्ण इह । विष्णविह ॥

सात अध्याय और एक पाद के शास्त्र की अपेक्षा अन्त्य अध्याय के तीन पाद के

जो आर्य्य पठघन्त से लहागया होय वह अन्त्य अक्ष को होय । इस विषे सुद्धय् के यकार ही का लोप पाया ।

२५ (वा०) यच्च प्रतिषेधीवाच्य । सुबुधपास्य । मद्भ्वरि । धात्वर्थः । लाङ्गति ॥

आत्यायन मुनि ने इस (२५) सूत्र पर यह कहा है कि यदि संयोगान्त पर अन्त्य वर्षं यच्च प्रत्याहार का होवे तो उसका लोप न होय । इस विषे यकार का लोप न भया । तब—सुबुध पास्य' मद्भु+परि'—मद्भ्वरि' । धातु+र्थं' धात्वर्थः+आङ्गति'—लाङ्गति' ॥

२६ एचीऽववायाव । ६ । १ । ७८ । एच क्रमाद् यच्च आच भाव् एते स्म्वरिचि ॥

अक्ष परे रहे तो एच के स्थान में क्रम से अय् अच् भाव् भाव् आदेश होय ॥

२७ यथासंख्यमनुदेश समानाम् । १ । ३ । १ । समसम्बन्धी विधिर्भाषा संख्य स्यात् । हरये । विष्णवे । नायक । पावक ।

'समसम्बन्धी जो भाष्य वह यथा संख्या से होय वीसा वीसा यहां एच् प्रत्याहार के चार बंध है ए, ओ ऐ औ र औ इन को चार आदेश अर्थात् अय् अच् भाव् औ र अच् औ के क्रम से हो वीसा एको अय् ओ को अच् ऐ ओ आच् औ र औ को अय् हरे+य+हरये । विष्णी×ए=विष्णवे । नी+अच्=नायक । पो+अच्=पावक ॥

७८ दान्तो यि प्रत्यये । ६ । १ । ७९ । यकारादौ प्रत्यये परे औदीतोरच् भाव् एयौ स्त । गव्यम् नाव्यम् ॥

यदि ऐसा प्रत्य परे हो कि जिसका पहिला अक्षर यकार हो तो औकार की अच् औ र औकार को अच् आदेश होय । उदा । गो+यम्=गव्यम् नी+यम्=नाव्यम् ।

२९ अक्षपरिमाणे च । गव्युति ॥

जब नी गव्य के आने युति शब्द मात्र के परिमाण अक्ष में मिले तो उससे औकार को अच् आदेश होय । अर्थात् गा×युति=गव्युति' (ही काय)

३ अट्टेङ्गुश्च । १ । १ । २ । अत् एङ् च गुणसंज्ञः स्यात् ॥

हरय अकार एकार औ र औकार गुणसंज्ञक होय ॥

३१ तपरस्तात्क्रान्त्य । १ । १ । ७ । तः रपो यस्मात् स च तात् परश्चौचचायमाचः समवाप्तस्यैव संज्ञा स्यात् ॥

॥ ४१ ॥ (वा०) प्राद् ह्रीढोढेयपैष्येषु । प्रौहः । प्रौढः । प्रौढिः ।

प्रैषः । प्रैष्यः ॥

प्र शब्द (४५) से ऊह, ऊढ, ऊढि, एष वा एष्य शब्द परे रहे तो दोनों मिलकर वृद्धि होवे प्र+ऊह' = प्रौह' । प्र+ऊढ' = प्रौढ' । प्र+ऊढिः = प्रौढि' । प्र+एष = प्रैषः । प्र+एष्यः = प्रैष्यः ॥

॥ ४२ ॥ (वा०) ऋते च तृतीयासमासे । सुखेन ऋतः सुखार्त ।

तृतीयेति किम् परमर्तः ।

यदि तृतीया समास से अकार वा आकार से परे ऋत शब्द हो तो दोनों मिलकर वृद्धि होवे । सुख+ऋत' = सुखार्त । तृतीया कहने से परमर्तः, यहा वृद्धि न हुई क्योंकि यहा कर्मधारय समास है । परम्+ऋत = (३२) परमर्त ।

॥ ४३ ॥ (वा०) प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानासृणे । प्रार्णम् इत्यादि ॥

प्र । वत्सर । कम्बल । वसन । ऋण । दशन । इन शब्दों के आगे ऋण शब्द रहे तो वृद्धि होय । प्र+ऋणम् = प्रार्णम् । वत्सनर+ऋणम् = वत्सतरार्णम् । इसी प्रकार औरों को भी जानना ।

॥ ४४ ॥ उपसर्गा क्रियायोगे । १ । ४ । ५६ । प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः ।

जब प्र इत्यादिकों का योग क्रिया से हो तब वे उपसर्ग कहवें ॥

॥ ४५ ॥ प्र । परा । अप् । सम । अनु । अव । निस् । निर् । दुस् । दुर् । वि । आड् । नि । अधि । अपि । अति । मु । उत् । अभि । प्रति । परि । उप । एते प्रादयः ॥

ये वार्द्धस प्रादि कहते हैं ॥

॥ ४६ ॥ भूवादयो धातवः । १ । ३ । १ । क्रियावाचिनो भवादयो धातुसंज्ञाः स्युः ॥

जो शब्द क्रिया को प्रतिपादन करवावे और भू आदि दश गणों में से किसी गण से पढा हो सो धातु कहवे ॥

॥ ४७ ॥ उपसर्गादिति धातौ । ६ । १ । ६१ । अवर्णान्तादुपसर्गादकारादौ धातौ परे वृद्धिरेकादेशः स्यात् । प्राच्छति ॥

शास्त्र असिद्ध है। इसी भाँति तीनों पादों में भी पूव शास्त्र की अपेक्षा पर शास्त्र असिद्ध है। जैसे शीघ्र शक्यस्य (१५) त्रियादि का सूत्र है उस से जो शीघ्र इया तो हर हर ऐसा सिद्ध भया। अब यहाँ अकार और इकार की मिलाकर आहुष सूत्र (१२) से एकार गुण प्राप्त भया परन्तु वह सपादसप्तधाभ्यामी का सूत्र है त्रिपादी जो सूत्र के कार्य को नहीं देख सकता इस लिये उस सूत्र की दृष्टी में यकार का खे ही नहीं हुआ तो फिर गुणादेश जैसा इस कारण गुणादेश न भया ॥

॥ ३० ॥ वृद्धिरादैच् । १ । १ । आदैश्च वृद्धिसञ्चः स्यात् ॥

आकार, एकार और औकार का नाम वृद्धि है ॥

॥ ३८ ॥ वृद्धिरेधि । ६ । १ । ८८ । आदेशि परे वृद्धिरेकादेश्य स्वात् । गुणाऽपवादः । कृष्णैकत्वम् । गङ्गीष । देशैरवर्यम् । कृष्णौत्स्वरठम् ॥

अ वा आ से परे यदि एच (ए ओ ऐ वा औ) रहे तो दोनों मिलाकर वृद्धि होने यह नियम निरवकाश होकर गुण का वाचक है क्योंकि जिस विषय में यह प्राप्त होता है उसी विषय में गुण सवटा प्राप्त रहता है। यदि इस विषय में गुण होने तो वृद्धि की कक्षा सफलता होगी। इस लिये यह अपने विषय में गुण की वाचता है। “निरवकाशो विधिरपवादः” कृष्ण + एकत्वम् = कृष्णैकत्वम् । गङ्गा + औष = गङ्गीष इष + अवर्यम् = देशैरवर्यम् । कृष्ण + औत्स्वरठम् = कृष्णौत्स्वरठम् ॥

॥ ३९ ॥ एत्येधत्युठम् । ६ । १ । ८९ । अवादेश्यादीरेत्ये धस्योरुठि च परे वृद्धिरेकादेश्य स्यात् । उपैति उपैधते । प्रष्ठौह । एकादौ किम् । उपेत । सा भवान् प्रेक्षित् ॥

अ वा आ से परे यदि इच् वा एच वातु के ऐसे रूप हों कि जिनका प्रथम वर्ण ए हो वा ऊट् म्द परे हो तो दोनों मिलाकर वृद्धि होय । जैसे । उप + एधते = उपैधते । ऊट् — प्रष्ठ + ऊह = प्रष्ठौह यदि इच् वा एच वातु के आदि वर्ण ए हो ऐसा न कहते तो यहाँ भी वृद्धि हो जाती इस लिये प्रथम वर्ण ए हो ऐसा कहा तब उपेत बना उप + इत = उपेत । प्र + इदिषत् = प्रेक्षित् ॥

॥ ४० ॥ (वा) अवाद्दृष्टिन्यामुपसंख्यानम् । अचौहिषी सेना ॥

अच म्द से यदि अहिषी म्द परे रहे तो दोनों मिलाकर वृद्धि होय यह वार्तिक का मत है । अच + अहिषी = अचौहिषी = सेना ॥

॥ ४१ ॥ (वा०) प्राद्‌होढोढेयषैष्येषु । प्रौहः । प्रौढः । प्रौढिः ।

प्रैष । प्रैष्यः ॥

प्र शब्द (४५) से ऊह, ऊढ, ऊढि, एष वा एष्य शब्द परे रहे तो दोनों मिलकर वृद्धि होवे प्र+ऊहः=प्रौहः । प्र+ऊढ =प्रौढ । प्र+ऊढिः=प्रौढि । प्र+एष=प्रैषः । प्र+एष्य =प्रैष्यः ॥

॥ ४२ ॥ (वा०) ऋते च तृतीयासमासे । सुखेन ऋतः सुखार्तः ।

तृतीयेति किम् परमर्तः ।

यदि तृतीया समास से अकार वा आकार से परे ऋत शब्द ही तो दोनों मिलकर वृद्धि होवे । सुख + ऋतः =सुखार्तः । तृतीया कहने से परमर्तः; यहा वृद्धि न हुई क्योंकि यहा कर्मधारय समास है । परम + ऋत = (३२) परमर्तः ।

॥ ४३ ॥ (वा०) प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णदशानामृशो । प्रार्णम् इत्यादि ॥

प्र । वत्सर । कम्बल । वसन । ऋण । दशन । इन शब्दों के आगे ऋण शब्द रहे तो वृद्धि होय । प्र + ऋणम् = प्रार्णम् । वत्सतर + ऋणम् = वत्सतरार्णम् । इसी प्रकार श्रीं की भी जानना ।

॥ ४४ ॥ उपसर्ग क्रियायोगे । १ । ४ । ५६ । प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गसंज्ञाः स्युः ।

जब प्र इत्यादिकों का योग क्रिया से हो तब वे उपसर्ग कहावें ॥

॥ ४५ ॥ प्र । परा । अप् । सम । अनु । अव । निस् । निर् । दुस् । दुर् । वि । आड् । नि । अधि । अपि । अति । मु । उत् । अभि । प्रति । परि । उप । एते प्रादयः ॥

ये वाईस प्रादि कहाते हैं ॥

॥ ४६ ॥ भूवादयो धातवः । १ । ३ । १ । क्रियावाचिनो भवादयो धातुसंज्ञ स्युः ॥

जो शब्द क्रिया की प्रतिपादन करवावे और भू आदि दस गणों में से किसी गण में पडा हो सो धातु कहावे ॥

॥ ४७ ॥ उपसर्गादिति धातौ । ६ । १ । ६१ । अवर्णान्तादुपसर्गादकारादौ धातौ परे हृद्विरेकादेशः स्यात् । प्राच्छति ॥

जिस उपसर्ग के अन्त में अकार हो उस से परे एक ऐसा धातु हो कि जिस के आदि में अकार होवे तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होय बीसा । प्र + अस्वति = प्रास्वति ॥

॥ ४८ ॥ एङि पररूपम् । ६ । १ । ६४ । आदुपसर्गादिष्ठादौ धातौ परे पररूपमेकादेशः स्यात् । प्रेक्षते । उपोषति ॥

अवर्णान्त उपसर्ग ४५ से परे की एकादि वा औकारादि धातु रहे तो पूर्व पर के स्थान में पररूप एकादेश होय । प्र + एक्षते = प्रेक्षते । उप + ओषति = उपोषति ॥

॥ ४९ ॥ अचो ऽन्त्यादि टि । १ । १ । ६४ । अर्चा मध्येयोऽन्त्यस्य आदिर्यस्य तद्धि संज्ञं स्यात् ।

अर्चा में की अन्त्य अच् है सो जिसके पूर्व हो उस के सङ्गित उसकी टि संज्ञा होय ।

॥ ५० ॥ (वा) शकन्वादिषु पररूपं वाच्यम् । तच्छटे । शकन्धु । कर्कन्धु । मनीषा शाङ्गलीषा । आक्षतिगर्भोऽयम् । मार्तण्डः ।

शकन्धु आदि गच पठित शब्दों की ओ टि उसे पररूप एकादेश होय । शक + धन्धु = शकन्धु । कर्क + धन्धु = कर्कन्धु । मनस् + ईषा = मनीषा । शाङ्ग + ईषा + शाङ्गलीषा । इस मन्ध के शब्द स्वरूप ही के देखने से जाने जाने है कि ये शकन्धादि के हैं क्योंकि किसी मुनि ने इस गच की पूरी मन्थना नहीं की । जैसे मार्त + ण्डः = मार्तण्डः

॥ ५१ ॥ श्रीमाळीश्च । ६ । १ । ६५ । श्रीमि आङि चात् पररूपमेकादेशः स्यात् । शिवायोऽन्नम । शिवेष्टि ।

यदि उच्य शब्द से पर श्रीम् वा आङ् शब्द रहे जिसके पूर्व में अकार हो तो पररूप एकादेश होय । शिवाय + श्रीम् + नम = शिवायोऽन्नम । शिव + आङ् + इष्टिश्च = शिव + अङ्गि = शिवेष्टि ॥

॥ ५२ ॥ अक्त् सवर्षे दीर्घ । ६ । १ । १०१ । अक्त् सवर्षे ऽचिपरे पूर्वपरयोर्दीर्घ एकादेशः स्यात् । दैत्यारिः । श्रीश । विष्णुद्वयं जितकारः ॥

अक्त् प्रत्याहार से सवर्ष अक्त् प्रत्याहार परे रहे तो पूर्व पर के स्थान में दीर्घ एकादेश होय । दैत्य + अरि = दैत्यारिः । श्री + शः = श्रीश । विष्णु + द्वय = विष्णुद्वय । जितु + अकार = जितुकार (११) ॥

॥ ५३ ॥ एडः पदान्तादति । ६ । १ । १०६ । पदान्तादेडीति
परे पूर्वरूपमेकादेशः स्यात् । हरेऽव । विष्णोऽव ॥

यदि पदान्त १७ एकार वा ओकार मे परे ऊस्व अकार रहे तो पूर्वरूप एकादेश
होय । हरे + अव = हरेव । विष्णोऽव । ऐसे स्थान में यह चिन्ह लिखा जाता है जिसका
नाम अर्द्धाकार है ॥

॥ ५४ ॥ सर्वत्र विभाषा गोः । ६ । १ । १२२ । लोके वेदे
चैडन्तस्य गोरति वा प्रकृतिभावः पदान्ते । गो अग्रम् । गोऽग्रम् ।
एडन्तस्य किम् । चित्रग्वग्रम् । पदान्ते किम् । गोः ॥

वैदिक वा अवैदिक प्रयोगों में यदि पदान्त एडन्त (ए वा ओ अन्त में जिसके)
गोशब्द से परे ऊस्व अकार रहे तो विकल्प से प्रकृतिभाव होय । जैसा का तैसा ही
रहने को प्रकृतिभाव कहते हैं, गो अग्रम् वा गोऽग्रम् यदि एडन्त नहीं कहते तो ।
चित्रगु + अग्रम् । यहा प्रकृतिभाव होता क्योंकि गो शब्द एडन्त नहीं है । चित्रगु +
अग्रम् = चित्रग्वग्रम् । पदान्त क्यो कहा । गो + अस् = गो । यहा गो शब्द का ओकार
पदान्त नहीं है इसलिये पूर्वरूप होता है ॥

॥ ५५ ॥ अनेकाल् शित् सर्वस्य । १ । १ । ५५ । इति प्राप्ते ।
जो अनेकाल् वा शित् आदेश है वह सपूर्ण स्थानी के स्थान में होवे ॥

॥ ५६ ॥ डिच्च । १ । १ । ५३ । डिदनेकालप्यन्त्यस्यैव स्यात् ।
वह अनेकाल् आदेश अन्त्य अलही के स्थान में होवे जिसका डकार इत् है ।

॥ ५७ ॥ अवड् स्फोटायनस्य । ६ । १ । १२३ । पदान्ते एड-
न्तस्य गोरवड् वाचि । गोऽग्रम् । पदान्ते किम् । गवि ॥

अच् परे रहे तो पदान्त एडन्त गो शब्द को स्फोटायन आचार्य के मत में
अवड् आदेश होवे । गोऽग्रम् वा गवाग्रम् । पदान्त क्यो कहा । गो + इ = गवि । यहा
गो शब्द का ओकार पदान्त १७ नहीं है, इस लिये यह सूत्र २६ लगा ॥

॥ ५८ ॥ इन्द्रे च । ६ । १ । १२४ । गोरवड् स्यादिन्द्रे । गवेन्द्रः ।
गो शब्द को अवड् आदेश होवे इन्द्र शब्द परे रहते । गो + इन्द्र = गवेन्द्रः ।

॥ ५९ ॥ दूराडूते च । ८ । २ । ८४ । दूरात् सम्बोधने वाक्यस्य
टेः प्लुतो वा ॥

जो दूर से पुकार ने में वाक्य है उसकी टि ४६ विकल्प से प्लुत है होवे ॥

॥ ६ ॥ प्लुतप्रगृह्या अपि नित्यम् । ६ । १ । १२५ । एतेऽपि
नित्यं प्रकृत्या स्युः । भागच्छ कृष्ण ४ अप्य गौशचरति ॥

प्लुत ६ और प्रगृह्य भेमा का तीघा रहे यदि अप् परे रहे तो । छ । कृष्ण ४ अप्य ।

॥ ६१ ॥ ईद्देद्विवचनं प्रगृह्यम् । १ । १ । ११ । ईद्देदन्त
विवचनं प्रगृह्य स्यात् । एरी एतौ । विष्णु इमी । गङ्गे अम् ॥

१ छ वा ए जिनके अन्त्य में हो ऐमा जो विवचन से प्रगृह्य संज्ञक होय पयात्
जेसे का तीघा रहे । एरी एतौ । विष्णु इमी । गङ्गे अम् ॥

॥ ६२ ॥ अदसो मात् । १ । १ । १२ ॥ अस्मात् परावीदृती
प्रगृह्यीस्त । अमी ईशा । रामकृष्णायम् आमाते । मात् किम् ।
असुकेऽच ॥

अदस् शब्द को मकार से परे जो इ वा छ से प्रगृह्य संज्ञक होय ।
रामकृष्णायम् आमाते । मकार से परे कयी कक्षा । असुकेऽच (११) यदि मकार का प्रह्व
जो न करते तो पुष्युच (६१) से एकाव की अनुवृत्ति हो जाती तो प्रगृह्य संज्ञा ही जाती
इसलिये मकार प्रह्व किया तो असुके + अच यहाँ प्रकृतिभाव न हुआ ।

॥ ६३ ॥ आदयोऽसत्वे । १ । ४ । ५७ । अद्रव्यार्थाश्चादयो
निपाता स्युः ॥

अ इत्यादि जो शब्द द्रव्य को नाञ्जल न हीं से निपात कहायें । द्रव्य लसे कहते
हैं जिनका अन्त्य स्विन सव्या को साथ हो ।

॥ ६४ ॥ प्रादयः । १ । ४ । ५८ । एतेऽपितथा ॥

प्र आदि ७५ भी पूर्वोक्त प्रकार से निपात कहायें ॥

॥ ६५ ॥ निपात एकावनाङ्क । १ । १ । १४ । एकीऽजनिपात
आङ्कवचं प्रगृह्यः । इ इन्द्र । छ समेश । वाक्प्रस्मरस्योरङित् ।
आ एवं नु मन्यसे । आ एवं किल तत् । अश्वत्थ ङित् इयदुष्णम् ।
पीष्णम् ॥

आङ्क को बीबकर जो निपात एकाव है सो प्रगृह्य कहायें । इ इन्द्र । छ समेश
पाप्य और स्मरस्य आङ्क से अन्त्य अकार ङित होता है अर्थात् किन् मान को जो कार्य
बाना है वह लस से भी होवे । आ एवं नु मन्यसे । आ एवं किल तत् । अश्वत्थ ङित् इयदुष्णम् ।
पीष्णम् ॥

किल तत् । हां वह ऐसा होता है । अन्यत्र आ निपात डित् है इसी कारण प्रगृह्य नहीं होता । आ + उष्णम् ३२ = अ्रोष्णम् अर्थात् थोडा गरम ॥

॥ ६६ ॥ औत् । १ । १ । १५ । ओदन्तो निपातः प्रगृह्य ।

अहो ईशाः ॥

ओ है अन्त में जिसके ऐसा जो निपात सो प्रगृह्य ६० कहावे । अहो ईशाः अहो ईशाः ॥

॥ ६७ ॥ सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावन्तार्थे । १ । १ । १६ । सम्बु-
द्विनिमित्तक ओकारो वा प्रगृह्योऽवैदिके इतां परे । विष्णो इति ।
विष्णविति । विष्ण इति ॥

लौकिक इति शब्द परे रहे तो जो सम्बुद्धि निमित्त ओकार सो शाकल्य आचार्य के मत में प्रगृह्य कहावे । विष्णो इति । अन्य के मत में विष्णविति (२६) भया । जब लोप, शाकल्यस्य ३५ से वकार का लोप भया तब । विष्ण इति ॥

॥ ६८ ॥ मय उजो वो वा । ८ । ३ । ३३ । मयः परस्योजो वो
वाऽचि । किम्बुक्तम् ॥

मय् प्रत्याहार से परे जो उज् का उकार तिस को विकल्प से व आदेश होय यदि अच् परे रहे तो । किमु + उक्तम् = किम्बुक्तम् । वा किमु उक्तम् (६५) ॥

॥ ६९ ॥ इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ऋस्वश्च । ६ । १ । १२७ ।
पदान्ता इकोऽस्वो वा स्युरसवर्णेचि । ऋस्वविधिसामर्थ्यान्न स्वर-
सन्धिः । चक्रि अत्र । चक्रयत्र । पदान्ता इति किम् गौर्यौ ॥

जो पद के अन्त में वर्तमान इक् तिसको विकल्प से ऋस्व होय यदि असवर्ण अच् परे रहे उ० । चक्रो + अत्र = चक्रि अत्र । यदि सन्धि १८ हो जाती तो ऋस्व करने का कुछ फल न होता इस लिये सन्धि नहीं होती । जब ऋस्व न हुआ तब १८ सूच से चक्रयत्र होता है । पदान्त इक् कहने से । गौर्यौ । गौगी + औ यद्वा ऋस्व नहीं होता (१८) ।

॥ ७० ॥ अचो रहाभ्यां हे । ८ । ४ । ४६ । अचः पराभ्यां
रेफहकाराभ्यां परस्य परी हे वा स्तः गौर्यौ ॥

अच् से परे जो रेफ पा हकार तिस से परे जो यर् तिसको विकल्प से हित्व होय । गौर्यौ वा गौर्यौ ॥

॥ ७१ ॥ वा० न समासे वाप्यश्च । ॥

समास में ऋस्व विधि ६९ नहीं लगती ॥

॥ ७२ ॥ ष्टुत्यक् । ६ । १ । १२८ । ष्टति परे पदान्ता चञ्च
प्राग्बहा । ब्रह्म ष्टधिः ब्रह्मर्षिः । पदान्ता किम् । आच्छत् ॥

पदान्त चञ्च विकल्प से अस्व होय यदि चञ्चार परे रहे । ब्रह्मा + र्षिणि ब्रह्मर्षिः
वा ब्रह्मर्षि १२ और ३४ पदान्त वाचने से । आच्छत् यहाँ अस्व न हुआ ॥

॥ इति स्वरसन्धि ॥

॥ अथ व्यञ्जनसन्धि ॥

॥ ७३ ॥ स्तो श्चुमा श्चु । ८ । ४ । ४० । सकारतवर्गवो
शकारचवर्गभ्यां योगे शकारचवर्गौ स्त । रामश्चेत् । रामश्चिनोति ।
सच्चिधत् । शाङ्खिञ्जय ॥

जब शकार चवर्ग के साथ सकार वा तवर्ग का योग हो तब सकार को शकार
और तवर्ग को चवर्ग आदेय होय । रामस् + चिनोति = रामश्चिनोति । सत् + चित् =
सच्चित् विपत् + आसम् = विपत्कासम् ॥

॥ ७४ ॥ शात् । ८ । ४ । ४४ । शात् परस्योर्त्वं न । विञ्ज । प्रश्नः ।

शकार से परे जो तवर्ग लसको चवम आदेय न हो । विम् + न = विञ्च ।
प्रम् + न = प्रञ्च ।

॥ ७५ ॥ ष्टुना ष्टुः । ८ । ४ । ४१ । स्तो ष्टुना यागेष्टुः ।
रामष्पठ । रामष्ठीकते । पेष्टा । तष्टीका । चक्रियठौकसे ॥

जब सकार टवर्ग के साथ सकार वा तवर्ग का योग होय तब सकार को सकार और
तवर्ग को टवर्ग आदेय होय । रामस् + ष्ठः = रामष्पठः । पेष् + ता = पेष्टा । तत् +
टीका + तष्टीका । चुप् + त = चुष्टः ॥

॥ ७६ ॥ न पदान्ताष्टीरनाम् । ८ । ४ । ४२ । पदान्ताहुवर्गात्
परस्यानामः स्तोः ष्टुन स्यात् । पट सन्त । पटते । पदान्तात् चिं
बुद्धे । टो चिम् । सर्पिष्ठमम् ॥

नाम् शब्द के लकार को छोड़के पदान्त (१०) टवर्ग से परे जो सकार
और तवर्ग तिनको सकार और टवर्ग आदेय न होय । पट् + सन्त = पट्सन्त
पट् + ते = पट्त ॥

पदान्त कहने से ईदृष्टे यहां टवर्ग का निषेध न हुआ इट् + ते = ईदृष्टे टवर्ग कहनेसे सर्पिष्ठसम् में षटुत्व हुआ सर्पिष् + तसम् = सर्पिष्ठसम् ७५ ।

७७ अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम् । षण्णाम् । षण्णवति षण्णार्थः ॥

विच्छिन्ने निषेध सूत्र से जो नाम शब्द ही को षटुत्व निषेध किया है, सो उचित नहीं है, किन्तु वहां नवति और नगरी इन शब्दों का भी ग्रहण करना चाहिये षट् + नाम् = षण्णाम् । षट् + नवतिः = षण्णवति । षट् + नगर्यः = षण्णार्थः ॥

॥ ७८ । तौः षि । ८ । ४ । ४३ । न षटुत्वम् । सन्षष्टः ॥

षकार परे रहते तवर्ग को टवर्ग आदेश न होय । सन् + षष्टः = सन्षष्टः ।

॥ ७९ ॥ भ्रूषां जशीऽन्ते । ८ । २ । ३९ । पदान्ते भ्रूलां जश् स्युः ।

वागीश ॥

पद (१७) के अन्त में जो भ्रूल् प्रत्याहार के वर्ण तिनके स्थान में जश् आदेश होय । वाक् + ईश = वागीशः चित् + रूपम् = चिद्रूपम् ।

॥ ८० ॥ यरोऽनुनासिकेऽनुनासिकी वा । ८ । ४ । ४५ । यरः

पदान्तस्याऽनुनासिकेऽनुनासिकी वा स्यात् एतन्मुरारिः । एतद्मुरारि

यदि अनुनासिक परे रहे तो पदान्त (१७) यर् के स्थान में अनुनासिक आदेश विकल्प से हो । एतद् + मुरारि = एतन्मुरारिः वा एतद्मुरारिः ॥

८१ ॥ वा० प्रत्यये भाषायां नित्यम् । तन्मात्रम् । चिन्मयम् ।

प्रत्यय का अवयव अनुनासिक परे रहे तो पदात् (१७) यर् के स्थान में नित्यही अनुनासिक आदेश होता है । तद् + मात्रम् = तन्मात्रम् । चिद् + मयम् = चिन्मयम् ॥

॥ ८२ ॥ तीर्लि । ८ । ४ । ६० । परसवर्णः । तल्लयः विद्वाँ-
ल्लिखति । नस्यानुनासिकी ल् ॥

लकार परे ही तो तवर्ग के स्थान में परसवर्ण अर्थात् लकार आदेश होय तद् + लय = तल्लयः । विद्वान् + लिखति = विद्वालिखति यहां अनुनासिक न की अनुनासिक ल आदेश मया ॥

॥ ८३ ॥ उद्ः स्थास्तम्भो । पूर्वस्य । ८ । ४ । ६१ । उद्ः परयोः
स्थास्तम्भो पूर्वसवर्ण ॥

उद् चपसन् से परे जो रबा और स्तम्भ तिनको पूर्वसवर्ष होय ।

॥ ८४ ॥ तस्मादित्युत्तरस्य । १ । १ । ६० । पञ्चमीनिर्देशेन

त्रिविधायाः कार्यैः सर्वाङ्गान्तरेष्वाऽव्यवहितस्य परस्य चोच्चम् ॥

पाँचवां प्रकारकी विभक्ति है अन्त में जिसको ऐसा जो पद तिसकी निर्देश से जो कार्य विधान हो सो उसी को जो जो उससे परे रहे और वह किसी दूसरे वर्ष से व्यवहित न होय ।

॥ ८५ ॥ आदे परस्य । १ । १ । ५४ । परस्य यद्विहितं तत्

तस्यादेवौध्यम् । इति सस्य ष ॥

वह कार्य उसको प्रथम वर्ष को होय जो पर को किया जाता है । उद् + स्थागमें यहाँ स्थागम् को सकार को पूर्व सवर्ष से हकार मवा कर्षीकि सकार के विचार, खास अघोष और महाप्राच (१३) प्रयत्न हैं तो विचार खास अघोष महाप्राच प्रयत्नवान् सकार का सवर्ष हकारही है इस कारण हकार आदेय मया तत्र हृदय्यागम् ऐसा मया ।

॥ ८६ ॥ भ्रूरो भ्रुरि सवर्षे । ८ । ४ । ६५ । इति परस्य भ्रूरी

वा लोपः सवर्षे भ्रुरि ॥

इद् से परे जो भ्रूर् तिसका लोप विकल्प से होय यदि सवर्षीभ्रूर् परे रहैतो । उद् + भानम् = उद्भानम् ॥

॥ ८७ ॥ खरि च । ८ । ४ । ५५ । खरि भ्रूरी चर इत्युदी

इस्य त उत्थानम् । उत्तम्भनम् ॥

खर् परे जो ती खर् के स्थान में चर आदेय होय उद् + भानम् = उत्थानम् ॥

॥ ८८ ॥ भ्रूरी जीऽभ्यतरस्याम् । ८ । ४ । ६२ । भ्रूय परस्य

इस्य वा पूर्वसवर्षः । नादस्य घोषस्य संवारस्य महाप्राचस्य इत्थ तादृशी वर्गचतुर्य वाग्घरिः । वाग्घरिः ॥

भ्रूय प्रत्याहार से परे जो हकार तिसको पूर्व सवर्ष विकल्प से होय । वाग् + हरि यहाँ पूर्वसवर्ष से हकार को घकार मवा कर्षीकि हकार के संवार, नाद, घोष और महाप्राच (१३) प्रयत्न हैं तो संवार, नाद घोष महाप्राच प्रयत्नवान् सकार ही है इस कारण आदेय मया । वाग् + हरि = (०८)वाग्घरि ॥

॥ ८६ ॥ शच्छोऽटि । ८ । ४ । ६३ । भयः परम्य शस्य हो याऽ
टि । तद् शिव इत्यत्र दस्य चुत्वेन जकारे द्वते खरि चेति जका-
रस्य चकारः । तच्छिवः । तच्चिवः ॥

पदान्त (१७) भय् प्रत्याहार से परे जो शकार तिसकी छकार आदेश होय
विकल्प से अट् प्रत्याहार परे रहते । तद् + शिव = तद् + शिव = (७६) तज् + शिव =
(८०) तच्छिव वा (७७) तज् + शिव. = (८१) तच्चिव. ॥

॥ ६० ॥ वा० छत्वमसीति वाच्यम् । तच्छ्लोकेन ॥

वार्त्तिककार के मत में भस् प्रत्याहार परे रहते भी पदान्त (१७) भय् से परे
शकार के स्थान में छकारा देग होता है । तद्-श्लोकेन तद्-छ्लोकेन (७३) तज् +
छ्लोकेन = (८१) तच्छ्लोकेन ॥

॥ ६१ ॥ मोऽनुस्वारः । ८ । ३ । २३ । शान्तस्य पदस्याऽनुस्वा-
रो हलि । हरि वन्दे ॥

हल् परे रहते मकारांत पद (१७) के मकार की अनुस्वार आदेश हो । हरिम् +
वन्दे = हरिवन्दे ॥

॥ ६२ ॥ नश्चापदान्तरय भूति । ८ । ३ । २४ । नस्य मस्य चा-
पदान्तरय भूत्यनुस्वारः । यशांसि । आक्रम्यते ॥

भल् परे रहते अपदान्त नकार और मकार की अनुस्वार आदेश होय ॥

॥ ६३ ॥ अनुस्वारस्य ययि परसवर्ण । ८ । ४ । ५८ । शान्तः ॥
यय् परे रहते अनुस्वार की परसवर्ण होय शास् + त = शान्त ॥

॥ ६४ ॥ वा पदान्तरय । ८ । ४ । ५९ । त्वङ्करोषि । त्वकरोषि ॥
यय् परे रहते पदान्त (१७) अनुस्वार की विकल्प से परसवर्ण होय । त्व +
करोषि = त्वङ्करोषि वा त्व करोषि ॥

॥ ६५ ॥ मोराजिसमः क्वौ । ८ । ३ । २५ । क्विवन्ते राजतौ
परे समो मस्य म एव म्यात् । मन्नाट् ॥

क्विवन्त धातु परे रहे तो सम् गन्ध के मकार की मकार ही आदेश होय
सम् + राट् = मन्नाट् ॥

॥ ६६ ॥ हे मपरे वा । ८ । ३ । २६ । मपरे हकारे परे मस्य
मो वा । किं ह्यलयति ॥ किं ह्यलयति ।

जिस मकार से परे हकार हो ऐसा हकार परे रहे तो विकल्प से म की मकारही होय किम् + ह्रस्वयति = किम्ह्रस्वयति वा ८१ किं ह्रस्वयति ॥

॥ ८७ ॥ वा० ययलपसे ययला वा । कियं ह्र । किं ह्र ।

कियं ह्रस्वयति । किं ह्रस्वयति । कियं ह्रादयति । किं ह्रादयति ॥

जिस हकार से परे यकार वकार भववा लकार हो ऐसा हकार परे रहेतो म की म् से य व ल पादेय होय । किम् + ह्र = कियं ह्र वा (८१) किं ह्र । किम् + ह्रस्वयति = कियं ह्रस्वयति वा किं ह्रस्वयति किम् + ह्रादयति = कियं ह्रादयति वा किं ह्रादयति ॥

॥ ८८ ॥ मपरे न । ङ । इ । २७ । मपरे हकारे मस्य नीवा ।

किन् ङुते किं ङुते ॥

मकार जिस से परे हो ऐसा हकार परे रहते मकार को विकल्प से नकार पादेय होय । किम् + ङुते = किन्ङुते वा (८१) किंङुते ॥

॥ ८९ ॥ ङ सि ङुट् । ङ । इ । २८ । ङात् परस्म सस्य धुङ्वा ॥

उच स की ङुट् भागम होय जिस के पूव हकार रहे ॥

॥ १० ॥ ङाद्यन्तौ टकितौ । १ । १ । ४६ । टित्कितौ यस्यो

न्तौ तस्य क्रमादाद्यन्तौ स्तः । षट् स्मत् । षट्स्सन्त ॥

जिसका ट वा क ह्रस्वचक्र हो सो जिसकी कडा हो उमके आदि और चन्त में ययाम्भय में होय चर्मात् टित् आदि और कित् चन्त में होय । षट् + सन्त = षट् षट् सन्त षट् का लोप होता है १-४ और ३३ तब षट् + सन्त = ७८ षट् + सन्त = ७७ षट्सन्त ।

॥ १०१ ॥ ङणौ कुम्भटुक् शरि । ङ । इ । २९ । वास्त । प्राङ्

पण्टः प्रङ्घण्टः । सुगष् पण्ट । सुगष्पण्ट ॥

हकार और वकार की क्रम स विकल्प करके कुष् और ङष् भागम होय यदि यर् परे रहे तो । प्राङ् + पण्ट = प्राङ् + कुष् पण्टः ङष् का लोप भया १-४-३४ प्राङ्घण्ट सुगुष् + पण्ट = सुगुष् ङ्पण्ट ।

॥ १०२ ॥ मञ्च । ङ । इ । ३० । मान्तात् परस्य सस्य धुङ्वा ।

सन् ह्स । सन् स ॥

मकार को विकल्प से धुट् भागम होय । यदि उच के पूवमकारान्त पद रहे

सन् + स' = सन् धुट् सः = उट् का लोप होता है, ३-४ और ३३ तत्र सन्ध् + स. = ७८
सन्ध् + स. = ८७ सन्त्स. ।

॥ १०३ ॥ शि तुक् । ८ । ३ । ३१ । पदान्तस्य नस्य शे परे तु-
ग्वा । शञ्च्छम्भुः । सञ्शम्भुः सञ्चशम्भुः । सञ्छम्भुः ॥

यदि शकार परे रहे तो पदान्त नकार को विकल्प से तुक् आगम होय । सन् +
शम्भु = सन् तुक् शम्भु. = उक् का लोप भया ३-४ और ३३ तत्र सन्त् = शम्भु' + ८८
सन्त् + छम्भु = ७३ सञ्च् + छम्भुः वा शञ्च्छम्भुः जत्र क्त्व ८८ नहीं भया तत्र सञ्च्
शम्भु. तुक् नहीं भया तत्र सञ्शम्भु ॥

। १०४ ॥ डमो ङ्स्वादिचि डमुणित्वम् । ८ । ३ । ३२ । ङ्स्वात्
परो यो डम् तदन्तं यत् पदं तस्मात् परस्याचो नित्यं डमुट् स्यात् ।
प्रत्यङ्ङात्मा । सुगण्गीश. । सन्नच्युतः ॥

ङ्स्व से परे जो डकार णकार और नकार तदन्त जो पद तिस से परे जो अच्
उस को क्रम से डुट्, गुट् और नुट् आगम होय । प्रत्यङ् + आत्मा = ३-४ और ३३
प्रत्यङ्ङात्मा सुगण् + ईश = सुगण्गीश' सन्नच्युतः ॥

॥ १०५ ॥ सम, सुटि । ८ । ३ । ५ । समी रुः सुटि ॥

सम शब्द के सकार को र आदेश हो सुट् के परता । सम् + स्कर्ता ॥

॥ १०६ ॥ अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा । ८ । ३ । २ । अत्र रुप्रक-
रणे रो पूर्वस्यानुनासिको वा ॥

इस प्रकारण में र के पूर्व जो स्वर तिसको विकल्प से अनुनासिक होय । सरु +
स्कर्ता = सरुस्कर्ता ।

॥ १०७ ॥ अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः । ८ । ३ । ४ । अनुनासिक
विहाय रो पूर्वस्मात् परोऽनुस्वारागमः ॥

जिस पद में अनुनासिक होता है, उस से पूर्व जो स्वर उससे परे अनुस्वार का
आगम होय । सरु + स्कर्ता = सँरुस्कर्ता ॥

१०८ ॥ खरवसानयोर्विसर्जनीयः । ८ । ३ । १५ । खर्यवसाने च
पदान्तस्य रस्य विसर्गः ॥

खर् परे रहे वा अवसान तो पदान्त में विद्यमान जो रेफ तिसको विसर्ग होय ।
सरु + स्कर्ता = ३ और ४ सरु + स्कर्ता = स.स्कर्ता इसी प्रकार सँरु + स्कर्ता = सँरुः स्कर्ता ।

॥ १०८ ॥ (वा) सम्पुद्धानां सो वृद्धय । संस्कारता संस्कारता ॥

धम् अष्ट पुम् अष्ट और कान् अष्ट के विचर्य की सकार आदेश होय ।

सं + स्कारतां सं + स्कारतां सं + स्कारता = सं + स्कारता ॥

॥ ११ पुम् खठयम्परे । ८ । ११ । ६ । अम्परे खयि पुमो इ
पुं स्कोक्लिष पुं स्कोक्लिष ॥

विस खय् से परे धम् हो ऐसा खय् परे रहते पुम् अष्ट के मकार की व आदेश होय । पुम् + स्कोक्लिष = पुइ + स्कोक्लिष = १ ६ १ ०, ११ ४ १ ८ और १०८ पुंस्कोक्लिष पुं स्कोक्लिष ॥

१११ ॥ नरुद्धयप्रधान् । ८ । ११ । ७ । अम्परे क्वि मान्तस्य पदस्वर ॥

विस क्व् स परे धम् हो ऐसा क्व् परे रहते प्रधान् अष्ट के मकार की जोड वर प्रधान्त १० में जो मकार तिभ का व आदेश होय । क्विन् + चायस्व १ ६ १ ० ११ ४ और १ ८ क्विन् + चायस्व क्विन् + चायस्व ॥

११२ ॥ विसखनीयस्य स । ८ । ११ । ३४ । खरि । क्विन्श्चायस्व

क्विन्श्चायस्व । अप्रमान् क्विम् । प्रमान् तनोति । पदस्येति किम् इति ॥

विचर्य के स्थान म सकार आदेश होय + वटि क्व से परे खर रहे ती । क्विन् + चायस्व = क्विन्श्चायस्व । क्विन् + चायस्व = क्विन्श्चायस्व । अप्रमान कहने से प्रमान् तनोति यहां व आदि काय न हुये इसी प्रकार पठ कहने में इति में भी न हुआ ।

११३ ॥ नून पे । ८ । ११ । १० । नूनित्यस्यरुवा पे ॥

पकार परे रहते नून् अष्ट के मकार की विचर्य से व आदेश होय । नून् + पाहि = नूइ + पाहि = नू + पाहि = नू + पाहि ॥

॥ ११४ ॥ कृष्णोः क्व पी च । ८ । ११ । ३० । क्ववर्गे पवर्गे

च विसर्गस्य क्व पी स्त । चादिसर्गः । नून् पाहि । नून् पाहि
नून् : पाहि । नून् : पाहि । वा नून् पाहि ॥

क्व क्ववर्ग या पवर्ग परे रहे तब विचर्य के स्थान में क्व से विज्ञामुनीव और क्वष्मानीव आदेश हो और पच में विचर्य भी होय । नून् + पाहि = नून् पाहि वा नून् पाहि । नून् + पाहि = नून् पाहि वा नून् पाहि । क्व व नहीं मया तब नून्पाहि ।

॥ ११५ ॥ तस्य परमावेदितम् । ८ । ११ । २ । द्विकृतस्यपर

मावेदितं स्यात् ॥

द्विरुक्त शब्द (अर्थात् एक शब्द जो दोवार कहा गया हो) की दूसरी भाग का आमेडित सज्ञा होती है ।

११६ ॥ कानाम्नेडिते । ८ । ३ । १२ । कान्नकारस्य कुराम्ने-
डिते । काँस्कान् काँस्कान् ॥

यदि आमेडित परे रहे तो कान् शब्द के नकार के स्थानमें क आदेश होय ।
कान्-कान् = काँ-कान् = काँः-कान् = काँस्कान् ।

॥ ११७ ॥ क्वेच । ६ । १ । ७३ । ऋस्वस्य क्वे तुक् । शिवच्छाया ॥

ऋस्व की तुक् आगम होय यदि उस से परे क्कार रहे । शिव-च्छाया = शिवच्छाया ।

११८ ॥ पदान्ताद्वा । ६ । १ । ७६ । दीर्घात् पदान्ताक्के तुगे
वा । लक्ष्मीच्छाया ॥

क्कार परे रहते पदान्त दीर्घ को विकल्प से तुक् आगम होय । लक्ष्मी-च्छाया =
लक्ष्मीच्छाया वा लक्ष्मी छाया ।

॥ इति हल्सन्धिः ॥

११९ ॥ वा शरि । ८ । ३ । ३६ । शरि विसर्गस्य विसर्गी वा ।

हरिःशेते । हरिश्शेते ॥

शर् परे रहे तो विसर्ग को विकल्प से विसर्ग ही होय । हरिःशेते वा हरिश्शेते ११२, ७३

१२० ॥ ससजुषो रुः । ८ । २ । ६६ । पदान्तस्य सस्य सजुषश्च
रुः स्यात्

पदके अन्त में रहने वाला सकार को और सजुष् शब्द के षकार को क आदेश
होय । शिवम्-अर्च्यः = शिवरुअर्च्यः ।

॥ १२१ ॥ अतोरीरप्लुतादप्लुते । ६ । १ । ११३ । अप्लुतादतः
परस्य रो रुः स्यादप्लुतेऽचि ॥ शिवोऽर्च्यः ॥

अप्लुत अकार से परे जो रु तिस की उकार आदेश होय यदि अप्लुत अकार परे
रहे तो । शिवरु-अर्च्यः, शिव-उ-अर्च्यः ३२ शिवो-अर्च्यः ५३ = शिवोऽर्च्यः ।

१२२ ॥ हशि च । ६ । १ । ११४ । तथा । शिवो वन्द्यः ॥

हश् परे रहते अप्लुत अकार से परे जो रु तिसके स्थान में उ आदेश होय ।
शिवरु-वन्द्य = शिव-उवन्द्य ३१ ॥ शिवोवन्द्यः ॥

१२३ ॥ भोभगीअघोअपूर्वस्य त्रीऽशि । ८ । ३ । १७ । एतत्पूर्वस्य

रोर्यद्विशोऽग्निः । देवायिष्ठः । देवाद्दृष्टः । भोस् भगोस् अघोस् इति
सान्ता निपाताः । तेषां रोर्यत्वे कृते ॥

लिष्ठ इ सं पूव भो भगो अघो वा अवथ रश्चे तिमको यच्चार चादेय होय अन् परे
रश्चे । देवास् + इष्ट = देवाद् + इष्ट = देवाद् + इष्ट ।

१२४ ॥ इच्छि सर्वेषाम् । ८ । १ । २२ । भोभगोअघो अपूर्वस्य
यस्य शीप स्याद्वलिः । भो देवा । भगो नमस्ते । अघो याहि ॥

सर्व आचार्योः के मत में इस् परे रश्चे लक्ष यकार का शीप ही लिष्ठ यकार के
पूर्व भो भगो अघो वा अवथ रश्चे । भोस् + देवा = भोद् + देवा = भोय् + देवा = भोदेवाः ।
भयोस + नमस्ते = भगोद् + नमस्ते = भयोय् । नमस्ते = भगोनमस्ते । अघोस् + याहि = अघीर
याहि = अघोय् + याहि = अघोयाहि । देवास् + नम्या = देवाद् + नम्या = देवाद् + नम्या =
देवानम्या ॥

॥ १२५ ॥ रोऽसुपि । ८ । २ । ६६ । अञ्जोरिफाद्विशो न तु सुपि
अहरश्च । अहर्गश्च ॥

मुप् प्रत्याहार परे न रश्चे तो अहन् गम्य के लकार की रेफ चादेय होय । अहन् +
अहन् = अहरश्च । अहन् + अष = अहगल् ।

१२६ ॥ रोरि । ८ । १ । १४ । रेफस्य रेफे परे शीप ॥
रेफ का शीप होय यदि रेफ परे रश्चे तो । पुनर् + रमते = पुनारमते ।

१२७ ॥ ठुषोपेपूर्वस्य दौघोऽब्धः । ६ । १ । १११ । ठरेफयोर्शीप
निमित्तयो पूर्वस्मापी दौघः । पुना रमते । हरौ रम्य । शम्भु रावते
अब्धः किम् । तृठः । षठः । मजसूरय इत्यत्र कृत्वे कृते इति चेत्युत्वे
रोरीति शीपे च प्राप्ते ॥

इति शीप का निमित्त इकार वा रेफ परे हो तो लक्षके पूर्व अन् को शीप होय ।
पुन + रमते = पुनारमते हरिस् + रम्य । हरिद् + रम्य = हरि + रम्य = हरिरम्य
शम्भुस् + रावते = शम्भुरावते ।

१२८ ॥ विप्रतिषेधे परं कार्यम् १ । ४ । २ । तुल्यवक्षद्विरोधे
परं कार्यं स्वात् । इति प्राप्ते पूर्वचासिद्धमिति रोरीत्यस्यासिद्धत्वाद्
त्वमेव । मनोरथ ॥

तुल्यवक्षवाले पूर्वो के विरोध लक्ष में अष्टाध्यायी क्रमानुसार को परे ही की

कार्य करे । मनस्-न-रथ = १२०, ३३, ४ मनस्-न-रथः = यहा १२२ इतिच इस सूत्र से उत्त्व प्राप्तभया, और रोरि १०६ इस से लोप भी प्राप्त भया तो विप्रतिषेधे पर कार्यम् । इस से लोप प्राप्त भया, वधो कि १२२ छठे अध्याय का सूत्र है, और यह १२६ आठवें अध्याय का है, इस कारण यह १२६ पर है, परन्तु पूर्वत्रासिद्धम् १६ इस में रोरि असिद्ध है, वधो कि जब लोप करने लगेंगे तब जो १०० समजुषोरुः में न किया है, वह असिद्ध हो जायगा रेफ के स्थान में सकार आय जायगा, इस कारण लोप नहीं भया, उत्त्व १२२ भया मन-न-उ-रथ = ३२ मनोरथः । १२७ सूत्र में अण् प्रत्याहार पूर्व णकार तक लिया जाता है (अइउण्) इस लिये तृढः वृढः यहा दीर्घ न हुआ ।

१२६ ॥ एतत्तदो सुलोपोऽकीरनञ्समासे हलि । ६ । १ । १३२ ।
अककारयोरेतत्तदीर्यः सुस्तस्य लोपो हलि न तु नञ्समासे । एष
विष्णु । स शम्भु । अकोः किम् । एषको रुद्रः । अनञ्समासे किम्
असशिशवः हलि किम् । एषोऽत्र ॥

हल् परे रहे तो उस सु के स का लोप होय जो ककार रहित एतद् शब्द वा तद् शब्द का है, परन्तु नञ् समास में न होय । एषस्-विष्णु = एषविष्णुः सस्-शम्भु = सशम्भु । ककार रहित कहने से एषको रुद्र में लोप न भया नञ् समास में न होय ऐसा कहने से यहा नही भया, असस्-शिव, ७३ = असशिशव । हल् कहने से एषोऽत्र में न हुआ ।

१३० ॥ सोऽचि लोपे चेत् पादपूरणम् । ६ । १ । १३४ । स इत्यस्य
सोर्लोपः स्यादचिपादश्चेत्लोपे सत्येव पूर्यते । सेमामविड्ढिप्रभृतिम् ।
सैष दाशरथी राम ॥

अच् परे रहते यदि लोप के विना श्लोक का वा मन्त्र का चतुर्थांश ठीक न बैठे तो तद् शब्द के सकार का लोप होय । सम्-इमा अविड्ढिप्रभृतिम् = ३२ सेमा अविड्ढिप्रभृतिम् सम्-एष दाशरथी राम = ३८ सैष दाशरथी राम ॥

—॥ इति विसर्गसन्धि ॥—

॥ अथाजन्ताः पुल्लिङ्गाः ॥

१३१ ॥ अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् । १ । २ । ४५ । धातुं
प्रत्ययं प्रत्ययान्तं च वर्जयित्वा र्थवच्छब्दरूपं प्रादिपदिकसंज्ञं स्यात् ।
धातुः प्रत्ययं और प्रत्ययान्तं से भिन्न जो अर्थवाम् शब्द सो प्रातिपदिक संज्ञक होय ।

रीर्यादेशोऽणि । देवायिङ् । देवाङ्ङ । भोस् भगोस् अघोस् इति
सास्ता भिपाता । तेषां रीर्यत्वे कृते ॥

जिस ह से पूव भो भगी अघो वा अघर्ष रहे तिसखी यकार आदेश होय अण् परे
रहते । देवास्-+इङ्- = देवाङ्+इङ्- = देवाय्+इङ् ।

१२४ ॥ हलि सर्वेषाम् । ८ । १ । २२ । भीभगीअघो अपूर्वस्य
यस्य लोप स्याद्वलि । भी देवा । भगी नमस्ते । अघो याहि ॥

सब आचार्य्यो के मत में इण् परे रहते उस यकार का लोप हो जिस यकार से
पूर्व भो भगी अघो वा अघर्ष रहे । भोस्+देवा- = भोङ्+देवा- = भोय्+देवा- = भोदेवा ।
भगोस्+नमस्ते = भगोङ्+नमस्ते = भगोय् । नमस्ते = भगोनमस्ते । अघोम्+याहि = अघोय
याहि = अघोय्+याहि = अघोयाहि । देवास्+नम्या- = देवाङ्+नम्या- = देवाय्+नम्या- =
देवानम्या ॥

॥ १२५ ॥ रोऽसुपि । ८ । २ । ६८ । अङ्घ्रीरेफादेशो न तु सुपि
अङ्घरङ् । अङ्घर्ष ॥

सुप् प्रत्याहार परे न रहे तो अङ्घन् शब्द को नकार की रेफ आदेश होय । अङ्घन्+
अङ्घन्- = अङ्घरङ् । अङ्घन्-+अङ्घ- = अङ्घनङ् ।

१२६ ॥ रोरि । ८ । १ । १४ । रेफस्य रेफे परे लोप ॥
रेफ का लोप होय यदि रेफ परे रहे तो । पुनर्+रमते = पुनारमते ।

१२७ ॥ ङ्लोपेपूर्वस्य दीर्घोऽण् । ६ । १ । १११ । ङरेफयोर्लोप
निमित्तयो पूर्वस्वाखो दीर्घ । पुना रमते । इरी रम्य । शम्भू रावते
अष किम् । तूढः । छठ । ममसूरष इत्यथ क्त्वे कृते षि चेत्युत्वे
रीरीति लोपे च प्राप्ते ॥

बहि लोप का निमित्त ककार वा रेफ परे हो तो उससे पूर्व अण् को दीर्घ होय ।
पुन-रमते = पुनारमते । इरिष्-+रम्य- । इरिद्-+रम्य- = इरि । रम्य- = इरीरम्य-
शम्भुस्+रावते = शम्भूरावते ।

१२८ ॥ विप्रतिषेधे परं कार्यम् १ । ४ । २ । तुल्यवस्तुबिरीवे
परं कार्यं स्यात् । इति प्राप्ते पूर्वचासिद्धमिति रीरीत्यस्यासिद्धत्वाद्
त्वमेव । मनोरथ ॥

तुल्यवस्तुवाले मूर्खों के विरोध उस में अष्टाध्यायी क्रमानुसार लो परे हो सी

कार्य करे । मनस्-न-रथ' = १२०, ३३, ४ मनस्-न-रथः = यहा १२२ हश्चिच इस सूत्र से उत्त्व प्राप्तभया, और रोदि १२६ इस से लोप भी प्राप्त भया तो विप्रतिषेधे पर कार्यम् । इस से लोप प्राप्त भया, वर्यो कि १२२ कठे अध्याय का सूत्र है, और यह १२६ आठवें अध्याय का है, इस कारण यह १२६ पर है, परन्तु पूर्ववासिद्धम् ३६ इस में रोदि असिद्ध है, वर्यो कि जब लोप करने लगेगे तब जो १२० ससजुपोरु' में कृ किया है, वह असिद्ध हो जायगा रेफ के स्थान में सकार आय जायगा, इस कारण लोप नहीं भया, उत्त्व १२२ भया मन-न-उ-रथ' = ३२ मनोरथः । १२७ सूत्र में अण् प्रत्याहार पूर्व णकार तक लिया जाता है (अइउण्) इस लिये तृढ. वृढ' यहा दीर्घ न हुआ ।

१२६ ॥ एतत्तदो. सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि । ६ । १ । १३२ ।

अककारयोरेतत्तदीर्यः सुस्तस्य लोपो हलि न तु नञ्समासे । एष विष्णुः । स शम्भुः । अकोः किम् । एषको रुद्रः । अनञ्समासे किम् असशिश्वः । हलि किम् । एषोऽत्र ॥

हल् परे रहे तो उस सु के स का लोप होय जो ककार रहित एतद् शब्द वा तद् शब्द का है, परन्तु नञ् समास में न होय । एषस्-विष्णुः = एषविष्णु' सस्-शम्भुः = सशम्भु' । ककार रहित कहने से एषको रुद्र में लोप न भया नञ् समास में न होय ऐसा कहने से यहा नही भया, असस्-शिश्वः ७३ = असशिश्वः । हल् कहने से एषोऽत्र में न हुआ ।

१३० ॥ सोऽचि लोपे चेत् पादपूरणम् । ६ । १ । १३४ । स इत्यस्य सोर्लोपः स्यादचिपादश्चेल्लोपे मत्येव पूर्येत । सेमामविड्ढिप्रभृतिम् । सैष दाशरथी रामः ॥

अच् परे रहते यदि लोप के विना श्लोक का वा मत्र का चतुर्थीय ठीक न बैठे तो तद् शब्द के सकार का लोप होय । सस्-इमा अविड्ढिप्रभृतिम् = ३२ सेमा अविड्ढिप्रभृतिम् सस्-एष दाशरथी राम = ३८ सैष दाशरथी राम ॥

—ॐ॥ इति त्रिसर्गसन्धि ॥ॐ—

ॐ॥ अथाजन्ताः पुल्लिङ्गाः ॥ॐ॥

१३१ ॥ अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् । १ । २ । ४५ । धातु प्रत्ययं प्रत्ययान्तं च वर्जयित्वा र्थवच्छब्दरूपं प्रादिपदिकसंज्ञं स्यात् ॥ धातु, प्रत्ययं और प्रत्ययान्तं से भिन्न जो अर्थवाम् शब्द सो प्रातिपदिक संज्ञक होय ।

१३२ ॥ कृतद्वितसमासाश्च । १ । २ । ४६ कृतद्वितान्तौ समासारश्च
तथा स्युः ॥

कृतप्रत्ययान्त तद्वितप्रत्ययान्त चौर समास इन को भी प्रातिपदिक संज्ञा होवे ।

१३३ स्वौषसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसो

साम्ङोऽन्मुप् । ४ । १ । २ । मु चो ङस् इति प्रथमा । ञम् चोट् षस

इति द्वितीया । टा भ्याम् भिम् इति तृतीया । ङे भ्याम् भ्यस्

इति चतुर्थी । ङसि भ्याम् भ्यस् इति पञ्चमी । ङस चोस् षाम्

इति षष्ठी । ङि चोस् सुप् इति सप्तमी ॥

ये २१ स्वादि प्रत्यय हैं । मु चो ङम् प्रथमा । ञम् चोट् षस द्वितीया ।

टा भ्याम् भिम् तृतीया । ङे भ्याम् भ्यस् चतुर्थी । ङसि भ्याम् भ्यस् पञ्चमी ।

ङस चोस षाम् षष्ठी । चौर ङि चोस् सुप् सप्तमी ॥

१३४ ॥ ङाप्प्रातिपदिकात् । ४ । १ । १ । प्रत्यय । ३ । १ । १ ।

परश्च । ३ । १ । २ । इत्यधिकृत्य । ङ्यन्तादाबन्तात्प्रातिपदिकाश्च

परे स्वादय प्रत्यया स्युः ॥

ङ्यन्त (ङीप् ङीप् वा ङीन्) ष्यन्त (टाप् ङाप् वा षाप्) चौर प्राति-

पदिक स पर स्वादि प्रत्यय हैं ।

॥ १३५ ॥ सुप् । १ । ४ । १ । ३ । सुप्स्त्रीणि चोषि वचनान्श्लेष

एकवचनद्विवचनबहुवचनसंज्ञानि स्युः ॥

सप् प्रत्याहार में का प्रथमा यादि के तीन तीन भाग हैं जो क्रम से एकवचन

द्विवचन चौर बहुवचन सञ्ज्ञक हैं ।

॥ १३६ ॥ द्विवचनोद्विवचनैकवचने । १ । ४ । २२ । द्वित्वैकात्त्वयोरिते

स्तौ ॥

एक वचन का दो पदार्थों को कहने को द्विवचन होते तो द्विवचन चौर एक को

द्विवचन होवे तो एकवचन का प्रयोग होता है ।

॥ १३७ ॥ बहुवचनम् । १ । ४ । २१ । बहुत्ववियचार्या

बहुवचने स्यात् ॥

एक वचन पत्न्या का कहने को द्विवचन होते तो बहुवचन का प्रयोग जाता है ।

॥ १३८ ॥ विरामोऽवसानम् । १ । ४ । ११० । वर्णानामभावोऽवसान-
सञ्ज्ञः स्यात् । स्रुत्वविमर्गौ राम ॥

वर्णों के अभाव को अवसान कहते हैं । राम शब्द की माधन प्रक्रिया लिखते हैं ।
शब्द दो प्रकारके हैं, व्युत्पन्न और अव्युत्पन्न व्युत्पन्नपक्ष से प्रातिपदिकसञ्ज्ञा इस १३२
से और अव्युत्पन्नपक्ष से इस १३१ ने होती है, फिर मानो विभक्तिया पाई १३४ उन से
प्रथमा का एक वचन सु १३६ आया रामसु मु से के उ का लोप भया ३३, ४ तव रामन्
(१२०) १०८ राम ।

॥ १३९ ॥ सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ । १ । २ । ६४ ॥ एकवि-
भक्तौ यानि सरूपाण्येव दृष्टानि तेषामेक एव शिष्यते ॥

किसी एक विभक्ति के पूर्व जितने एक समान के रूप दिखाई पडे उन में से एक
का शेष ही और औरों का लोप होय । जैसा राम राम औ = राम ।

॥ १४० ॥ प्रथमयोः पूर्वसवर्ण । ६ । १ । १०२ । अकार प्रथमाद्विती-
ययोरचि पूर्वसवर्णादीर्घ एकादेश स्यात् । इति प्राप्ते ॥

यदि अक् प्रत्याहार से परे प्रथमा वा द्वितीया सम्बन्धी अच् रहे तो पूर्व पर के
स्थान में पूर्व का सवर्ण दीर्घ होय । राम + औ यहा दीर्घ पाया ।

॥ १४१ ॥ नादिचि । ६ । २ । १०४ । आदिचि न पूर्वसवर्णादीर्घः ।
बुद्धिरेचि । रामौ ॥

यदि अवर्ण से परे प्रथमा वा द्वितीया सम्बन्धी इच् रहे तो पूर्व सवर्ण दीर्घ
एका देश न होय । राम + औ ३८ = रामौ ।

॥ १४२ ॥ चुट् । १ । ३ । ७ प्रत्ययाद्या चुट् इतो स्त ॥

प्रत्यय के आदि में जो चवर्ग वा टवर्ग मो इत्सञ्ज्ञक होय ।

॥ १४३ ॥ विभक्तिश्च । १ । ४ । १०४ । मुप्तिङौ विभक्तिसंज्ञौ स्त
सुप् और तिङ् प्रत्यय की विभक्ति सञ्ज्ञा होती है ।

॥ १४४ ॥ नविभक्तौ तुस्मा । १ । ३ । ४ । विभक्तिस्थास्तवर्गसमा
नेत । इति साम्य नेरुवस् । रामा ॥

विभक्ति के जो तवर्ग, स् और म् तिन की इत्सञ्ज्ञा न होवे । राम + जस् १४२ =
राम् + अस् अस् के स की इत्सञ्ज्ञा पाई, पर १४४ ने दबाया राम् + अस् [] ३
१२०, १०८ = रामा ।

॥ १४५ ॥ एकवचनं सम्बुद्धिः । २ । ३ । ४६ । सम्बोधने प्रथमाया एक-

वचनसम्बुद्धिसञ्ज्ञात् ॥

सम्बोधन के विषे ओ प्रथमा का एकवचन से सम्बुद्धिसञ्ज्ञा होय । रामसु बर्ण
सु की सम्बुद्धि संज्ञा भइ ।

१४६ ॥ यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादिप्रत्ययेऽङ्गम् । १ । ४ । १३ । य प्रत्ययो
यस्मात् क्रियते तदादि भट्टस्वरूपं तस्मिन् प्रत्यये परेऽङ्गसंज्ञं स्वात् ।

ओ प्रत्यय जिस प्रकृति से विधान करें यदि वही प्रत्यय उस से परे हो तो उस
प्रकृति की अङ्गसंज्ञा होवे ।

॥ १४७ ॥ एङ्ङस्वात् सम्बुद्धे । ६ । १ । ६६ । एङ्ङताङ्ङस्वान्ता
अथाङ्गाङ्गस्त्रुप्यते सम्बुद्धेऽचेत् । हे राम हे रामौ हे रामा ॥

एङ्ङन्त वा ङ्ङस्वान्त अङ्ग से परे ओ ङ्ङ्गम् तिसका लीप हो यदि वह सम्बुद्धि का
अवयव होय तो । राम सु १३ ४ = रामम् अङ्ग संज्ञा १४६ तक स का लीप हे राम
विधाविधियों को याद रखना चाहिये कि सम्बोधन में इ भट्ट का प्रयोग होता है ।

॥ १४८ ॥ अमिपूर्व । ६ । १ । १० । अकीऽस्यांश्च पूर्वरूपमे
कादेश । रामाम् । रामौ ॥

अङ् प्रत्याहार से परे अम् सम्बन्धी अच् हो तो पूर्व पर के स्थान में पूर्व रूप
एकादेश होय । द्वितीया में राम + अम् = रामम् । से वचन में रामौ ।

१४९ । अङ्गवत्तद्धिते । १ । ३ । ८ । तद्धितवञ्चप्रत्ययाद्या अङ्गवर्गा वृत्तः स्तुः

तद्धित भिन्न प्रत्यय के चादि में ओ ङ् म् वा अवग मो इत्सञ्ज्ञा होय । राम +
अम् = रामम् ।

॥ १५ ॥ तस्माच्छसो न अमि । ६ । १ । १३ । पूर्वस्यचदीर्घात् परी
यः शसस्सस्तस्यनः स्वात् पुमि ॥

पूर्वस्यचदीर्घ से परे ओ शस प्रत्यय का म् तिमन्तो नकार होय पुमिन्ङ्ग में ।
राम + अम् १ ३ = रामाम् = रामाम् ।

॥ १५१ ॥ अट्कुप्वाङ्नुम् व्यवयेऽपि । ८ । ४ । ९ अट् कुवगः
पवग आङ् नुम् एतैव्यस्तैययासम्भवमिहितैश्च व्यवधानेऽपि र्पाभ्यां
परस्य नस्य च समानपदे । वृत्तिप्राप्ते ॥

अट् प्रत्याहार के वर्ण, कवर्ग, पवर्ग, आड् और नुम् ये पृथक् पृथक् हों वा यथा संभव मिले हों तो समान पद में विद्यमान् जो रेफ वा षकार तिससे परे जो न तिस को ण आदेश होय । रामान् यहाँ णत्व पाया ।

॥ १५२ ॥ पदान्तस्य । ट । ४ । ३७ । नस्य णी न । रामान् पद के अंत में वर्तमान जो न तिस को ण आदेश न होय । इसलिये रामान् में न भया ।

॥ १५३ ॥ टाड्सिड्सामिनात्स्याः । ७ । १ । १२ । अदन्ता-
द्वादीनामिनादयः स्यु णत्वं । रामेण ॥

इस्य अकारान्त अङ्ग से परे जो टा, ड्सि और डस् तिन को क्रम से इन, आत् और स्य आदेश होवें । राम + टा = राम इन ३२, १५१ = रामेण

॥ १५४ ॥ सुपिच । ७ । ३ । १०२ । यजादौ सुप्यतोऽङ्गस्य दीर्घः ।
रामाभ्याम् ।

यन् प्रत्याहार के वर्ण आदि में हैं जिन के ऐसा सुप् प्रत्यय परे रहे तो अदन्त अङ्ग को दीर्घ होय । राम + भ्याम् = रामाभ्याम्

॥ १५५ ॥ अती भिस ऐस् । ७ । १ । ६ । अनेकाल् शित् सर्वस्य ।
रामैः ।

भिस् को ऐस् आदेश होय, यदि उसके पूर्व अदन्त अङ्ग रहे तो ऐम् में अनेक अल् है इस कारण सम्पूर्ण भिस् को ऐस् भया, तब राम + ऐस् ३८, १२०, १०८ रामैः अब चतुर्थी के रूप लिखते हैं राम + डे तब

॥ १५६ ॥ डेर्यः । ७ । १ । १३ । अतीऽङ्गात् परस्य डेर्यादेशः ॥

डे को य आदेश होय यदि उसके पूर्व अदन्त अङ्ग रहे । राम + य ऐसा भया तब ।

॥ १५७ ॥ स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ । १ । १ । ५६ । आदेशः
स्थानिवत् स्थान्न तु स्थान्यलाश्रयविधौ । इति स्थानिवत्त्वात् मुपि
चेति दीर्घः । रामाय । रामाभ्याम् ॥

आदेश स्थानी के समान होय अर्थात् जो धर्म स्थानी में है वह आदेश पर भी आवे यदि स्थानी के अवयव वा तद् रूप अल् के धर्म को मान कर कार्य करना होय तो न होय । रामाय यहाँ डे के स्थान में जो यकार भया है, सो भी इस सूत्र से अर्थात् डे में जो सुप् है, वह आया । तब सुप् को मानकर दीर्घ १५४ भया रामाय । रामाभ्याम् ।

॥ १५८ ॥ बहुवचने भक्तयेत् । ७ । ३ । १०३ । भक्तादौ बहुवचने

सुप्यतोऽङ्गस्वैकार । रामेभ्य । सुपि क्तिम् । पञ्चष्वम् ॥

भक्ष् प्रत्याहार है आदि मं किम व एता बहुवचन सुप् परे हो तो अदन्त अङ्ग को एकार आदेश होवे । राम + भ्यम् = रामेभ्य । इम सुच में सुप् पक्ष से पञ्चष्वम् वही एकार न हुआ । क्योंकि भ्वन्तिङ् प्रत्यय है जिसका वचन भाग सिद्धा जायेगा अब पञ्चमी के रूप लिखते हैं । राम + इति तब

॥ १५६ ॥ वावमामि । ८ । ४ । ५६ । अत्रमामि मूर्ध्नाचरी वा ।

रामात् रामाद् रामाभ्याम् । रामेभ्य । रामेभ्य ।

भक्ष् को विकल्प सं चर होय यदि अवसान पर रहे तो । राम + इति १५६ = राम + आत् ५२ = रामात् वा रामाद् रामाभ्याम् रामेभ्य' षष्ठी का एक वचन । राम + इत् = १५६ राम + अत् १५६ = रामेभ्य ।

॥ १६ ॥ शोमि च । ७ । ३ । १ । ४ । अतोऽङ्गस्वैकार । रामयो ।

यदि शोम विभक्ति परे रहे तो अन्व चकारान्त अङ्ग को एकार होय । राम + शोस = रामे शोम् ६ = रामयो

॥ १६१ ॥ अस्वन्त्यापी नट । ७ । १ । ५४ । अस्वान्ताङ्गद्वन्त्या

दावन्त्याचचाङ्गात् परस्यामी मुञ्जागम ॥

आम को नुट आगम होय यदि उच्च सं पूर्व अस्वान्त मचन्त वा आवन्त अङ्ग हो । राम + आम् तब राम + नाम्

॥ १६२ ॥ नामि । ६ । ४ । ३ । अखन्ताङ्गस्यदीर्घ । रामाक्षाम ।

रामे । रामयो' । एत्त्र कृते ॥

यदि नाम् (नुट आगम से षष्ठी बहुवचन आम् का नाम मया हो) परे रहे तो अदन्त अङ्ग को दीर्घ होय । राम + नाम् = रामानाम् १६२ = रामाक्षाम ।

॥ १६३ ॥ आदेशप्रत्यययो । ८ । ३ । ५६ । इष्कुर्भ्या परस्यापदा

न्तस्यादेश प्रत्ययावयवस्य सस्तम्भ मूर्ध्न्यादेश । ईषद्विहितस्य सस्य तादृश एव य । रामेषु । इव कृष्णादयोऽप्यदन्ता ॥

इष् प्रत्याहार वा अवग से परे को अपदान्त आदेश द्रव सकार वा अपदान्त प्रत्यय का अवयव सकार तिसको मूर्ध्न्य वकार जावे । रामसु + १६ रामेषु ईषद्विहित प्रयत्नबाह् दन्त्य मकार के समान मूर्ध्न्य वकार है इम स्थि वकार ही अदेश मया तब रामेषु सिद्ध मया । ऐस ही कृष्ण, देव मुकुन्द खरीन्द सुनीन्द णदि अकारान्त गम्भी है

रूप भी जानों । विद्यार्थियों को यह अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि जिस शब्द में र वा घ रहे उस को णत्व १५१ होता है और में नहीं ।

॥ १६४ ॥ सर्वादीनि सर्वनामानि । १ । १ । १७ । सर्वं विश्व उभ उभय डतर डतस अन्य अन्यतर इतर त्वत् त्व नेम सस सिम । पूर्वपरावरदक्षिणोत्तरापराधराणि व्यवस्थायामसञ्जायाम् । स्वमज्ञाति-धनाख्यायाम् । अन्तरं बहिर्योगोपसंख्यानयोः । त्यद् तद् यद् एतद् इदम् अदस् एक द्वि युष्मद् अस्मद् भवतु किम् ॥

सर्व आदि जो शब्द स्वरूप हैं सो सर्वनाम सन्नक होंय ।

सर्व सपूर्ण । विश्व सपूर्ण वा ससार । उभ दो । उभय दो अवयव विशिष्ट । डतर, डतस, ये दीनीं प्रत्यय हैं इन से वे शब्द लिये जाते हैं जिन के अन्त्य में पूर्वोक्त प्रत्यय होय जैसे कतर कतस । अन्य दूसरा । अन्यतर दो में एक । इतर दूसरा । त्वत् दूसरा । त्व दूसरा । नेम आधा । सस सपूर्ण । सिम सपूर्ण । यदि पूर्व पर अवर दक्षिण उत्तर अपर अधर ये सात शब्द व्यवस्था में हो वा सज्ञा में न हों तो सर्वादि गण में इनका पाठ जानो । उस स्व शब्द का सर्वादि गण में ग्रहण है जिसका अर्थ आत्मा वा आत्मीय है यदि ज्ञाति वा धन अर्थ हो तो नहीं । अन्तर शब्द का अर्थ जो बहिर्योग वा उपसंख्यान हो तो जानो कि वह सर्वादिगण का है । त्यद् वह । तद् वह । यद् जो । एतद् यह । इदम् यह । अदस् वह । एक एक । द्वि दो । युष्मद् तू । अस्मद् में । भवतु आप । किम् कौन् । इन को भी सर्वादि गण में जानों ।

॥ १६५ ॥ जस शी । ७ । १ । १७ । आदन्तात् सर्वनाम्नो जसः शी स्यात् ॥ अनेकाल्त्वात् सर्वादेश । सर्वे ॥

अदन्त सर्व नाम से परे जो जस् तिसको शी (ई) आदेश होय । सर्व + जस् = सर्व + ई३२ = सर्वे

१६६ ॥ सर्वनाम्न स्मै । ७ । १ । १४ । अतः सर्वनाम्नो ङे स्मै । सर्वस्मै ।

अदन्त सर्व नाम से परे जो ङे तिसको स्मै आदेश होय । सर्व + ए = सर्वस्मै ।

॥ १६७ ॥ डमिडयोः स्मात्स्मिन् । ७ । १ । १५ । अतः सर्वनाम्न एतयोरेतौ स्त । सर्वस्मात् ।

अदन्त सर्वनाम से परे जो डमि और डि तिन को क्रम से स्मात् और स्मिन् आदेश होय । सर्व + डमि = सर्वस्मात् ।

॥ १६८ ॥ अस्मि सर्वनाम्नः सुट् । ० । १ । ५२ । अवर्णान्तात् परस्य

सर्वनाम्नी विहितस्यामः सुडागम । एत्वे षत्ते सर्वेषाम् । सर्वस्मिन् ।
शेषं रामवत् । एवं विश्वाद्योऽप्यदन्ता । उभयशब्दो नित्य द्विवच
नान्तः । उभौ २ । उभाभ्याम् ३ । उभयो २ । तस्येह पाठो ऽकवर्षः ।
उत्तरकृतमौ प्रत्ययौ प्रत्यययज्ञश्चे तदन्तयज्ञमिति तदन्तायाच्चाः ।
नेम इत्यर्थे । सम सर्वपर्यायः, तुष्यपर्यायस्तु न, समानामिति ज्ञापकात् ।

अवर्णान्त सर्वनाम से परे जो अस्मि तिसको सुट् (ष्) आगम होय । सर्व + अस्मि
= मव + अस्मि १६ = सर्व + अस्मि १६१ = सर्वेषाम् । सर्व + छि १६० = सर्वस्मिन् सर्व शब्द के
शेष रूप राम शब्द के समान आने । इसी तौर विश्व आदि अवन्त सर्वनाम शब्द के
रूप होते हैं । उभ शब्द का प्रयोग सवटा द्विवचन में होता है । उभौ उभौ उभाभ्याम्
उभयो २ । सम नाम का एक एकवचन और बहुवचन ही में होता है तो द्विवचन
उभ शब्द का अर्थ सर्वादि मव में आने का तात्पर्य यह है कि इस की टि के पूर्व
अस्मि प्रत्यय होता है यदि उभ शब्द सर्वनाम में परिमन्त्रित न होता तो उसकी टि के पूर्व
अस्मि भी नहीं हो सकता इसलिये सर्वादिमव में पाठ माना गया । उत्तर और उत्तम
प्रत्यय हैं । जहाँ प्रत्यय का अर्थ हो वहाँ जिस शब्द के अन्त में वह प्रत्यय होता हो उभ
प्रत्ययांत शब्द का अर्थ होता है इस कारण सर्वादिमव में उत्तर और उत्तम स उत्तरान्त
और उत्तमान्त शब्द का अर्थ होता है । नेम शब्द का अर्थ पाषाण है । सम शब्द सर्व
के अर्थ में सम नाम है पर तुष्य अर्थ में नहीं क्योंकि तुष्य अर्थ में समानाम् १० ऐसा
सूचकार ने लिखा है यदि होता तो समेषाम् ही जाता ।

॥ १६९ ॥ पूर्वपरावरदक्षिणीत्तरापधराषि व्यवस्थायामसंज्ञायाम्

१ । १ । ३४ । एतेषां व्यवस्थायामसंज्ञायां सवनामसंज्ञा गणसूचात्
सर्वेषु या प्राप्ता सा अस्ति वा । पूर्वे । पूर्वा । असंज्ञायां किम् । उत्तरा ।
कुर्व । स्वाभिधेयापेक्षावधिनियमो व्यवस्था । व्यवस्थायां किम् ।
दक्षिणा गायकाः । कुगला इत्यर्थः ।

मव सूच के पूर्वादि शब्दोंकी प्राप्ति भर जो सर्व नाम संज्ञा सी अम् परे रहते विद्वन्
ने होय यदि पूर्वादि शब्द व्यवस्था वा अर्थज्ञा अर्थ में रहे । पूर्वे पूर्वा यदि संज्ञा से भिन्न
न रहत ता उत्तरा कुर्व वहाँ भी हो रूप अर्थान् उत्तर उत्तरा वा आने अर्थात्

यह उत्तर शब्द कर्देश का वाचक है । व्यवस्था उसे कहते हैं जो पूर्वादिशब्दों के अर्थ से अपेक्षित सामान्य नियत का निश्चय है । व्यवस्था कहने से दक्षिणा गायका' यहाँ दक्षिणे दक्षिणा । न भया, क्योंकि दक्षिण ही देश के गानेवाले कुशल होते हैं यहाँ व्यवस्था अर्थ है ।

१७० ॥ स्वसञ्जातिधनाख्यायाम् । १ । १ । ३५ । ज्ञातिधनान्य-
वाचिन. स्वशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा । स्वे स्वा. ॥ आत्मीया
आत्मान इति वा । ज्ञातिधनवाचिनस्तु स्वाः ज्ञातयोऽर्थी वा ॥

वन्धु और धन अर्थ को छोड़ अन्य अर्थ में वर्तमान स्व शब्द की सर्वनाम सञ्जा विकल्प से ही यदि जस् परे रहे तो स्वे स्वा' अर्थात् आप वा अपना । वन्धु और धन अर्थ में एकही रूप होता है । स्वा जाति वा अर्थ ।

१७१ ॥ अन्तर दक्षिर्गोप्रसंव्यानयो. । १ । १ । ३६ । वाह्ये प-
रिधानीये चार्थेऽन्तरशब्दस्य प्राप्ता संज्ञा जसि वा । अन्तरे अन्तरा
वा गृहाः । वाह्या इत्यर्थ । अन्तरे अन्तरा वा श्राटकाः । परिधा-
नीया इत्यर्थ ॥

बाह्य और वस्त्र के धारण करने अर्थ में अन्तरशब्द की सर्वनामसञ्जा विकल्प से होय जस् परे रहते । अन्तरे वा अन्तरा यहाँ बाहर के घर वा पहरने के योग्य वस्त्र अर्थात् (मागी) में अन्तर शब्द है ॥

१७२ ॥ पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा । ७ । १ । १६ । एभ्यो ङसिङ्गोः
स्मात्स्मिन्नी वा स्त । पूर्वस्मात् । पूर्वात् । पूर्वस्मिन् । पूर्वे । एवं
परादीनामपि । । शेष सर्ववत् ॥

पूर्व आदि नव शब्दों से परे जो ङसि और ङि तिन की क्रम से स्मात् और स्मिन् आदेश विकल्प से होय । पूर्वस्मात् । पूर्वात् । पूर्वस्मिन् । पूर्वे इस प्रकार पर आदि शब्दों को जानना जो शेष रूप बचे उन को सर्व शब्द के समान जानना ।

१७३ ॥ प्रथमचरमतयाल्पाह्वकतिप्रयनेमाश्च । १ । १ । ३३ । एते
जस्युक्तसंज्ञा वा स्युः । प्रथमे । प्रथमा. । तयः प्रत्यय । द्वितये ।
द्वितयाः । शेष रासवत् । नेमे । नेमा । शेष सर्ववत् ॥

यदि प्रथमादि शब्दों से परे जस् विभक्ति रहे तो उन शब्दों की सर्व नाम सञ्जा विकल्प से होय । प्रथमे, प्रथमा. । यहाँ प्रथमादि शब्दों में तय को प्रत्यय जानना ।

इस लिये यहाँ उस शब्द का प्रत्यय है जिसके धन्त्य में वह प्रत्यय है द्वितये वा द्वितया इसको शेषरूप राम शब्द की सहाय है । नेमे वा नेमा । इस के शेष रूप सब शब्द की सहाय है ।

१०४ ॥ वा० तीयस्य छिन्सु वा । द्वितीयस्मै । द्वितीयावेत्यादि । एव तृतीयः । निर्धर ॥

यदि छिन्सप् प्रत्यय परे रहे तो तीय प्रत्ययान्त शब्द को सर्व नाम संज्ञा विकल्प से होय । द्वितीयस्मै १६६ । द्वितीयाय । ऐसे ही तृतीय शब्द को जानना । निर्धर नियतो वराभ्यः ।

१०५ ॥ वराया वरसन्धतरस्याम् । ० । २ । १ । अखादी विभक्तौ । पदाङ्गाधिकारे तस्य तदन्तस्य च । निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति । एकदेशविकृतमनन्यवदिति वराशब्दस्य वरस् । निर्धरसौ निर्धरस इत्यादि । पक्षे इलादी च रामवत । विश्वपाः ।

यदि अत्रादि विभक्ति परे रहे तो वरा शब्द को वरस् पादेय विकल्प से होय । अष्टाध्यायी में यह और अत्र इन दोनों के अधिकार में जो कार्य जिस को कहा है वो तदन्त को भी होता है इस लिये वरा शब्द को पादेय को वरस् कहा है वह निर्धर शब्द को भी पाया परन्तु पादेय उसी को होता है जिस को सूत्र में कहा है "निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति" तो सूत्र में वरा शब्द कहा गया है इस हेतु निर्धर शब्द का प्रत्यय जो वर तिस को वरस् हुआ । यदि यह कहो कि निर्धर शब्द में वरा नहीं है किन्तु वर है तो यह नहीं कह सकते क्योंकि जो कुछ विकार को प्राप्त हो जाता है वो और के समान नहीं होता "एकदेशविकृतमनन्यवत्" निर्धरसौ निर्धरस इत्यादि । जिस पक्ष में वरस् पादेय नहीं होता उसमें और इलादि विभक्ति में राम शब्द के समान रूप जानो । विश्वपा पश्चात् विश्व की रक्षा करनेवाला "विश्वं पालीति" ।

१०६ ॥ दीर्घाञ्जसि च । ६ । १ । १०५ । विश्वपौ । विश्वपा । विश्वपाम् । विश्वपौ ॥

दीर्घ से परे जो अस् वा इस् रहे तो पूर्वमपथ दीर्घ न होय । विश्वपा + ओ ३८ = विश्वपौ ।

१०७ ॥ मुठनपुसफस्य । १ । १ । ४३ । स्वादिपञ्चवचनानि स वनामस्यानसंज्ञानि स्युर ङीवस्य ॥

म् पी, अम् अम् पीद् इन पाँच वचनों को वचनानामस्यान संज्ञा होय नपुंसक लिङ्ग का आद कर ।

१७८ ॥ स्वादिष्वसर्वनामस्थाने । १ । ४ । १७ । कप्रत्ययावधि-

षु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं पद स्यात् ॥

सर्वनामस्थान को छोड़ कर अष्टाध्यायी में जो सु प्रत्यय कहा है, वहां से लेकर क प्रत्यय पर्यंत जितने प्रत्यय मिलते हैं, तिनमें जो पूर्व है, तिसकी पद सज्ञा होवे ।

१७९ ॥ यचि भम् । १ । ४ । १८ । यादिष्वजादिषु च कप्रत्यया-

वधिषु स्वादिष्वसर्वनामस्थानेषु पूर्वं भसंज्ञं स्यात् ॥

सर्वनामस्थान को छोड़कर सु प्रत्यय से लेकर क प्रत्यय पर्यन्त जितने यकारादि वा अजादि स्वादि प्रत्यय मिलते हैं, तिन से जो पूर्व तिसकी भसज्ञा हो । अब यहा यह ग्रहण हुई कि पद सज्ञा और भसज्ञा दोनों प्राप्त भईं तो कौन होय । तब

१८० ॥ आकडारादेका संज्ञा । १ । ४ । १ । इत ऊर्ध्वं कडाराः

कर्मधारय इत्यतः प्रागेकस्यैकैव संज्ञा ज्ञेया । या पराऽन्वकाशा च ।

अष्टाध्यायी में इस सूत्र से “कडाराः कर्मधारय” इस सूत्र पर्यन्त यदि एक शब्द की अनेक सज्ञा प्राप्त हो तो जो सज्ञा अष्टाध्यायी के क्रमानुसार हो और जिसके दूसरे कही होने का अवकाश न हो वही सज्ञा हो । अनवकाश उसे कहते हैं जिस की और कही प्राप्ति न होवे । जैसे पदसज्ञा के विषय को छोड़ भसज्ञा की प्राप्ति और कही नहीं है, इस लिये अजादि विभक्ति परे रहते पद सज्ञा को बाधकर भसज्ञा ही हुई ।

१८१ ॥ आतोधातोः । ६ । ४ । १४० । आकारन्तो यो धातुस्तद-

न्तस्य भस्याङ्गस्य लोपः । अलोऽन्तस्य । विश्वपः । विश्वपा । विश्वपाभ्यामित्यादि । एवं शङ्खऽमादयः । धातोः किम् । हाहान् । हरिः हरी ॥

अकारान्त जो धातु तदन्त भसज्ञक जो अङ्ग तिसका लोप होय । विश्वपा शब्द के अन्त अर्थात् आकार का लोप भया, २४ विश्वपा + शस् = विश्वप । विश्वपा + टा = विश्वपा । विश्वपाभ्याम् इत्यादि । ऐसे ही शङ्खऽमा आदि आकारान्त शब्द जानने । धातु कहने से । हाहा + शस् = हाहान् । यहा लोप न हुआ । अब इकारान्त हरि शब्द के रूप लिखते हैं । हरि “दु ख हरतीति” हरि + औ १४० = हरी ।

१८२ ॥ जसि च । ७ । ३ । १०६ । ङ्स्वान्तस्याङ्गस्य गुणः । हरयः

ङ्स्वान्त अङ्ग की गुण होय यदि जस् परे रहे तो । हरि + जम् १४२, २६ = हरयः

१८३ ॥ इस्वस्य गुण । ७ । ३ । १ । ८ । सम्बुद्धौ । हे हरे । हरिम् ।
हरी । हरीन् ॥

इस्वान्त अङ्ग को मुच होय सम्बुद्धि परे हो तो हे हरे १४ । ३० । हरिम् १४८ ।
हरीन् १४ १५ ।

१८४ ॥ शेषी घ्यसखि । १ । ४ । ७ । शेष इति स्पष्टायम् । इस्वी
याविदुतौ तदन्तं सखिवर्णं घिसंज्ञम् ॥

सखि शब्द को बोधकर जो इकारान्त वा उकारान्त शब्द है तिन की घिसंज्ञा होय ।

१८५ ॥ आङी नास्त्रियाम् । ७ । ३ । १२ । घे परस्याङी नास्याद्
स्त्रियाम् । आङिति टासंज्ञा प्राचाम् । हरिणा । हरिभ्याम् । हरिभिः
स्त्रीलिङ्ग को बोधकर आङ् पर्यात् टा को ना आदेश होय यदि उच से पूर्वसंज्ञक
शब्द रहे । प्राचीन लोम टा को आङ् कहते हैं । हरि+टा १२-हरिणा हरिभ्याम्

१८६ ॥ घेर्ङिति । ७ । ३ । १११ । घिसंज्ञकस्य ङिति सुपि गुण ।
हरये ॥

यदि ङित् सुप् परे रहे तो घि संज्ञक शब्द को गुच होय । ङित उच कहते हैं ।
घिस का ङ रत् होय हरि+ङ १६-हरये ।

१८७ ॥ ङसिङ्सीश्च । ६ । १ । ११ । एङी ङसिङ्सीरति पू
रुपमेकादेश । हरे इठर्यो हरीषाम् ॥

एङ से परे यदि ङसि वा ङम् का अकार रहे तो पूरु का रूप होय । हरि+ङसि
१८-हरे+घम्-हरे । हरि+घोस् १८-हरी । हरि+घाम्-१६१-हरीषाम् ।

१८८ ॥ अचघ घे । ७ । ३ । ११८ । इदुद्भ्यामुत्तरस्य ऊरीत घेरत ।
हरी । हरिषु । एवकव्यादय ॥

यदि ङि क पूव इकार वा उकार रहे तो । ङि को यी योर घि संज्ञक शब्द को
अकार आदेश होय हरि+ङि-हर+घोस् १८-हरी । हरिषु । इसी रीति से घि
परि पाचि मुनि आदि शब्द हैं ।

१८९ ॥ अमङ् सौ । ७ । १ । ८३ । सस्युरङ्गन्यामडादेशोऽमम्बुद्धौ सौ ॥
सम्बुद्धि से भिन्न मु परे रहे तो सखि रूप अङ्गका अमङ् आदेश होय । सखन्+मु १६
१८ ॥ अङ्गीकृत्यात् पूव उपधा । १ । १ । ६५ । अङ्ग्यादस्य पूर्वो
यो वर्णः स उपधासंज्ञः स्यात् ॥

उपधा उसवर्ण का नाम है, जो अन्त्य अल् से पूर्व हो। सखन्+सु यहा ख में अ की उपधा सन्ना हुई।

१६१ ॥ सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ । ६ । ४ । ८ । नान्तस्योपधा-
या दीर्घोऽसम्बुद्धौ सर्वनामस्थाने ॥

यदि सम्बुद्धि भिन्न सर्व नामस्थान परे रहे तो नकारान्त की उपधा को दीर्घ होय।
सखन्+सु=सखान्सु

१६२ ॥ अपृक्त एकाल् प्रत्ययः । १ । २ । ४१ ॥

उम प्रत्यय का नाम अपृक्त है, जिस में एक ही अल् रूप हो।

१६३ ॥ हल्ङ्ग्राव्यो दीघात् सुतिस्यपृक्तहल् । ६ । १ । ६८ । हल-
न्तात् पर दीर्घो यौङ्ग्रापौ तदन्ताच्च परं सुतिसीत्येतदपृक्त हल् लुप्यते ।

हनन्त वा दीर्घ डी (डीप्, डीष्, डीन्) वा आप् (टाप् डाप् चाप्) जिनके अन्त में हो उन से परे जो सु वा ति अथवा सि प्रत्यय रूप अपृक्त हल् सो लोप होय।
सखान्सु ३३, ३ = सखान्म् = सखान्

१६४ ॥ न लोपः प्रादिपदिकान्तस्य । ८ । २ । ७ । प्रातिपदिक
संज्ञक यत् पद तदन्तस्य नस्य लोपः । सखा ॥

प्रातिपदिक संज्ञक जो पद उसके अन्त में वर्तमान जो न तिसका लोप होय।
सखान् = सखा

१६५ ॥ सख्युरसम्बुद्धौ । ७ । १ । ६२ । सख्युरङ्गात् पर सम्बु-
द्धिर्जं सर्वनामस्थानं णिवत् स्यात् ॥

सखि रूप अङ्ग से परे वह सर्व नामस्थान णित् के समान होय, (णित् मानके जो कार्य होता है वह उस को भी मानकर होय) जो सम्बुद्धि से भिन्न है।

१६६ ॥ अचोऽङ्गिति । ७ । २ । ११५ । अजन्ताङ्गस्य वृद्धिर्जिति
णिति च परे । सखायौ । सखायः । हे सखे । सखायम् । सखायौ ।
सखीन् । सख्या । सख्ये ॥

अजन्त अङ्ग को वृद्धि होय, यदि वह प्रत्यय परे रहे जिसका अकार वा णकार इत्संज्ञक हो। सखि+अौ=सखायौ। सखायः। हे सखे १८३, १४५-७। सखायम्। सखायौ। सखीन्। सख्या १८। सख्ये।

१६७ ॥ ख्यत्यात् परस्य । ६ । १ । ११२ । खितिशब्दाभ्यां खीती-

शब्दान्भ्यां क्लृतयणादेशान्भ्यां परस्य ङसिङ्सीरत् उ । सख्यु ॥

जिस को यथादेश १८ बिया जो ऐसा जो अस्व ङि वा ति शब्द भयवा दीर्घ
खी वा ती शब्द (ख्यु वा स्यु) जिस से परे जो ङसि वा ङस् वा अकार जिसको
अकार होय सखि-ङसि+सखि उस् १८-सख्यु २ ।

१६८ ॥ औत् । ७ । ३ । ११८ । क्लृत परस्य ऊरौत् । सख्यौ ।
शेषं हरिवत् ॥

ङि को औ पादेय होय यदि उस सं पून इकार रहे। सखि+ङि-सखि+औ१८-
सख्यौ । शेष रूप हरि शब्द के समान जानने ॥

१६९ ॥ पति समास एव । १ । ४ । ८ । विसञ्ज । पत्या पत्ये ।
पत्यु २ पत्यौ शेष हरिवत् । समासो तु भूपत्ये । कतिशब्दो
बहुवचनान्त ॥

पति शब्द को विसञ्जा समास ही में होती है इस से यह निश्चय मया ङि केवल
पति शब्द की विसञ्जा मान कर जोर कार्य होता है सो पञ्च मी न होगा पति+
आ १८-पत्या पति+ङसि वा ङस्-पत्यु २ । पति+ङि-पत्यौ । शेष रूप हरि
शब्द के समान जानने । समास में तो । भूपत्ये इस तौर नरपति गणपति आदि
जानने । अथ कति शब्द के रूप लिखते है । यह शब्द बहुवचनान्त है ।

२ • बहुवचनान्तकति संख्या । १ । १ । २३ ॥

बहु शब्द और मय शब्द और जिन के अन्त में वतु वा इति प्रत्यय ही से संख्या
कहाये । कति शब्द इति प्रत्ययांत है इस लिये उसकी मङ्गला संज्ञा हुई ॥

२ १ ॥ कति च । १ । १ । २५ । कत्यन्ता संख्या पट्सञ्जा स्यात् ।
कति प्रत्यय है अन्त म जिसके ऐसा जो मङ्गला वाचक शब्द सो पट् संज्ञक होते ।
इस से ज्ञात शब्द की पट् संज्ञा मङ्ग ॥

२ २ पट्भ्यो लुक् । ७ । १ । ७९ । अशगमो ॥

पट् संज्ञक से परे जो लप् वा शप् जिसका शेष होय । कति+लप्-कति ।

२ ३ ॥ प्रत्ययस्व लुक्शुलुप । १ । १ । ६१ । लुक्शुलुपुगर्दे
क्लृत् प्रत्ययाद्गर्गं क्रमात् तत्तत्संज्ञं स्यात् ॥

लुक् श्नु और लुप् शब्दों से प्राथम्य का जो अदम्य अभात् न दिखार्ह पङ्गना की
क्रम से लुक् श्नु और लुप संज्ञक होय ॥

२ ४ ॥ प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् । १ । १ । ६२ । प्रत्यये लुप्तेऽपि

तदाश्रितं कार्यं श्यात् । इति जसि चिति गुणे प्राप्ते ॥

प्रत्यय का लोप होने पर भी प्रत्यय मानके जो जो कार्य होते हैं वे हीवें । कति यहां इस सूत्र के २०२ लुक् होने पर भी इस सूत्र के अनुसार जो जस् को मान कर गुण होता है १८२ सी प्राप्त भया ॥ तत्र

२०५ ॥ न लुमताङ्गस्य । १ । १ । ६३ । लुमता शब्देन लुप्ते तन्नि-

मित्तमङ्गकार्यं न श्यात् । कति २ । कतिभिः । कतिभ्यः २ । कती-
नाम् । कतिषु । युष्मद्स्मद्पट्संज्ञकास्त्रिषु सरूपाः । त्रिशब्दो
नित्यं बहुवचनान्त । त्रयः । त्रीन् । त्रिभिः । त्रिभ्यः २ ॥

जहा लुमता शब्द से लोप हो वहा लोप निमित्तक अङ्ग कार्यन होय । तब गुण न भया कतिर, कतिभिः, कतिभ्य २, कतीनाम्, कतिषु, युष्मद्, अस्मद् और पट् सन्नक शब्दों का तीनों लिङ्गों में समान रूप होते हैं ।

२०६ ॥ त्रैस्त्रयः । ७ । १ । ५२ । आसि त्रयाणाम् । त्रिषु ।
शौण्ठवेऽपि प्रियत्रयाणाम् ॥

आम् परे रहे तो त्रि शब्द को त्रय अदेश होय । त्रि + आम् = त्रयाणाम् १६१-२ । त्रिषु जहा त्रिशब्द की मुख्यता नहीं है, तहा भी (बहुव्रीहि समास में) त्रय आदेश होता है । प्रियत्रयाणाम् ।

२०७ ॥ त्यदादीनामः । ७ । २ । १०३ । एषामकारो विभक्तौ द्वि
पर्यन्तात्तामेवेष्टिः । हौ २ । हाभ्याम् ३ । द्वयोः २ । पाति लोक-
मिति पपीः सूर्य ॥ पप्यौ । पप्यः हे पपीः पपीम् । पपीन् । पप्या ।
पपीभ्याम् ३ । पपीभिः । पप्ये । पपीभ्यः २ । पप्यः २ । पप्योः २ ।
दीर्घत्वान्न नुट् । पप्पाम् । हौ तु सर्वर्णदीर्घ । पपी । पपीषु ।
एवं वातप्रभ्यादयः । बह्व्यः श्रेयस्यो यस्य स बहुश्रेयसी ॥

विभक्ति परे हो तो त्यद् आदि शब्दों को अकार आदेश होय । महाभाष्यकार को यह इष्ट है, कि द्वि शब्द तक यह सूत्र लगे । द्वि + औ = हौ । हाभ्याम् ३ । द्वयो २ जो लोक की रक्षा करता है, उसे पपी, अर्थात् सूर्य कहते हैं । “पातिलोकम्” पपी + औ = पप्यौ । पप्यः हे पपी । पपीम् । पपीन् । पप्या । पपीभ्याम् । पपीभिः । पप्ये । पपीभ्याम् । पपीभ्यः २ । पप्यः २ पप्यो २ । दीर्घ होने से नुट् १६१ न भया । पप्याम् । पपी + इ = पपी । पपीषु इसी भाति वातप्रमी आदि शब्दों के रूप होते हैं ।

जिसके पाम बहुत सी कन्याएँ करनेवाली स्त्री हों उसे बहुश्रेयसी कहते हैं ब्रह्मश्रेयस्यो यस्य च

२०६ ॥ यूरुच्राख्यौ नदी । १ । ३ । ४ । ईदूदन्ती मित्यस्त्रीसिद्धौ नदीसंज्ञा स्त । प्रथमसिद्धयद्वयं च । पूर्वं स्त्रच्राख्यस्योपसर्जनत्वेऽपि नदीत्य वक्ष्यमित्यर्थ ॥

इ वा क है अन्त्य में जिसके ऐसा जो मित्य स्त्रीसिद्ध शब्द ही नदी संज्ञक होय । वार्तिककार ने कहा है कि ऐस शब्दों में पहिले ही सिद्ध का प्रथम श्रेय प्रयात् जो शब्द पहिले स्त्री सिद्ध का वाचक हो और समास होने पर विशेषण होकर पुस्तक हो जाय तो भी वे नदी संज्ञक हों क्योंकि प्रथम वे स्त्रीसिद्ध के हैं । जैसे ययसी शब्द पहिले स्त्रीसिद्ध या फिर बहु शब्द के साथ समास होने से पुस्तक हुआ तो भी इसकी नदी संज्ञा भए । यह शब्द अजन्त है इस से बहुश्रेयसी + सु - बहुश्रेयसी १८१ भया ।

२१० ॥ अन्वायनद्योर्ऋस्व । ७ । १ । १ । ७ । सम्बुद्धौ । हे बहुश्रेयसि ॥

सम्बुद्धि परे रहे तो उन शब्दों को ऋस्व होय जो शब्द नदी संज्ञक वा माता के वाचक हैं हे बहुश्रेयसि

२११ आण् नद्याः । ७ । ३ । ११२ । नद्यन्तात् परिपां कृतामाहा गम' ॥

उस ङित् प्रत्यय की आट् भागम होय जिस के पूर्व अजन्त शब्द रहे ।

२१२ ॥ आटश्च । ६ । १ । ८० । आटोऽपि परे छहिरेकादेश । बहुश्रेयस्यै । बहुश्रेयस्या । बहुश्रेयसीनाम् ॥

आट् से परे यदि अण् रहे तो दोनों मिलकर छहि होय बहुश्रेयसी + आट् + हे १८ - बहुश्रेयसी । बहुश्रेयस्या । बहुश्रेयसीनाम् ।

२१३ ॥ डेरास्नद्यास्नीभ्य । ७ । ३ । १३६ । नद्यन्तादावन्ता स्नीशब्दात् परस्य डेराम् । बहुश्रेयस्याम् । शेषं पपीवत अजन्तत्वात् सुलोप । अतिशक्तमी । शेषं बहुश्रेयसीवत । प्रधी ।

हि को चाम् आदेश होय । बहुश्रेयस्याम् २१ ३२ १८ । शेष रूप पपी शब्द के समान हैं । अतिशक्तमी शब्द अजन्त नहीं है इस लिये सु का लोप न भया । अतिशक्तमी " लक्ष्मीमतिक्रान्त " शेष रूप बहुश्रेयसी के समान हैं । यह प्रधी शब्द क रूप लिखते हैं । प्रधी ॥

२१४ ॥ अचि श्नुधातुभ्रुवां ष्वोरियडुवडौ । ६ । ४ । ७७ । श्नुप्र-
त्ययान्तस्येवर्णोवर्णान्तस्य धातोर्भ्रू इत्यस्य चाङ्गस्येयडुवडौ स्तोऽ-
जादौ प्रत्यये परे । इति प्राप्ते ॥

अजादि प्रत्यय परे ही तो श्नुप्रत्ययान्त अङ्गइवर्णान्त वा उवर्णान्त जो धातुश्चौर भ्रू जो
अङ्ग है तिसके इकार को इङ् और उकार को उवङ् आदेश होय। यह सूत्र प्राप्त भया। तब

२१५ ॥ एरनेकाचोऽसयोगपूर्वस्य । ६ । ४ । ८२ । धात्ववयवसंयोग
पूर्वो न भवति य इवर्णस्तदन्तो यो धातुस्तदन्तस्थानेकाचोऽङ्गस्य यण
ऽजादौ प्रत्यये । प्रध्यौ । प्रध्यम् । प्रध्यौ । प्रध्यः । प्रधियः । शेषं यपीवत् ।
एव ग्रामणी । डौ तु । ग्रामण्यास् । अनेकाचः । क्तिन् । नीः । नियौ ।
नियः । अमि शमि च परत्वादियङ् । नियम् । ङिराम् । नियाम् ।
असयोगपूर्वस्य क्तिन् । सुश्रियौ । यवक्रियौ ॥

धातु का अवयवसयोग पूर्व में नहो ऐसा जो इवर्णान्तधातु वह जिस अनेकाच्
अङ्ग के अन्त में ही, तिसको यण् आदेश होवे, अजादि प्रत्यय परे रहते। अनेकाच्
अङ्ग है, प्रधी तिसके अन्त में इवर्णान्त धातु है, धी तिसके इकार से पूर्व धातु का
अवयव संयोग १६ भी नहीं है, और अजादि प्रत्यय परे है, और ती प्रधी शब्द के
इकार को यण् भया। प्रधी + औ = प्रध्यौ। प्रध्यः। प्रध्यम्। प्रध्यौ। सप्तमी का एक-
वचन प्रधियः। शेष रूप यपी शब्द के तुल्य हैं। इसी रीति से ग्रामणी अर्थात् ग्राम का
सरदार "ग्रामं नयतीति" नी अन्त्य में हैं इस से ग्रामणी + ङि = ग्रामण्यास् २१३। अने-
काच् कहने से। नीः नियौ। नियः। यहा यण् न हुआ, क्योंकि यह एकाच् शब्द है।
१४८, १४० इन सूत्रों की अपेक्षा इयङ् विधायक सूत्र २१४ परहै इस लिये नी + अम् =
नियम्। द्वितीया बहुवचन नियः। सप्तमी का एक वचन नियाम्। संयोग १६ पूर्व में न
हो ऐसा कहने से सुश्री + औ = सुश्रियौ। यवक्री + औ = यवक्रियौ यहा यण् न हुआ।

२१६ ॥ गतिश्च । १ । ४ । ६० । प्रादय क्रियायोगे गतिसञ्जा-
स्युः । गतिकारकेतरपूर्वपदस्य यण् नेष्यते । शुद्धधियौ ॥

— जब प्र आदि उपसर्गों का योग क्रिया के साथ हो तब वे गति सञ्जक होंगे।
भाष्य कार की आज्ञा है कि गति वा कारक से अन्य पूर्वपद जिस अङ्ग का होय तिस
को यण् न होय। जैसे। शुद्धी शब्द में धी शब्द से पूर्व जो शुद्ध शब्द है वह न तो
गतिसञ्जक है, न कारक है, इसी से शुद्धधियौ में नहीं भया, क्योंकि प्राचीन के मत
में प्रथमान्त कारक नहीं कहता। शुद्धी + औ = शुद्धधियौ

११७ ॥ न भूसुधियो । ६ । ४ । ८५ । एतवीरचि सुपि वच् न ।

सुधियो । सुधिय इत्यादि । मुखमिच्छतीति, सुधी । सुती । सुस्वो ।
सुत्यो । सुस्वुः । सुत्बुः । शेषं प्रधीवत् । शम्भुर्हरिवत् । एवं भाग्वाद्बः ॥

भूषीर सुधी शब्द को यच् न होय यदि अच्वादि सुप् परे रहे तो, सुधियो ।
सुधिय इत्यादि । सुष्वाच्ने वाने को सुधी "सुखमिच्छतीति" शीर सुत को इच्छा
वासे को सुती 'सुतमिच्छति' कहते हैं । सुधी । सुती । सुप्यो । सुत्यो । सुधी+
अधि वा इप्-सुधियु १ । सुत्बु २ । १२७ । शेष रूप प्रधी शब्द को समान जानने ।
शम्भु शब्द हरि शब्द को मुख्य है । ऐसे ही भानु साधु दबाधु जपाधु मधुरिपु
आदि शब्द जानने ॥

११८ ॥ तृणवत् क्रीष्टुः । ७ । १ । ८५ । असम्बुधौ सर्वनामस्थाने

क्रीष्टुशब्दस्व क्रीष्टु प्रयोक्तव्य इत्यर्थ ॥

सम्बुधि से भिन्न सर्वनामस्थान परे रहे तो क्रीष्टु शब्द तृणवत् को समान होव
पर्यात् क्रीष्टु शब्द को क्रीष्टु आदेश होय ।

११९ ॥ अतो क्सर्वनामस्थानयोः । ७ । १ । ११० । अतीऽहस्व
गुणो ङी सर्वनामस्थाने च । इति प्राप्ते ॥

अकारान्त अह को गुण होवे यदि कि वा सर्वनामस्थान परे रहे तो । अह
प्राप्त भया ॥ तव

१२० ॥ अदुश्मस्फुट्शोऽनेहसां च । ७ । १ । ८४ । अदन्ताना
मुश्मसादीनां चानङ् स्यादसम्बुधौ सी ॥

यदि सम्बुधि से भिन्न सु परे रहे तो अकारान्त अयनप् पुर्वमप् शीर अनेहप्
इन को अनङ् आदेश होय ।

१२१ ॥ अत्तन्तुवस्वसुनप्तनेष्टत्वष्टुचतृहीतृपीतृप्रशास्तृचाम् ।
६ । ४ । ११ । अबादीमामुपधाया दीर्घाऽसम्बुधौ सवमामस्थाने । क्रीष्ठा ।
क्रीष्टारी । क्रीष्टारः । क्रीष्टन् ॥

अप् शब्द शीर तुम् प्रत्ययान्त वा तुष् प्रत्ययान्त को शब्द शीर स्वह मत्त
नेष्ट त्वष्ट अत हीतृ पीतृ प्रशास्तृ इन को उपधा को दीर्घ होय यदि सम्बुधि
भिन्न सर्वनामस्थान परे रहे तो । क्रीष्टु+मु फिर क्रीष्ठा+म् । फिर क्रीष्टन्+च् ।
तव क्रीष्टन् । क्रीष्टान् १८१ ७ । तव क्रीष्ठा । क्रीष्ठा+षी । तव क्रीष्ठा+षी ।
क्रीष्टारो क्रीष्टारः । क्रीष्टु+अप् (१४६ शीर ११६) -क्रीष्टन् ॥

२२२ ॥ विभाषा तृतीयादिष्वचि । ७ । १ । ६७ । अजादिषु
क्रोष्टुर्वा तृज्वत् । क्रोष्ट्रा । क्रोष्टुना । क्रोष्ट्रे ॥

वह तृतीया आदि विभक्ति परे ही जिस के आदि में अच् ही तो क्रोष्टु को क्रोष्ट्र
आदेश विकल्प से होय क्रोष्टु + आ १८ = क्रोष्ट्रा वा, क्रोष्टुना (१८५) क्रोष्ट्रे ॥

२२३ ॥ ऋत् उत् । ६ । १ । १११ । ऋती ङसिङसीरतिउदेकादेशः । रपरः

ऋ है अन्त में जिसके तिस से परे यदि ङसि वा ङस् का अकार रहे तो दोनों
मिलकर रपर उकार, अर्थात् उर् एकादेश होय । क्रोष्ट्र + अस् = क्रोष्टुर् + स् ॥

२२४ ॥ रात् सस्य । ८ । २ । २४ । रेफात् संयोगान्तस्य सस्यैव
लोपो नान्यस्य । रस्य विसर्गः । क्रोष्टुः । क्रोष्ट्रोः ॥

रकार से परे उसी सकार का लोप होय जो संयोग १६ के अन्त में है परन्तु और
का नहीं । क्रोष्टुर्स् ११८ क्रोष्ट्र । क्रोष्ट्र + ओस् १८ क्रोष्ट्रोः ।

२२५ ॥ नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन । क्रोष्ट्रूनाम् ।
क्रोष्ट्रि । पक्षे हलादी च शशंभुवत् हूहू हूह्वौ । हूहूम् । इत्यादि । अतिच-
मूशब्दे तु नदीकार्यं विशेषः । हे अतिचमु । अतिचम्बै । अतिचम्बा ।
अतिचमूनाम् खलपू ॥

विप्रतिषेधे परकार्यम् १२८ सूत्र में जो विधान किया है कि पर कार्य होय उस पर
वार्तिककार का विचार है, कि नुम् अच् परे रहते र भाव और तृज्वद्भाव इन तीनों को
बाध कर पूर्वविप्रतिषेध से नुट् ही आगम होवे क्रोष्टु + आम् यहाँ तृज्वद्भाव और
नुट् दोनों पाया पर विप्रतिषेधे पर कार्यम् इस से तृज्वद्भाव पाया क्योंकि अष्टाध्यायीके
क्रमानुसार वही पर है तब इस वार्तिक ने ढबाकर पूर्वविप्रतिषेध से नुट् आगम विधान
किया तब नुट् १६१ आगम भया फिर तृज्वद्भाव की प्राप्ति नहीं क्योंकि अच् परे नहीं
है । क्रोष्ट्रूनाम् । क्रोष्ट्रि । पक्ष में और हलादि सुप् परे रहते इस के रूप शम्भु
शब्द के सदृश है । नुम् और अच् परे रहते रभाव को उदाहरण आगे लिखेंगे । हूहू ।
हूह्वौ । हूहूम् इत्यादि । परन्तु अतिचमू शब्द में चमू शब्द नित्य स्त्रीलिङ्ग है इस
लिये नदी सञ्जाका कार्य उस में विशेष है । हे अतिचमु चमूमतिक्रान्त अतिचम्बै ।
अतिचम्बा । अतिचमूनाम् । अब खलपू शब्द के रूप लिखते हैं । खलपू ।

२२६ ॥ ओ. सुपि । ६ । ४ । ८३ । धात्ववयवसंयोगपूर्वी न भवति य
उवर्णस्तदन्ती यी धातुस्तदन्तस्यानेकाचोऽङ्गस्य यण् स्यादचि सुपि ।
खलप्वौ । खलप्व । एवं सुल्वादय । स्वभूः । स्वभुवौ । स्वभुव । वर्षाभूः ।

धातु का अवयव संयोग पूर्व में नहीं ऐसा सबल जिस धातु के अन्त में हो एता को धातु भी जिस अनेकात् अङ्ग के अन्त में हो तिस को यह आदेश होय अभाटि सुप् प्रत्यय परे रहे तो अन्तर्णी । अन्तर्णी अन्तं पुनातीति अन्तपू । मुसु आदि शब्द भी इस के अन्त में सुष्टुपुनातीति । स्वम् । स्वमुवी । स्वमुष । वर्षायां भवतीति वर्षाम् ।

२२० ॥ वर्षाम्ब्रह्म । ६ । ४ । ८४ । अस्य यष् स्यादधि सुपि । वर्षाम्ब्रह्मिण्यादि । इन्म् ॥

वर्षाम् शब्द को यष् आदेश होय यदि अजादि सुप् परे रहे तो । वर्षाम्ब्रह्मिण्यादि । अत्र इन्म् शब्द । इन्म् ॥

२०८ ॥ वा इन्करपुम पूर्वस्य भुवो यष् यक्तव्य । इन्म्ब्रह्मी । एवं करम् । पुनम् । धाता । हे धाते । धातारी । धातार ॥

वागिकार का यह मत है कि जो वर्षाम्ब्रह्म इस में कबल भू शब्द का प्रत्यय किया है उस के माथ इन्म् करम् चीर पुनम् शब्द का प्रत्यय करना चाहिये । यह धात शब्द । धाता । हे धाते । धातारी । धातार ॥

२२८ ॥ वा ऋषिर्नाम्नस्य षट्त्वं वाच्यम् । धातृणाम् । एवं नप्तादबः नप्तादियच्छं व्युत्पत्तिपक्षे नियमायम् । तेनेह न । पिता । पितरौ । पितर । पितरम् । श्रेय धातृवत् । एव आमाभात्य । ना । नरो ॥

वागिकार का यह मत है कि ऋषिर्नाम्नस्य परे जो नकार तिथकी अकार आदेश हो धातृणाम् एतं ही नप्त् आदि शब्दों को जानना व्युत्पत्ति पक्ष में नप्तादि अक्षर से यह सिद्ध होता है कि अजादि के (जो अदभ्यन्तमसिद्धा मायगा) तृन् वा तृप् प्रत्यय से जो पञ्चा गण पनात है उस में स अक्षर को मूष २२१ में लिख है उन्हीं का दीघ होता है धीरों को नहीं यदि धीरों को होता तो वह नप्त् आदि धातों शब्दों का गुण में लिखना शक्य ही जाता इस लिये पितरौ म दीघ न हुआ क्योंकि यह अजादि से बना २२१ है । पिता । पितरौ । पितर । पितरम् । शक्य धात गण के समान जानना । एत ही ज्ञानात् आदि जानना । यह नू शब्द के रूप लिखत है । ना । नरो ॥

०३१ ॥ न ष । ६ । ४ । ६ । अस्य नामि वा दीघ । नृणाम् । नृणाम् । नाम पर रहत न गण को विकल्प म दीघ होय । नृणाम् वा नृणाम् ।

०३० । गोतीयित् ० । १ । ६० । ओकारान्तादिहितं सवनामस्यानं लिटत् । गौ । गार्धो । गावः ॥

यह सव नामरथान लिट् के समान जाय (चिन्मान को का काय होता है वह उमर में होय) । त्रिगुण पूर्व देता ओकारान्त शब्द यह को मो शब्द का समाग दे गोः गावा नाम ॥

२३३ ॥ औतीऽम्शसोः । ६ । १ । ६३ । औतीऽम्शसोरचि आकार

एकादेशः । गाम् । गावौ । गा । गवा । गवे । गोः २ । इत्यादि ॥

औ है अन्त्य में जिस के ऐसा जो शब्द तिस से परे जो द्वितीया का एकवचन वा बहुवचन प्रत्यय सबन्धी अकार रहे तो दोनों अर्थात् औ और अ मिलकर आ होंगे । गो + अम् = गाम् गो + औ यहां गो को णित् मान के (२३२) वृद्धि १६६ भई = गौ + औ २६ = गावौ । गो + अस = गा गो + अस् पञ्चमी या षष्ठी १८७ = गो' इसी तीर सब रूप जानने ॥

२३४ ॥ रायो हलि । ७ । २ । ८५ । अस्याकारादेशो हलि विभक्तौ ।

रा । रायौ । रायः । राभ्यामित्यादि । ग्लौ । ग्लावा । ग्लाव । ग्लौभ्यामित्यादि ॥

॥ इत्यजन्ता' पुल्लिङ्गा ॥

रै शब्द के आगे हलादि विभक्ति परे रहे तो उस के ऐ को आ आदेश होंगे । रै + स = रा' रै + औ = ६ = रायौ । राय । रै + भ्याम् = राभ्याम् इत्यादि औकारान्त ग्लौ शब्द ग्लौ + सु = ग्लौ । ग्लावौ । ग्लाव । ग्लौभ्याम् इत्यादि ॥

॥ अजन्त पुलिङ्ग समाप्त भया ॥

॥ अथाजन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ॥

॥ रमा ॥

२३५ ॥ औड आप । ७ । १ । १८ । आवन्तादङ्गात् परस्यौड-
शी स्यात् । औडित्यौकारविभक्ते संज्ञा । रमे । रमा ॥

रमा (१६३)

आवन्त (टाप् डाप् वा चाप् प्रत्यय है अन्त्य में जिस के ऐसा जो) अङ्ग से परे जो औड् तिस को गी (ई) आदेश होंगे । औड् यह नाम औ' औट् इन दोनों विभक्तियों का है । रमा + औ = रमा + ई ३२ = रमे । रमा ॥

२३६ ॥ सम्बुद्धौ च । ७ । ३ । १०६ । आप एकार. स्यात् सम्बुद्धौ ।
एङ्ङस्वादिति सम्बुद्धिलीपः । हे रमे । हे रमाः । रमाम् । रमे । रमाः ।

सबुद्धि परे रहे तो आप के आ को ए आदेश होंगे । हे, रमे १४७ हे, रमे २३५ हे रमाः द्वितीया में रमाम् । रमे रमा ॥

२३७ ॥ आङि चाप । ७ । ३ । १०५ । आङि षीसि चाप
एकारः । रमया । रमाभ्याम् ३ । रमाभि ।

आङ् (टा) वा आष् विभक्ति परे रङ्गे तो चाप् के आ षो ए आदेश होवे । रमा+
आ = रमे+आ २६ = रमया रमाभ्यामश् रमाभि ॥

॥ २३८ ॥ याङाप । ७ । ३ । ११३ । आपी ङितो याट् । ष्टि ।
रमायै । रमाभ्य २ । रमाया २ । रमयोः २ । रमाभ्याम् । रमाभ्याम् ।
रमासु । एवं दुर्गाभ्यिकादय ॥

यदि ङित्सुप् (ङ ई इत् विभक्त्वा पेसा ङो सुप् प्रत्यय) प्रत्यय के पूर्व चाप् रङ्गे
तो प्रत्यय ङो याट् (या) धामम होवे । रमा+ए (ङे) = रमाया+ए ३८ = रमायै
रमाभ्य २ । रमा+ अष् (ङिति वाङ्) = रमाया २ रमयो २ रमा+आम् १६१ = रमाभ्याम्
रमा+इ२१३ = रमा+आम् = रमाभ्याम् । रमासु इषी रीति से दुर्गा भम्बिका चर्मा
ब्रह्मा यमुना नर्मदा तमया आङि जानने ॥

२३९ ॥ सवमान्न स्याङ्स्वरश्च । ७ । ३ । ११४ । आवन्तात्
सर्वनाम्नो ङित स्याङापश्च ङस्व । सवस्यै । सर्वस्या २ । सर्वासाम् ।
सर्वस्याम् । शेषं रमावत् ॥

आवन्त सवनाम शब्द से परे ङो ङित् सुप् प्रत्यय तिसको रवाट (स्वा) धामम
होवे और उचने पूर्ववर्ती आ ङो च होवे । सर्वा+ए (ङे) = सर्वस्यै । सर्वस्या २ ।
सर्वासाम् २६८ सर्वस्याम् ११३ शेष रूप रमा शब्द के समान जानने ॥

२४ ॥ विभाषा द्विकसमासे बहुव्रीहौ । १ । १ । २८ । सर्वनामता
वा । उत्तरपूर्वस्यै । उत्तरपूर्वायै । तीयस्येति वा संज्ञा । द्वितीयस्यै ।
द्वितीयायै । एवं तृतीया । अन्वयैति ङस्व । हे अम्ब । हे चक्र । हे अल्ल ।
अरा । अरसौ । अरे । इत्यादि पक्षे रमावत् । गोपा, विश्वपावत् ।
मतिः । मतीः । मत्या ॥

इन सर्वाङि शब्दों को विवरण से सर्वनाम संज्ञा होवे को दिशावाचीशब्द बहुव्रीहौ
समास के हैं । उत्तरपूर्वस्यै २३८ वा उत्तरपूर्वायै २३८ ङित् सुप् प्रत्यय परे रङ्गते भी तीय
प्रत्ययान्त शब्दों को सर्वनाम संज्ञा विवरण के होवे । द्वितीयस्यै वा द्वितीयायै ऐसे ही
तृतीया शब्द को भी जानना । अम्बुषि परे रङ्गते ङस्व भया २१ हे अम्ब ।
हे चक्र । हे अल्ल । अरा १८३ अरसौ १०३ अरे २३३ अरश्च इत्यादि पक्ष में रमा शब्द के
समान जानने । मीया शब्द के रूप विश्वपा के समान जानने । मति द्वितीया

बहुवचन मती. स्त्रीलिङ्ग होने से न आदेश नभया १५० मत्या यहां भी ना आदेश न भया १८५ ॥

२४१ ॥ डिति ङ्गस्वश्च । १ । ४ । ६ । द्वयङुवङ्स्थानौ स्त्री-
शब्दभिन्नौ नित्यस्त्रीलिङ्गावीदूतौ ङ्गस्वौ च द्ववर्णौवर्णौ स्त्रियां वा
नदीसंज्ञौ स्तो डिति । मत्यै । मतये । मत्याः २ मतेः २ ॥

स्त्री शब्द को छोड़ कर इयङ् वा उवङ् आदेश होते हैं, जिन को ऐसे जी
ईकारान्त वा ऊकारान्त नित्यस्त्रीलिङ्ग शब्द और स्त्रीवाचक ङ्गस्व इकारान्त वा उका-
रान्त शब्द तिनकी नदी सज्ञा विकल्प से होवे यदि ऐसा सुप् प्रत्यय परे रहे जिसका
ङ् इव है । मति-न-ए = २ । ११२ । २ = मत्यै वा मतये १८६ इसी रीति से मत्या' २ वा मतेः २ ।

२४२ ॥ इदुङ्ग्याम् । ७ । ३ । ११७ । इदुङ्ग्यां नदीसंज्ञकाभ्यां
परस्य डेराम् । मत्याम् । मतौ शेषं हरिवत् । एवं वुह्यादयः ॥

उन नदी सज्ञक शब्दों से परे सप्तमी के एकवचन डि' को आम् आदेश होवे जो
ङ्गस्व इकारान्त वा उकारान्त के हैं । मत्याम् नदी सज्ञा न भई, तब मतौ १८८ शेष रूप
हरि शब्द के समान जानने । ऐसे ही बुद्धि, प्रतिपत्ति, उक्ति आदि को जानना ॥

२४३ ॥ त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ । ७ । २ । ६६ । स्त्रीलि-
ङ्गयोरेतौ स्तो विभक्तौ ॥

विभक्ति परे रहते स्त्रीप्रतिपादक त्रि और चतृ शब्द को क्रम से तिसृ और चतसृ
आदेश होवे ॥

२४४ ॥ अचि र ऋत । ७ । २ । १०० । तिसृ चतसृ एतयो-
र्ऋकारस्य रेफादेशः स्यादचि । गुणदीर्घान्वानामभावः । तिस्रः २ ।
तिसृभिः । तिसृभ्य २ । आमि नुट् ॥

अच् परे रहते तिसृ चतसृ शब्दों के ऋकार की र आदेश होवे । यह र आदेश
गुण दीर्घ और उत्त्व को बाध कर होता है । तिस्रस्तिष्ठन्ति यहां गुण, १८९ को बाधकर र
आदेशभया । तिस्र परय यद्वा दीर्घ १४ को बाधा । प्रियतिस्र स्वम् यहां उत्त्व २३२ की दवाया ।
तिस्रः २ तिसृभिः । तिसृभ्यः २ तिसृ-न-आम् यहां नुट् आगम भया, तब दीर्घ पाया ॥

२४५ ॥ न तिसृचतसृ । ६ । ४ । ४ । एतयोर्नामि दीर्घौ न ॥
तिसृणाम् । तिसृषु । हे २ । हाभ्याम् ३ । हयोः २ । गौरी । गौर्यौ ।
गौर्य । हे गौरि । हे गौर्यावित्यादि । एवं नद्यादयः । लक्ष्मी शेष

गौरीवत् । एवं तरौतन्ध्यादय । स्त्री । हे स्त्रि ॥

नाम् परे रहते तिम चतस शब्दों को दीघ न होवे । तिमशाम् (२३८) तिसयु हे २, २३६ शाभ्याम् २ इयो २ (२३०) गौरी १८६ गौर्यीं यद्वा दीघ १४ को बाधकर १०६ यच् १८६या । गौर्यं हे गौरि २१ हे गौर्यीं इत्यादि इसी रीति स नदी पाषो आदिश्रीं को जानना । लक्ष्मी शब्द स्त्री प्रत्यय से नहीं बना है इस लिये सु का स्थाप १८६ नहीं भया लक्ष्मी और यद्यप्य गौरी को मङ्गल है । इसी रीति से ठरी तन्त्री आदि शब्दों को भी जानना । स्त्री १३८ हे स्त्रि ॥ २१

२४६ ॥ स्त्रिया । ६ । ४ । ७८ । अस्येयङ्काद्दी प्रत्यये परे । स्त्रियौ । स्त्रिय ॥

अजादि प्रत्यय परे रहे तब स्त्री शब्द को इयङ् (इय) धादेश होवे । स्त्री+धो= स्त्रियौ । स्त्रिय ॥

२४७ ॥ वाम्शसीः । ६ । ४ । ८० । स्त्रिया ङवङ् । स्त्रियम् । स्त्रीम् । स्त्रिय । स्त्री । स्त्रिया । स्त्रियै । स्त्रिया २ । परत्वाङ्मुट् । स्त्रीषाम् । स्त्रीषु । श्री । श्रियौ । श्रिय ।

द्वितीया का एकवचन वा बहुवचन परे रहे तो स्त्री शब्द को विकल्प से इयङ् (इय) धादेश होवे । स्त्रियम् वा स्त्रीम् १३८ स्त्रियं वा स्त्री १३ स्त्रिया तृतीया स्त्रियै स्त्रिया २ स्त्री षाम् यद्वा इयङ् को द्वाभार परत्व से १२८ मुट् धागम भया स्त्रीषाम् । स्त्रीषु । श्री श्रियौ श्रिय ॥

॥ २४८ ॥ नेयङ्कवङ्स्यानावस्त्री । १ । ४ । ४ । ङवङ्कवङ्गोः स्थिति यद्योस्ताधोदूती नदीसंज्ञी न स्ती नतु स्त्री । हे श्रीः । श्रियै । श्रिये । श्रिया । श्रिय ॥

स्त्री शब्द को स्त्री कर उन शब्दान्त लकारान्त शब्दों को नदी संज्ञा न होवे जिन को इयङ् और ङवङ् धादेश होते हैं । हे श्री इसी कारण यद्वा ङव २१ नहीं भया । श्रियै वा श्रिये श्रिया वा श्रिय ॥

२४९ ॥ वामि । १ । ४ । ५ । ङवङ्कवङ् स्यानी स्त्रियास्त्री य् वामि वा नदीसंज्ञी स्ती नतु स्त्री । श्रीषाम् । श्रियाम् । श्रियि । श्रियाम् । धेनुमतिवत् ॥

स्त्री शब्द को स्त्री कर उन शब्दान्त लकारान्त शब्दों को विकल्प न पाम् परे रहते नगी संज्ञा होवे जिन को इयङ् वा ङवङ् धादेश होते हैं । नदी संज्ञा भइ तब मुट् भया श्रीषाम् १६१ श्रियाम् । श्रियि वा श्रियाम् धनु यत् क ङव मति को

सद्य जानने ॥

२५० ॥ स्त्रियां च । ७ । १ । ६६ । स्त्रीवाची क्रीष्टुस्तृजन्तवद्रूपं लभते ।

स्त्री वाची क्रीष्टु शब्द को क्रीष्ट आदेश हीवे ॥

२५१ ॥ ऋन्नेभ्यो ङीप् । ४ । १ । ५ । ऋदन्तेभ्यो नान्तेभ्यश्च

स्त्रियां ङीप् । क्रीष्टी गौरीवत् । भूः श्रीवत् । स्वयम्भूः पुम्बत् ॥

ऋकारान्त श्रीर नकारान्त शब्दों के आगे स्त्रीलिङ्ग अर्थ में ङीप् (ईं) प्रत्यय लगाया जाय । क्रीष्ट-ङीप् (ईं) १८ = क्रीष्टी इसे गौरि शब्द के समान जानना ।

भूशब्द श्री के समान है स्वयम्भू शब्द पुल्लिङ्ग स्वभू के समान जानना ॥

२५२ ॥ न षट्स्वसादिभ्यः । ४ । १ । १० । ङीप्तापौ न ।

स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा ।

याता मातेति सप्तैते स्वसादय उदाहृताः ॥

स्वसा । स्वसारौ । माता पितृवत् । शसि मातृः । द्यौर्गोवत् ।

रा. पुंवत् नौग्लौवत् ॥ ॥ इत्यजन्ता स्त्रीलिङ्गाः ॥

षट् सञ्जक और स्वसृ आदि शब्दों के आगे ङीप् और टाप् प्रत्यय जो स्त्री प्रत्यय के हैं सो न लगाये जायें । ये सात शब्द स्वसादि के हैं । स्वसृ, तिसृ, चतसृ, ननान्दृ, दुहितृ, यातृ और मातृ । स्वसृ + सु २२० । १ । स्वसा । स्वसारौ । मातृ शब्द को पितृ के समान जानना । परन्तु द्वितीया बहुवचन में मातृ होता है । गोशब्द के समान द्यौ को जानना । रे शब्द के रूप वैसे ही जानो जैसे पुल्लिङ्ग में हुए है ॥

॥ अजन्त स्त्रीलिङ्ग समाप्त भया ॥

॥ अथाजन्ता नपुंसकलिङ्गाः ॥

२५३ ॥ अतोऽम् । ७ । १ । २४ । अतोऽङ्गात् क्लीवात् स्वसोरम् ।

ज्ञानम् । एङ्ङस्वादिति हल्लोपः । हे ज्ञान ॥

अकारान्त नपुंसक अङ्ग से परे जो सु और अम् विभक्ति तिनको अम् आदेश होय ।

ज्ञान + सु = ज्ञान + अम् १४८ ज्ञानम् । हे ज्ञान ॥

२५४ ॥ नपुंसकाच्च । ७ । १ । १६ । क्लीवाद्दौः शी । भसंज्ञायाम् ।

नपुंसक अङ्ग से परे जो औङ् विभक्ति तिस को शी (ईं) आदेश होता है । शी आदेश होने से ज्ञान शब्द की भ सञ्ज्ञा ७६ हुई तब ॥

२५५ ॥ यस्येति च । ६ । ४ । १४८ । ईकारे तद्धिते च भस्वे
पर्यावर्णयोर्लोप इत्यस्योपे प्राप्ते ।

ईकारान्त वा तद्धित प्रत्यय परे रहे तो मसंज्ञक इवर्ष और चवच का लोप होय ज्ञान
+ ई यहाँ अकार का लोप पाया । तब

२५६ ॥ औङ् श्यां प्रतिषेधो वाच्यः । ज्ञाने ॥

वार्तिककार की यह आज्ञा है कि वह ई परे रहे तो पूर्व विधि न सगे जो औ ङी
की आदेश से मया है । इस लिये ज्ञान से अकार का लोप न मया ज्ञान + ई १२ ज्ञाने ।

२५७ ॥ अश्रयसी शि । ७ । १ । २० । कस्योवात् ।

नपुंसक अङ् से परे ओ ङस् और यस् विभक्ति तिनको जि (२) आदेश होवे ॥

२५८ ॥ शि सर्वनामस्थानम् । १ । १ । ४२ ॥

शि की सर्वनामस्थान संज्ञा होवे ॥

२५९ ॥ नपुंसकस्य भ्रूक्षचः । ७ । १ । ७२ । भ्रूक्षन्तस्यावन्तस्व

च कस्योवस्य नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने ॥

सर्वनामस्थान परे रहते नपुंसक अङ्ग की नुम् (न) आगम होवे ॥

२६० ॥ मिद्बोऽन्त्यात् पर । १ । १ । ४७ । अर्चामध्ये योऽन्त्य

स्तस्मात् परस्तस्यैवान्तावयवो मित् स्यात् । उपधादीर्घ । ज्ञानानि ।
पुनस्तद्वत् । शेषं पुवत् एव धनवनप्ललादय ॥

जिस आगम का अकार इत् होवे सो अर्चो में से ओ अन्त्य अच् तिस से परे होय
ज्ञान + इ यहाँ जो ज्ञान की नुम आगम विधान किया है वह ज्ञान से अकार से आने
मया कस्योवि अन्त्य अच् अकार ही है तब ज्ञानन् + इ १८१ दीर्घ मया तब ज्ञानानि
शेष रूप राम शब्द से समान जानने । इसी रीति धन वन प्लल आदि शब्द जानने ।

२६१ ॥ अद्भुतरादिभ्य पठ्चभ्य । ७ । १ । २५ । एभ्य कस्योविभ्यः

स्वसोरद्भादेशः स्यात् ।

इतर इतम अन्त्य अन्त्यतर और इतर इन पांच नपुंसक अङ्गों से परे जो सु और अम्
तिन की अद्भु (अद्) आदेश होवे । यहाँ इतत् और इतम् प्रत्यय से अर्थात् इतरान्त
और इतमान्त शब्दों का पक्ष चलना ॥

२६२ ॥ टे । ६ । ४ । १४३ । किति मस्य टेषोप । कतरत् ।

कतरद् । कतरे । कतराणि । हे कतरत । शेषं पुवत् । एव कतमत् ।

इतरत् । अन्यत् । अन्यतरत् । अन्यतमस्य त्वन्यतमम्, इत्येव ॥

उ है इत् जिस का ऐसा जो प्रत्यय सो परे रहे तो भसन्नक १७८ शब्द की टि ४८ का लोप होवे । कतर+मु=कतरद् १५८ वा कतरत् । कतरे । कतराणि हे कतरत् ग्रंथ रूप राम शब्द के समान जानने । इसी प्रकार कतमत् । इतरत् । अन्यत् और अन्यतरत् अन्यतम शब्द का रूप अन्यतमम् यही होता है अर्थात् ज्ञान शब्द के समान है ॥

२६३ ॥ एकतरात् प्रतिषेधः । एकतरम् ।

वार्तिककार की आज्ञा है कि एकतर शब्द में पूर्वोक्त विधि का प्रतिषेध होवे अर्थात् सु और अम् को अद्ङ् आदेश न होवे । एकतरम् ।

२६४ ॥ ऋस्वी नपुंसके प्रातिपदिकस्य । १ । २ । ४७ । अजन्तस्येत्येव । श्रीपम् ज्ञानवत् ॥

नपुंसक लिङ्ग में जिस प्रातिपदिक के अन्त में दीर्घस्वर होवे उसे ऋस्व आदेश होवे । श्रीपा+सु=श्रीपम् यह ज्ञान शब्द के समान है ॥

२६५ ॥ स्वसोर्नपुंसकात् । ७ । १ । २३ । लुक् स्यात् । वारि ॥

नपुंसक अङ्ग से परे जो सु और अम् तिन का लुक् (लोप) होवे वारि+सु=वारि ।

२६६ ॥ इकीऽचि विभक्तौ । ७ । १ । ७३ । इगन्तस्य क्लीबस्य नुमचि विभक्तौ । वारिणी । वारीणि नलुमतेत्यस्यानित्यत्वात् पक्षे सम्बुद्धिनिमित्ती गुणः । हे वारि । हे वारे । घेर्ङित्तीति गुणे प्राप्ते । वृहद्यौत्वतृत्वद्वावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन । वारिणे । वारिणः २ । वारिणीः २ । नुमचिरेति नुट् वारीणाम् । वारिणि । हलादौ हरिवत् ।

उस नपुंसक अङ्ग को अजादि विभक्ति परे रहते नुम् (न्) आगम होवे जिसके अन्त में इक् प्रत्याहार के वर्ण होवे वारि+औ २५५ वारिणी वारि+जस् वा शस्=वारिणि । नलुमताङ्गस्य २०५ यह निषेध अनित्य है, इस कारण पक्ष में सम्बुद्धि निमित्तक जो कार्य है, सो होगा, तब हे वारि । हे वारे । १८२ भया । वारि+ङे यहां घेर्ङित्ति-१८६ से गुण और नुम् दोनों पाये, तब विप्रतिषेधे पर कार्य १२८ इस से गुण ही पाया, सो नहीं भया, क्योंकि इस पर वार्तिककार कहते हैं, कि वृद्धि औत्व तृत्वद्वाव और गुण की अपेक्षा नुम् होवे पूर्वविप्रतिषेधसे । तब नुम् भया, वारिणे । वारिणः २ वारिणीः । अम परे रहते नुट् होता है, १६१ वारीणाम् । वारि+ङि=वारिणि । हलादि विभक्ति परे

रहते इस के भी रूप वरि के समान जानने ।

२६७ ॥ अस्थिदधिसकृद्यद्दशामनकुदात् ॥ ७ ॥ १ ॥ ७५ ॥ टादावचि ।

अस्थि दधि सचिचि और अचि इन को उदात्त अन् (अन्) आदेश होय टा आदि अच्चादि विभक्ति परे रहते ।

२६८ ॥ अखलोऽपीन । ६ । ४ । १३४ ॥ अङ्गावयवोऽसर्वनामस्यानमवा

दिस्वादिपरी योऽन् तस्याकारस्य लोप दक्ष्णा । दध्ने । दध्न् २ । दध्नी ९

अङ्ग का अवयव सर्वनामस्थान से भिन्न यकारादिवा अच्चादि स्वादि विभक्ति परे रहे तो मसंज्ञक अन् के अकार का लोप होवे । दध्न् + पा = दक्ष्णा । दध्ने । दध्न् २ । दध्नी ।

२६९ ॥ विभाषा ऋश्यी । ६ । ४ । १३६ ॥ अङ्गावयवोऽसर्वनाम

स्यानपरी योऽन् तस्याकारस्य लोपी वा स्यान्किञ्चयी परयी । दक्षिन् ।

दध्नि । शेषं वारिवत् । एवमस्थि सकृद्यच्चि । सुधि सुधिमौ । सुधौनि ।

इ सुधे । इ सुधि । सुधिनेत्यादि । मधु । मधुनी । मधूनि । इ मधी ।

इ मधु । सुक्षु । सुक्षुनी । सुक्षूनि । सुक्षुनेत्यादि । धातु । धातुषी । धातुषि ।

धातुष्याम् । इ धातु एवं आच्चादय ।

सर्वनामस्थान को छोड़ कर ङि वा ग्री विभक्ति परे रहे तो अङ्ग का अवयव अन् के अकार का लोप निकारण से होवे । दक्षिन् वा दध्नि । शेष रूप वरि मध्य के समान जानने । ऐसे ही अस्थि सकृद्यच्चि और अचि को भी जानना । सुधि मधु सुक्षु धातु, धातु आदि को वरि के समान जानने ।

२७० ॥ एच इन्द्रस्वादेशे । १ । १ । ४८ । प्रद्यु । प्रद्युनी । प्रद्युनि ।

प्रद्युनेत्यादि । परि । प्ररिषी । प्ररीषि । प्ररिष्या । एकादेशविकृतमनन्धवत्

प्रराभ्याम् । प्ररीष्याम् । सुनु । सुनुनी । सुनुनि । सुनुनेत्यादि ॥ इति ॥

एच् को इन्द्र आदेश विधान करने में ए ऐ को इ, और पी पी को इ होवे । इसलिए प्रद्यो को प्रद्यु मया इसको भी वरि के समान जानने । परी को प्ररि मया अच्चा ऐ को इ आदेश होने पर भी इस नियम से २३४ या आदेश मया नहीं कि कुछ विचार होने से एच् अन्नु दूसरी नहीं हो सकती इसलिए प्रराभ्याम् मया इत्यादि सु पूर्वका नी मध्य को इन्द्र से सुनु मया इस के भी रूप वरि के समान जानने ॥

॥ अथगतनपुंसकलिङ्ग समाप्तमवा ॥

॥ अथ हलान्ताः पुल्लिङ्गाः ॥

— ० —

२७१ ॥ होठः । ट । २ । ३१ । भलि पदान्ते च । लिट् । लिङ् ।

लिहौ । लिह । लिङ्भ्याम् । लिट्सु । लिट्सु ॥

भल् परे रहते वा पदान्त में वर्तमान जो ह तिस को ट आदेश होवे । लिङ् + सु = लिङ् + ७६ । १५६ लिट् लिङ् । लिहौ । लिहः । लिङ् भ्याम् (७६) (६६) लिट्सु वा लिट्सु

२७२ ॥ दादेर्धातीर्षः । ट । २ । ३२ । भलि पदान्ते चीपदेशे

दादेर्धातीर्षस्य घ ।

भल् परे रहे तो वा पदान्त में वर्तमान उस धातु के ह को घ आदेश होवे, जो उपदेश में दकारादि हैं ॥

२७३ ॥ एकाचो वशी भष् भषन्तस्य स्ध्वीः । ट । २ । ३७ ।

धात्ववयवस्यैकाचो भषन्तस्य वशी भष् से ध्वे पदान्ते च धुक् । धुग् ।
दुहौ । दुहः । धुग्भ्याम् । धुच् ।

धातु का अवयव जो एकाच भषन्त तद् अवयव जो वश् प्रत्याहार के वर्ण तिन को भष् प्रत्याहार के वर्ण हों, स वा ध्व प्रत्यय परे रहे वा पदान्त में वर्तमान होय । तव दुह् + सु = धुक् वा धुग् । दुहौ । दुहः । धुग्भ्याम् । ७६ । १६३ । धुच् ।

२७४ ॥ वा द्रुहमुहष्णुहष्णुहाम् । ट । २ । ३३ । एषां हस्य वा

घो भलि पदान्ते च । ध्रुक् । ध्रुग् । ध्रुट् । ध्रुङ् । द्रुहौ । द्रुहः । ध्रुग्भ्याम् ।
ध्रुच् । ध्रुट्सु ध्रुट्सु । एवं मुह् ।

भल् प्रत्याहार के वर्ण परे रहे वा पदान्त में वर्तमान जो द्रुह्, मुह्, षणुह् और षिणुह् तिन के ह को घ आदेश विकल्प से होय । द्रुह् + सु = ध्रुक् वा १ ध्रुग् जब घ न भया, तब ध्रुट् वा ध्रुङ् ७६ । १५६ द्रुहौ द्रुहः ध्रुग्भ्याम् ७६ ध्रुच् १६३ वा ध्रुट्सु ६६ इसी रीति से मुह् आदि के रूप जानने ।

२७५ ॥ धात्वादेः षः सः । ६ । १ । ६४ । स्नुट् । स्नुङ् । स्नुक् ।

स्नुग् । एवं स्निह् ।

आठ को पादि में जो व तिष्ठ को स आदेश होवे। इण् की स्तुप् भया तत्र स्तुप् स्तुप् स्तुट् स्तुङ् इसी रीति स ङिण् को स्तिङ्।

२०६ ॥ इण्यच्च सम्प्रसारणम् । १ । १ । ४५ ।

यच् की जो इच् आदेश होता है वह सम्प्रसारण कहता है।

२०७ वाङ् ऊठ् । ६ । ४ । १३२ । अस्य वाङ् सम्प्रसारणम् ।
म संज्ञक जो वाङ् यम् तिस के व की ऊठ् (ख) सम्प्रसारण होवे।

२०८ ॥ सम्प्रसारणाच्च । ६ । १ । १ । ८ । सम्प्रसारणाच्चि पूर्व-
रूपमेवादेशः । वृद्धि । विश्वीङ् । इत्वादि ।

सम्प्रसारण के आगे यच् रहे तो दोनों मिल कर पूर्व का रूप होय। विश्ववाङ्+
यच्-विश्वकङ्+वाङ्+यच्-विश्वकङ् यच् १८-विश्वीङ् इत्यादि।

२०९ ॥ चतुरण्डुहोरामुदात्त । ७ । १ । १८ । सर्वनामस्थाने ।

चतुर् और षण्डुङ् यम् की उदात्त चाम् आदेश होवे यदि उन से परे सर्वनाम-
स्थान संज्ञक विभक्ति रहे तब। षण्डुङ्+मु- षण्डुवाङ् मु।

२१० ॥ साधनडुङ् । ७ । १ । ८२ । मुम् । षण्डुवान् ।

मु विभक्ति परे रहते षण्डुङ् यम् की मुम् (ग) आमत होवे। षण्डुवाङ्+मु-
षण्डुवान् मु १८१।११- षण्डुवान्।

२११ ॥ अम् संबुद्धी । ७ । १ । १८१ । हे षण्डुवन् । षण्डुवाङ् । षण्डुङ् ।

सम्बुद्धि परे रहते षण्डुङ् की अम् आमत होता है। इस धिये हे षण्डुवन् भया
षण्डुवाङ् । षण्डुवाङ् षण्डुङ् ।

२१२ ॥ वसुधसुध्वस्वनडुङ् । ८ । १ । ७२ । सान्तस्य वस्व-
न्तस्य संसादेशश्च द स्यात् पदान्ते । षण्डुङ्गामित्वादि । सागतेति
क्विम् । विहाम् । पदान्तेति क्विम् अस्तम् । ध्वस्तम् ॥

स है अन्त में क्विस् के ऐसा जो वसु प्रथम सो है अन्त में क्विस् के ऐसा जो
यम् और संसु वस्तु, षण्डुङ् यम् की षण्डुङ् यम् की द आदेश होवे पदान्त की
विषयता में। षण्डुङ्+याम्- षण्डुङ्गामित्वादि १७८। सकारान्त यदि न रहते तो
विहाम् यहाँ भी इकार को जाता नहीं कि वसु प्रथमांत ती है परन्तु सकारान्त नहीं
है यह तो लकारान्त है। पदान्त कहने में अर्त अर्त यहाँ इकारादेश न भया कर्त्तक
यहाँ पदान्त नहीं है ॥

२८३ ॥ सहेः साड्. सः । ८ । ३ । ५६ । साड् रूपस्य सहेः सस्य
सूङ्गन्यादेशः । तुराषाट् । तुराषाड् । तुरासाहौ । तुरासाहः । तुराषाड्-
भ्यामित्यादि ॥

उस सकार को षकार आदेश होवे जो साड् रूप षड् धातु का है । तुराषाट्
तुराषाड् । तुरासाहौ । तुरासाहः । तुराषाड्भ्यामित्यादि ॥

२८४ ॥ दिव औत् । ७ । १ । ८४ । दिविति प्रादिप्रदिकस्यौत्
स्यात् सौ । सुद्यौः । सुदिवौ ॥

प्रादिप्रदिक सञ्जक दिव के व् को औत् (औ) आदेश होवे सु परे रहते । सुदिव् +
सु = सुद्यौः । सुदिवौ ॥

२८५ ॥ दिव उत् । ६ । १ । १३१ । पदान्ते । सुद्युभ्याम् इत्यादि ।
चत्वारः । चतुरः चतुर्भिः । चतुर्भ्यः ॥

पदान्त में वर्तमान दिव् शब्द के व् को उ आदेश होवे । सुदिव् + भ्याम् १७८ =
सुद्युभ्याम् । सुद्युषु इत्यादि । चत्वारः । चतुरः । चतुर्भिः । चतुर्भ्यः २ ।

२८६ ॥ षट् चतुर्भ्यश्च । ७ । १ । ५५ ॥ एभ्य आमी नुडागमः ॥

षट् सन्ना भर्त्स है, जिस की ऐस्य जो शब्द ३१८ और चतुर्शब्द तिन से परे जो
आम् विभक्ति तिस की नुट् (न) आगम होवे ॥

२८७ ॥ रषाभ्यां नी णः समानपदे । ८ । ४ । १ ॥

यदि एक पद में र वा ष रहे तो उससे परे जो न तिस को ण आदेश होवे ॥

२८८ । अची रषाभ्यां हे । ८ । ४ । ४६ ॥ चतुर्णाम् ॥

यदि रेफ वा ह से पूर्व अच् रहे और परे यर् प्रत्याहार के वर्णों में से कोई वर्ण रहे
तो उस वर्ण को हित्व होवे । चतुर्-+आम् = चतुर्णाम् ॥

२८९ ॥ रोःसुपि । ८ । ३ । १६ ॥ रोरेव विसर्ग सुपि । षत्वम् ।
षस्य हित्वे प्राप्ते ॥

सप्तमी बहुवचन विभक्ति परे रहे तो उसी रेफ की विसर्ग होवे जो रु होने से
भया है, अन्य को न होवे । चतुर्-+सु यद्वा विसर्ग न भया तब १६३ षत्व भया तब ष् को
हित्व पाया ॥

२९० ॥ शरोऽचि । ८ । ४ । ४६ । अचि परे शरी न हे स्तः । चतुर्षु ।

उस शब्द को हित्य न होवे जिस के आगे अच् रहे। इस हित्ये चतुर्थ्यमें हित्य न मया,
२८१ ॥ मी मी धातो । ८ । २ । ६४ ॥ यदान्ते प्रशान् ॥

धातु के अक्षय म को न आदेय होवे यदि यह यदान्त में वर्तमान रहे तब ।

प्रशाम्+सु = प्रशान् ।

२८२ ॥ विमः क । ७ । २ । १३ ॥ विभक्तौ । क । की । के
भृत्यादि सर्ववत् ॥

विभक्ति से पूर्व जो किम् शब्द तिस को न आदेय होवे । किम्+सु = क । की
के १६३ । इत्यादि में क रूप सर्व शब्द के समान जानने ।

२८३ ॥ इदमो म । ७ । २ । १०८ ॥ सौ । त्यदाद्यत्वापवाद ।
सु परे रहे तो इदम् शब्द के म को मकार ही रहे । यह नियम त्वदादीनाम
१० का अपवाद है ॥

२८४ ॥ इदोऽय् पुंसि । ७ । २ । १११ । इदम इदोऽय् सी पुंसि ।
अयम् । त्यदाद्यत्वे ॥

सु परे रहते इदम् के इद माय को अय् आदेय होवे । इदम्+सु = अयम् इदम्
को १० से = इद+अ+सौ

२८५ ॥ अतो गुणे । ६ । १ । ६७ ॥ अपदान्तादतो गुणे पररूप
मेकादेश ॥

अपदान्त इत्य अकार से परे मुख संज्ञक सर्व अर्थात् अ ए वा ओ रहे तो होमी
मिथ अर पर का रूप होवे । इद+अ+सौ इद+सौ = इदो इतो ।

२८६ ॥ इक्ष्व । ७ । २ । १०६ ॥ इदमो इक्ष्व मः स्याद्विभक्तौ ।
इमौ । इमे । त्यदाद्यैः सम्बोधनं नास्तीत्युत्सर्गं ॥

विभक्ति परे रहते इदम् के इ को मकार आदेश होवे । इतो = इमौ । इमे १६३ ।
त्यदादि शब्दों का यह स्वभाव ही है कि वे सम्बोधन नहीं रहते अर्थात् उन्हें सम्बोधन
होता ही नहीं ॥

२८७ ॥ अनाप्यक् । ७ । २ । ११२ ॥ अकारस्य इदम इदोऽ
नापि विभक्तौ । आविति प्रत्याहारः । अनेम ॥

अकार रहित जो इदम् शब्द तिस के इद भाग को अय् आदेश होय या आदि
अजादि विभक्ति परे रहे तो । इद+आ+अन = आ१३१ = अन+अन मुख१२ = अनेम ।

२८ ॥ हलि लोप । ७ । २ । ११३ ॥ अककारस्येदम् इदो

लोप चापि हलादौ । नानर्थकेऽलोऽन्त्यविधिरनभ्यासविकारे ॥

भ्याम् ३ भिम् भयम् २ वा नुप् परे रहे तो ककार रहित इदम् शब्द के इदु भाग का लोप होवे । अलोत्तरय २४ यह सूत्र अभ्यास विकार (जो धातु प्रकार में आवेगा) को छोड़ कर और दूसरे अनर्थक में नहीं लगता । समुदाय को अर्थवान् कहते हैं और उस का जो एक देश है, वह अनर्थक कहाता है । “समुदायोऽर्थवान् समुदायस्यैकदेशोऽनर्थकः” इस कारण इदु-भ्याम् यहां जो इदु का लोप विधान किया है, वह अनर्थक है, क्योंकि इदु का एक भाग इदु है, इस लिये कोउल द्, का लोप न भया किन्तु संपूर्ण इदु का भया । तब शेष रहा अ जैसे इदु-भ्याम् = अ-भ्याम् ।

२९६ ॥ आद्यन्तवदेकस्मिन् । १ । १ । २१ ॥ एकस्मिन् क्रियमाणं कार्यमादाविवान्त इव स्यात् । सुपि चेति दीर्घः । आभ्याम् ॥

जैसा कार्य आदि और अन्त में किया जाता है, वैसा ही एक वर्ण में होवे । इस कारण सुपिच १५४ से जो दीर्घ अदन्त अङ्ग में होता था, वह इस प्रकार में भी हुआ तब अ-भ्याम् = आभ्याम् भया ।

३०० ॥ नेदसदसोरको । ७ । १ । ११ ॥ अककारयोरिदमद-
सोर्भिस ऐम् न । एभि । अस्मै । एभ्य । अस्मात् । अस्य । अनयो २ ।
एषाम् अस्मिन् । एषु ॥

उस भिस् को ऐस् आदेश न होवे जिस को पूर्व ककार रहित इदम् वा अदस् शब्द है । एभि १५८ = एभि । अस्मै १६६ । एभ्य । अस्मात् १६७ । अस्य १५३ । अनयोः १६० । एषाम् १५८ । १६८ । १६७ । अस्मिन् । १६७ । एषु १५८ । १६३ ।

३०१ ॥ द्वितीया टौस्त्वेन । २ । ४ । ३४ ॥ इदमेतदोरन्वादेशे ।
किञ्चित् कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरं विधातु पुनरुपादानम-
न्वादेश । यथा । अनेन व्याकरणमधीतमेन छन्दोऽध्यापयेति । अनयोः
षविचं कुलमेनयो, प्रभूतं स्वसिति । एनम् । एनौ । एनान् । एनेन ।
एनयोः २ । राजा ॥

द्वितीया टा वा औस् विभक्ति परे रहे तो इदम् वा एतद् शब्द को एन आदेश होवे अन्वादेश को विषे । अन्वादेश उसे कहते हैं, जिस का एक वाक्य में प्रयोग होकर कार्यान्तर के लिये पुन उसी का वाक्यान्तर में प्रयोग होना । जैसा इस ने व्याकरण पदा है, इसे वेद पढाओ “अनेन व्याकरणमधीतमेन छन्दोऽध्यापयेति” यहा इदम् शब्द

का प्रयोग व्याकरण पढ़ने में हुआ और उसी का दुबारा प्रयोग वेद पढ़ने में मया इष
नेत्रे इदम् को एत चादेम मया । ए दीर्घो पवित्रं कुलं चै इत दीर्घो का वन भी पवित्र
है "अगदी पवित्रं कुलं एतयो प्रभूतं स्वमिति" यहाँ भी चादेममया । राजान्-
सुर८१ । १ । ४ = राजा ।

३०२ ॥ न क्षिसम्बुद्धी । ८ । २ । ८ ॥ नस्य लोपो न लो सन्बुद्धौ
च । हे राजन्

उस नकार का लोप न होवे जिस को आने कि वा सम्बुद्धि परे है । हे राजन् ।

३०३ ॥ ऊवुत्तरपदे प्रतिषेध । ब्रह्मनिष्ठ । राजानौ । राजान
अश्रीर्ष । राज्ञ ॥

पार्तिव-कार की यह धाया है कि यदि उत्तरपद परफ कि विभक्ति परे रहे तो
पूर्वोक्त निषेध का प्रतिषेध होवे । इसी से ब्रह्मनिष्ठ यहाँ कि परे रहते न का लोप मया
ब्रह्मि निष्ठा यस्य स ब्रह्मनिष्ठ" । राजन्+श्री१८१ = राजानी । राजान । कृमि
कवर च उच्यते होता है राज्ञ । १६८ । ०३ ॥

३०४ । नलोप सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधियु क्ति । ८ । २ । २४ ।
सुग्विधौ स्वरविधौ संज्ञाविधौ क्तिस्तुग्विधौ नलोपोऽसिद्धौ नाम्यच ।
तेन राजाश्व इत्यादौ न । इत्यसिद्धत्वादात्वमेत्वमैस्त्वं च न । राज
भ्याम् । यज्वा । यज्वानौ । यज्वानः ॥

सुग्विधि स्वरविधि संज्ञाविधि और क्तिस्तुग्विधि (ह्रस्वप्रत्यय परे रहे तो तुक
आगम होता है) करने में नलोप पसिद्ध होता है अन्यत्र नहीं । इसी से राजन् परव
यहाँ नकार का लोप पसिद्ध न मया क्योंकि यहाँ सुग्विधि आदि में से कोर भी नहीं
है । राजन्+परव२२ = राजाश्व । राजन्+भ्याम् यहाँ नलोप १८४ मया तय राजभ्याम्
मया परव यहाँ का नलोप पसिद्ध है क्योंकि सुग्विधि ही है तब राज पदगत न मया
इत तिये राजभ्याम् में दीर्घ १४४ राजभि में १४३ न ऐत् राजभ्या में १४८ से एत्व न
मया । यज्वन् गण्ड से यज्वा १८१ । ८४ । यज्वानी यज्वान ।

३०५ ॥ न संयोगाद्मन्तात् । ६ । ४ । १३० ॥ वमान्तसंयोगादनो
ऽकारस्य लोपी न । यज्वम । यज्वमा । यज्वभ्याम् । ब्रह्मण्य । ब्रह्मण्या ॥

उक्त पद के अकार का लोप न होवे १६८ किमत् पूव बहाराण्य वा मकाराण्य
संयोग रहे । यज्वम यहाँ पन् लं च का १६८ से लोप पाया था वह नहीं मया । यज्वना
यज्वभ्याम् १८४ । ब्रह्मन् स ब्रह्मा । ब्रह्मादौ ब्रह्मण्य । ब्रह्मण्या ।

३०६ ॥ इन्हन्पूषार्यम्णां शौ । ६ । ४ । १२ ॥ एषां शाखेवोप-

धाया दीर्घी नान्यत्र । इति निषेधे प्राप्ते ॥

इन्, हन्, पूषन् और अर्यमन् इन शब्दों की उपधा की दीर्घ हीवे यदि केवल शि परे रहे तो अन्यत्र नहीं ।

३०७ ॥ सौ च । ६ । ४ । १३ ॥ इन्नादीनामुपधाया दीर्घी

ऽसम्बुद्धौ सौ । वृत्रहा । हे वृत्रहन् ॥

इन्, हन्, पूषन्, और अर्यमन् की उपधा की दीर्घ होय सम्बुद्धि भिन्न सु परे रहते । वृत्रहन्-सु = वृत्रहा । हे वृत्रहन् ।

३०८ ॥ एकाजुत्तरपदे ण । ८ । ४ । १२ ॥ एकाजुत्तरपदं यस्य

तस्मिन् समासे पूर्वपदस्थान्निमित्तात् परस्य प्रातिपदिकान्तनुम् वि-
भक्तिस्थस्य नस्य ण । वृत्रहणौ ॥

जिस समास में एकाच शब्द उत्तरपद होवे और उस के पूर्वपद में र वा ष रहे तो तिस से परे जो प्रातिपदिकान्त नुम् वा विभक्तिस्थ जो नकार तिस को ण आदेश होवे । वृत्रहन्-औ यद्वा का नकार प्रातिपदिकान्त है, वृत्रहणौ ॥

हो हन्तेर्जिघान्नेषु । ७ । ३ । ५४ ॥ जिति णिति प्रत्यये नकारि च
परे हन्तेर्हकारस्य कृत्वम् । अल्लोपीन । वृत्रघ्न वृत्र्यादि । एवं
शार्ङ्गिन् यशस्विन् । अर्यमन् । पूषन् ॥

वित् वा षित् अथवा नकार परे रहे तो इन धातु के ह को घ आदेश होवे । वृत्रहन्-शम् २६८ वृत्रघ्न वृत्र्यादि । इसी रीति से शार्ङ्गिन् यशस्विन्, अर्यमन् और पूषन् शब्दों के रूप जानने ।

३१० ॥ मघवा बहुलम् । ६ । ४ । २२८ ॥ मघवन्शब्दस्य वा तृ
इत्यन्तादेश । ऋ इत् ॥

मघवन् शब्द के अन्त्य नकार की विकल्प से तृ आदेश होवे । तृ का ऋ इत्सञ्चक है ।

३११ ॥ उगिद्वां सर्वनामस्थानेऽधातोः । ७ । १ । ७० ॥ अ-
धातोरुगितो नलोपिनोऽञ्चतेश्च नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने । मघवान् ।
मघवन्तौ । मघवन्तः । हे मघवन् । मघवङ्गाम् । तृत्वाभावे । मघवा ।
सुटि राजवत् ॥

धातु से भिन्न पेसा जो उगित् (उ ऋ वा लृ जिस के इत् हीं) शब्द और जिस के

अकार का शीघ्र भया है ऐसा अन्ध्र घातु तिन को मुम (न) आगम होवे । मघनामरान्ता परे रहते । मघन्-न्मु = मघवन्त-न्मु = मघवन्त्स । १८१ । ११ । १८१ । मघवान् । मघवन्तो मघवन्तः । हे मघवन् । मघवद्ग्राम् । तू आदेश जघ नहीं भया तव प्रवसा और शितीया छे द्विवचन धर्ष्यन्त राजन् शब्द के समान रूप जानने ।

३१२ ॥ श्वयुवमघीनामराहिते । ६ । ४ । ३३ ॥ अन्मन्तानां भामसिपामतचिते सम्प्रसारणम् । मघीम मघवभ्याम् एष श्वम् भुवन् ।

अन् मिन के अन्त में है ऐस जो मघघन्त श्वन् युवन् और मघवन् शब्द तिनको सम्प्रसारण होवे यदि उन से तद्विप्र प्रत्यय परे न हो तो । मघवन्+अम् = मघीम । मघवभ्याम् इसी रीति से श्वम् और युवन् शब्दों के रूप भी जानने ।

३१३ ॥ न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम् । ६ । १ । ३० ॥ सवद्यदीघ । यून् । यूना । युवभ्याम् भूत्यादि । अर्षा । हे अवन ॥

सम्प्रसारण परे रहे तो पूर्व यच् को सम्प्रसारण न होवे । युवन्+अम् = ३२ यून् यूना । युवभ्याम् इत्यादि । अवन+न्मु = अवा । हे अवन ।

३१४ ॥ अदणरुषसावनञ । ६ । ४ । १२० । मजा रहतस्या र्मन्मन्ताद्ग्रस्य तू भूत्यन्तादेशो न तु सी । अर्धन्तौ । अवनन्त । अवनन्ता मित्यादि ।

मज् रहित(जो)अवन् मज् (पञ्च वा अवन शब्द) है अन्त में तिम व एमा जो अन्तितिको न अन्तादेश होय यदि म परे रहे तो न होवे । अवनन्तो । अवनन्त । अवनन्ताम् इत्यादि ।

३१५ ॥ पयिमटयुभुघामात् । ७ । १ । ८५ ॥ सौ ॥

पयिन् मबिन और अमुविन् गन्तों को आकार आदेश शीघ्र व विमबि परे रहते ।

३१६ ॥ वृत्तोऽत् सत्रगामस्त्रानि । ७ । १ । ८६ ॥ पय्यादे ॥

सत्रगाम स्थान पर रहता पयिन् मविन् और अमुविन् के अकार को अत्रार आदेश होय ।

३१७ ॥ यो च । ७ । १ । ८७ ॥ पयिमथोः स्थस्य ग्यादेश मत्र गामस्त्रानि । पन्याः । पन्यायी ॥

अत्र आदेश पयिन् मविन् व च का शीघ्र यदि उन से पर अवनन्तात् परे रहे ता ।

पन्था' पन्थानौ । पन्थान ।

३१८ ॥ अस्य टेलीप । ७ । १ । ८८ । अस्य पथ्यादेष्टिलीप ।

पथ पथा । पथिभ्याम् । एव मथिन ऋभुच्चिन् ॥

पथिन्, मथिन् और ऋभुच्चिन् के म सञ्ज्ञिक टि का लीप होवे । पथिन्-1 शस् अस् पथः । पथा । पथिभ्याम् ऐसे ही मथिन्, ऋभुच्चिन् को भी जानना ।

३१९ ॥ ङान्ता षट् । १ । १ । २४ । षान्ता नान्ता । सङ्गा षट् सञ्जा स्यात् । पञ्चन् शब्दो नित्य बहुवचनान्त । पञ्च । पञ्च । पञ्चभि । पञ्चभ्य २ । नुट् ॥

उस सख्या वाचक शब्द की पट् सञ्जा होवे, जो षकारान्त वा नान्त है । पञ्चन् शब्द सर्वदा बहुवचन का वाची है । पञ्चन-1-जस् या शस् २०२ = पञ्चन् १८४ पञ्चन पञ्च । पञ्चभि पञ्चभ्यः २ । पञ्चन्-1-आम् यहाँ नुट् आगम भया तब ।

३२० नोपधायाः । ६ । ४ । ७ ॥ नांतस्योपधाया दीर्घी नामि । पञ्चानाम् । पञ्चम् ॥

न है अन्त में जिस के ऐसी जो उपधा तिस को दीर्घ होवे, यदि उस से परे षट्ठी का बहुवचन नाम् परे रहे तब । पद सञ्जा होने से पञ्चन् को न का लीप भया १८४ पञ्चानाम् । पञ्चसु ।

३२१ ॥ अष्टन आ विभक्तौ । ७ । २ । ८४ ॥ ह्लादीवा स्यात् ।

ह्लादि विभक्ति परे रहे तो अष्टन् शब्द को आ आदेश विकल्प से होवे ।

३२२ ॥ अष्टाभ्य औष् । ७ । २ । ८५ ॥ कृताकारादष्टनो ज-
शशसीरौष् । अष्टाभ्य इति वक्तव्ये कृतात्वनिर्देशो जशशसीर्विषये आत्व
ज्ञापयति । अष्टौ २ । अष्टाभ्य ३ । अष्टानाम् । अष्टासु । आत्वाभावे
अष्ट पञ्चवत् ॥

किया है आकार जिस को ऐसा जो अष्टन् शब्द तिस से परे जस् शस् को औष् आदेश होय । अष्टाभ्य औष् ऐसे लघु निर्देश से जस् शस् को औष् प्राप्त होता अष्टाभ्य ऐसे गुरु निर्देश से ज्ञापन किया कि आत्व विधायक "अष्टन् आ विभक्तौ" यह सूत्र ह्लादि विभक्ति के अतिरिक्त अजादि जहाँ उस की प्राप्ति नहीं थी ऐसे जस् (अस्) शस् (अस्) विभक्ति में भी प्रवृत्त होकर आत्व किया, तब औष् (औ) आदेश भया अष्टा औ १८ अष्टौ २ अष्टाभ्य. ३ अष्टानाम् अष्टासु विकल्प होने से जहा आत्व (आ) नहीं भया तहा पञ्चन् शब्द की तरह रूप जानने यथा अष्ट २ अष्टाभ्यः २ अष्टानाम् अष्टासु ।

३२२ । षट्त्विग्द्बृह्स्त्रगदिगुटिषगञ्चुयुजिकुञ्चो च । २ । २ ।

५६ ॥ एभ्य विवम् । अञ्चे सुप्युपपदे । युजिकुञ्चोः क्षेत्रयो ।
कुञ्चेर्नलोपाभावश्च निपात्यते । कनाचितौ ॥

अत्रिक दधम् सग् दिग् छटिन्ग् चम्बु युजि कुञ्चु इम को भागे विवम् प्रत्यय
कगाया काय इम मं से लो चम्बु भातु एम म तो तव होवे लष छस के पूव कोर
मुबन्त रहे युजि यौग क्त्व स तो तव होवे लष इम क पूर्व कुञ्च न रहे अथात् कवम यही
रहे । कुञ्च के न के लोप का निपातन करते हैं । विवम् प्रत्यय के लु भीर न् इत् हैं ।

३२४ ॥ क्षदतिष् । ३ । १ । ८३ ॥ अथ धात्वधिकारे तिङ्
भिन्न प्रत्यः कृतमज्ञ स्यात् ॥

धातो । ३ । १ । ८१ । इस मथ क अधिकार मं आ प्रत्यय तिङ् से चम्बु हैं एमकी
छत् संज्ञा होवे ।

३२५ ॥ वेरपृक्तस्य । ६ । १ । ६० ॥ लोप ॥

अइल मंत्रक लो व अितका लोप होय ।

३२६ ॥ विवन्प्रत्ययस्य कु । ८ । २ । ६२ । विवन्प्रत्ययो यस्मात्

तस्य कवर्गोऽन्तादेशः पदान्ते । इत्यस्यासिषत्वाच्चोः कुरिति कुत्वम् ।

षट्त्विग् । षट्त्विक् । षट्त्विञ्जी । षट्त्विगभ्याम् ॥

जिस अइल म विवन् प्रत्यय विधान किया गया है उग क चम्बुयवम लो कवम
धादेश होवे पदान्त में । यह नियम लो लु ३२८ की अपेक्षा अगिब से इस कारण अइल
होता है ३२८ षट्त्विञ्-विवन् क लो इत् मछा १४८ म लो ३ इ लो भी ३३ मर्त तव
कोबल व गेप रहा इम की अइल ३८२ मछा लोम छ य का भी लोप ३२५ भया । षट्त्विग् ।
षट्त्विक् । षट्त्विञ्जी । षट्त्विक् । षट्त्विगभ्याम् ।

३२७ ॥ युञ्जिरसमासे । ७ । १ । ७१ । युञ्जे सवनामस्थाने नुम् स्यादस
मासे । सुलोप । संयोगान्तलोप । कुत्वेन गस्य ऊः । युञ् । युञ्जी ।
युञ्ज । युगभ्याम् ॥

सवनाम परे रह तो युञ्ज गण्ट का नुम् (न्) आगम होवे यदि समास मं बह म
रहे तो । युञ्ज+नु युञ्ज यम् युञ् । युञ्जी । युञ्ज । युगभ्याम् ।

३२८ ॥ लोःकु । ८ । २ । ४ । धवगस्य क्यग स्यात्कञ्जलि पदान्ते
च । सुपुक् । सुयुञ्जी सुयुग्भ्याम् । खम् । खञ्जी । खञ्ज । खन्भ्याम् ॥

भल् प्रत्याहार के वर्ण परे रहे वा पदान्त में वर्तमान होय ऐसा जो चवर्ग तिसको कवर्ग आदेश होवे । सुयुग् । सुयुजौ । सुयुग्भ्याम् । खञ्ज्-सुर३ = खन् । खञ्जौ । खञ्जः खन्भ्याम् २३ ।

३२६ ॥ ब्रश्चभ्रस्जसृजसृजयजराजभ्राजच्छशां ष । ट । २ । ३६ ।
भलि पदान्ते च । जश्त्वचत्वे । राट् । राड् । राजौ । राड्भ्याम् एवं
विभ्राट् । देवेट् । विश्वसृट् ॥

ब्रश्च, भ्रस्ज, सृज्, सृज्, यज्, राज्, भ्राज्, और छ वा श जिस के अन्त में होवें तिन को ष आदेश होय, यदि उन के आगे भल् प्रत्याहार के वर्ण परे रहें वा वे पदान्त में हों । राज्-सु = राष् यद्वा ष को जश्त्व करके ७६ ड भया, उस को भी चत्वे ट् । विकल्प से भया, १५६ तब राट् । राड् । राजौ । राड्भ्याम् । इसी प्रकार विभ्राट् । देवेट् और विश्वसृट् के रूप जानने ।

३३० ॥ परौ ब्रजे षः पदान्ते । परावुपपदे ब्रजेः क्विप् स्यात्
दीर्घश्च पदान्ते षत्वमपि । परिव्राट् । परिव्राजौ ॥

जब ब्रज धातु के पूर्व परि उपसर्ग उप-पद रहे तब उस से क्विप् प्रत्यय लगाया जाय और उस के स्वर को दीर्घ और पदान्त में ष आदेश भी होय । सर्वे परित्यज्य ब्रजतीति परिव्राट् । परिव्रज्-सु = परिव्राट् = ष् । परिव्राजौ ॥

३३१ ॥ विश्वस्य वसुराटो । ६ । ३ । २८ । दीर्घ । विश्वाराट्
विश्वाराड् । विश्वराजौ । विश्वाराड्भ्याम् ॥

वसु वा राट् शब्द परे रहे तो विश्व शब्द को दीर्घ होवे । विश्वाराट्, विश्वाराड् विश्वराजौ । विश्वाराड्भ्याम् ।

३३२ ॥ स्त्रीः सयोगाद्योरन्ते च । ट । २ । २६ ॥ पदान्ते भलि
च य सयोगस्तदाद्यो स्त्रीर्लापि । भृट् । सस्य श्चुत्वेन श । भलांजश्
भशि इति सस्य ज । भृज्जौ । भृड्भ्याम् । त्यदाद्यत्वं पररूपत्वम् ।

पद के अन्त में वा भल् प्रत्याहार परे रहते जो सयोग तिस के आदि में जो स वा क् तिस का लोप होवे । अकार भया २०७ फिर पर रूप भया, तब

३३३ ॥ तदो स सावनन्त्ययो । ७ । २ । १०६ ॥ त्यदादीनां
तद्योरनन्त्ययो स स्यात् सौ । स्य । त्यौ । त्ये । स लौ । ते । य-
यो । ये । एष । एतौ । एते ॥

सु परे रहते उस तकार और दकार को म् आदेश होने को त्यदादि के हैं यदि वे इन के अन्त में न रहें तो त्यद्+सु २ ० स्य । त्यो । त्य १६१ । तद्+सु=स । तो । से । यत्+सु=य । यो । ये एतद्+सु=१६१=एय । एतो । एत ॥

१६४ ॥ ॐ प्रथमयोरस । ० । १ । २८ । युष्मद्स्मद्वा परस्य ॐ अत्येतस्य प्रथमाद्वितीययोश्चामादेशः ।

उस विभक्ति को अम् आदेश हो को चतुर्थी का एकवचन वा प्रथमा अथवा द्वितीया की है, यदि उस के पूर्व युष्मद् अस्मद् शब्द रहें तो ।

१६५ ॥ त्वाही सौ । ० । २ । ६४ ॥ अनयोर्मपर्यन्तस्य त्वाही आदेशी स्त ॥

सु परे रहते उस युष्मद् और अस्मद् को क्रम से त्व और अद् आदेश होने को युष्मद् और अस्मद् के हैं ।

१६६ ॥ शेषे शोप । ० । २ । ६ ॥ एतयोऽपि शोप त्वम् । अहम् ॥

युष्मद् और अस्मद् शब्द के टि ३८ का शोप होने । युष्मद्+सु=युष्मद्+अम् त्वअद्+अम्=त्व+अम्=त्वम् इसी रीति अ अस्मद्=अहम् ।

१६७ ॥ युवावौ द्विवचने । ० । २ । ६२ । द्वयोरुक्त्वावनयोमपर्यन्तस्य युवावौ स्तौ विभक्तौ ॥

विभक्ति परे रहते युष्मद् और अस्मद् को क्रम से युव और आव आदेश होने को युष्मद् अस्मद् शब्द का है और वे शब्द जब दोके घोषक होने ।

१६८ ॥ प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् । ० । २ । ८८ । श्रीऋतयो रात्रं शोके । युवाम् । आवाम् ।

जब युष्मद् और अस्मद् शब्द के अमी प्रथमा विभक्ति का द्विवचन रह और वह शोक का होने (अथात् केव विदय का न जाने) तब उन्हें आ आदेश होने । युष्मद्+अो=युवाम् । इसी प्रकार अस्मद्+अो=आवाम् ।

१६९ ॥ यूयवया ऋसि । ० । २ । ६३ ॥ अनयोर्मपर्यन्तस्य । यूयम् ययम् ॥

अम् विभक्ति पर रहते युष्मद् और अस्मद् के मपर्यन्त भाग को यूय अय आदेश क्रम न है। युष्मद्+अम् (अम्) अस्मद् अम् (अम्) १६३ यूयम् ययम् ॥

३४० ॥ त्वमाविकवचने । ७ । २ । ६७ । एकस्योक्तादनयोस्मर्पथ्य-

न्तस्य त्वमौ स्तोविभक्तौ ।

विभक्ति परे रहते एक वाचक युष्मद् और अस्मद् शब्द के मपर्यन्त भाग को क्रम से त्व, म, आदेश हों। युष्मद्-न-अम् = त्वद्-न-अम् ।

३४१ ॥ द्वितीयायाञ्च । ७ । २ । ८७ । अनयोरात्स्यात् । त्वाम् । माम्

द्वितीया विभक्ति परे रहते पूर्वोक्त शब्दों को आ आदेश हों। त्वद्-न-अम् = त्व-न-आ-न-अम् (५२) (१४८) = त्वाम् इसी प्रकार माम् ।

३४२ ॥ शसो नः (न) । ७ । १ । २६ । आभ्यां शसो नः स्यादसौऽप-
वाद । आदेः परस्य । संयोगान्तलोप । युष्मान् । अस्मान् ॥

पूर्वोक्त शब्दों से परे जो शस् अर्थात् द्वितीया बहुवचन तिसको न्-आदेश हों। नकारादेश (८५) से आदि की भया, तव सकार का लोप (२३) भया, जैसा युष्मद्-न-शस् = युष्मद् + न् स् = युष्मद् + न् = (३४१) युष्मद्-न-आन् (५२) = युष्मान् । अस्मान् ।

३४३ ॥ योऽचि । ७ । २ । ८६ । अनयोर्थ्यकारादेश स्यादला-
देशेऽजादौ परत । त्वया । मया ।

पूर्वोक्त शब्दों को य, आदेश हों, यदि उन के आगे ऐसी अजादि विभक्ति रहे जिसको कुछ आदेश न हुआ होय तो। युष्मद्-न-य-न-आ। अस्मद्-न-य-न-आ = ३४० त्वया । मया ।

३४४ ॥ युष्मदस्मदीरनादेशे । ७ । २ । ८६ । अनयोरात्स्यादना-
देशे हलादौ । युवाभ्याम् । आवाभ्याम् । युष्माभिः । अस्माभिः ।

पूर्वोक्त शब्दों को आ आदेश हों जब उन के आगे ऐसी हलादि विभक्ति रहे जिसको कोई आदेश न भया होय । युष्मद्-न-भ्याम् (३३७) = युवद्-न-भ्याम् ३३१ युव-न-आ-न-भ्याम् (५२) = युवाभ्याम् आवाभ्याम् । युष्मद्-न-भि' ३४४ = युष्म-न-आ भि' (५२) युष्माभिः । अस्माभिः ।

३४५ ॥ तुभ्यमह्नौ डयि । ७ । २ । ६५ । अनयोस्मर्पथ्यन्तस्य ।
टिलोपः । तुभ्यम् । मह्यम् ।

पूर्वोक्त शब्दों के सकार पर्यन्त भाग को क्रम से तुभ्य और मह्य आदेश हों, जब कि उनके आगे चतुर्थी का एक वचन रहे । युष्मद्-न-डे = तुभ्यद्-न-डे (३३४) = तुभ्यद्-न-अम् (३३६) = तुभ्यम् । मह्यम् ।

१४६ ॥ भ्यसोऽभ्यम् । ७ । १ । ३० । आभ्याम्परस्व । युष्मभ्यम् ।
अस्मभ्यम् ।

पूर्वोक्त शब्दों से परे जो चतुर्था का बहुवचन भ्यस तिस को अभ्यम् आदेश होते ।
युष्मद् + भ्यम् = युष्मद् + अभ्यम् (१३६) = युष्मभ्यम् । अस्मभ्यम् ।

१४७ ॥ एकवचनस्य च । ७ । १ । ३१ । आभ्यां ङसि । त्वत् । मत् ।

पूर्वोक्त शब्दों से परे जो पञ्चमी का एकवचन ङसि तिस को भत् आदेश होने
युष्मद् + ङसि = युष्मद् + भत् (१४७) (१३६) त्वत् । मत् ।

१४८ ॥ पञ्चम्या अत् । ७ । १ । ३२ । आभ्याम्पञ्चम्याभ्यसो
ऽत्स्मात् । युष्मत् । अस्मत् ॥

पूर्वोक्त शब्दों से परे जो पञ्चमी का बहुवचन म्यस् तिस को अत् आदेश होने ।
युष्मद् + म्यस् = युष्मद् + अत् (१३६) = युष्मत् । अस्मत् ॥

१४९ ॥ तयमसौ ङसि । ७ । २ । १६ । अनयोस्मपर्यन्तस्य ॥

पण्टी विभक्ति का एकवचन परे रहे तो पूर्वोक्त शब्दों को मपर्यन्त नाम को क्रम से
तय मम आदेश होने युष्मद् + ङस् = तवद् + ङस् ।

१५० ॥ युष्मद्स्महर्षा ङसोऽग्न । ७ । १ । २७ । तव । मम ।
युवयो । आवयो ।

पूर्वोक्त शब्दों से परे जो पण्टी का एकवचन ङस् तिस को ङम् (ङ) आदेश
होने । तवद् + ङम् = तवद् + ङ १३६ = तव । मम । युष्मद् + ङीम् १३७ = युवद् + ङीम्
१३६ = युवयो । आवयो ॥

१५१ ॥ साम आकम् । ७ । १ । ३३ । आभ्यास साम आकम् ।
युष्माकम् । अस्माकम् । त्वयि । मयि । युवयो । आवयोः । युष्मासु ।
अस्मासु ॥

पूर्वोक्त शब्दों से परे जो साम (१६८ सुद् विभ को होने वाका है) साम् तिस को
आकम् आदेश होने । युष्मद् + साम् = युष्मद् + आकम् १३६ = युष्माकम् । अस्माकम् ।
युष्मद् + ङ (१४७) = त्वद् + ङ १३६ = त्वयि । अस्मद् + ङ = मयि । युष्मद् + ङीम् (१३७)
१३६ = युवयो । अस्मद् = आवयो । युष्मद् + म १४७ = युष्मासु । अस्मद् + सु = अस्मासु ।

३५२॥ युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ । ८। १।
 २०। पदात्परयोरपादादौ स्थितयो षष्ठ्यादिविशिष्टयोर्वान्नावौ
 इत्यादेशौ स्तः ।

किसी शब्द से परे रहे और पाठ के आदि में न रहे, ऐसा षष्ठी, चतुर्थी वा द्वितीया विभक्ति के सहित जो युष्मद् और अस्मद् शब्द तिनको क्रम से वाम् और नौ आदेश हों। इस सूत्र की प्रवृत्ति केवल द्विवचन में होती है ॥

३५३॥ बहुवचनस्य वस्नसौ । ८। १। २१। उक्तविधयोरनयोः
 षष्ठ्यादिवहुवचनान्तयोर्वस्नसौ स्तः ॥

पूर्वोक्त (३५२) विषय में षष्ठी आदि विभक्ति के सहित युष्मद् वा अस्मद् ही तो उसके स्थान में क्रम से वस् और मस् आदेश हीय ॥

३५४॥ तेमयावेकवचनस्य ८। १। २२। उक्तविधयोरनयोः षष्ठी-
 चतुर्थ्येकवचनान्तयोस्तेमे एतौ स्तः ।

पूर्वोक्त (३५२) विषय में षष्ठी वा चतुर्थी विभक्ति के एकवचन सहित युष्मद् वा अस्मद् हीं तो उनके स्थान में क्रम से ते और मे आदेश होंगे ॥

३५५॥ त्वामौ द्वितीयाया । ८। १। २३। द्वितीयैकवचनान्त-
 योस्त्वामा इत्यादेशौ स्तः ॥

श्रीशस्त्वाऽवतु मापीह दत्तात्तेमे ऽपि शर्म स । स्वामी ते मे ऽपि स
 हरि पातु वामपि नौ विभु । १। सुखस्वान्नी ददात्तवीश पतिर्वामपि
 नौ हरिः । सोऽव्याहो नश्शिवरुवो नो दद्यात्सेव्यो ऽत्र व स न । २॥

पूर्वोक्त (३५२) विषय में वर्तमान द्वितीया विभक्ति के एक वचन सहित युष्मद् वा अस्मद् हीं तो उसकी क्रम से त्वा और मा आदेश होंगे। श्री श' लक्ष्मी के पति त्वा (त्वाम् ३५५) तम् को, मा—(माम् ३५५) मुझको अवतु—पाले। इह = इहा ते (तुभ्यम् ३५४) तुम् को, मे (मयम् ३५४) = मुझको शर्म = सुख दत्तात् देवे स हरि = वह ईश्वर ते (तव ३५४) तेरा, मे (मम ३५४) मेरा स्वामी प्रभु है। विभु = ईश्वर वाम् (युवाम् ३५२) तुम दोनों को, नौ (आवाम् ३५२) हम दोनों को, पातु = पाले। १। ईश' = ईश्वर वाम् (युवाभ्याम् ३५२) तम दोनों को, नौ (आवाम् ३५२) हम दोनों को सुख ददातु = सुख देवे हरि = ईश्वर वाम् (युवयो ३५२ तुम दोनों के, नौ आवयो. (३५२) हम दोनों का पति = स्वामी है। व. (युष्मान् ३५३) तुमको नः (अस्मान् ३५३) हमको अव्यात् = पाले । वं. (युष्मभ्यम् ३०२) तुम को

न (अस्मभ्यम् ३३३) इमको जिवम् = कश्चात् देवे । यत्र यद्वा व (दुष्माभ्यम् ३३३) तुमारे न (अस्माभ्यम् ३३३) इमारे स = बह ईदर सेव्य = सवतुम योग्य सेवा करन के योग्य है ॥

३५६ (वा) ॥ एकवाक्ये युष्मदस्मदादेशा वक्तव्या एकतिङ् वाक्यम् । तेनेह न षोडशं पञ्चतव भविष्यति । एते वाग्नावाद्य अमन्वादेशे वा वक्तव्याः, अन्वादेशे तु नित्यं स्यु । धाता ते भक्तोऽस्ति धाता तव भक्तोऽस्ति तस्मै ते नम इत्येष । सुपात् । सपाद् । सुपादौ ॥

एक वाक्य में युष्मद् और अस्मद् शब्दों को वां नौ चाटि आदेश होंगे। वाक्य वह कथावता है जिसमें एक ही तिङन्त पद होवे। इस से यहां षोडशं पञ्च तव भविष्यति में ३५४ से आदेश न हुआ क्योंकि यहां तिङन्त पद दो हैं पञ्च और भविष्यति। ये वाग्नावादि ३५३ ३५४ से आदेश अमन्वादेश में विकल्प से होते हैं (अमन्वादेश ३१ से जो भिन्न है बह अन्वादेश कथाता है) और अन्वादेश में नित्य लैसा धाता ते (३५४) भक्तोऽस्ति वा धाता तव भक्तोऽस्ति = कथा तुमारा प्रेम करने वाला है। तस्मै ते नम इत्ये यहां तव को विकल्प से आदेश न मया तुम को नमस्कार ॥ सुपात् - ट ३५८ । सुपादौ ।

३५६ ॥ पाद् पत् । ६ । ४ । १३ । शाच्छब्दान्तं यद्द्वम्भन्तद वयवस्य पाच्छब्दस्य पदादेशः । सुपद् । सुपदा । सुपाह्वयम् । अग्निमत् । अग्निमयी । अग्निमयम् ।

पादशब्दान्त को भर्षणक १८ अह तटशब्द को पाद शब्द तिस को पत् आदेश होने द्वितीया बहुवचन में । सुपाद्+अ = सुपद् २ सुपदा ३ सुपादभ्याम् । ३ । ४ । १३ । एषी प्रकार सब रूपों को जानो । अग्निमत्+सु = १८३ = अग्निमत् ४८ = अग्निमद् १४८ = अग्निमत्—द् । अग्निमयो । अग्निमयम् ।

३५७ ॥ अनिदिता इल उपधाया कृत्ति । ६ । ४ २४ । इल गतानामनिदितामङ्गानामुपधाया नस्यः शीप किति ङिति । नुम् संयोगान्तस्य शीप । नस्य कृत्वेन ङः । प्राङ् प्राञ्चौ । प्राञ्च ॥

जिस का इत् इत्प्रकार न होय वेमा को इजन्त अह तिग को उपधा १८ में अतमान को नकार तिमका शीप होय किन् वा कित्सम्भन्ती प्रत्यय परे रहते प्रपुत्र अन्त् भातु के कदन्त द्विवन् प्रत्यय होता है और उम का शीप भी होताता है तब शीघ ५२ होने से प्राञ्च् कृपा तटन्तर पूर्वीक मूत्र ३५८ से नकार के शीप होने से प्राञ्चना तव कदन्तमान के प्रातिपदिक १३१ से भह प्राञ्च-न् तटन्तर ३११ में नुम्

हुआ = प्राञ्च् + सु १८३ = प्राञ्च् २३ = प्राञ् ३२६ से न को ड भया = प्राङ् (पूर्वदिशा)
प्राञ्ची ७३ = प्राञ्चौ । प्राञ्च ।

३५८ ॥ अचः । ६ । ४ । १३८ । लुप्तनकारस्याञ्चतेर्भस्या-
कारस्य लोपः ।

लोप हीगया है नकार जिसका ऐसा । जो अञ्च् धातु तिसका जो भसञ्चक १७८
अकार तिसका लोप हीवे । द्वितीया बहुवचन में ॥ प्र + अञ्च् + अ. ३५७ = प्र + अच् +
अः = प्र + च् + अः ।

३५९ ॥ चौ । ६ । ३ । १३८ । लुप्ताकारनकाराञ्चतौ परे पूर्वस्या
णो दीर्घः । प्राचः । प्राग्भ्याम् । प्रत्यङ् । प्रत्यञ्चौ । प्रतीच । प्रत्य-
ग्भ्याम् । उदङ् । उदञ्चौ ॥

लोप हीगया है अकार और नकार जिसका ऐसा जो अञ्च् धातु सो परे रहे तो
पूर्व में स्थित जो अण् प्रत्याहार के वर्ण तिसको दीर्घ हीवे । प्र + च् + अ. = प्राच ।
इसी प्रकार प्राच् + भ्याम् १७८, ३२६ और ७८ = प्राग्भ्याम् इसी प्रकार और रूपों की
बनाओ । इसी प्रकार प्रति + अञ्च् से प्रत्यङ् । प्रत्यञ्चौ । द्वितीया बहुवचन में प्रति +
अच्- अ = प्रतीच' प्रत्यग्भ्याम् । उद- अञ्च् से उदङ् । उदञ्चौ ।

३६० ॥ उद ईत् । ६ । ४ । १३८ । उच्चब्दात्परस्य लुप्तनकारा-
ञ्चतेर्भस्याकारस्य ईत् । उदीच । उदग्भ्याम् ॥

उद- उपसर्ग के उत्तर लुप्त नकारक (लोप ही गया है नकार जिसका) अञ्च्
धातु के अ को ई आदेश होय । उद- अच्- अ = उदीच । उदीचा ३ उदग्भ्याम् । इत्यादि ।

३६१ ॥ समस्समि । ६ । ३ । ६३ । अप्रत्यान्तेञ्चतौ । सम्यङ् ।
सम्यञ्चौ । समीच । सम्यग्भ्याम् ॥

जब अञ्च् धातु के अन्त में कोई प्रत्यय न रहे तब सम् शब्द की समि आदेश
होय । समि- अञ्च् = सम्यञ्च् = सम्यङ् । सम्यञ्चौ । समीच । सम्यग्भ्याम् इत्यादि ।

३६२ ॥ सहस्य सधि । ६ । ३ । ८५ । तथा । सध्यङ् ॥

जब अञ्च् धातु के आगे कोई प्रत्यय न रहे तब सह की सधि आदेश हीवे ।
सह- अञ्च् = सध्यङ् ।

३६३ ॥ तिरसस्तिर्य्यलोपे । ६ । ३ । ८४ । अलुप्ताकारे ऽञ्चतौ

अप्रत्ययवाग्ते तिरमस्तिर्य्यादेशः । तिर्य्यङ् । तिर्य्यङ्घौ । तिररच ।
तिर्य्यङ्भ्याम् ॥

नहीं लोप भया ईं अकार जिम का ऐमा लो अप्रत्ययवाग्ते (जिस के अन्त में खीर
प्रत्यय न रहे) अन्व चातु मो परे रहते तिरम् लो तिरि चादेश होवे । तिरस्+अन्व
= तिर्य्यङ् तिर्य्यङ्घौ द्वितीया बहुवचन में तिररच । तिर्य्यङ्भ्याम् । इत्यादि ।

३६४ आरुचे पूजायाम् । ६ । ४ । ३० । पूजायस्याङ्घतेरुपधाया
मस्य लोपो न । प्राङ् । प्राङ्घौ । नलोपाभावाद्दलोपो न । प्राङ्घः ।
प्राङ्भ्याम् । प्राङ्घु । एवम्पूजार्थे प्रत्यङ्गादय । क्रुङ् । क्रुङ्घौ ।
क्रुङ्भ्याम् । पयोमुक् । पयोमुग् । पयोमुघौ । पयोमुग्भ्याम् । उगि
त्वान्मुम् ।

जब पूजा धय में अन्व चातु वलमान रहे तब उगके उपधा १८ में रहने वाता
लो नकार तिसका लोप न होवे । प्राङ्प् २३ = प्राङ् ३२६ = प्राङ् । प्राङ्घौ । न लोप
क न होने से अकार ३३८ का लोप न भया तब प्राङ्घ भया । प्राङ्घ्+भ्याम् १०८ २३ =
प्राङ्+भ्याम् ३२६ = प्राङ्भ्याम् । प्राङ्घ्+सु = २३ = प्राङ्+सु ३२६ = प्राङ्+सु १ =
प्राङ्घ्+सु १६३ = प्राङ्घु । इसी रीति पूजा धय में प्रत्यङ्गादि शब्दों को जानना ।
क्रुङ्घ् = क्रुङ् । क्रुङ्घौ । क्रुङ्भ्याम् । पयोमुघ्+सु १८३ = पयोमुघ् ३२८ = पयोमुघ् ०८ ।
१३८ = पयोमुक्+सु । पयोमुघौ । पयोमुघ्+भ्याम् १०८ । ३२८ अर ०८ = पयोमुग्भ्याम् ।
महत् शब्द उचित है इस कारण मुम् ३११ होता है ।

३६५ ॥ सान्तमहतस्संयोगस्य । ६ । ४ । १ । सान्तसंयोगस्य
महतश्च यो नकारस्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सवनामस्यामे । महान् ।
महान्ती । महान्त । हे महन् । महद्भ्याम् ॥

उ है अन्त में जिसके ऐसा लो संयोग तिस लो अथवा महत् शब्द का लो नकार
तिस को उपधा १८ को दीर्घ होवे सम्बुद्धिभिन्न सवनामस्वान लो परे रहते । महत्+सु
३११ = महान्त+सु १८३ = महन्त् = महान्त् ३३ = महान् । महान्ती । महान्त । हे महन् ।
महत्+भ्याम् १०८ और ०८ = महद्भ्याम् ।

३६६ ॥ अत्वन्तस्वी-
धाया लीर्घो धातुभिन्नासन्तस्य चासम्बुद्धौ । धीमान् । धीमन्ती ।

धीमन्त । हे धीमन् । शमादौ महद्दत् । भातेड्वत्, डित्त्वसाम-
र्घ्यादभस्यापि टेर्जीप । भवान् । भवन्तौ । श्वन्तस्य भवन् ॥

यदि सम्बुद्धिभिन्न सु परे रहे तो अत्वन्त (अतु प्रत्यय है अन्त में जिस के)
और धातु भिन्न जो असन्त तिसकी उपधा १६० को दीर्घ होवे । धीमत्-सु ३११ =
धीमन्त्-सु १६३ = धीमन्त् = धीमान्त् २३ = धीमान् । सयोगान्त लोप २३ के असिद्ध
होने से नलोप (१६४ नहीं होता) द्वितीया के बहुवचन से लेकर सप्तमी के बहुवचन
का रूप महत् शब्द के समान जानना । भावातु से डवत् (अवत्) प्रत्यय हुआ तव भा-
अवत् इस दशा में भा धातु की भ १७६ सज्ञा नहीं है तो भी डवत् प्रत्यय से जो ड किया
है उसी कारण से भा धातु के आ का लोप २६२ से भया तव भवत् इसकी साधने की रीति
धीमत् के समान जानो । भवान् । भवन्तौ । जव भ् धातु से गतृ प्रत्यय लगा कर भवत् भी
बनाया जाता है इसका रूप भवत् होता है अत्वन्त न होने से दीर्घ ३६६ से नहीं भया ।

३६७ ॥ उभे अभ्यस्तम् । ६ । १ । ५ । षाष्ठद्वित्वप्रकरणे ये
हे विहिते उभे समुदिते अभ्यस्तसंज्ञे स्त. ।

अष्टाध्यायी के छठे अध्याय के द्वित्व प्रकरण से जो दो विहित हैं उन दोनों इयादों
की अभ्यस्त सज्ञा होवे ।

३६८ ॥ ना ऽभ्यस्ताच्छतु । ७ । १ । ७८ । अभ्यस्ताच्छतुर्नुम् न ।
ददत् । ददतौ ॥

जिन शब्दों की अभ्यस्त सज्ञा ३६७ और ३६८ से होती है उन शब्दों से परे जो
गतृ का अत् तिसकी प्राप्त भया हुआ जो नुम् ३११ मो न होवे । ददत् यह शब्द दा धातु
के आगे गतृ प्रत्यय लगाने से बनाया जाता है । ददत् । ददतौ ।

३६९ ॥ जञित्याद्य षट् । ६ । १ । ६ । षड् धातवोऽन्ये जञि-
तिश्च सप्तम एते अभ्यस्तसंज्ञा स्यु । जञत् । जञतौ । जञत ।
एवं जाग्रत् । दरिद्रत् । शासत् । चक्रासत् । गुप् । गुपी । गुप । गुञ्भ्याम् ।

जाग्रत्, दरिद्रत्, शासत्, चक्रासत्, दीध्यत्, वेव्यत् और सातवा जञत् इन की
अभ्यस्त सज्ञा होवे । इसी कारण ३११ से नुम् न भया । जञत् । जञतौ । जञत । इसी
रीति दरिद्रत् इत्यादि रूपों को जानना चाहिये । प्रकारान्त गुप् शब्द को लिखते हैं ।

अप्रत्ययान्ते तिरसन्तिभ्यादेश । तिर्य्यञ्च । तिर्य्यञ्चौ । तिर्य्यञ्च ।
तिर्य्यग्भ्याम् ॥

नहीं लोप भया है अकार तिम का ऐसा जो अप्रत्ययान्त (जिस के अन्त में कोई प्रत्यय न रहे) अन्व धातु मो परे रहते तिरम् को तिरि आदेश होवे । तिरम्+अन्व - तिर्य्यञ्च तिर्य्यञ्चौ द्वितीया बहुवचन में तिर्य्यञ्च । तिर्य्यग्भ्याम् । इत्यादि ।

३६४ माञ्चे पूजायाम् । ६ । ४ । ३ । पूजायस्याञ्चतेरुपधाया
मस्य लोपो न । प्राङ् । प्राञ्चौ । मलोपामावादलोपो न । प्राञ्चः ।
प्राङ्भ्याम् । प्राङ्क्षु । एवम्पूजायै प्रत्यङ्गादय । क्रुङ् । कुञ्चौ ।
क्रुङ्भ्याम् । पयोमुक् । पयोमुग् । पयोमुचौ । पयोमुग्भ्याम् । उगि-
त्वाप्नुम् ।

जब पूजा धय में अन्व धातु वत्तमान रहे तब उसके उपधा १८ में रहने वाका जो मकार तिसका लोप न होवे । प्राञ्च २३ = प्राङ् ३२६ = प्राङ् । प्राञ्चौ ३४ लोप के न होने से अकार ३३८ का लोप न भया तब प्राञ्च भया । प्राञ्चु+भ्याम् १०८ २३ = प्राङ्+भ्याम् ३२६ = प्राङ्भ्याम् । प्राञ्चु+सु = २३ = प्राङ्+सु ३२६ = प्राङ्+सु १ = प्राङ्कु+सु १६३ = प्राङ्कु । इसी रीति पूजा धय में प्रत्यङ्ग आदि अर्थों की जानना । कुञ्चु = कुङ् । कुञ्चौ । कुङ्भ्याम् । पयोमुक्+स १८३ = पयोमुक् ३२० = पयोमुक् ०८ । १३८ = पयोमुक-य । पयोमुचौ । पयोमुक्+भ्याम् १०८ । ३२८ और ०८ = पयोमुग्भ्याम् । महत् अर्थ उगित् है इस कारण गुम् ३११ होता है ।

३६५ ॥ माप्तमहतस्तस्ययोगस्य । ६ । ४ । १ । माप्तसयोगस्य
महतश्च यो मकारस्तस्योपधाया दीर्घोऽसम्बुद्धौ सवनामस्याने । महान् ।
महान्तौ । महान्त । हे महन् । महद्भ्याम् ॥

स है अन्त में जिसके ऐसा वा मयोग तिम की धयवा महत् अर्थ का वा मकार तिस को उपधा १८ को दीर्घ होवे सम्बुद्धिभिन्न सवनामस्याने के परे रहते । महत्+सु ३११ = महन्त+सु १८३ = महन्त् = महान्त २३ = महान् । महान्तौ । महान्त । हे महन् । महद्भ्याम् १०८ और ०८ = महद्भ्याम् ।

३६६ ॥ अत्यमन्तस्य चाऽघातोः । ६ । ४ । १४ । अत्यमन्तस्यो-
पधाया दीर्घो धातुभिन्नासन्तस्य चासम्बुद्धौ । धीमान् । धीमन्ती ।

और १५६ = षट्-इ । षड्भिः ३ षड्भ्यः ४, ५ षष्-आम् ३१६, २८६, ७, ७६ और ८० पश्चात् । षट्, वा ६६ षट्सु । अथ पिपठिष् शब्द के रूपों की साधते हैं । पिपठिष् के प्रकार की ऋ आदेश १२० के करने से षत्व १६३ । ३६ से असिद्ध है इस कारण ऋ आदेश होकर पिपठिर् भया ॥

३७४ ॥ वीरुपधाया दीर्घ इकः । ८ । २ । ७६ । रेफवान्तयोरुपधाया इको दीर्घः पदान्ते । पिपठीः । पिपठिषौ । पिपठीभ्याम् ।

पद के अन्त में वर्तमान जो रकारान्त वा वकारान्त धातु तिस की उपधा १६० से रहनेवाला जो इक् तिस को दीर्घ होवे । पिपठिर् = पिपठीर् १०८ = पिपठी । पिपठिषौ । पिपठीभ्याम् ॥

३७५ ॥ नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि । ८ । ३ । ५८ । एतैः प्रत्येकं व्यवधाने ऽपि इण्कुभ्याम्परस्य सस्य मूर्धन्यादेशः । ष्टुत्वेन पूर्वस्य ष् । पिपठीष्णु । पिपठीः षु । चिकीः । चिकीषौ । चिकीभ्याम् । चिकीर्षु । विद्वान् । विद्वांसौ । हे विद्वन् ॥

नुम् विसर्ग और शर् प्रत्याहार के जो वर्ण इन में से किसी एक के बीच में रहते भी इण् प्रत्याहार के वर्ण वा कवर्ग से परे जो स् तिस को मूर्धन्य अर्थात् ष् आदेश होवे । पिपठिष्-सु १७८, १२०, ३७५, १०८ और ११६ = पिपठीः षु = पिपठीष्णु इसी तरह चिकीर्षु, शब्द को भी जानो । विद्वस्-सु = १६३, १७७, ३११, २३, १६१ अथ १६४ से न् का लोप २३ को ३६ से असिद्ध होजाने से न भया विद्वान् विद्वांसौ हे विद्वन् ॥

३७६ ॥ वसोस्सम्प्रसारणम् । ६ । ४ । १३१ । वस्वन्तस्य भस्य सम्प्रसारणं स्यात् । विदुषः । वसुसंस्विति द् । विद्वह्याम् ॥

जिस के अन्त में वसु प्रत्यय होवे ऐसा जो भसञ्जक १७६ अङ्ग १४६ तिसको सम्प्रसारण २७६ होवे । विद्वस्-अस् = विदुस् + अस् १६३ = विदुष । विद्वस्-भ्याम् १७८, २८२ = विद्वद्भ्याम् ॥

३७७ ॥ पुसीऽसुङ् । ७ । १ । ८६ । सर्वनामस्थाने । पुमान् । हे पुमन् । पुमांसौ । पुस । पुम्भ्याम् । पुसु । षट्शनेत्यनङ् । उशना उशनसौ ॥

पुस शब्द के आगे सर्वनामस्थान सञ्जक १७७ प्रत्यय परे रहते उस को असुङ् (पुंस् के स को अस्) आदेश होवे । जब स की असुङ् आदेश भया तब अनुस्वार अपने रूप में आगया क्योंकि स को निमित्त मान कर अनुस्वार भया था तो जब निमित्त स् का

गुप् ०८-गुप् १३८-गुप् ३। गुपो। गुप। गुप्+भ्याम् १०८ और ०८-गुप्+भ्याम्।
 ३७ ॥ त्वदादिषु द्वयी ऽनालीचने कञ्च । ३। २। ६ । त्वदा
 दिषूपपदेषु चन्द्रानार्धद्वये कञ् । चात् किवन् ।

त्वदादि उपपद ही और घान पच से भिन्न अर्ध में वर्तमान की दृग धातु तिष्ठ
 के पागे कञ् प्रत्यय बनाया जाय और पच में (पाचिक्) किवन् प्रत्यय भी होवे ।

३०१ ॥ आ सर्वनाम्न । ६। ३। ८१। इग्दृश्वत्सुपु । ताद्वक्
 ताद्वगौ । ताद्वग । ताद्वग्भ्याम् । प्रश्चेति प । जश्त्वधत्वे ।
 विट् । विड् । त्रिषौ । त्रिग् । विड्भ्याम् ॥

इम् वा इम् अर्थवा वतु प्रत्यय परे रहने तो सर्वनाम की आ आदेश होवे। तद् पूर्वक
 इम् धातु से किवन् प्रत्यय हुआ और उच्च का खोप ३२३ होने पर छटन्त मान के १३२
 प्रातिपदिक संज्ञा होती है तब तद्+इग्+सु=ताद्वक्+सु १८३ ताद्वक् ३२६-ताद्वप् ०८
 और १३८-ताद्वक्-ग। ताद्वगौ। ताद्वग। ताद्वग्भ्याम्। इत्यादि। विम् ३२८-विप् ०८
 और १३८-विट्-इ। त्रिषौ। त्रिग्। विड्भ्याम् इत्यादि।

३०२ ॥ नशेर्वा । ८। २। ६३ नशे कवर्गोऽन्तादेशी वा पदान्ते
 नक् । नट् । नशौ । नशः । नग्भ्याम् । नड्भ्याम् ।

पठ के अन्त में रहने बाबा की नम् का म् तिष्ठकी पच में च आदेश होवे।
 नग्-नक् ०८ और १३८-नक्-म्। अब च आदेश न भवा तब विम् ३०१ के समान
 जानी-नट् इ। नशौ। नशः। नग्भ्याम् वा नड्भ्याम्।

३०३ ॥ स्पृगोऽनुदके किवन् । ३। २। ५८। अमुदके सुप्युप
 पदे स्पृगे किवन् । घृतस्पृक् । घृतस्पृगौ । घृतस्पृगः । दधृक् । दधृषी ।
 दधृग्भ्याम् । रत्नमुट् । रत्नमुषी । रत्नमुड्भ्यान् । पट् । पट्टि
 पट्भ्यः । पष्णाम । पट्सु । रुत्वम्प्रति षत्वस्याऽसिद्धस्यात्ससञ्जुषो-
 रिति रुत्वम् ॥

उठक् मण्ट की बौद्ध कर और कीर मण्ड उपपद रहे तो रड् धातु के पागे
 किवन् पच्यव लगाया जाय किवन् के काय को रे की ३०२ घतरड्-घृतस्डक्-म्। घतरड्मी ।
 घनरड्म। घतरड्भ्याम् । दधृप् ३११-दधृक् ०८ और १३८ दधृक्-म् । दधृषी ।
 दधृग्भ्याम् । रत्नमुप् ०८ और १३८-रत्नमुट् इ। रत्नमुषी। रत्नमुड्भ्याम् । अब
 बहुवचनान्त वच् मण्ड की कियते हैं । वच्-वच्च ३१८ और २२-वच् ०८

परचादुत्वमत्वे । अमुम् । अमू । अमून् । मुत्वे कृते घिसंज्ञायां नाभावः ।

बहुवचन में अदस् शब्द के द से परे जो ए तिस को ई और उस पूर्व द को म आदेश होवे । अदे = अमी अद-न-अम् यहा विभक्ति कार्य अर्थात् पूर्व रूप १४८ और ३८० से उत्त्व मत्व भी पाया तो दोनों में कौन तब पूर्व-असिद्धम् ३६ से विभक्ति के कार्य के प्रति उत्त्व असिद्ध हुआ क्योंकि यह त्रिपादि का सूत्र है । इस कारण इस प्रकार से प्रथम विभक्ति कार्य करके तब उत्त्व मत्व होता है । अमुम् । अमू । अमून् १५० । तृतीया के एकवचन में अमुना होता है, उसकी प्रक्रिया यों है अद-न-आ ३८९ अमु-न-आ घिसंज्ञा १८४ होकर आ को ना आदेश १८५ भया = अमुना । पर यहां यह सन्देह होता है कि जब घिसंज्ञा १८४ से करने लगे तब ३६ से मुभाव ३८० असिद्ध हो जायगा, और उस के असिद्ध होने से घिसंज्ञा न हुई तब घि संज्ञा मान कर जो ना १८५ आदेश होता था वह भी न भया तब अमुना कैसा इस के लिये आगे नियम लिखते हैं ।

३८२ ॥ न मु ने । ८ । २ । ३ । नाभावे क्तव्ये कृते च सुभावी

नासिद्धः । अमुना । अमूभ्यां । अमीभिः । अमुष्मै । अमीभ्यः । अमुष्मात् । अमुष्य । अमुयोः । अमीषाम् । अमुष्मिन् । अमीषु ॥ इति ॥

ना आदेश १८५ से करने को ही वा किया हो तो सुभाव ३८० असिद्ध न होवे अमुना । अमूभ्याम् । १५८ और ३८० अमीभिः । १६६ और अमुष्मै । १६७ अमुष्मात् । अमुष्य । अमुयो १६८ । अमीषाम् । अमुष्मिन् । अमीषु ॥

॥ इति हलन्ताः पुल्लिङ्गा ॥

॥ अथ हलन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ॥

३८३ ॥ नहो ध । ८ । २ । ३४ । भक्ति पदान्ते च ॥

नह धातु के ह को ध आदेश होवे जब कि उस के आगे भल प्रत्याहार के वर्ण रहे वा वह पदान्तमें होवे ॥

३८४ ॥ नहिष्ठतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु ष्वी । ६ । ३ । ११६ ।

क्विवन्तेषु पूर्वपदस्य दीर्घः । उपानत् । उपानहौ । उपानत्सु । विषन्न-
न्तन्वात् कान्त्वेन घः उष्णिक् । उष्णिहौ । उष्णिग्भ्याम् । यौ । दिवौ ।
दिवः । द्युभ्याम् । गौ । गिरौ । गिरः । एवं पू । चतस्र । चतसृषाम् ।
का । के । का । सर्वावत् ।

नाम भया तो नैमित्तिक का नाम तो बुधा ही है निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपाव" पुंस्+सु = पुमस्+सु ११ = पुमन्सु+सु १० = पुमान् स+सु १८ = पुमान् स २१ = पुमान् । पुमासी । पुंस । पुंस + न्याम् १० = पीर २१ = पुमभ्याम् पुंसु । उग्रनस्+सु २२ = उग्रन्+अन्+सु २८ = उग्रनस्+सु १८ = उग्रना+सु १८ = उ = उग्रना । उग्रनसी ॥

१०८ ॥ अस्य सम्बुद्धौ वा मङ् नलोपश्च या वाच्य । हे उग्रन । हे उग्रमन । हे उग्रन । हे उग्रगसौ । उग्रनोभ्याम् । उग्रनस्तु । अनेहा । अनेहसौ । हे अनेह । वेधा । वेधसौ । हे वेधः । वेधोभ्याम् ।

सम्बुद्धि अर्थात् प्रथमा का एकवचन सु विभक्ति परे रहे तो उग्रनस् शब्द को अन् पीर उस के लकार का लोप दोनों विकल्प से होवे । अन् (अन्) पीर न का लोप बुधा तब हे उग्रन । अन् बुधा पीर लोप न प्रया तब हे उग्रनम् । अन् दोनों न हुए तब हे उग्रन । हे उग्रनसौ । उग्रनस्+न्याम् १० = १२ २ पीर १२ उग्रनोभ्याम् । उग्रनस्तु । अनेहस् शब्द के रूप २२ = अनेहा । अनेहसौ । हे अनेह । अनेहोभ्याम् । वेधस् शब्द के रूप वेधा ११ = वेधसौ । वेधोभ्याम् ॥

१०९ ॥ अदस औ सुलोपश्च । ० । २ । १ । ० । अदस औत्स्यात्सौ सुलोपश्च तदीरिति स । असौ त्यदाद्यत्वम् पररूपत्वम् ऋषि ।

प्रथमा का एक वचन सु विभक्ति परे रहे तो अदस् शब्द को औ (स् को औ) पादेग पीर उस के सु का लोप होवे । अदस्+सु २ ० २८ = अद+औ १० = अदौ ११ = अदौ ॥

११० ॥ अदसोऽसेर्दाद् दी म । ८ । २ । ८० । अदसोऽसागतस्य दात्परस्य उदूती दस्य मश्च । आन्तरतम्यादुस्वस्य उ दीर्घस्य छः । अम् । कसरगौ गुणः ॥

लकार रहित अदस् शब्द के लकार से परे जो स्वर तिस को उ पीर छ (जी ऊरव स्वर रहे तो ऊरव उ पीर दीर्घ रहे तो दीर्घ छ) पादेग पीर उच ह को म पादेग होवे । अदम्+औ २ ०, २८ पीर १० = अदौ = अम् । अद+अस् = अदे—

१११ ॥ एत इद् बहुवचने । ८ । २ । ८१ । अदसोदात्परस्यैत ईदस्य मो बहुवचने । अमौ । पर्वचासिद्धमिति विभक्तिकार्यं प्राक्

पश्चादुत्वमत्वे । अमुम् । अमू । अमून् । मुत्वे कृते घिसंज्ञायां नाभावः ।

बहुवचन में अदस् शब्द के द से परे जो ए तिस को ई और उस पूर्व द को म आदेश होवे । अदे = अमी अद-अस् यहा विभक्ति कार्य अर्थात् पूर्व रूप १४८ और ३८० से उत्त्व मत्व भी पाया तो दोनों में कौन तब पूर्वदासिद्धम् ३६ से विभक्ति के कार्य के प्रति उत्त्व अस्मिद्ध हुआ क्योंकि वह त्रिपादि का सूत्र है । इस कारण इस प्रकार से प्रथम विभक्ति कार्य करके तब उत्त्व मत्व होता है । अमुम् । अमू । अमून् १५० । तृतीया के एकवचन में अमुना होता है, उसकी प्रक्रिया यों है अद-अ-आ ३८८ अमु-अ-आ घिसंज्ञा १८४ होकर आ को ना आदेश १८५ भया = अमुना । पर यहा यह सन्देह होता है कि जब घिसंज्ञा १८४ से करने लगे तब ३६ से सुभाव ३८० अस्मिद्ध हो जायगा, और उस के अस्मिद्ध होने से घिसंज्ञा न हुई तब घि संज्ञा मान कर जो ना १८५ आदेश होता था वह भी न भया तब अमुना कैसा इस के लिये आगे नियम लिखते हैं ।

३८२ ॥ न मु ने । ८ । २ । ३ । नाभावे कर्तव्ये कृते च सुक्षावी
नासिद्धः । अमुना । अमूभ्यां । अमीभिः । अमुष्मै । अमीभ्यः । अमुष्मात् ।
अमुष्य । अमुयोः अमीषाम् । अमुष्मिन् । अमीषु ॥ इति ॥

ना आदेश १८५ से करने को हो वा किया हो तो सुभाव ३८० अस्मिद्ध न होवे
अमुना । अमूभ्याम् । १५८ और ३८० अमीभिः । १६६ और अमुष्मै । १६७ अमुष्मात् ।
अमुष्य । अमुयो १६८ । अमीषाम् । अमुष्मिन् । अमीषु ॥

॥ इति हलन्ताः पुल्लिङ्गा ॥

॥ अथ हलन्ताः स्त्रीलिङ्गाः ॥

३८३ ॥ नही धः । ८ । २ । ३४ । भलि पदान्ते च ॥

नह धातु के ह को ध आदेश होवे जब कि उस के आगे भल प्रत्याहार के वर्ण रहे
वा वह पदान्तसे होवे ॥

३८४ ॥ नहिषतिष्विष्यधिरुचिसहितनिषु क्वी । ६ । ३ । ११६ ।
क्विवन्तेषु पूर्वपदस्य दीर्घ । उपानत् । उपानहौ । उपानत्सु । क्विवन्न-
न्तन्वात् क्त्वन्नेन घः उष्णाक् । उष्णाहौ । उष्णाभ्याम् । यौ । दिवौ ।
दिवः । द्युभ्याम् । गीः । गिरौ । गिरः । एवं पूः । चतस्रः । चतसृष्याम् ।
का । के । का । सर्वावत् ।

नञि (वाघना) ङिति (ङोना) ङवि (वरसना) व्यञि (ताडन करना) ङधि (चमकना) सञि (सङ्गना) षौर तनि (पँसना) इन चातुर्थी के षन्त में ङञ विवप् प्रत्यय लगावा जाय तब इन के परे रहते इन से जो पूर्व पद है तिस दीर्घ होवे । उप-
 नञ् विवप् - उपानङ्+सु १८३ - उपानङ् - ३२२ उपानङ् ०८ षौर १३८ - उपानत - ६
 उपानङ् । उपानङ्+सु - उपान ष्+स ० - उपानत्सु । उटिञ्चङ् षट् विवप् प्रत्यय के
 बनाया जाता है इस कारक ३२३ छ ङ की घ घादेय हुआ तब उटिञ्चङ् ०८ षौर १३८ -
 उटिञ्चङ् - ग् । उटिञ्चङ् । उटिञ्चङ्+भ्याम् १०८ षौर ०८ - उटिञ्चङ्भ्याम् । दिव् २८३ -
 षो । दिवो । दिव । दिव्+भ्याम् १०८ षौर ०८ - बुभ्याम् । बुभु । निद् ३०३ - नी । निरो
 मिर । इसी रीति पुर् से पू । पुरी । पुर । प्रथमा षौर द्वितीया के बहुवचन में चतस्र
 चतुर्+अम् २३३ ङ - चतस्र । २३३ चतस्राम् । स्त्रीसिद्ध में किम् षट् का रूप का होता
 है । किम् - का । का+षौ २३३ - के बहुवचन में का । सेवक्य सर्वा षट् के प्रथम
 जानने ।

इत्थ ङ य सौ । ० । १ । ११ । इदमो दस्व य । इयम् त्वदा
 यत्स्वम् । पररूपत्वम् । टाप् । दश्चेति म । इमे । इमा । इमाम् ।
 चनया । इच्छि क्षीप । चाभ्याम् । चाभि । अस्यै । अस्या । चनयो ।
 चासाम् । अस्याम् । चासु । चञ् । चञ् । चञ्भ्याम् । त्यदायत्स्वम् ।
 टाप् । स्था । त्ये । त्या । एवं तद् । एतद् । वाक् । वाचौ । वाच ।
 अप शब्दी नित्यम्बुवचनान्त । अप्तृन्निति दीर्घ । चाप ङ

प्रथमा के एकवचन में वर्तमान जो इदम् षट् तिथ के ङ की य घादेय होवे ।
 इदम्+सु - २८३ इयम् । प्रथमा के एकवचन को छोड़ कर षौर विभक्ति परे रहते प्रथम ङ
 को २२० से चकार भया फिर २८३ से पररूप होकर स्त्रीसिद्ध होने के कारक टाप्प्रत्यय
 लगाकर इदा हुआ । इदा+षौ २८३ - इमा+षौ २३३ ३२ - इमे । इमा । इमाम् । तृतीया
 विभक्ति के एकवचन में इदा+पा - २८० - इना+पा २३०+चने+पारङ् - चनया ।
 इमादि विभक्ति परे रहते इद् का लोप २८८ होता है । इदा+पा - चाम्भ्याम् चाभि ।
 अस्यै २३८ । अस्या । इदा+षोष् २८० । २३० षौर २३ - चनयोः । इदा+पाम् १३८ षौर
 २८८ - चासाम् । इदा+ङ् २३३ षौर २३८ चस्याम् । चासु २८८ । अङ्+सु १८३ - अङ्
 ३२८ - अङ् १३८ षौर १३८ - अङ् - न् । अञ् अङ्भ्याम् १३० षौर ३२८ । जैसे इदम से
 इदा बनाया गया, उसी रीति त्यद् से त्या ३३३ - त्या । त्ये । त्या । तद् से का । ने । ताः ।
 यन् से या । ये । या । वाक् ३२८ । ०८ । १३८ - वाक् । वाचौ । चाम्भ्याम् १०८ ३२८ षौर

७८ १६३ । वात् । अप् शब्द सर्वदा बहुवचनान्त है प्रथमा के बहुवचन में दीर्घ होता है २२१ आप । द्वि० में अपः । अप्-न-भिः ।

३८६ ॥ अपो भि । ७ । ४ । ४८ । अपस्तकारो भादौ प्रत्यये ।

अद्भिः । अद्भ्यः । अपाम् । अप्सु । दिक् । दिग् । दिशः । दिग्भ्याम् ।
त्यदादिष्विति दृशेः क्विन् विधानादन्यत्रापि कुत्वम् । दृक् । दृग् ।
दृशी । दृग्भ्याम् । त्विट् त्विङ् त्विषी त्विङ्भ्याम् । ससजुषीरिति
सत्वम् सजू । सजुषी सजूर्भ्याम् । आशी । आशिषी । आशीर्भ्याम् ।
असौ उन्वसत्वे अमू । अमूः । अमुया । अमूभ्याम् । अमूभिः । अमुष्यै ।
अमूभ्यः । अमुष्याः । अमुयोः । अमूपाम् । अमुष्याम् । अमूषु ॥ इति ॥

अप् शब्द के प् को त् आदेश होवे, जब कि उसके आगे ऐसा प्रत्यय रहे जिस
के आदि में भ रहे । अप्-न-भिः = अत्-न-भि' ७८ = अद्भिः । अद्भ्यः । २ । अपाम् । अप्सु दिग्
३२३, ३२६, ७८ और १५८ = दिक्-ग् । दिशी । दिश' । दिग्भ्याम् १७८ । दृश् धातु से क्विन्
प्रत्यय ३२३ भया इस कारण इस के अन्त्य श् को ३२६ से कुत्व होकर ग् हुआ । दृक् ग् ।
दृशी । दृग्भ्याम् । त्विष् । ७८ और १५८ = त्विट्-ङ् । त्विषी त्विङ्भ्याम् । सजुष्-सु १८३
सजुष् १२० = सजुर् ३७४ = सजूर् १०८ = सजू' (मित्र) सजुषी । सजूर्भ्याम् १७८ । इसी
रीति आशिष् = आशी । आशिषी । आशीर्भ्याम् । अदस् ३७८, ३३३ = असौ । और
विभक्तियों में उ और स भया ३८० अमू । अमूः । अमुया २८७ । अमूभ्याम् । अमूभिः ।
अमुष्यै २३८ । अमूभ्यः । अमुष्याः । अमुयोः २३७ । अमूपाम् १६८ । अमुष्याम् २१३ ।
अमूषु ।

॥ इति हलान्ताः स्त्रीलिङ्गा ॥

॥ अथ हलन्ता नपुंसकलिङ्गाः ॥

स्वमौर्लुक् । दत्त्वम् । स्वनडुत् । स्वनडुङ्गी । चतुरनडुङ्गीरित्याम् ।
स्वनड्वाङ्घ्रि । पुनस्तडत् । शेषम्पुस्वत् । वाः । वारी । वारि । वारा ।
वाभ्याम् । चत्वारि । किम् । के । कोनि । इदम् । इमे इमानि ॥

नपुंसक लिङ्ग के जो शब्द हैं तिन से परे जो सु और अमू ही तो उन का लोप होवे
२६५ स्वनडुङ् शब्द ङ् को द् आदेश होकर नपुंसक लिङ्ग में आया है । अच्छाबैल जिस जगह

पर है वा किस कुछ में) स्वनङ्कुही २१४ । स्वनङ्कुवाचि २८० १८ और ८२ । इसी रीति द्वितीया के भी रूप सिद्ध होते हैं । मेष रहे जो पुंसिङ् २८ के समान जानने । वाद् । (सक्त) वा १ ८ । वारी २१४ । वारि २१० । वारा । वार्यामि । वार्याति । २०८ । प्रथम वाचक सवनाम द्विम् शब्द के रूप लिखत हैं । किम् २६५ । के २१४ और २८२ । वामि २१८ और २८२ । सवनाम वृद्धम् शब्द के रूप लिखते हैं । इदम् २६५ और २८५ इमे १ ७ २८५-३ और २१४ इमामि २१७ २४८ ॥

३८० (वा) च 'पादेशे नपुंसके एमहत्ताव्य । एनत् । एने । एमानि एनेन । एनयो । व्रह्म । चह । विभाषा विप्रयो । चङ्गी । चङ्गी चङ्गानि ॥

चन्नादेश ३ १ की विवक्षा में रहने वाला जो एतद् शब्द तिस की नपुंसकसिद्ध में एनत् पादेश होवे । एनत् २६५ । एने २ ८ । २८५ । और २१४ । एनेन । एनयो । व्रह्मन् । व्रह्म २६५ और १८४ । चङ्गन् से चङ्गी वा चङ्गी २६८ । चङ्गानि २१० । २१८ और १८१ ।

३८८ चङ्गन् । ८ । २ । ६८ । चङ्गन्मित्यस्य क पदान्ते । चङ्गीभ्याम् । दृषिड । दृषिडनी दृषिडीमि । दृषिडभ्याम् । सुपयि । टिष्ठोप सुपयी । सुपय्यानि । सक् । उर्ध्वी । उर्ध्विञ्च । भरखाना संयोग तत् ते । तानि । यत् । ये । यानि । एतत् । एते । एतानि । गवाक् । गोषी । गवाचि । पुनस्तद्धत् । गोषा । गवाभ्याम् । शक्तत् । शक्तती । शक्तन्ति । ददत् ।

पदान्त में वर्तमान जो चङ्गन् शब्द तिस के नकार की व पादेश होवे । चङ्गन्+भ्याम् = चङ्गन्+भ्याम् १२२ = चङ्गन्+भ्याम् ३२ = चङ्गीभ्याम् । दृषिडन् से दृषिड २६५ और १८४ । दृषिडनी २१४ । दृषिडीमि । २१७ और १८१ दृषिडन्+भ्याम् १०८ और १८ दृषिडभ्याम् । सुपयिन् से सुपयि । द्विवचन में टि का लोप भया ३१८ = सुपयी । सुपय्यानि २१०, ८ । ३२६ । १८१ और ३१० । सक् से उर्ध्व ३२८ । उर्ध्वी । उर्ध्विञ्च इस उदाहरण में न् ५ और न् इन तीन वर्णों का संयोग है । सवनाम शब्द से तत् २६५ और १८८ । ते । तानि ८५ से यत् । ये । यानि । एतद् से एतद् । एते एतानि । गोपूर्वक चङ्ग् चातु से गवाक् लीया गो+चङ्ग् ३१७ = गो चङ्ग् ३० और ३१ = गवाक् ३१८ = गवाक् गोषी ३१०-८ और ३१८ । गवाभ्याम् । गवाभ्याम् ३१८ । द्वितीया विभक्ति में भी ऐस ही रूप होते हैं । गोषा । गवाभ्यामित्यादि । शक्तन् (सिद्धा) शक्तती शक्तन्ति ३१८ । ददन् (देनेवाला) ॥

३८६ ॥ वा नपुंसकस्य । ७ । १ । ७६ । अभ्यस्तात्परो यः शता

तदन्तस्य क्लीबस्य वा नुम् सर्वनामस्थाने । ददन्ति । ददति । तुदत् ॥

नपुंसकलिङ्ग में वर्तमान अभ्यस्त सञ्ज्ञक जो शतप्रत्ययान्त शब्द तिसको विकल्प से नुम् होंवे जयकि उसके बाद सर्वनामस्थान सञ्ज्ञक प्रत्यय परे रहें । ददन्ति वा ददति । तुदत्-नु = २६५ तुदत् ॥

३८० आच्छीनद्योर्नुम् । ७ । १ । ८० । अवर्णान्तात्परो यः शतुर-

वयवस्तदन्तस्य नुम् वा शीनद्यो । तुदन्ती । तुदती । तुदन्ति । भात् ।

भान्ती । भाती । भान्ति । पचत् ॥

श्री २५४ नदी २०८ परे रहते अकारान्त शब्द से शत प्रत्यय का अवयव जो त् सो जिस के अन्त रहे तिसे नुम् आगस होंवे विकल्प से । तुदन्ती वा तुदती तुदन्ति । भात् । भान्ती वा भाती । भान्ति । पचत्-नु = २६५ ॥

३९१ ॥ शप्श्यनोर्नित्यम् । ७ । १ । ८१ । शप्श्यनोरात्परो यः

शतुरवयवस्तदन्तस्य नुम् शीनद्योः । पचन्ती । पचन्ति । दीव्यत् ।

दीव्यन्ती । दीव्यन्ति । धनुः । धनुषी । सान्तेति दीर्घः । नुम् विसर्जनीयेति

षः । धनुषि । धनुषा । धनुभ्याम् । एवं चक्षुर्ष्विविरादयः । पयः । पयसी ।

पयांसि । पयसा । पयोभ्याम् । सुपुम् । सुपुसी । सुपुमांसि । अद् ।

विभक्तिकार्यम् । उत्वमत्वे । अमू । अमूनि । शेषपुवत् ॥

शप् (यह प्रत्यय भ्वादि गण के धातुओं के आगे लगाया जाता है) वा श्यन् (यह दिवादि गण के धातुओं के आगे लगाया जाता है) के अकार के आगे जो शत वा त् सो है अन्त में जिसके तिसको नुम् होंवे । पचन्ती । यद्वां शप् के अकार से परे तकार है । पचन्ति इस रीति दिव्यत् यह श्यन् के आगे शतृ लगाकर बना है । दीव्यन्ती । दीव्यन्ति धनुष् से धनुः २६५ । १२० और १०८ । धनुषी १६३ । यह सकारान्त शब्द है इस कारण दीर्घ भया ३६५ से । नुम् के व्यवधान से भी ३७५ से स को ष भया तब धनुषि । धनुषा । धनुष्-नु-भ्याम् १२० = धनुभ्याम् । इसी रीति चक्षुष् हविष् आदि शब्दों को भी जानना । पयस्-नु = २६५ । १२० और १८० पयः पयस्-नु-भ्याम् १२०, २ और ३२ = पयोभ्याम् २६५ और २३ । सुपुम् २५४ सुपुसी । सुपुमांसि ३०८, ३११ और ३६६ अद्-अद् । प्रथम विभक्ति कार्य होकर उत्व मत्व होता है, ३८० अमू । अमूनि । शेषरूप पुषिङ्ग के समान जानो ।

॥ इति हलन्ता-नपुंसकलिङ्गाः ॥

पर है वा जिस कृत् में) स्वगङ्गादि २५४ । स्वगङ्गादि २८० १८ और ८२ । इसी रीति
 पितोया के भी रूप सिद्ध होते हैं । गेय रहे की पुक्ति २८ के समान जानने । धा० ।
 (क्त) पा १ ८ । वारी २५४ । धारि २५० । धारा । धार्याम् । धार्यारि । २०८ । धार
 धाचक सवनाम किम् शब्द के रूप लिखते हैं । किम् २५५ । के २५४ और २८२ । कामि
 २५८ और २८२ । सवनाम इहम् शब्द के रूप लिखते हैं । इहम् २५५ और २८२ इमे २ ०
 २८२-४ और २५४ इमानि २५० २५८ ॥

इहो (वा) अन्वादेशे नपुंसके एतद्व्यय । एनत् । एने । एनामि
 एनेन । एनघो । इह । इहा । विभाषा किरयो । चङ्गी । चङ्गी
 चङ्गानि ॥

अन्वादेश १ १ की विषया में रहने वाला को एतद् शब्द तिस को नपुंसकसिद्ध
 में एनत् आदेश होवे । एनत् २५५ । एने २ ८ । २८५ । और २५४ । एनेन । एनघो । इहान् ।
 इहा २५५ और २८४ । चङ्गु से चङ्गी वा चङ्गी २५८ । चङ्गानि २५० । २५८
 और २८२ ।

इहो चङ्गु । ८ । २ । इहो । चङ्गिन्मिन्वस्य ह पदान्ते । चङ्गीभ्याम् ।
 इहो । इहोनी इहोनीनि । इहोभ्याम् । सुपदि । टिक्षोप सुपघो ।
 सुपग्यानि । उक्त् । उक्त् । उक्त् । नरखानां सयोग तत् ते । तानि ।
 यत् । ये । यानि । एतत् । एते । एतामि । गवाक् । गोघी । गवाधि ।
 पुनस्तदत् । गोघा । गवाभ्याम् । गङ्गात् । गङ्गाती । गङ्गान्ति । ददत् ।

पदान्त में वर्तमान को चङ्गु शब्द तिस को नकार को व आदेश होवे । चङ्गु-
 भ्याम् = चङ्गु-भ्याम् २५५ = चङ्गु-भ्याम् २२ = चङ्गीभ्याम् । इहो से इहो २५५
 और २८४ । इहोनी २५४ । इहोनीनि । २५० और २८२ इहोभ्याम् १०८ और १८
 इहोभ्याम् । सुपदि से सुपदि । द्विवचन में टि का शेष भया ११८ = सुपघी । सुपग्यानि
 २५०, ८ । २२५ । २८२ और २१० । उक्त् से उक्त् २२८ । उक्त् । उक्त् । उक्त् उक्त् उक्त् से न्
 ५ और न् इन तीन चर्चों का संयोग है । अत्रनाम तद् से तत् २५५ और २५८ । ते । तानि
 ८५ से यत् । ये । यानि । एतद् से एतद् । एते एतामि । गोपुषक चङ्ग् धातु से गवाक्
 लेवा मो-न चङ्ग् २५० = गो चङ्ग् २० और २२ = गवाक् २२८ = गवाक् गाघी २५०-८ और
 २५८ । गवाभ्याम् । गवाभ्याम् २५८ । द्वितीया विभक्ति में भी ऐस की रूप होते हैं । गोघा ।
 गवाभ्याम् इत्यादि । गङ्गात् (चङ्गात्) गङ्गाती गङ्गान्ति २५८ । ददत् (देनवाक्) ॥

३८६ ॥ वा नपुंसकस्य । ७ । १ । ७६ । अभ्यस्तात्परो यः शता
तदन्तस्य क्लीवस्य वा नुम् सर्वनामस्थाने । ददन्ति । ददति । तुदत् ॥

नपुंसकलिङ्ग में वर्तमान अभ्यस्त संज्ञक जो शतप्रत्ययान्त शब्द तिसको विकल्प
से नुम् होवे जबकि उसके बाद सर्वनामस्थान संज्ञक प्रत्यय परे रहें । ददन्ति वा ददति ।
तुदत्-1-सु = २६५ तुदत् ॥

३८० आच्छीनद्योर्नुम् । ७ । १ । ८० । अवर्णान्तात्परो यः शतुर-
वयवस्तदन्तस्य नुम् वा शीनद्यो । तुदन्ती । तुदती । तुदन्ति । भात् ।
भान्ती । भाती । भान्ति । पचत् ॥

श्री २५४ नदी २०८ परे रहते अकारान्त शब्द से शत प्रत्यय का अवयव जो त् सो
जिस के अन्त रहे तिसे नुम् आगस होवे विकल्प से । तुदन्ती वा तुदती तुदन्ति । भात् ।
भान्ती वा भाती । भान्ति । पचत्-1-सु २६५ ॥

३८१ ॥ शप्श्यनोर्नित्यम् । ७ । १ । ८१ । शप्श्यनोरात्परो यः
शतुरवयवस्तदन्तस्य नुम् शीनद्योः । पचन्ती । पचन्ति । दीव्यत् ।
दीव्यन्ती । दीव्यन्ति । धनुः । धनुषी । सान्तेति दीर्घः । नुम् विसर्जनीयेति
ष । धनूषि । धनुषा । धनुभ्याम् । एवं चक्षुर्षविरादयः । पयः । पयसी ।
पयांसि । पयसा । पयीभ्याम् । सुपुम् । सुपुसी । सुपुमांसि । अदः ।
विभक्तिकार्यम् । उत्वमत्वे । अमू । अमूनि । शेषपुंवत् ॥

शप् (यद् प्रत्यय भ्वादि गण के धातुओं के आगे लगाया जाता है) वा श्यन् (यद्
दिवादि गण के धातुओं के आगे लगाया जाता है) के अकार के आगे जो शतृ का त् सो है
अन्त में जिसके तिसको नुम होवे । पचन्ती । यद्वा शप् के अकार से परे तकार है । पचन्ति
इस रीति दिव्यत् यद् श्यन् के आगे शतृ लगाकर बना है । दीव्यन्ती । दीव्यन्ति धनु
से धनुः २६५ । १२० और १०८ । धनुषी १६३ । यद् सकारान्त शब्द है इस कारण दी-
भया ३६५ से । नुम् के व्यवधान से भी ३७५ से स को ष भया तब धनूषि । धनुषा
धनुष्-1-भ्याम् १२० = धनुभ्याम् । इसी रीति चक्षुष् इविष् आदि शब्दों को भी जानना
पयस्-1-सु = २६५ । १२० और १८० पयः पयस्-1-भ्याम् १२०, २ और ३२ = पयीभ्याम् २६
और २३ । सुपुम् २५४ सुपुसी । सुपुमांसि ३७८, ३११ और ३६६ अदस्-अदः । प्रथम विभ-
कार्य होकर उत्व मत्व होता है, ३८० अमू । अमूनि । शेषद्वय पुलिङ्ग के समान जानो ।

॥ इति हलन्ताः नपुंसकलिङ्गाः ॥

॥३३॥ अध्यायानि ॥३३

३६२ ॥ स्वरादिनिपातमध्ययम् । १ । १ । ३० ॥

जो शब्द स्वरादि गण में पड़े है और बिनाही निपात सजा होती है वे हीनों अध्याय कहाने ।

पढ़िखे स्वरादि गण का पर्यं लिखते हैं—

स्वर् स्वमहोच्च वा परलोच्च । अन्तर बीच में । प्रातर् प्रातःकात् । पुनर् फिर वा निरुचय । सनुतर् छिपाना । उर्ध्वैस् । ऊंचा । निचैस् नीचा । श्मैस् शीरे धीरे । षट् षष्ठि वा स्वीकार । कर्ते बिना । युगयत् एककात् में । अरात् दूर वा समीप । पृथक् पृथक् । इस जो दिन बीतगया (कात्) । इस जो दिन आवेगा (क्त) । दिना दिन में । रात्रौ रात में । ज्ञायम् ज्ञातकात् में । चिरम् देर में । मनाम् मनुत् चक्ष् । जीवम् जानक्य वा चुपचाप । तूष्णीम् चुपचाप । बहिस् परस् बाहर की ओर समया । निकटा, समीप । स्वयम् आपही आप । उवा निरुचय । गङ्गम् रातमें । नम् नहीं । जेतौ, निमित्त विधे । उवा साद्यात् । अवा साद्यात् वा स्वीकार । सामि आवा वा निमित्त क्त प्रत्ययान्त जो शब्द है वे ही स्वरादि गण में लिखे गये हैं । प्राञ्चकत् प्राञ्चक के समान । अचिवकन् अची के समान । सना सनुत् सनात् सदा कृपया विमान । तितम् टेढ़ा छिपाना वा पराहित होना अन्तरा बीच में, से वाचकापद् अन्तरेच वर्जना । ज्योच्च विशम्भ । प्रग्न शीघ्र वा इस समय कम् क्त सुख निम्ना वा मस्तक शम् घुब सङ्घसा अक्षस्मात् वा अविचारसे बिना जोड़ कर, नाना । अनेक वा जोड़ कर, स्वस्तित मङ्गल । स्वधा इसका प्रयोग पितृसंबंधी दान में आता है । अक्षम् शोभा । भरपूर यति वा रोचना । अयद्, औषद् औषद् ये तीनों शब्द देव संबंधी दान में आते हैं । अन्यत् दूसरी रीति से अस्ति है उपांगु अप्रयत् से अमा अङ्गना । विहापसा आकाय से दोवा रात । श्रुवा सिध्या भूड मुचा व्यर्थ पुरा निरन्तर, पढ़िखे से वा पाठनान्मन्त्रिय (जो मन्त्रिय के समीप) मिषो, मिषम् पक्षान्त वा साम प्रायस् विधेय करके मङ्गम् अनेक बार, प्रवाहिका प्रवाहकम् समान कात् वा ऊपर । आर्यङ्कम् ब्रह्मकार (जीराबरी करण) आधीरकम् बारम्बार, सार्धं सार्धम् साथ नमत् प्रथम आदि । विह्वल् वर्जना । धिक् धिक्कार वा हमसाना । अथ अन्तर । अम् शीघ्र वा अल्प । आम स्वीकार । प्रताम् ग्नानि (सीपहोना) प्रयान् गान्त, प्रतान बहाना । मा वा माङ् निदेश वा प्रग्न ।

ये आदिगण हैं वे और अक्षवा इ प्रथि । अह आदर एव निरुचय वा

केवल, एवम्, ऐसा । नूनम्, ठीक । शश्वत्, निरन्तर, युगपत्, एवही समय, भूयस् बारा बार वा अधिक, कूपत्—प्रश्न, कुबित्, अधिक । नत, सदेह, चेत् चण, यदि कश्चित्, आवश्यक । कासी का पूछना । यत्र, जहाँ । तत्र, तथा । नह, नहीं, हन्त, हर्ष वा शोक, (माकि माकिम् । नकिम्, नकिः) रोकना । यायत् तादत्, जितना वा तितना । त्वै है, न्वै वितर्क देना वा अनादर । औषट्, वीषट्, घी का दान, स्वाहा, देवताओं के लिये देना । स्वधा, पितृ के लिये देना । तुस, तु, तथाहि, दिखाना, खुलु, निषेध वा सचमुच । किल, लोकवार्ता वा झूठा । अथ, मङ्गल । सुष्ट, अच्छा स्म, भूत, आदह, धिक्कार

उपसर्ग, विभक्ति वा स्वर के समान जिनका रूपही और वे उपसर्ग विभक्ति व स्वर न रहें तब अव्यय कहवें । यहा उपसर्ग और विभक्ति के अर्थ का ग्रहण है परन्तु स्वर के शब्द ही का ग्रहण होता है क्योंकि उनका केवल कुछ अर्थ नहीं होसकता ॥

(विदत्तस्, अवदत्तस्) यहां वि, और अव, उपसर्ग नहीं हैं यदि होते तो “ अच उपसर्गात्तः ” से (वित्तम्) (अवत्तम्) हो जाता, इसी प्रकार और भी जानो । (अइयु') सृद्यु' (अस्तिचीरा) (अस्ति) । अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, औ, और औ, पशु—सुख शुकम्, तुरन्त यथा, कथा, तिरस्कार, पाट् प्याट्, अङ्ग, है, हे, भो' वा अये केवल विषु, इनका प्रयोग सम्बोधन में होता है । द्य—इसका प्रयोग श्लोक के पाद पूरण में आता है अनेक, एकपदे, एक काल युत्, कुत्सित्, आत इस से भी ॥

चादिरप्याकृतिगणः ॥

इस गण की भी आकृति गण (आकार से जो लिया जाय) कहते हैं ॥

तसिलादयः प्राक् प्राणपः । शस् प्रभृतय प्राक् समासान्तेस्य ।
अम् । आम् । क्तन्वीर्या तसिवती । नानाञौ । एतदन्तसप्यव्ययम् ।
अत इत्यादि ॥

“ जिस् तद्धित प्रत्ययान्त शब्द के आगे कोई विभक्तिया न आवे उन्हें अव्यय कहते हैं” । वे प्रत्यय वे हैं षष्ठाध्यायी से पञ्चम्यास्तसिल् । ५ । ३ । ७ ॥ से लेकर याप्ये पाणप् । ५ । ३ । ४० ॥ पर्यन्त जितने प्रत्यय हैं और वह्नन्पार्धाच्छश् कारकादन्यत रस्याम् । ५ । ४ । ४२ ॥ से लेकर समासान्ता । ५ । ४ । ६८ ॥ इस सूत्र पर्यन्त जितने प्रत्यय हैं और अमु च छन्दसि । ५ । ४ । १२ ॥ से अम् प्रत्यय, किमेतिडव्ययवादांस्व-द्रव्यप्रकर्षे । ५ । ४ । ११ । से आम् । प्रत्यय । मर्याया क्रियाभ्याहृतिगणने क्तव्यमुच् । ५ । ४ । १० ॥ एतस्य सप्तच । ५ । ४ । १८ ॥ इन तीनों से जो प्रत्यय होते हैं और तसि वत् ना और नञ् ये प्रत्यय जिनके अन्त में जो उनकी अव्यय मत्ता होवे ।

४८ क्त्वात्स्वमेजन्त । १ । १ । ३६ ॥ एतदन्तमध्ययम् ॥ स्मारम् ।
स्मारम् । जीवसे । पिवध्वै ॥

जो क्तप्रत्यय मान्त वा एजन्त हैं वे जिनके अन्त में जो उन गण्डों की अव्यय संज्ञा होती है। स्व—असुम्—स्मारम् स्मारम्। जीव—से—जीवसे। पिव—ध्वै—पिवध्वै।

४८१ अत्वात्तोसुनकसुमः । १ । १ । ४ । एतदन्तमध्ययम् । क्त्वात्
उदेतो । विसृप ॥

उन गण्डों की भी अव्यय संज्ञा होती है जिनके अन्त में क्त्वा वा तोसुन् अथवा कसन् प्रत्यय रहें। क्त्वा—त्वा—क्त्वा। उदे—तोसुन्—उदेतो। विसृप्—असुम्—विसृप ॥

४८२ अव्ययीभावश्च । १ । १ । ४१ । अधिहरि ॥

अव्ययीभाव समास से जो गण्ड बनते हैं उनकी भी अव्यय संज्ञा होती है। हरि—धि—अधि—अधिहरि ॥

४८३ ॥ अव्ययादापसुपः । २ । ४ । ८२ । अव्ययादापस्सुपश्च लक्ष

तत्र शास्त्रायाम् ॥

अव्यय संज्ञक गण्ड से परे जो आप् वा सुप् प्रत्यय तिस का लुक् होय। तत् किं चत्—तत्+चा (टाप्)—तत् शास्त्रायाम् (तिस शास्त्रा में) ॥

“सहस्रांश्चिपुश्चिह्नेषु सर्वासु च विभक्तिषु । वचनेषु च सर्वेषु
यन्मठ्येति तदध्ययम् । १ ।”

तीनों लिङ्गों (पुलिङ्ग श्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग) में और सब विभक्तियों में एकसा रहे और सब वचन (एक हि बहु) में विकार जो भी न प्राप्त होय वह अव्यय कहा जाता है ॥ १ ॥

४८४ वण्टि भागुरिरल्लोपमभाष्योरुपसगयोः । पापञ्चैव इलतामा
यथा वाचा निगा दिगा । २ । अदगाह । वगाह । अपिधामम् । पिधामम् ।

भागुरिधावाय्य (अय) और (अपि) उपसर्ग के अकार का लोप और इलन्त र्शोनिङ्ग गण्डों के आगे टाण की इच्छा करते हैं। उदाहरण वाच्+धा—वाचा। निग
धा—निगा । दिग् धा—दिगा ॥ २ ॥ अय+गाह—अदगाह वगाह । अपि+धामम्—
अपिधामम् पिधामम् ॥

॥ इत्यध्ययानि ॥

॥ ओ३म् ॥

॥ लघुकौमुद्युत्तरार्धम् ॥

श्रीमद्वरदराजप्रणीतम्

—०००—

श्रीमत्पञ्चनदीयमहाविद्यालयाध्यापकगोस्वामिपरिडित

गङ्गाविष्णु शास्त्रि सङ्कलित हिन्दी भाषा

विवरणसहितम्

—००—

आर्य्यधर्मीपदेशक

श्रीयुतपरिडित कृपाराम शर्मणामाज्ञया

पञ्जाब एकीनोमीजल यन्त्रालये

लालालालमनाधिकारेण

मुद्रितम् ।

—०००—
सन् १८९७ ई०

लाहौर

प्रथमवार १००० प्रति

मूल्य २)

ॐ॥ ओ३म् ॥ॐ॥

॥३॥ लघुक्विसुधाम् ॥३॥

—' ॐ॥३ॐ॥ —

ॐ॥ भवादयः ॥ॐ॥

३६८ ॥ लट् । लिट् । लुट् । लृट् । लेट् । लोट् । लङ् । लिङ् ।

लुङ् । लृङ् । एप् पञ्चमो लकारश्छन्दोभाचगोचर ॥

टीका—अब भू आदि में है जिनके उन (धातुओं) क्रियावाचकों का वर्णन किया जाता है। और क्रिया काल में होती है। तो इस व्याकरण शास्त्र में काल लकार से प्रकाशित (विदित) होता है। जैसे वर्तमान काल का प्रकाशक लट् लकार है। “ परोक्ष अनद्यतन भूत् ” काल का प्रकाशक लिट् है। अनद्यतन भविष्यत् काल का प्रकाशक लुट् है। सामान्य भविष्यत् काल का प्रकाशक लृट् है। इन दश लकारों में से पञ्चम (लेट्) वेद में ही प्रेरणा अर्थ में आता है। आशीर्वाद और प्रेरणा अर्थ में लोट् आता है। अनद्यतन भूत्काल का प्रकाशक लङ् है। विधि और * निमज्जणादि अर्थों में लिङ् । सामान्य भूत् काल का प्रकाशक लुङ् है। कार्यकारणभाव और क्रिया की अस्थिति के विदित होने पर भूत् और भविष्यत् काल में लृङ् होता है ॥ ३६८ ॥

३६९ ॥ ल. कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्य । ३ । ४ । ६९ ।

लकारा. सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्त्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्त्तरि च ॥

ऊपर लिखे लकार कर्त्ता वा कर्म अर्थ जतलाने के लिये सकर्मक धातु से होंगे और कर्त्ता वा भाव अर्थ जतलाने के लिये अकर्मक धातु से होंगे। “व्यापार जिस के अधीन रहता है उसको कर्त्ता कहते हैं” क्रिया के फल का जो आश्रय है उसको कर्म कहते हैं। उदाहरणम् (जैसे) देवदत्त चावल पकाता है । यहा पकाना देवदत्त के आधीन है। इस लिये देवदत्त कर्त्ता है। चावल कर्म है, क्योंकि पाकक्रिया का आश्रय है। यदि इसी वाक्य में कर्मवाच्य करना हो तो, देवदत्त से चावल पकाया जाता है, ऐसा लिखना। परन्तु यहा भी चावल ही कर्म है। इन दोनों का सस्कृत में रूप एकसा नहीं रहेगा। जैसे (पचति) पकाता है। यहां कर्त्ता का ही अर्थ प्रकाशित होता है। और कर्म में (पच्यते) पकाया जाता है, यहा कर्म का अर्थ ही प्रकाशित होता है, अकर्मक क्रिया में,

* “ ४५३,, सूत्र की व्याख्या में देखो ॥

कर्म नहीं होता इस विवे लकार, दूसरी अवस्था में उस के (भाव) क्रिया को प्रकाश करता है । जैसे (मृत्यु) होता । कर्तृवाच्य में तो सक्र्मक के तुल्य भवर्मक क्रिया भी कर्ता भव को प्रकाश करती है । जैसे (भवति) होता है ॥ ३८८ ॥

४ • ॥ वर्तमाने छट । ३ । २ । १२३ वर्तमानक्रियातृतीर्था
तो छट स्वात् । अटावितौ । उच्चारणसामर्थ्यात्सस्य नेत्यम् । भू सत्ता
याम् । कर्तृविवक्षायां भू+त् श्रुतिस्थिते ॥

वर्तमान काल में होने वाले कार्य के प्रकाश करने में जब वातु का व्यवहार हो तब उस से परे कद् लकार हो । कद् में च और द् इत संज्ञक हैं । १४८ संख्यक सूत्र से व् भी भी इत् संज्ञा पार्थ, तब उस के निवेच के विवे यह युक्ति है कि इस व्याकरण मारण में छोड़ भी वच निरर्थक नहीं उच्चारण क्रिया वा पदा जाता और व् भी इत् संज्ञा करने से तो सम्पूर्ण कद् प्रत्यय नष्ट होजाता है तो उस के उच्चारण का कुछ भी फल न होना इस विवे व् भी इत् संज्ञा नहीं होती ॥ ४ ॥

१ भू वातु जिसका अर्थ होना है उस की साधन प्रक्रिया लिखते हैं । जब उस से कर्तृवाचक प्रयोग बनाने की इच्छा होती है तब भू+त् ऐसा रूप होने पर ।

४ १ ॥ तिप् तस् मि सिप् थस् व सिप् वस् मस् ता
शाकम् यासायाग्ध्वमिहवहि महिष् ३ । ४ । ७८ । एतेऽष्टादश
सादेशा स्युः ॥

नीचे किछेहुए अठारह प्रत्यय व् के स्वान में आदेश होते ।

परस्मैपद

आत्मनेपद

प्रथम पुंस्य	मध्यम पु	उत्तम पु ॥	प्रथम पु	मध्यम पु	उत्तम पुंस्य
एक — तिप्	सिप्	मिप्	त	यास्	श्रुट
द्वि — तस्	थस्	वस्	आताम्	आयाम्	वहि
बहु — मि	व	मस्	म्	ध्वम्	महिष्

४ २ ॥ साः परस्मैपदम् १ । ४ । ८८ । सादेशा परस्मैपद

संज्ञा स्युः ॥

व् के स्वान में जो आदेश होते हैं ४ १ आनम् । वयसु । यतु । यत् के परस्मैपद संज्ञापाने होते हैं ॥ ४ २ ॥

४०३ ॥ तङानावात्मनेपदम् १ । ४ । १०० । तङ् प्रत्या-
हारः शानच्कानच् चैतत्सञ्जाः स्युः । पूर्वसञ्जापवादः ॥

जो प्रत्यय समूह तङ् प्रत्याहार से विदित होता है अर्थात् (४०१) सख्यक सूत्रका दूसरा समूह त से लेकर महिङ् पर्यन्त सो और दो प्रत्यय जिनका केवल घान धवशिष्ट रहता है अर्थात् शानच् और कानच् ये सभ आत्मनेपद कहलावें, तङ् की जो परस्मैपदसञ्जा समझ पडतीथी सो इस सूत्र से निवृत्त भई और यह निश्चय हुआ कि परस्मैपद के कहने से केवल पाँचले समूह के (८) नौ प्रत्यय तिप् से लेकर मस् पर्यन्त और वधसु और शतृ जाने जाते हैं । और आत्मनेपद से दूसरे समूह के नौ (८) प्रत्यय त से लेकर महिङ् पर्यन्त शानच् और कानच् जाने जाते हैं ॥ ४०३ ॥

४०४ ॥ अनुदात्तङित् आत्मनेपदम् १ । ३ । १२ । अनुदात्तौ
ङितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात् ॥

जिस धातुका अनुदात्त (८) अथवा ङ् इत् हो उससे परे आत्मनेपद प्रत्यय अर्थात् तङ् और शानच् कानच् होंवे ॥ ४०४ ॥

किस धातु का क्या इत् है इस का ज्ञान धातुपाठ में होता है ॥

४०५ ॥ स्वरितजित कर्त्तृभिप्राये क्रियाफले १ । ३ । ७२ ।
स्वरितेति जितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात् कर्त्तृगामिनि क्रियाफले ॥

जिस धातुका स्वरित (८) अथवा ज् इत् हो, "और जब (क्रिया) व्यापार का फल कर्त्ता को पहुँचता हो" तब उक्त धातु से आत्मनेपद सञ्जक प्रत्यय होंवें ॥ ४०५ ॥

४०६ ॥ शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदम् १ । ३ । ७८ । आत्मनेपद-
निमित्तहीनाद्वातो कर्त्तरि परस्मैपदं स्यात् ॥

जो धातु आत्मनेपदके (स्थापक) कारक निमित्तों से हीन हो उससे परे परस्मैपद प्रत्यय कर्त्ता अर्थ में होंवे ॥ ४०६ ॥

परस्मैपद कर्मको कभी नहीं दिखाता ।

४०७ ॥ तिङ्स्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमा १ । ४ । १०१
तिङ् लभयोः पद्योस्त्रयस्त्रिवा क्रमादेतत्सञ्जाः स्युः ॥

तिप् की ति और महिङ् के ङ् से बने हुए तिङ् प्रत्याहार में जो प्रत्यय अन्तर्गत हैं उन्के परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों समूहों की जो तीनर श्रेणियों हैं जो क्रम से प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष, और उत्तम पुरुष, कहलावें ॥ ४०७ ॥

॥ ४ ८ ॥ तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनाभ्येकश्च १ । ४ ।

१०२। छठवप्रथमादिसंज्ञानि तिङ्स्त्रीणि त्रीणि प्रत्येकमेकवचनादि संज्ञानि स्यु ॥

जिन तीनर श्रेणीयों की प्रथम आदि (४ ०) संज्ञा क्रमानुसार हुए हैं तिन से प्रत्येक शिब में जो तीनर प्रत्यय जैसे तिप् तस भि इत्यादि उन जो क्रम से एकवचन द्विवचन और बहुवचन संज्ञा होवे ॥ ४ ८ ॥

४०६ ॥ युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः

१। ४। १ ५ तिङ्वाच्यकारकवाचिनि युष्मद्यप्रयुक्त्यमाने प्रयुक्त्यमाने च मध्यम ।

जिस कारक को शब्दात् कर्ता वा कर्म (३८८) को शब्दार शब्दात् तिङ् (४ १) दिखाता होवे उसी कारक को जो युष्मद् शब्द दिखावे और वह युष्मद् लक्षित ही वा न ही तो लकार के स्थान में मध्यम पुरुष (४ ०) होय । उदाहरण 'तुम मुझ को देखते हो' शब्दवा शेषक इतना ही कहें कि (मुझ को देखते हो) तो भी त्रिवा का पन्त माय कर्ता कारक की ही दिखाता है और तुम शब्द भी कर्ता कारक ही को दिखाता है इसलिये संस्कृत में ऐसी अवस्था रहते लकार के स्थान में मध्यम पुरुष होगा । और यदि ऐसा कहे कि 'मैं तुम को देखता हूँ' तो इस उदाहरण में त्रिवा का शेष भाग को 'हूँ' है सो तो कर्ता कारक को प्रभाव करता है 'तुम को यह कर्म कारक को प्रभाव करता है इस हेतु से ऐसी अवस्था में लकार के स्थान में मध्यम पुरुष कभी नहीं (पाता) होगा किन्तु वक्ष्यमाण रीति से उत्तम पुरुष होता है ॥ ४ ८ ॥

४१ ॥ अस्मद्युत्तम १। ४। १ ०। तथाभूते ऽस्मद्युत्तम ।

जब अस्मद् की शब्दवा युष्मद् से तुल्य (४ ८) हो तब लकार के स्थान में उत्तम पुरुष ४२० होवे ॥ ४१ ॥

४११ ॥ श्रेये प्रथम १। ४। १ ८। भूति वृत्ति आते ।

जिन से विधय में युष्मद् और अस्मद् (४ ८) (४१) लिये हैं उन को लोकार के शेषक में लकार (४ १) के स्थान में प्रथम पुरुष (४००) होवे भू+त् ४ इसलिये से और भू+ति ४ इस से होता है ॥ ४११ ॥

४१२ ॥ तिङ् शित् सार्वधातुकम् । १। ४। ११२। तिङ्

शितश्च धात्वधिकारोक्त्वा एतत्संज्ञाः स्यु ॥

धातो' ८१० इस सूत्र के अधिकार में उक्त जी तिङ् प्रत्यय ४०७ और जिसका शकार इत् सन्नक होवे सो प्रत्यय सार्वधातुक कहलावे ॥ ४१२ ॥

४१३ ॥ कर्त्तरि शप् । ३ । १ । ६८ । कर्त्तर्ये सार्वधातुके परे धातोः शप् ॥

जब कर्त्ता अर्थ (वाची) वाचक सार्वधातुक ४१२ परे रहे तो धातु से परे शप् प्रत्यय हो १४८ और ३ से श्+प् इत् हैं, इस से श का केवल अ बचता है, और भू+अ +ति ऐसा रूप होता है ॥ ४१३ ॥

४१४ ॥ सार्वधातुकार्द्धधातुकयोः । ७ । ३ । ८४ । अनयोः परयोरिगन्ताङ्गस्य गुणः । अवादेशः । भवति । भवतः ॥

सार्वधातुक ४१२ वा आर्द्ध धातुक " ४३० " परे रहते जिस अङ्ग के अन्त में इक् हो उसको गुण ३० आदेश होवे, इस सूत्र से भू का भो होता है, और २६ से ओ के स्थान में अच् करने पर भवति ऐसा पद बन जाता है, इसी रीति से भवतः बन जाता है, भवति = वह होता है, भवतः = वे दो होते हैं ॥ ४१४ ॥

४१५ ॥ भौऽन्तः । ७ । १ । ३ । प्रत्ययावयवस्य भ्रस्यान्तादेशः । अतोऽगुणे । भवन्ति । भवसि । भवथ' । भवथ ॥

प्रत्यय का अवयव जो भू उसके स्थान में अन्त आदेश होवे, 'अतोऽगुणे' से भव के व में जो अ है, उसके और अन्त के अकार के स्थान में अर्थात् दोनों को मिला कर एक अ हुआ तब 'भवन्ति' यह पद सिद्ध भया, भवन्ति = वे होते हैं । भवसि = तू होता है । भवथः = तुम दो होते हो । भवथ = तुम होते हो ॥ ४१५ ॥

४१६ ॥ अतो दीर्घो यञि । ७ । ३ । १०१ । अतोऽङ्गस्य दीर्घो यञादा सार्वधातुके । भवामि । भवाव । भवाम । स भवति । तौ भवतः । ते भवन्ति । त्वं भवसि । युवां भवथ' । यूय भवथ । अहं भवामि । आवां भवाव । वयं भवामः ॥

यञादि सार्वधातुक परे रहते ङ्स्व अकारान्त अङ्ग की दीर्घ आदेश होवे, इस प्रकार से भव + सि = भवामि = मैं होता हूँ । भवाव' = हम दो होते हैं । भवामः = हम होते हैं ॥ ४१६ ॥

सवनाम के साने से वतमान कास इस रूप का होता है यथा—

	॥ एक वचन ॥	॥ द्विवचन ॥	॥ बहु वचन ॥
प्रथम पु	अ भवति अह होता है ।	तौ भवत वे दो होते हैं ।	ते भवन्ति वे होते हैं ।
मध्य पु	त्वं भवसि तू होता है ।	युवा भवथ तुम दो होते हो ।	यूयं भवथ तुम होते हो ।
उत्त पु	अहं भवामि मैं होता हूँ ।	अवा भवाथ हम दो होते हैं ।	अयं भवाम हम होते हैं ।

४१० ॥ परोक्षे लिट् इ । २ । ११५ । भूतानद्यतनपरोक्षार्य
वृत्तेर्धातौलिट् स्यात् । लस्य तिवाद्यः ।

भूतानद्यतन * भूत खान ३८८ में जो बात (वा) क्रिया बिना देखी जो उम के प्रकाय करने के लिये जिस धातु का व्यवहार किया जाय उम से परे लिट् ३८८ होवे । लिट् में ५ खोर ८ इत् है खोर न् के स्थान में तिप् आदि प्रत्यय ३ १ होते हैं ॥ ४१० ॥

४१८ ॥ परस्मैपदानां यत्तत्सुस्यल्युमप्यस्वमा इ । ४ । ८२ ।

लिट्स्तिवादीनां यलाद्य स्युः भू-अ इतिस्थिते ॥

परस्मैपद में तिप् आदि जो प्रत्यय जो लिट् के स्थान में आने में किये हैं उम के स्थान में अन् इत्यादि होंगे । अर्थात् ॥ ४१८ ॥

	॥ एकवच ॥	॥ द्विवचन ॥	॥ बहुवचन ॥
प्रथम पुरुष	अन्	अनुन्	अन्
मध्यम पुरुष	अन्	अनुन्	अ
उत्तम पुरुष	अन्	अ	अ

जब इन आदेशों को करते हैं तब न् खोर न् का नाप १३२ । १ । होता है खोर भू+अ पिका रहजाता है ॥

* खान ही प्रकार के वचन से अद्यतन खोर अद्यतन व्यतीत पाधीरात के प्रकार आनराती पाधीरात तक बीचका खान अद्यतन ५ वचन में बाहिर का अद्यतन ५ वचन से नु के विरत बुधा कि अद्यतन अर्थात् अत अतिव्यक्त आर वतमान को ही अद्यती ५ खोर अद्यतन अद्यतन खोर अतिव्यक्त अ ही भी जाती है ॥

४१६ ॥ भुवो वुग्लुङ्लिटोः ६ । ४ । ८८ । अचि ॥

जिस के आदि में अच् है ऐसा जब लुङ् वा लिट् का आदेश परे रहे तब भू धातु

को वुक् का आगम होवे ॥ ४१६ ॥

वुक् का उ और क् दोनों इत् हैं, इस भाति से भू + अ = भूव् + अ ॥

४२० ॥ लिटि धातीरनभ्यासस्य ६ । १ । ८ । लिटि परे अन-

भ्यासधात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे रुत आदिभूतादचः परस्य तु द्विती

यस्य । भूव् भूव् अ इतिस्थिते ॥

लिट् लकार के परे होने पर अनभ्यास (नहीं द्वित्व हुआ जिसको) धातु के एकाच् (एक स्वर वाले) प्रथम अवयव (भाग) को द्वित्व होवे परन्तु यदि उस प्रथम भाग के आदि में अच् हीतो दूसरे एकाच् भाग को द्वित्व होवे, इस रीति से, भूव् यहाँ धातु का द्वितीय (दूसरा) भाग एकाच् है ही नहीं तो 'भूव्' के द्वित्व होने पर भूव् + अ = भूव् भूव् + अ, यह स्वरूप हुआ तब ॥ ४२० ॥

४२१ ॥ पूर्वोऽभ्यास । ६ । १ । ४ । अच ये द्वे तयोः ॥

४२० से जो दो रूप हुए हैं, उन में से पहिले की अभ्यास सन्ना होवे ॥ ४२१ ॥

४२२ ॥ हलादि शेषः ७ । ४ । ६० । अभ्यासस्यादिर्हल्

शिष्यते अन्येहलीलुप्यन्ते ॥

अभ्यास का ' ४२ ' आदि (पहिला) हल् रह जावे और शेष हली का लोप होय, इस सूत्र के लगाने से 'भूव् भूव् + अ' = 'भू भूव् + अ' हुआ ॥ ४२२ ॥

४२३ ॥ ऋस्वः ७ । ४ । ५६ । अभ्यासस्याचः ॥

अभ्यास ४२१ के अच् (स्वर) के स्थान ऋस्व आदेश होवे, तब इस रीति से भू भूव् + अ = भू भूव् + अ हुआ ॥ ४२३ ॥

४२४ ॥ भवतेर. । ७ । ४ । ७३ । भवतेरभ्यासोकारस्य अः स्याल्लिटि ॥

भू धातु के अभ्यास के उ को अ होवे, जब लिट् परे रहे तो तब = "भू भूव् + अ" = 'भू भूव् + अ' हुआ तब ॥ ४२४ ॥

४२५ ॥ अभ्यासे चर् च । ८ । ४ । ५४ । अभ्यासे भलां चरः स्युर्जशश्च । भशांजश खयां चर इतिविवेकः । वभूव वभूवतु. वभूव् ॥

अभ्यास को भङ्ग के स्थान में चर् और जग् भी जावे अर्थात् भाग् के स्थान में
जग् और चयों के स्थान में चर् इस में इतना विचार है तब इस को लगाने में म भूग् + च
= वभूव (वह बुधा) वभूवत् ४१८ = वे दो हुए । वभु = वे हुए ॥ ४२३ ॥

४२६ ॥ लिट् च । ३ । ४ । ११५ । लिट् आदेशस्तिष्ठार्धधातुव
संज्ञ स्यात् ।

लिट् लकार के स्थान में आदेश बुधा को लिट् ४ १ उसकी आर्धधातुव
संज्ञा होवे ॥ २६ ॥

४२७ ॥ अर्धातुवस्येङ् वसादे ० । २ । ३५ । वभूविय । वभूवयु
वभूव । वभूव । वभूविव । वभूविम ॥

वच् प्रत्याहार है आदि में जिस के ऐसे आर्ध धातुव ४२ को इट् का प्रागम
होवे । १ के अगुमार इट् का जो इ सी आर्धधातुव प्रत्यय के आदि में घरा जावेगा ।
इस लिये वभूविब-तु बुधा । वभूवत् तुम दो हुए । वभूव तुम हुए । वभूव मैं हुए । वभू-
विव ४२७ । हम दो हुए । वभूविम हम हुए ॥ ४२७ ॥

४२८ ॥ अनद्यतने लुट् । ३ । ३ । १५ । भविष्यत्यनद्यतनेऽर्थे
धातोलुट् ॥

अनद्यतन भविष्यत् ३८८ काठ में जाने वाले आर्य के प्रकाश करने में चातु से
परे लुट् ३८८ होवे ॥ ४२८ ॥

४२९ ॥ स्यतासी लृलुटो ३ । १ । ३३ । धातोरेतौ स्तो
लृलुटो परत । गङ्गापवाद् लृ इति लृलुटोऽयश्चम् ॥

जय ल और लुट् परे रश् तो चातु को स्य और ताम प्रत्यय लम से जावे । यह
सूत्र शप् ४१७ और इयन् आदि का अणवाद् है यद् अ स लङ् और लट् हीना लकारों का
प्रत्यय होता है ॥ ४२९ ॥

४३० ॥ आधधातुर्क शेषः । ३ । ४ । ११४ । लिट् शिषोऽप्यौ
धातोरेति विहितः प्रत्यय एतत्संज्ञ स्यात् ॥

लिट् और मिन् प्रत्यय ४१२ लोङ् लर मेष और प्रत्यय लो धातो रेमा कप
कर निषो चातु से विहित होवे व आध धातुव संज्ञा पासे होवे । यद्वा ४२७ से इट् का
प्रागम होता है और ४२७ और ४२८ से भविता म होता है ॥ ४३ ॥

४३१ ॥ लुट् प्रथमस्य डारौरसः २ । ४ । ८५ । डित्त्व साम-

ध्यादिभस्यापि टेलोपः । भविता ॥

लुट् लकार के प्रथम पुरुष ४०७सञ्जक प्रत्यय के स्थानमें डा रौ और रस् आटेग क्रम से होंगे। जब डित् (ड् है इत् जिसका) प्रत्यय परे रहताहै तब पूर्वले भ १०६ सञ्जक की टि २६२ का लोप होता है। परन्तु यहा भवितास् की भ सञ्जा नहीं है इस लिये उल की टि का लोप ४६ भी न होवेगा, पर कोई वर्ण निरर्थक इत् नही होता तो यहा भी उकार की इत् सञ्जा निष्फल (निरर्थक) न हो जावे इस लिये भवितास् जिस की भ सञ्जा नही हुई उस की भी टि का लोप होगया। तब भवितास् = भवित्, और डा के आ में मिलान से "भविता" सिद्ध भया। भविता वह होगा । ४३१ ॥

४३२ ॥ ताम्स्त्योलोपः । ७ । ४ । ५० । सादौ प्रत्यये ॥

तास् प्रत्यय और अस् धातु का लोप होवे सकारादि प्रत्यय परे रहते।

यहा प्रकरण में इस सूत्र का कुछ फल नहीं है, विना अगले ४३३ सूत्र में अनु-बन्धि के इस लिये इस की अगले सूत्र ४३३ में अनुबन्धि होती है ॥ ४३२ ॥

४३३ ॥ रिच । ७ । ४ । ५१ । रादौ प्रत्यये तथा । भवितारौ ।

भवितारः । भवितासि । भवितास्थः । भवितास्थः । भवितास्मि । भवि-
तास्व । भवितास्म ॥

तास् प्रत्यय और अस् धातु का लोप होवे जब उन से परे रादि (रेफ है आदि में जिस के) प्रत्यय हो इस रीति से यह पद सिद्ध होते हैं ४३१ जैसे भवितारी = वे दो होंगे भवितारः = वे होंगे। भवितासि = तू हीगा। भवितास्थः = तुम दो होंगे। भवितास्थः तुम हीगे, भवितास्मि। मैं हीऊगा। भवितास्व। हम दो होंगे। भवितास्मः हम हीगे ॥ ४३३

४३४ ॥ लृट् रोपे च । ३ । ३ । १३ । भविष्यद्द्व्याद्वातोर्लृट्
क्रियार्थायां क्रियायां सत्यात्मसत्यां वा । लृट् । भविष्यति । भविष्यत ।
भविष्यन्ति । भविष्यसि । भविष्यथ । भविष्यथ । भविष्यामि । भवि-
ष्यावः । भविष्यामः ॥

भविष्यत् अर्थ में जो धातु लगाया जावे उस से परे लृट् ३६ होय पर दूसरी क्रिया जो भविष्यत् कार्य के फल के लिये एक कार्य प्रकाश करती हो सी रहे वा न रहे ८६

'वह पढने जाता है' इस उदाहरण में पढना जो क्रिया है, सी भविष्यत् काल की है, क्यों कि पढना अब तक हुआ नही है, किन्तु होने वाला है, इस कार्य के फल के

द्विजे जाना एक दूसरी क्रिया आई है इस दूसरी क्रिया को क्रियावाँ क्रिया कहते हैं ८८० संख्यक सूत्र में यह नियम दिया है कि जब ऐसी क्रियायाँ क्रिया रहे तब भविष्यत् पत्र में धातु से परे तुमुन् और एवुश् दो प्रत्यय स्थापन किये जावें परन्तु इस सूत्र का अभिप्राय यह है कि ऐसी क्रिया रहे वा न रहे पर भविष्यत् पत्र में धातु से परे लट् होवे जब क्रियावाँ क्रिया रहेगी तब एक भविष्यत् क्रिया को दो रूप ही सकते हैं एक तो लट् और दूसरा तुमुन् और एवुश् करके परन्तु लुट् कर्ता कर्म और भाव इन तीनों पदों में होता है और 'तुमुन् और एवुश् प्रत्यय 'अप्यय कृतो भावे' और कर्त्तरि लृत् इन दोनों के अनुसार 'भाव और कर्ता' पदों में ही होते हैं लुट् लकार ४२८ और लृट् लकार ४२४ दोनों भविष्यत् पत्र में (होते हैं) आते हैं इन में इतना ही लेवल मेट है ॥

अद्यतन भविष्यत् में लृट् लकार होता है और अनद्यतन भविष्यत् में लुट् होता है जैसे कार्गीर्य प्रयातासि कश्च तू चासी आयसा और क्व कुक् अवधि न रहे और लेवल भविष्यत् काक प्रकाय कारण हो तो लुट् लकार का प्रयोग होता है जैसे "रविस्त पत्यति मि" गङ्ग - लूय निस्सन्देह तपैना + इस लृटाहरण में कोइ ऐसी अवधि नहीं है जैसे कि कश्च को अवधि पूर्वोदाहरण में दी गई है ॥

४२८ से स्व को और ४२० से इट् को होने से और १६१ से सू के स्थान में यू आदेश के होने से ऐसे षट् वन आते हैं जैसे 'भविष्यति' - वच जोगा भविष्यत - वे दो होने भविष्यन्ति - वे हींगे भविष्यसि - तू जोगा भविष्यथ - तुम दो होने भविष्यथ - तुम जोगे भविष्यामि - मैं जूना भविष्याव - हम दो होने भविष्याम - हम होने ॥ ४२४ ॥

४३५ ॥ लोट् च । इ । ए । १६२ । विध्याद्यर्थेषु धातोर्लोट् ॥

विधि आदि पदों में ४५१ धातु से पर लोट् ३८८ लकार होवे ॥ ४३५ ॥

४३६ ॥ आगिपि लिङ् लोटो । इ । ए । १०३ ।

आगीर्वादि पर्य में धातु से परे लिङ् ४२२ और लोट् ४२१ लकार होवे ॥ ४३६ ॥

४३७ ॥ एरु । इ । उ । ८६ । लोट् लृकारस्य च । भवतु ॥

लोट् ४३५ के स्थान में जो प्रत्यय आदेश हो उन के इकार के स्थान में उ होवे ।

यहाँ इतना जानना उचित है कि लेवल तिप् और मि ४ १ के इकार के स्थान में लकार होता है । तब भवति - ४२० से भवतु सिद्ध हुआ । भवतु वच होवे ॥ ४३७ ॥

४३८ ॥ तुञ्चोस्तातडागिष्यन्त्यतरस्याम् । ७ । १ । ३५ ।

आगिपि तुञ्चोस्तातङ् वा । परत्वात्सर्वादेशः । भवतात् ॥

आगिप् (आगीर्वादि) पत्र में तु और ङि को तातङ् आदेश विकल्प में जाने । तातङ् आदेश यद्यपि लिट् है "५६ से अन्त्यवच को होना चाहिये तो भी मकल तु और

हि के स्थान में होता है क्योंकि "अनेकाल् गित् सर्वस्य" यह सूत्र पर है "डिच्च इस सूत्र से तो इस हेतु में (विप्रति० १२८) यह नियम लगकर, सम्पूर्ण आदेश को करता है, "भवतात्" ईश्वर करे वह होय ॥ ४३८ ॥

४३९ ॥ लीटो लड्वत् । ३ । ४ । ८५ । लीट स्तामाद्यः सलोपः ।

लड् के सदृश लीट् को भी तामादि (ताम् आदि है जिन के) ४४० आदेश होंगे और उस के स् का लोप भी होंगे ॥ ३३९ ॥

४४० ॥ तस्थस्थमिपांतान्तन्तासः । ३ । ४ । १०१ । छितप्रच-
तुर्णां तामाद्यः । भवताम् । भवन्तु ॥

छित् लकार अर्थान् लड्, निड्, लुड् और लृड् के आदेश जो तस्, थस्, थ और मिप् हैं उन के स्थान में क्रम से ताम्, तम्, त और अम् होंगे । तब इस रीति से भवतस् = भवताम् = वे दी होंय । भवन्तु = वे होंय ॥ ४४० ॥

४४१ ॥ सेर्ह्यपिच्च । ३ । ४ । ८७ । लीटः सेर्हिं सोपिच्च ॥

लीट् के स्थान में जो सि उस को हि होंगे सो पित् न होंय ॥ ४४१ ॥

४४२ ॥ अतो हे । ६ । ४ । १०५ । लुक् । भव । भवतात् ।
भवतम् । भवत ॥

ऊरव अकार से परे जो हि ४४१ उसका लुक् '२०३' होंगे, तब भव + हि = ४४२ से भव अथवा ४३८ से भवतात् = तू हो वा होंगे, भवतम् = तुम दी होंगे, भवत = तुम होंगे ॥ ४४२ ॥

४४३ ॥ मेनिं । ३ । ४ । ८९ । लीटः ॥

लीट् लकार के स्थान में जो मि आदेश है, उसके स्थान में नि होंगे ॥ ४४३ ॥

४४४ ॥ आडुत्तमस्य पिच्च । ३ । ४ । ९२ । लीडुत्तमस्थाट्
पिच्च । हिन्वीरुत्वं न इकारोच्चारणसामर्थ्यात् । भवानि ॥

लीट् के स्थान में जो उत्तमपुरुष सञ्ज्ञक प्रत्यय आदेश होंगे उनकी आट् का आगम होंगे, और वह आट् पित् मानना चाहिये, हि ४४१ और नि '४४३' के इकार के स्थान में ४३७ से उ नहीं होता, क्योंकि यदि उकार करना हो तो उन दोनों में इकार का उच्चारण व्यर्थ हो जावेगा, तब भव + मि = ४४३ से भव + नि = "४४४" से = भवानि, 'मै होंयु' ॥ ४४४ ॥

४४५ ॥ ते प्राग्धातोः । १ । ४ । ८० । ते गत्युपसर्गसञ्ज्ञका
धातोः प्रागेव प्रयीक्तव्या ॥

क्षिन् की * गति और † उपसर्ग संज्ञा से वे घातु के पूर्व ही अगाप आवें ॥ ४४५ ॥

४४६ ॥ चानि षोड् । ८ । ४ । १६ । उपसर्गस्थान्निमित्तात्प
रस्य लोडादेशस्यागीत्यस्य नस्य ष स्यात् । प्रभवाणि ॥

उपसर्गस्थ ए वा प् से एरे की षोड् का चानि ४४६ " ४४४ उस के मकार की अकार होने तब प्रभवाणि = प्रभवाणि = मं समर्थ होखें ॥ ४४६ ॥

४४७ ॥ दुर घत्वषत्वयोरुपसर्गत्वप्रतिषेधोपकृत्य ।
दु स्थिति । दुर्भवाणि ॥

जय सू की प् और न् की प् करने ही तो दुर शब्द की ४४ उपसर्ग संज्ञा का प्रतिषेध (निषेध) काइया जाचिये इस पार्तिषेध के बल से यहां उपसर्ग संज्ञा के अभाव से दु स्थिति = दुर्भवया यहां घत्व नहीं मया और दुर्भवाणि में प् नहीं मया में दु की होखें ॥ ४४७ ॥

४४८ ॥ अन्त शब्दस्याङ्क्विविधिणत्वेऽपसर्गत्वं वाच्यम् ।
अन्तर्भवाणि ॥

अन्तर् शब्द की उपसर्ग संज्ञा काइमी जाचिये परन्तु यदि अङ् और कि प्रत्यय का बिधान और न् की प् करना हो तो इस से अन्तर्भवाणि में अत्य हुआ । अन्तर्भवाणि में भीतर होखें ॥ ४४८ ॥

४४९ ॥ नित्यं ङित । ३ । ४ । ९९ । सकारान्तस्य ङिटुक्त
मस्य नित्य लोप । अलीन्त्यस्येति सलीपः । भवाव । भवाम ॥

ङित् मकार में की सकारान्त उत्तम पुञ्ज आदेश तिप्तका नित्य ही लोप होने २४ से अन्त्य (अन्त में होने वाला) की न् उस का लोप होता है । (छोटी लड़कत) इस के अन्त में यण ४४९ षोड् मंभी लागता है इन लिये भव + वम् = ४९६ से और ४४९ से अभाव इस ही आवें । परी ही पूर्ववत् प्रक्रिया से ही भवाम-इम होब ॥ ४४९ ॥

४५० ॥ अनद्यतमे णङ् । ३ । २ । १११ । अनद्यतनभूतार्थसत्ते
धातीण्ड् ॥

अनद्यतन भत (भतीत) अद्य में की घातु तिस म लङ् लकार होने ॥ ४५० ॥

४५१ ॥ सुह्लङ्क्षुह्लङ्क्षुदात्त । ६ । ४ । ७१ । एण्यद्गस्याट् ।

लुङ् लकार ४६२ लङ् ४५० और लृङ् ४७७ लकार परे रहते अङ्ग को अट् का आगम होवे (और) उस अट् को उदात्त जानना ॥ ४५१ ॥

४५२ ॥ इतश्च । ३ । ४ । १०० । डितोलस्य परस्मैपदसिकारान्तं यत्तस्य लोपः । अभवत् । अभवताम् । अभवन् । अभवः । अभवतम् । अभवत । अभवम् । अभवाव । अभवास ॥

डित् लकार के स्थान में जो इकारान्त परस्मैपद ४०२ आदेश हैं । अर्थात् ति, भि (अन्ति) भि तिन का लोप होवे इस से यद्वा “२४” अन्त्यवर्ण “इ” का लोप भया तब ये पद सिद्ध होते हैं, जैसे अभवत्, वह हुआ । अभवताम् ४४० वे दो हुए । अभवन् २३ वे हुए । अभवः १२० और १०८ तू हुआ । अभवतम् ४४० तुम दोनों हुए । अभवत, तुम हुए । अभवम् ४४० मैं हुआ । अभवाव, हम दोनों हुए । अभवास हम हुए ॥ ४५२ ॥

४५३ ॥ विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् । ३ । ३ । १६१ । एष्वर्थेषु धातोर्लिङ् ॥

विधि अर्थात् प्रेरणा वा आज्ञा । “निमन्त्रण” भोजन आदिक कारणे के लिये दौहत्र आदि का प्रवर्तन (निदेश) “आमन्त्रण” किसी की उस की इच्छानुकूल सम्मति देनी । “अधीष्ट” सत्कार पूर्वक ‘व्यापार’ (प्रेरणा) “सम्प्रश्न” पृच्छना । प्रार्थना मागना । इन अर्थों में धातु से परे लिङ् लकार होवे ॥ ४५३ ॥

४५४ ॥ यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो डिच्च । ३ । ४ । १०३ । लिङः परस्मैपदानांयासुडागमो डिच्च ॥

लिङ् के स्थान में जो परस्मैपद सप्तावाले आदेश तिन को यासुट् का आगम होवे सो यासुट् उदात्त और डित् होवे ॥ ४५४ ॥

४५५ ॥ लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य । ७ । २ । ७६ । सार्वधातुक-लिङोऽनन्त्यस्य सस्य लोपः । इति प्राप्ते ॥

लिङ् के स्थान में जो सार्वधातुक आदेश ४१२ तिन के अवयव अनन्त्य (अन्त्य से न होने वाले) स् का लोप होवे । यह प्राप्त हुआ तब ॥ ४५५ ॥

४५६ ॥ अतो ये यः । ७ । २ । ८० । अतः परस्य सार्वधातु-कावयवस्य यास् इत्यस्य इय् । गुण ॥

इस अवयव से परे जो सार्वधातुक का अवयव यास् ४५४ उस को इय् होवे । इम

से (भव + यास् + त्) के स्थान में (भव + इय् + त्) हुआ तब गुण क्रिया ती भवेय् + त्
 ऐसा हुआ । तब ॥ ४१६ ॥

४५० ॥ लोपी ष्योर्विधि । इ । १ । इइ ॥ भवेत् । भवेताम् ।

वल् प्रत्याहार (१) परे रहते व् और य् का लोप होने 'इष रीति से वे दो पद
 सिद्ध भए" जैसे भवेत् इष होने । भवेताम् व् दोनों होने ॥ ४५० ॥

४५८ ॥ भोष्णस । इ । ४ । १०८ । लिङ् । भवेयु । भवे ।

भवेतम् । भवेत् । भवेयम् । भवेव । भवेम ॥

लिङ् लकार के स्थान में जो लि तिष्ठ को हुस् होने ॥ ४५८ ॥

तब भवेय् + जुस् हुआ १४२ । १२ । और १८ से भवेयु वे होंगे । भवे नू होने
 भवेयम में होंगे । भवेव ४४८ हम दोनों होंगे । भवेम ४४८ हम होंगे ॥

४५९ ॥ क्षिदाश्रियि । इ । ४ । ११६ । आश्रियि लिङ्स्तिङ्गा

धधातुसंज्ञा स्यात् ॥

आशीर्बाद धर्म में जो लिङ् लकार, इस के स्थान में जोनख तिवाहिक प्रत्यय
 (तिङ्) आदेश है उन की धातुसंज्ञा होने ॥ ४५९ ॥

४६ ॥ क्षिदाश्रियि । इ । ४ । ११६ । आश्रियि लिङ्गे यासुट्

कित् स्यात् । स्त्रीः संयीगाद्योरिति सखीप ।

आशीर्बाद धर्म में हुआ जो लिङ् लकार उसकी जो यासुट् धामम ४१ होय
 वह कित् होने स्त्री-संयीगाद्योरन्तेच । इस सूत्र से यासुट् के यास् में जो स् उसका लोप
 होता है ॥ ४६ ॥

४६१ ॥ क्वचित् च १ । १ । ५ । गित्कित् क्वचित् क्वचित्

क्वचे गुणवर्धनी न स्त । भूयात् । भूयास्ताम् । भूयासु । भूया । भूया
 स्तम् । भूयास्त । भूयासम् । भूयास्व । भूयास्म ॥

जिस निमित्त को मागकर इन्सबब गुण का द्वि की प्राप्ति होय सो निमित्त
 यदि गित् (ग् जिसका इत् गया है) कित् (क्वचित्का इत् है) धरवा कित् (क्व जिसका
 इत् गया है) हो तो गुण धरवा द्वि न होने इन्सबब का अभिप्राय यह है कि जिस
 सूत्र से गुण या द्वि का विधान हो उस में इत् पदकी "इकोमुच्यते" इय से उपरिबिधि
 होती हो जैसे भू का क्व जो इत् १ प्रत्याहार में है उसको स्थान में गुण ४४१ से पाया
 क्योंकि यासुट् धातुसंज्ञा ४५९ प्रत्यय पर है परन्तु यासुट् ४६ से कित् माना गया है

इसी द्वैत से गुण नहीं होता, तब भूयात् यह पद सिद्ध हुआ भूयात् = ईश्वर करे कि वह होवे, भूयास्ताम् = वे दो होवे, भूयासुः ४५८ १२० १०८ = वे होवें, भूयाः तू होवें, भूयास्तम् = तुम दो होवो, भूयास्त = तुम होवो, भूयासम् = मैं होवु, भूयास्व = हम दो होवें, भूयास्म = हम होवें ॥ ४६१ ॥

४६२ ॥ लुङ् ३ । २ । ११० । भूतार्थे धातोर्लुङ् स्यात् ॥

सामान्य अद्यतन भूतकाल को प्रकाश करने अर्थ में धातु से परे लुङ् लकार ३८८, होवे, यहा इतना विचार है, कि अद्यतन भूत अर्थ में लुङ् ही होता है, और जब परोक्ष, अपरोक्ष, अद्यतन, वा अनद्यतन का विचार नहीं रहता किन्तु केवल भूतकाल का प्रकाश करना ही तो भी लुङ् लकार होता है, नहीं तो परोक्ष अनद्यतन भूत में लिट् और अपरोक्ष अनद्यतन भूत में लङ् ये दोनों क्रम से बाध लेते हैं ॥ ४६२ ॥

४६३ ॥ माङि लुङ् । ३ । ३ । १७५ । सर्वलकारापवादः ॥

माङ् उपपद रहते लुङ् लकार होवे । यह लुङ् सभ (घ) लकारों का अपवाद है । ऐसी अवस्था में वर्तमान आदि काल का निश्चय प्रसंग से होता है ॥ ४६३ ॥

४६४ ॥ स्मोत्तरे लङ् च । ३ । ३ । १७६ । स्मोत्तरे माङि लङ् स्याच्चाल्लुङ् ॥

जब माङ् से उत्तर (परे) स्म होय तब (स्म है परे जिसके ऐसे माङ् के उपपद रहते) लङ् लकारहोवे चकारसे लुङ् लकार भी होवे, इन लङ् और लुङ् में से जिसका प्रयोग द्रष्टृ ही उसीका प्रयोग करना चाहिये यह उदाहरण में ४६८ देख लेना ॥ ४६४ ॥

४६५ ॥ च्लि लुङि । ३ । १ । ४३ । श्वाद्यपवादः ॥

लुङ् लकार परे रहते धातु से च्लि प्रत्यय होय । यह च्लि शप् ४१३ आदिका अपवाद है ॥ ४६५ ॥

४६६ ॥ च्ले सिच् । ३ । १ । ४४ । इचावितौ ॥

च्लि. ४६५ के स्थान में जो सिच् ही * उस सिच् के इ की ३३ इस से और च् की (३) से इत् सञ्जा होती है ॥ ४६६ ॥

* कोई कहे कि यदि च्लि को सिच् करना था तो पहिले ही एक सूत्र पढ़कर सिच् करलेते च्लि का क्या फल हुआ, तो इस का यह समाधान है कि च्लि को सिच् से विना "अपादि" आदि में चिण् आदि आदेश भी होते हैं तो इस लिये च्लि का पृथक् कारण किया है ।

४६० ॥ गातिस्याधुपाभूभ्य सिच परस्मैपदेषु । २ । ४ । ७७ ।
 लुक् । गापाविहेषादेशपियती गृह्यते ॥

गाति (गा) स्या (घटा) घु संज्ञक (कावाच्यदाप्) इस से निर्दिष्ट और वा चीर
 मू इन वातुषीं से परे परस्मैपद में सिच ४६० का लुक् होय यहाँ गमन पर्य में जो इत्
 वातु उस जो जो गा आदेश होता है और पीने पर्य में जो वा वातु जिस जो पिब आदेश
 होता है उन का पदच होता है ॥ ४६० ॥

४६८ ॥ भूसुवीस्तिङि । ७ । ३ । ८८ । भूसू एतयो सार्वधातु
 के तिङि गुणो न । अभूत् । अभूताम् । अभूवन् । अभू । अभूतम् ।
 अभूत । अभूवम् । अभूव । अभूम ॥

मू और मू इन दो वातुषीं जो गुण ४१४ न होय यदि सार्वधातुक तिङ् पदव्य
 परे रहे तो । तब मू+लुङ् ४६२ । ४ । १ । ४१२ से अभूत् पद हुआ । अभूताम् वे दो हुए ।
 ४४ अभूवन् ४१८ वे हुए । अभू तू हुआ । अभूतम् तुम दो हुए । अभूत तुम हुए ।
 अभूवम मैं हुआ । अभूव हम दो हुए । अभूम हम हुए ॥ ४६८ ॥

४६६ ॥ न मास्वीगे । ६ । ४ । ७४ । अडाटी न स्त । मा
 भवान् भूत् । मास्म भवत् । मास्म भूत् ॥

तब वातु के पूर ४११ अद् और आद् ४०२ न होवे जब वातु का माह के साथ
 योग हो अर्थात् वातु माह के साथ रहे । मा भवान् भूत् तू न होवे (आप न होव)
 मास्मभवत् ४६२ और मास्म भूत्) वह न हो ॥७६६॥

४७० ॥ सिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ । ३ । ३ । १३६ ।
 हेतुहेतुमहावादि सिङ्निमित्तं तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् क्रियाया
 अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम् । अभविष्यत् । अभविष्यताम् । अभविष्यन् ।
 अभविष्य । अभविष्यतम् । अभविष्यत । अभविष्यम् । अभविष्याव ।
 अभविष्याम ॥ सुसृष्टिश्चेद्भगविष्यत्तदा सुभिक्षमभविष्यत् ॥ प्रत्यादि
 श्रेयम् ॥ अत सातत्यगमने २ अतति ॥

जहाँ सिङ् अकार के निमित्त (आपकार) भाष-विधि निमित्त) वासन्त ४६६

आदि) से से कोई हो तहां " भविष्यत् अर्थ से लृट् लकार "३८२" स्थापन करो परंतु जब क्रिया की अस्ति सझनी जाय ॥

तव भू धातु से परे इस लकार के होने पर यथा क्रम इसप्रकार के रूप होते हैं जैसे भू+लृट्=भू+ल् होने से ४०१ । ४५२ । ४१४ । ४२८ । ४२७ । १६३, ४५१ । इन से अभविष्यत्, जो वह होय । अभविष्यताम् ४४० जो वे दो ही अविष्यन् ४५१ । ४५२ और और २३ जो वे ही । अभविष्यः, जो तू हो । अभविष्यतम्, जो तुम दो होवो । अभविष्यत् जो तुम हो । अभविष्यम्, जो मैं होवु । अभविष्याव, जो हम दोहो । अभविष्याम, जो हम ही ।

अब दूसरा अत धातु जिस का निरन्तर गमन अर्थ है उस का वर्णन (लकारों में साधन प्रक्रिया) लिखते हैं धातु पाठ में अत् का रूप अत है अन्तिम "अ" अनुबन्ध कहलाता है । अत् ३८८ । ४०० । ४०१ । ४१३ । से अतति वह निरन्तर जाता है ॥ ४७० ॥

४७१ ॥ अत आदेः । ७ । ४ । ७० । अभ्यासस्यादेरती दीर्घः
स्यात् । आत । आततु । आतुः । आतिथ । आतथु । आत । आत ।
आतिव । आतिम । अतिता । अतिष्यति । अततु । अततात् ॥

अभ्यास के ४२१ आदि ऋस्व अकार को दीर्घ होय । इस से लिट् से आत ४१८ वह गया । आततुः वे दो गए । आतिथ ४२७ तू गया । आतथुः, तुम दो गये । आत, तुम गये । आत, मैं गया । आतिव, हम दो गए । आतिम, हम गये ।

लृट् लकार में अतिता ४२८ । ४२८ और ४२१ । ४२७ से सिद्ध भया अतिता वह जायगा । इत्यादि जानने । और लृट् लकार में अतिष्यति ४३४ वह जायगा । और लोट् लकार में अततु । ४३७ वह जावे ॥ ४७१ ॥

४७२ ॥ आडजादीनाम् । ६ । ४ । ७२ । अजादेरङ्गस्याट् लुङ्
लृङ् लृङ्ङु । आतत् । अतेत् । अत्यात् । अत्यास्ताम् । लुङि सिचि
ब्रुडागमे कृते ॥

* यह लृट् लकार भूत अर्थ में भी दीख पडता है, जैसे " अक्की बारस ही तो बहुत धान भी हो " अथवा " जो अक्की वृष्टि होती तो बहुत धान भी होता " इन उदाहरणों में कार्य की अस्ति प्रकाश की गई है, और पहिले वाक्य में वृष्टि होने का लक्षण नहीं दीख पडता इस लिये बहुत धान का होना, असम्भव है, दूसरे का " वृष्टि अक्की नहीं हुई, इस लिये बहुत धान भी नहीं हुआ " यह आशय है, इस लिये वृत्ति में जो भविष्यत् काल में कहा है, वह अनित्य है ॥

अत्रादि अह् को आद् का आगम होय जब सुब् शब् सुब् इन में से कोई एक परे होय इस किये अह् में आतत् वहमया । अह् में अतेत् ४१० वह जावे । आयीर्वाद अह को प्रकाश करने में अस्यात् ४१८ अग्वर करे कि वह जावे । जब सुब् ४१२ आये तब सिच् ४१६ परे जो और इद् का आगम ४२० भी जो चुका हो तब ॥ ४०२ ॥

४०३ ॥ अस्तिसिचोऽपृष्ठे । ० । ३ । ६६ । विद्यमानात्सिचो
ऽस्तेश्च परस्याऽपृष्ठस्य इत्त ईडागम ॥

विद्यमान सिच् अथवा विद्यमान अस् आतु से जो अष्टक १८२ इच् (१) अह को इद् का आगम होवे ॥ ४०३ ॥

४०४ ॥ इट ईटि । ८ । २ । २८ । इट परस्य सस्य लोप स्वादौटि ।
सिखलोप एकादेशे सिचो वाच्य । आतीत् । आतिष्ठाम् ॥

इद् ४२० से परे जो स् उभवा लोप होय परन्तु जब ईद् परे रहे तो यह सिच् लोप् (सिच् के स् का ४०४ से लोप) एकादेश के करने में सिख लक्षणा आश्रिये । इस का यह फल हुआ कि 'आतिस् + ईत्' यहाँ सिच् के स् का लोप करने के अनन्तर आति + ईत् में यदि कोई ईई से विपादो के स् लोप का ५२ दीर्घ एकादेश विधायक सूत्र की दृष्टि में अस्िख होने पर अस्िख का निबेध करे तो उस को यह समाधान देना कि 'एका देश के करने पर सिच् का लोप सिख लक्षणा' तब इस से स का लोप सिख मान ५२ से दीर्घ होने पर 'आतीत्' सिख भया । आतीत् वह गया । आतिष्ठाम् = ४४ । २६१ । ७९ से होगये ॥ ४०४ ॥

४०५ ॥ सिखभ्यस्तयिदिभ्यश्च । ३ । ४ । १ । ६ । सिचोऽभ्य
स्ताहिदेश्च परस्य ङित्मन्वन्विनीम्नेर्बुम् । आतिषु । आतीः ।
आतिष्ठम् । आतिष्ठ । आतिषम् । आतिष्व । आतिष्म । आतिष्यत ।
विध गत्याम् । ३ ॥

सिच् ४१६ अथवा अय्यस्त संज्ञक आतु अथवा विद् आतु इन से परे ङित् लक्षार के स्थान में जो आदेश भिन्न उस को चुप् होवे । तब आतिषु से भय । आतीः ४०२ ४०३ नू भया । आतिष्ठम् तुम दा गवे । आतिष्ठ तुमभ्ये । आतिषम् मैं भया । आतिष्व इम लोभ्ये । आतिष्म इम गये । अह् लक्षार में आतिष्यत् ४० जो वह जाय । इत्यादि पीरसी जानो । अब नमन (बलना) पर्यवासे सिच् के रूप लक्षण की प्रक्रिया सिख से है ॥ ४०५ ॥

४७६ ॥ ङस्वं लघु । १ । ४ । १० ।

ङस्व अच् की लघु सज्ञा होवे ॥ ४७६ ॥

४७७ ॥ सयोगे गुरु । १ । ४ । ११ ॥

सयोग १६ परे रहते ङस्व स्वर (अच्) की गुरु सज्ञा होवे ॥ ४७७ ॥

४७८ ॥ दीर्घं च । १ । ४ । १२ ॥

दीर्घ अच् की भी गुरु सज्ञा होवे ॥ ४७८ ॥

४७९ ॥ पुगन्तलघूपधस्य च । ७ । ३ । ८६ । पुगन्तस्य लघु-

पधस्य चाङ्गस्येको गुणः सार्वधातुकार्धधातुकयोः । धात्वादेरिति सः ।
सेधति । षत्वम् । सिषेध ॥

जो अङ्ग पुगन्त अर्थात् जिस के अन्त में पुक् ७४३ में भया ही अथवा लघूपध (जिस की उपधा में १८० लघु ४७६ ही) उस के इक् की गुण ३० होवे परन्तु उस के परे सार्वधातुक वा आर्धधातुक प्रत्यय रहे तो इस में गुण किया तब २७५ से विध धातु का प्रथम अक्षर जो ष है उस को स हुआ। सेधति, वह जाता है । आदेश रूप स को १६३ से ष हुआ इस लिये लिट् लकार में सिषेध = वह गया ४१८ ॥ ४७९ ॥

४८० ॥ असंयोगाल्लिट् कित् । १ । २ । ५ । असंयोगात्परोऽपि-

ल्लिट् कित् स्यात् । सिषिधत् । सिषिधु । सिषिधिव । सिषिधियुः ।
सिषिध । सिषेध । सिषिधिव । सिषिधिम । सेधिता । सेधिष्यति ।
सेधतु । असेधत् । सेधेत् । सिष्यात् । असेधीत् । असेधिष्यत् । एवं चिती
सञ्ज्ञाने । ४ । शुच शोके । ५ । गद व्यक्तायां वाचि । ६ । गदति ॥

लिट् ४१० के स्थान में वह आदेश जो सयोग में परे नहीं और पित् भी न ही सो कित् होवे (माना जाय) इस लिये ४६१ में सिषिधत् यहा गुण न भया । सिषिधत्, वे दो गये । सिषिधु, तुम गये । सिषेध, मैं गया । सिषिधिव, हम दो गये । सिषिम, हयगये । और लकारो में ।

लकार	लुट्	लृट्	लोट्	लङ्	लिट् वि० ।
रूप०	सेधिता,	सेधिष्यति,	सेधतु,	असेधत्,	सेधेत्,
अर्थ०	वह जायगा ।	वह जावेगा ।	वह जावे ।	वह गया ।	वहजावे ।
लकार—	आशिषि लिङ् ।		लुङ् ।	लृङ् ।	
रूप०—	सिष्यात्,		असेधीत्,	असेधिष्यत्,	
अर्थ—	ईश्वरकरे कि वह जावे ।		वह गया ।	जो वह जावे ।	

चित् (चित्ती) चेतकरना । भीर शुच् (शुच्) शोक वा खेद करना । ये दोनों भातु भी विध की तरह जानने ।

गद् (गद) भातु स्पष्टबोधने अर्थ में है उस के लट् में "मदति" ३८८।४ । ४ १, ४१३ वह स्पष्ट बोधता है ॥ ४८ ॥

४८१ ॥ नेर्गदनदपतपद्घुमास्यतिङ्न्तियातिवातिद्रातिष्मा
तिवपतिवङ्गतिशाम्यतिधिनोतिदेरिधयु च । ८ । ४ । १७ । उपसर्गस्या
न्मिमित्तात्परस्य नेर्षी गद्दादियु परेयु । प्रथिगदति ॥

उपसर्ग में स्थित को निमित्त (ग को च् करने के र् वा प् रूप धारण) तिम में परे को नि का न् तिस के स्थान में च् होने परन्तु जब मद आदि भातु परे रहें तब । गद आदि भातु ये हैं गद का अर्थ भापुका है । गद का अर्थ (नाद करना) (अव्यक्त शब्द) वा पत गिरना । पद गमन (जाना) घुसनावासे ३३६ में कहे भातु । मा मापना । यो गद्व् बोना । इन् मारना वा गति । या जाना । वा वहना जैसे वायु का । द्रा जाना मागना प्सा खाना । वप् बोना । वह सेजाना । यम् मान्यता बोना । चि चुनना । दिङ् उपसर्ग (हृदि) । तब इस सूत्र से 'प्रथिगदति' में च् मया वह प्रत्यय से स्पष्ट बोधता है ३४८२ ॥

४८२ ॥ कुञ्जीञ्चु । ७ । ४ । ६२ । अभ्यासकावगङ्कारयोश्च
वर्गादेश ॥

अभ्यास ३२१ के अवर्ग (क च् ग् च् इ) अथवाङ्कार (इ को) (वर्ग) (च् च् च् भ् च्) आदेश होय ॥ ४८२ ॥

४८३ ॥ अत उपधाया । ७ । २ । ११६ । हृदि स्यात् जिति
चिति च प्रत्यये । अगाद् । अगदत् । अगदु । अगदिय । अगद्यु ।
अगद ॥

भातु की उपधा यदि अकार हो तो उस को हृदि होय कथ चित् वा चित् प्रत्यय परे रहे तब । गद् गद् + अन् ३२१ से गगद् + च । ४८३ स भीर ४८३ स अगाद् मित्र बुधा वह स्पष्ट बोधता । अगदत् से दो स्पष्ट बोधने । अगदु, च स्पष्ट बोधने । अगदिय ४२० तं स्पष्ट बोधता । अगद्यु तुम दो स्पष्ट बोधने । अगद तुम स्पष्ट बोधने ॥ ४८३ ॥

४८४ ॥ असुरामो वा । ७ । १ । ८१ । पित् स्यात् । अगाद् ।
अगद । अगदिव । अगदिम । गदिता । गदिष्यति । गदतुः । अगदत् ।
गदेत् । गयात् ॥

उत्तम पुरुष का णल् ४१० का णल् ४१८ विकल्प से णित् माना जाय । अर्थात् वहा वृद्धि आदि कार्य्य विकल्प से होंवे । इस से जगाद् वा जगद्, में रपष्ट बोला । जगदिव, हम दो स्पष्ट बोले । जगदिम, हम स्पष्ट बोले ।

लुट् लकार में गदिता ४२७ । ४३१ । वह स्पष्ट बोलेगा । लृट् में गदिष्यति, वह स्पष्ट बोलेगा । लोट् में गदतु ४४५ । ४३७ वह रपष्ट बोले । लङ् में अगदत्, वह स्पष्ट बोला । लिङ् में गदेत्, वह स्पष्ट बोले । आशीर्लिङ् में गद्यात् ४६० ईश्वर करे कि वह स्पष्ट बोले ॥ ४८४ ॥

४८५ ॥ अतो हलादेर्लघोः । ७ । २ । ७ । हलादेर्लघोर्ह्रस्वि-
डादौ परस्मैपदे सिचि । अगादीत् । अगदीत् । अगदिष्यत् । गद्
अव्यक्तौ शब्दे ॥ ७ ॥

हलादि (जिस के आदि में हल् हो) ऐसे धातु के लघु ४७६ संज्ञक अकार की विकल्प करके वृद्धि होय परन्तु जब डडादि इट् ४२७ है आदि में जिस के ऐसा सिच् और परस्मै पद सज्ञा वाले प्रत्यय परे रहें तब लुङ् लकार में अगादीत् वा अगदीत् ४७४ वह स्पष्ट बोला । लृङ् लकार में अगदिष्यत् ४७० जो वह स्पष्ट बोले । अब गद्, (णट्) धातु जिस का अस्पष्ट बोलना अर्थ है, उस के रूपों के साधन का प्रकार लिखते हैं ॥ ४८५ ॥

४८६ ॥ णीनः । ६ । १ । ६५ । धात्वदेशस्य नः । णोपदेश-
स्त्वनर्दनाटिनाथ्नाध् नन्दनक्कनूनत् ॥

धातु के आदि ण् को न् हीवे । नर्द, गन्द करना । नाटि, दीर्घ के योग्य चौरादिक नाचने अर्थ में नट् धातु नाथ् मागना । नाध्, मागना । नन्द, सन्ध हीना । नक्क, नाथ हीना । नू, लेजाना । नृत्, (नृती) नाचना इन आठ धातुओं की छोड कर और जितने धातु नकारादि (न् है आदि में जिन के) हैं उन सब को णोपदेश कहना । णोपदेशा, (उपदेश में णकार वाले) जानें ॥ ४८६ ॥

४८७ ॥ उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य । ८ । ४ । १४ ।
उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य णोपदेशस्य धातोर्नस्य ण । प्रणदति ।
प्रणिनदति । नदति । ननाद् ॥

समाम ८५५ न हो तौ भी उपसर्गस्थित निमित्त (र् वा ष्) से परे णोपदेश-
धातु ४८६ के न् को ण् ४४६ हीवे । प्रणदति, वह अच्छी रीति से शब्द करता है । प्रणिनदति

वह बहुत अच्छी भांति से शब्द करता है । उपसर्ग रहित क्लेबक धातु क रूप ऐसे होती है जैसे "नदति" वह अन्वक्त शब्द करता है । ननाट उसने शब्द किया ॥ ४८० ॥

४८८ ॥ अत एकाह्लुमध्येऽनादेशादिति । ६ । ४ । १२० ।

लिखिममितादेशादिकं न भवति यद्द्वं तद्वयवस्वाऽसंयुक्तमध्यस्य स्यात् एत्वमभ्यासलोपश्च किति खिति ॥

कित् ४८ संज्ञक खिट् परे रहते खिट् निमित्तमागकर जिस अह् लो अभ्यास के आदि अक्षर के स्थान में आदेश ४८२ न हुए हों उस लो अवयव परसंयुक्त हकी लो बीच में वक्तमान लो प्रकार उस लो ए होय आर अभ्यास का लोप होय ॥ ४८८ ॥

४८९ ॥ यक्षि च सेटि । ६ । ४ । १२१ । प्रागुक्तं स्यात् । नेदिव ।

नेदयु । नेद् । मनाद् । मनद् । नेदिव । नेदिम । नदिता । नदिष्यति । नदत् । मनदत् । नदेत् । नद्यात् । मनदीत् । मनदीत् । मनदिष्यत् । टुनदि । समृही ॥ ८ ॥

धोर अब सेट् (° इद् सहित) † धल प्रत्यय परे हो तो भी पूर्वोक्त आर्य (एत्वाम्भासलोप) ४८८ आर्ये । तव नेदिव तू ने शब्द किया । नेदयु' तुम दोनों ने शब्द किया । नेद् तुम दोसे । ४८८ से ननाट का मनद् सेने शब्द किया । नेदिव ४८८ हम दोनों ने शब्द किया । नेदिम — हमने शब्द किया ।

आगे लकारों के रूप इस क्रम से देखो—

लकार	बुद्	कद्	खोद्	खड	वि लिङ्	पागिखिङ्
रूप	नदिता	नदिष्यति	नदत्	मनदत्	नदेत्	नद्यात्
अर्थ	वह शब्द करेगा ।	वह शब्द करेगा ।	वह शब्द करे ।	उसने शब्द किया ।	वह शब्द करे ।	ईश्वर करे वह शब्द करे ।

लकार	मुद्	कद्
रूप	मनादीत् १८३,	मनदिष्यत् ।
अर्थ	उसने शब्द किया ।	लो वह शब्द करे ।

अब नन्द धातु जिस का अर्थ है उस लो रूपों का साधन लिखते हैं—
आदि † लकारों में इस धातु का रूप टुनदि है ।

४९ ॥ आदिअटुडव । १ । ९ । ५ । उपदेशे धातोराद्या एते

पूतः स्युः ॥

उपदेश (आदिम उच्चारण) में धातु के आदि में जो जि, टु, और डु, सो इत् होये ॥ ४६० ॥

४६१ ॥ इदितो नुम् धातीः । ७ । १ । पूट् । नन्दति । ननन्द ।

नन्दिता । नन्दिष्यति । नन्दतु । अनन्दत् । नन्देत् । नन्द्यात् । अनन्दीत् । अनन्दिष्यत् । अर्च पूजायाम् ॥ ६ ॥ अर्चति ॥

इदित् धातु (जिस धातु का इकार इत् सन्नक हो) उस को नम् का आगम होय

नन्दति २६० वह समृद्ध होता है । और लकारों के रूप नीचे देखो।—

लकार	लिट्	लुट्	लृट्	लोट्	लङ्
रूप	ननन्द	नन्दिता	नन्दिष्यति	नन्दतु	अनन्दत्
अर्थ	वह समृद्ध- हुआ ।	वह समृद्ध- होगा ।	वह समृद्ध- होगा ।	वह समृद्ध- होवे ।	वह समृद्ध- हुआ ।

लकार	वि० लिङ्	आशिर्लिङ्	लुङ्	लृङ्
रूप	नन्देत्	नन्द्यात्	अनन्दीत्	अनन्दिष्यत्
अर्थ	वह समृद्ध होवे ।	ईश्वर करे कि वह समृद्ध होवे ।	वह समृद्ध हुआ ।	जो वह समृद्ध हो ।

६म, अर्च धातु पूजा करने अर्थ में है । अर्चति, वह पूजा करता है ।

४६२ ॥ तस्मान्नुङ्ङिहल । ७ । ४ । ७१ । द्विहलो धातोर्दीर्घीभूतात् परस्य नुट् स्यात् । आनर्च । आनर्चतु । अर्चिता । अर्चिष्यति । अर्चतु । अर्चत् । अर्चेत् । अर्च्यात् । आर्चीत् । आर्चिष्यत् । व्रज गती । १० । व्रजति । वव्राज । व्रजिता व्रजिष्यति । व्रजतु । अव्रजत् । व्रजेत् । व्रज्यात् ॥

जिस धातु में दीर्घ हल् ही उस के अभ्यास को ४७१ दीर्घ किये गये अच् से परे जो अक्षर हो उस को नुट् का आगम होवे । आनर्च १०० । ४७१ और ४६२ वह पूजा करता हुआ । आनर्चतु वे दो पूजा करते हुए । “और लकारों में रूप नीचे देखो”—

लकार	लुट्	लृट्	लोट्	लङ्
रूप	अर्चिता	अर्चिष्यति	अर्चतु	आर्चत् (४७२)
अर्थ	वह पूजा करेगा	वह पूजा करेगा	वह पूजा करे	उसने पूजा की
लकार	वि० लिङ्	आशिर्लि०	लुङ्	लृङ्
रूप	अर्चेत्	अर्च्यात्	आर्चीत्	आर्चिष्यत्
अर्थ	वह पूजा करे	ईश्वर करे कि वह पूजा करे ।	वह पूजा करता हुआ ।	जो वह पूजा करे ।

प्रञ्ज (प्रञ्) धातु गति (चलने) ध्य में है । उसके रूप नीचे लिखे जाते हैं—

लकार	सद्	सिट	मुद्	लृठ	बोद्
रूप	प्रजति	प्रजाव	प्रजिता	प्रजिष्यति	प्रजतु
धय	वह जाता है । वह गया (४२२) । वह जावेगा । वह जावेगा । वह जाए ।				

सद् में प्रवृत्त वह गया । सिट् लिङ् में प्रजेत् । वह जावे । प्राथमिक उदाहरण में प्रज्यात् इत्पर कर कि वह जावे ॥

४६३ ॥ वदप्रञ्जसन्तस्याश् ॥ ७ । २ । २ एषामचीहृदि सिचि परस्मैपदेषु । अत्राचीत् । अत्रजिष्यत् । कटे वर्षाविरण्यी ॥ ११ ॥ कटति चकाट । कटिता । कटिष्यति । कटतु । अकटत् । कटेत् । कटधात् ॥

वद स्पष्ट बोधना । प्रञ्ज, जाना । और सन्त धातु इन को ध्य (स्वर) की भित्तवृद्धि ४८२ आदेशों द्वारा परस्मैपद प्रत्यय है परे जिस क रेखा * सिच् परे रहे तो । अत्राचीत् वह गया । अत्रजिष्यत् जो वह जावे ।

कटे (कट्) यह धातु धर्पा (बरसने) और अ वरश्च (बरसे) ध्य में है । कटति—वह बरसता है या 'मेव बरसता है । चकाट—४८२ मेव बरसा । कटिता ४२० मेव कस बरसेगा । कटिष्यति—मेव बरसेगा । कटतु—मेव बरसे । अकटत्—मेव बरसा । कटेत्—मेव बरसे । कटधात्—इत्पर करे कि मेव बरसे ॥ ४६३ ॥

४६४ ॥ इत्यन्तक्षयवस्त्रागुचिरभ्येदिताम् । ७ । २ । ५ । इमयान्तस्व अक्षटिष्यन्तस्व प्रथमतेरेदितश्च हृदिनेडादौ सिचि । अकटीत् । अकटिष्यत् । गुप्प्रक्षसे ॥ १२ ॥

जिन धातुओं के अन्त में " ह् मु म् " इन में से कोई एक रहें और अच्—प्रारम्भ और इवच्—सांस बनना आग—आमना और ण्—जिस " के अन्त में ङे चि ०४१ वा ०१५ से हो । और त्रिव—बठना या चठना और एवित् (जिसका एकार इत् गया हो) धातु इन सब की हृदि आदेश न होय उदादि ४२० सिच् पर रहते । अकटीत्—मेव बरसा । अकटिष्यत्—यदि मेव बरसे । गुप् (गुप्) धातु रथा करने धर्पा में है । उसकी साधन प्रक्रिया ऐसी है ॥ ४६४ ॥

४६५ ॥ गुप्प्रक्षपविचिरुपविपमिभ्य आस । १ । १ । २८ । स्वार्थे ॥

* ४६३ " प्रत्यय । † " धातु ङे चिच् प्रत्यय है ।

गुप्, रक्षा करना । धूप, सताप करना । विच्छ, गमन । पण, स्तुति करना ।
पन, स्तुति करना, इन धातुओं से परे * स्वार्थ में आय् प्रत्यय होंगे ॥ ४९५ ॥

४९६ ॥ सनाद्यन्ता धातव । ३ । १ । ३२ । सनाद्यः कश्चिच्छन्ता

प्रत्यया अन्ते येषां ते धातु संज्ञकाः । धातुत्वाल्लडादयः । गोपायति ॥

सन् से लेकर कश्चिच्छ (५५४) सूड के णिङ् पर्यन्त जो ङाट्य १२ प्रत्यय हैं, उन में से कोई एक जिन के अन्त में ही वे प्रत्यय विशिष्ट धातु सज्ञा वाले होंगे, उनको धातु संज्ञक होने पर ४०० आदि से उन से परे लट् आदिक लकार होते हैं, उन बारह सनादियों में से एक आय् भी है, परन्तु वह आय् गुप् के अन्त में है, इस लिये यहाँ आय् के आने से और उपधा गुण आदि कार्यों से गोपाय् की धातु सज्ञा हुई फिर लट् हुआ गोपायति (वह रक्षा करता है) सिद्ध हुआ ॥ ४९६ ॥

४९७ ॥ आयाद्य आर्धधातुके वा । ३ । १ । ३१ । आर्धधातुक-

विवक्षायादायादयो वा स्यु ॥

जब आर्धधातुक की ' विवक्षा ' (कहना इष्ट) ही तब आय् आदि बारहों विकल्प से होय । यथा इतना विचार है, कि केवल बारहों में से आय् णिङ् (५५४) ईयङ् ये तीनों विकल्प करके होते हैं ॥ ४९७ ॥

४९८ ॥ काश्यनेकाच्च आम् वक्तव्य । लिटि । आम्कासोराम्
विधानान्मस्य नेत्वस् ॥

कास् और अनेकाच्च । (जिस में अनेक अच् हैं) ऐसे (वा इन) धातुओं से लिट् परे रहते आम् प्रत्यय होवे ऐसा कहना चाहिये । आस्, बैठना । और कास् समकला इन से परे आम् प्र० विधान करने से आम् के स् की इत् सज्ञा नहीं होती । इस में ऐसी पठ्यालोचना (विचार) है कि यदि आस् बित् ही तो (सिद्धोन्त्यात्पर.) इस सूत्र केवल से आके अन्त में होगा । फिर दीर्घ होने से आस् और कास् का रूप वैसा ही रहेगा, आस् कच् फल क्या हुआ क्व नहीं व्यर्थ होने से ज्ञापन करता है, कि (आम्) से सकार की इत् सज्ञा नहीं होती ॥ ४९८ ॥

* और कोई एक " णिच्, सन् " आदि प्रत्यय ऐसे हैं कि उनके आगे आने से धातु का अर्थ बढ जाता है जैसे पिपठिषति (पठन की इच्छा करता है) यहाँ केवल धातु का अर्थ पठन है, सन् के आने से इच्छा अर्थ बढा, परन्तु " आय् " के आने से कुछ भी तो अर्थ नहीं बढा यह स्वार्थ का भाष्य है ॥

४८६ ॥ अतो लोप । ६ । ४ । ४८ । आर्धधातुकोपदेशे
पददन्त तस्यातो लोप आर्धधातुके ॥

जब आर्धधातुज (४१) होने काकाहो तब पददन्त (पकार के अन्त में जिस क)
येका भी चातु उस के अकार का आर्धधातुज पर रहते लोप होता है ॥ ४८६ ॥

५ • ॥ आम् । २ । ४ । ८१ । आम्ः परस्य लुक् ॥

आम् ४८८ से परे लो प्रत्यय उस का लुक् होवे ॥ १ ॥

५ • १ ॥ क्त्वाञ् चामुप्रयुज्यते लिटि १ । १ । ४० । आमन्ता
लिङ्गत्परा क्त्वाञ्चामुप्रयुज्यन्ते । तेषां हित्वादि ॥

आम् (४८८) जिस के अन्त में है १ ऐसे चातु से परे क्त्वा (क्त्वा करणा । भू
होना । अच् होना) ये एम स्वापित क्रिये कावे और इन के पावे सिद्ध होय । इन को हित्व
(४२) सूत्र से और क्त्वा के एम काय होते हैं ॥ १ ॥

५ २ ॥ उरत् ७ । ४ । ६६ । आभ्यासस्त्वर्थस्यात् । उच्चि
गोपायाञ्चकार । हित्वात्परत्वाद्यधि प्राप्ते ॥

आभ्यास के अर्थ के स्थान में अकार हो । अत् को १४ से अर्द्धुषा और ४२२ से
क क अ रखा ४८२ और १८६ से उच्चि करने पर और गोपायाम् को साथ मिलाने से
गोपायाञ्चकार (अम ने रखा की) सिद्ध हुआ । प्रथम पुत्रय के हित्वण में गो क्त्वा + अत्
येस रूप के बनाने पर १२८ से अकार के स्थान में १८ से यच् पाया, अर्थात् हित्व से
यच् पर है । हित्व ४२ विधायक सूत्र यच् कारक से पूर्व है ॥ १ ॥

५ ३ ॥ हित्वण्ये ऽधि । १ । १ । ५८ । हित्वण्यमित्ते ऽधि अथ
आदेशीन हित्वे कर्तव्ये । गोपायाञ्चक्रतु । गोपायाञ्चक्रतुः ॥

हित्व के मिमित्त अनादि प्रत्यय के परे रहते पूर्वके अच् को कोर्ष भी आदेश न
होवे जब तक हित्व न हुआ हो परन्तु उसके होने की अपेक्षा रहे हित्व के होने पर तो
आदेश होता ही है इस सिद्धि—गोपायाञ्चक्रतु । अम होने ने रखा की । गोपायाञ्चक्रतु ।
अम में रखा की । सिद्ध हुए ॥ १ ॥

५ ४ ॥ एकत्र उपदेशेऽनुदात्तात् । ७ । २ । १ । उपदेशे यो
धातुरेकाजमुदात्तश्च तत आर्धधातुस्येव । अददन्तैर्योतिरुहसुगौ

स्नुनुक्षुशिवडीड्श्रिमि । वृड्ष्टञ्भ्याञ्चविनैकाचोऽजन्तेषु निहताः
स्मृताः ॥ १ ॥

चान्तेषु शक्तेकाः । चान्तेषु पच् मुच् रिच् वच् विच् सिचः षट् । छान्तेषु प्रच्छेकः ।
जान्तेषु त्यज्, निज्, भज्, भञ्ज्, भुज्, भ्रसज्, मसज्, यज्, युज्, रुज्, रञ्ज्, विजिर्, स्वञ्ज्, सञ्ज्, सृज्: पञ्चदश । दान्तेषु अद् चुद् खिद् छिद् तुद् नुद् पथ् भिद् विद्य
विनद् विन्द् शद् सद् स्थिद्य स्कन्द् हदी षोडश । धान्तेषु क्रुष् चुष् बुध्य् वन्ध् युष् रुष्
राष् व्यष् शुष् साष् सिध्य एकादश । नान्तेषु मन्वहनी ही ।

पान्तेषु आप् चिप् कुप् तप् तिप् तृप् दृप्य लिप् लुप् बप् शप् स्वप् सृपस्त्रयोदश ।
भान्तेषु यभ् रभ् लभस्त्रय । मान्तेषु यम् नम् गम् रमश्चत्वारः । शान्तेषु क्रुष् दश् दिश्
दृश् ष्टश् रिश् रुश् लिश् विश् स्पृशो दश । पान्तेषु क्वप् त्विष्, तुष् द्विष् दुष् पुष्य् पिष्
विष् शिष् शृष् शिल्प एकादश । सान्तेषु धच् वसती ही । हान्तेषु दह् दिह् दुह् नह् मिह्
रह् लिह् वहोऽष्टौ । अनुदात्ता हलान्तेषु धातवस्त्रयधिक शतम् । गोपायाञ्चकार्यं । गोपा-
याञ्चक्रयु । गोपायाञ्चक्र । गोपायाञ्चकार । गोपायाञ्चकर । गोपायाञ्चकव । गोपा-
याञ्चकस । गोपायाञ्चभूव । गोपायामास । जुगोप । जुगुपतुः । जुगुपु' ।

उपदेश (आद्योच्चारण) में जो धातु एकाच् (एक स्वर वाला) और अनुदात्त
ही तो उस से परे जो आर्धधातुक ४२६ । ४३० । प्रत्यय उस को इट् ४२७ का आगम न
होवे । जिन धातुओं का ऊ, वा ऋ, इत् सङ्ग हो उन से और यु, मिलाना, आदि। रु, शब्द
करना । ह्यु, तीक्ष्णकरना । शीङ्, सोना । स्नु, वहना । यु, स्तुतिकरना । क्षु, छींकना
(छेंकना) । शिव, ह्वि वा गमनकरना डोङ्, उडना । श्रि, सेवाकरणा । वृ, (वृङ्) सेवाकरना ।
वृ, (वृन्) स्वीकारकरना । इन से विना और सब एकाच् और अजन्त धातु अनुदात्त हैं ।

और जो एकाच् हलन्त धातुओं में से ककारान्त एक ही शक्त् १ (शक्)
समर्थ होना अनुदात्त है । और चकारान्त धातुओं में से पच् १ पकाना । मुच् २ छोड़ना ।
रिच् ३ अलग करना, वा जुलाव देना । वच् ४ कहना । विच् ५ अलग करना । सिच् ६
छिडकना । ये छै ६ धातु अनुदात्त हैं । और ककारान्त धातुओं में से, प्रच्छ १ पूकना यह
एक ही अनुदात्त है, और जकारान्त धातुओं में से, त्यज् १ त्यागना । निज् २ शोधना
वा पुष्ट करना । भज् ३ सेवाकरना । भञ्ज् ४ तोडना । भुज् ५ भोगना । भ्रत्ज् ६ भुन्नना ।
मस्ज् ७ शुद्धि वा छुवना । यज् ८ यज्ञ करना आदिक । युज् ९ जोडना । रुज् १० रोग ।
रञ्ज् ११ रङ्गना । विजिर् १२ (अलग करना) । स्वञ्ज् १३ सङ्गकरना वा गले लगाना ।
सञ्ज् १४ मिलाना । सृज् १५ त्याग करना । ये १५ पञ्चदश धातु अनुदात्त हैं । और टका-
रान्त धातुओं में से, अद् १ खाना । चुद् २ पीसना । खिद् ३ दु खी होना । छिद् ४ काटना ।

तुद् ४ पीडादेना । भुद् ५ मेरुच करना । पथ ० (पद्)(१) गती (चसना) । मिद् ८ तोड़ना । विथ (२) ८ होना । विगद्(३) १ विचारना । विग्द्(४) ११ खास होना । शद् १२ कुमु खागा । सद् १३ जाना थायिक । स्विथ (५) १४ पसीना धाना । स्वग्द् १५ जाना वा सुखना । इद् १६ मल त्याग करना । ये सोलह १६ धातुदात हैं ।

धकारान्त धातुधों में से झुञ्च १ लोभ करना । चुप् २ मूख लगना । (४) चुप्य ३ जानना । बन्ध् ४ धान्धना । युष् ५ बड़ना । षष् ६ चेरना । राष् ० सिद्धि । व्यष् ८ ताकनकरना । भुष् ८ स्वच्छहोना । साष् १ सिद्धकरना । (०) सिध्य ११ पूर्णहोना । ये ग्यारह ११ धातु धनुदात हैं । मकारान्त धातु धों में से (८) मज्य १ मानना । इन् २ मारना ये दो २ धातु धनुदात हैं ।

पान्त धातुधों में से धाप् १ व्याप्त होना । धिप् २ कौबना । झुप् ३ होना ४ तप ४ चन्ताप । तिप् ३ होना । तप् ५ तृप्ति । (८) दृष् ० गर्भ करना वा हय । बिप् ८ खेपना । भुप् ८ खाटना । बप् १ बीज होना । शप् ११ भाषणेना । स्वप् १२ सोना । मप् १३ चलना । ये तेरह १३ धातु धनुदात हैं । मकारान्त धातुधों में से यम् १ मेषुन करना । रम् २ बेग करना । बम् ३ काम । ये तीन धातु धनुदात हैं । मकारान्त धातुधों में से गम् १ जाना । नम् २ नमस्कार करना । यम् ३ (१) निश्च होना । धीर रम् ४ लीडा करना । ये चार धातु धनुदात हैं ।

यकारान्त धातुधों में से झुम् १ पुकारना वा रोना । दंम् २ डसना । दिग् ३ दान करना वा दिखाना । इम् ४ बेचना । मूम् ५ स्पग करना । रिम् ६ धीर दग् ० (द्विधा करना) । यिग् ८ घटजाना । विम् ८ प्रवेश करना । स्पर्ग् १ पूना । ये दस १ धातु धनुदात हैं । यकारान्तों में से छप् १ खेचना । त्थिप् २ चमकना । तुप् ३ तृप्त होना । दिप् ४ (११) हय करना । दुप् ५ विमदना । (१२) पुष्प ६ पुष्ट करना । पिप् ० पीषना । विप् ८ व्याप्त होना । शिप् ८ विगिष्ट करना । शुप् १ मूखना । शिष्पु ११ पानिहम करना । ये ग्यारह ११ धातु धनुदात हैं । मकारान्त धातुधों में से वम् १ धाना । यम् २ धान करना । ये (१३) दो २ धनुदात हैं ।

दकारान्त धातुधों में से दद् १ लपाना । दिद् २ पीषना वा हृदि । दुद् ३ होना ।

(१) दिवादिगणका । (२) बिद् दिवादिगणका धातु । (३) विद् इधादिगण का धातु । (४) बिद् तुदादि गण का धातु । (५) स्विद् दिवादि गण का धातु । (६) चुप् दिवादि गण का धातु । (७) मिष् दिवादि गण का धातु । (८) मन् दिवादि गण का धातु । (९) दृष् दिवादि धातु है । (१०) दृट जाना । (११) दुग्ममी । (१२) पुष्प दिवादि गण का धातु है । (१३) १। (पूर्वोक्त धातु) ।

नह् ४ बान्धना । मिह् ५ सिचना । रह् ६ उगना । लिह् ७ चाटना । थह् ट लेजाना ।
ये आठ ८ धातु अनुदात्त हैं । इस प्रकार से (१) इनका योग एक सौ तीन हैं १०३ ॥

जिस लिये ह्र धातु एकाच् और अनुदात्त है, इस लिये उक्त सूत्र से (५०४)
सम्बन्ध वाला है, परन्तु लिट् परे रहते “ह्र” को “५०८” सू० नियम से (२) इट् का
आगम नहीं होता ।

गोपायाञ्चकार्य (तूने रचा की)	}	गोपायाञ्चकार, गोपायाञ्चकार (मैने रचा की)
गोपायाचक्रयुः (तुम दोनें ”		गोपायाञ्चकृव (हम दोनें रचा की) ।
गोपायाञ्चक्र (तुमने ”		गोपायाञ्चकृम (हम ने रचा की) ।

इसी अर्थ से “गोपायासास, गोपायास्वभूव” (उसने रचा की) । और “४८७” नियम से
विकल्प से आय् हुआ तो, जुगोफ, जुगुपु, जुगुपु । अर्थ पूर्ववत् जानीं ॥ ५०४ ॥

५०५ ॥ स्वरतिसूतिसूयतिधञ्जदिति वा । ७ । २ । ४४ ।

स्वरत्यादेरुदितश्च परस्य वलादेरार्धधातुकस्येड्वा स्यात् । जुगोपिथ ।
जुगोप्य । गोपायिता । गोपिता । गोप्ता । गोपायिष्यति । गोपिष्यति ।
गोप्स्यति । गोपायतु । अगोपायत् । गोपायेत् ॥

रह (शब्द करना) । (३)पू (उत्पन्न करना) । घूञ् (कापना) । इन से और ऊदित्
धातुओं से परे बल् १ प्रत्याहारान्तर्गत वर्णों में से कोई एक है आदि में जिस के ऐसा
आर्धधातुक हो तो उस को इट् का आगम विकल्प करके होवे ॥

गुपू धातु भी ऊदित् है इस लिये “थल् में” जुगोपिथ जुगोप्य (तुमने रचा की)
और लुट् में ४८७ “गोपायिता, गोपिता, गोप्ता” (वह रचा करेगा) लृट् में भी वैसे ही
“गोपायिष्यति, गोपिष्यति गोप्स्यति” (वह रचा करेगा) । लोट् में, गोपायतु (वह रचा
करे) । लड् में अगोपायत्, (उस ने रचा की) । वि० लिङ् में, गोपायेत् (वह रचा
करे) ॥ ५०५ ॥

५०६ ॥ नेटि । ७ । २ । ४ । झडादौ सिचि हलन्तस्य वृद्धिर्न
अगोपायीत् । अगोपीत् । अगौप्सीत् ॥

इट् है आदि में जिस के ऐसा सिच् परे रहे तो हलन्त धातु की (४८३) से प्राप्त

(१) हलन्त धातुयो का । (२) “४२७” से जो पाया था इस का विस्तार पूर्वक
वर्णन “५११” इस नियम से लिखा जावेगा । (३) सूति, सूयति, अदादि और
दिवोदि गण का पूड् धातु है ॥

इति न होय । पाय् चौर इद् हुषा तो भगोपायीत् । पाय् न हुषा चौर इद् हुषा तो भगोपीत् । चौर चय पाय् चौर इट दाना न हुष तव भगोप्सीत् । चय ने रचा की ॥ ५ ६ ७

५ ७ ॥ कृषोभ्रखि । ८ । २ । २६ । भ्रज परस्य सस्य खोपी भ्रखि । भगी प्ताम् । भगीप्सु । भगीप्सी । भगीप्तम् । भगीप्ता । भगीप्सम् । भगीप्स्व । भगीप्सम् । भगोपायिष्यत् । भगोपिष्यत् । भगोप्स्यत् । विष्ये १३ थयति विषाय । विक्षियतुः । विक्षियुः । यक्षिण्काथ इति निषेधे प्राप्ते ।

यदि परे भ्रज् हो तो भ्रज् से परे जो घृ तिष्ठ वा चाप चावे भगीप्ताम् (उन होने रचा की । भगीप्सु - उनमें रचा की । भगीप्सी तूने रचा की । भगीप्तम् - तुम होने रचा की । भगीप्ता - तुम ने रचा की । भगीप्सम् - मैंने रचा की । भगीप्स्व - हम होने रचा की । भगीप्सम् हमने रचा की ।

इह में । भगोपायिष्यत् भगोपिष्यत् भगीप्स्यत् - जो वह रचा करे । वि घटना या नाम । थयति यह घट 'जा' ता है । विषाय - वह घटा । विक्षियतु वे डोगच्छहुए । विक्षियु - वे नष्ट हुए । यद् में ४२० वे के इद् का ५ ४ से निषेध पाया तो ॥ ५ ७ ॥

५ ८ ॥ कृसुभृष्टस्तुद्रुसुयुषी खिठि । ७ । २ । १३ । कादिभ्य थय खिट् इट् न स्यादभ्यस्मादनिटोऽपि स्यात् ॥

छ करना । च बचना । भू पालन पोषण करना । इ रबीकार करना । स्तु (पु) स्तुति करना । दु डीटना । सु बचना वा पूना । सु चुनना । इन पाठ ८ धातुओं से परे ही सिद् की * इद् न होवे । परन्तु चौर कोइ धातु चनिद् भी हो तो भी चय से परे न सिद् की इद् हो ही चावे ॥ ५ ८ ॥

५ ९ ॥ अघस्तास्वत् यषपनिटो नित्यम् । ७ । २ । ११ । उपदेशेऽजन्तो यो धातुस्तासौ नित्यानिट् ततस्थल इट् न ॥

जो धातु अघनेम सं अग्रन्त है चौर ङ ताम् में नित्य ही चनिद् है चय में परे भी यद् की इद् न होवे ॥ ५ ९ ॥

५ १० ॥ उपदेशेऽश्चत ७ । २ । १२ । उपदेशेऽकारवान् यस्तासौ नित्यानिट् तत परस्य थल इट् न स्यात् ॥

अघनेम में अकारवान् जो अग्रन्त धातु चौर ताम् में नित्य चनिद् ही चय में परे भी यद् चय को इद् का आगम न चावे ॥ ५ १० ॥

* (४२०) में आत्म होता है । † इत्नाणि आधधातुकम् । ‡ नुट नकार का है ।

५११ ॥ ऋतो भारद्वाजस्य । ७ । २ । ६३ तासौ नित्यानिट्
ऋदन्तादेव थलो नेट् (ड्) भारद्वाजस्य मते तेनान्यस्य स्यादेव ॥

॥ अथसत्र संग्रहः ॥

अजन्तोऽकारयान् वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम् ।

ऋदन्त ईदुङ् नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेड्भवेत् ।

चिच्चियथ । चिच्चेथ । चिच्चियथु । चिच्चिय । चिच्चाय । चिच्चय ।

चिच्चियिव । चिच्चियिम । च्चेता । च्चेथ्यति । च्यतु । अच्ययत् । च्येत् ॥

भारद्वाजजी के मत में तास् में नित्य अनिट् ऋदन्त धातु से परे थल् को इट् को आगम न हीवे। इस से ऋदन्तों से भिन्न धातुओं से परे थल् को इट् का आगम ही जावे। क्योंकि यह निषेध ऋदन्तों का ही है औरों का नहीं, इसी हेतु से ५०८ और ५१० सूत्रों से भी इट् का विकल्प ही प्रतीत होता है।

इन (१ सूत्रों) का यद्वा ऐसा सङ्ग्रह (२) है। अच् है अन्तमें जिसके ऐसा धातु वा ऐसा हलन्त धातु कि जिस के (३) उपदेश में अकार हो वह धातु यदि तास् में नित्य ही अनिट् ही तब वह थल् । में विकल्प कर के इट् वाला होता है, परन्तु यदि ऐसा (४) ऋदन्त धातु हो तो यह नित्य ही अनिट् ही परन्तु छ (५०८) आदि धातुओं को छोड़ कर, और धातु लिट् में सेट् ही जाते हैं, (५)चिच्चियथ वा चिच्चेथ (तू घटा) चिच्चियथु (तुम दो घटे) चिच्चिय (तुम घटे) चिच्चाय वा चिच्चय (मैं घटा) चिच्चियिव (हम दो घटे) चिच्चियिम (हम घटे) लुट् में, च्चेता (वह घटेगा) लुट् में, च्चेथ्यति (वह घटेगा) लोट् में, च्यतु (वह घटे) लङ् में, अच्ययत् (वह घटा) वि० लिङ् में, च्येत् (वह घटे) ॥ ५११ ॥

५१२ ॥ अकृतसार्वधातुकयोर्दीर्घ ॥ ७ । ४ । २५ । अजन्ताङ्ग-
स्यदीर्घो यादा प्रत्यये नतु कृतसार्वधातुकयो । क्षीयात् ।

अत् प्रत्यय (३२४) और सार्वधातुक इन से भिन्न जो (६)यादि प्रत्यय उस के परे होते, अजन्त अङ्ग को दीर्घ ही जावे, तब आ० लिङ् में क्षीयात् ईश्वर करे कि वह घटे ॥ ५१२ ॥

(१) इट् आगम सम्बन्धीय । (२) सञ्चेपार्थ । (३) आद्योच्चारण । (४) ऋ जिस के अन्त में है । (५) यद्वा विकल्प कारक विधियों को भी स्मरण करना चाहिये । (६)यकार है, आदि में जिस के ऐसा ।

हृदि न होय । पाय् पीर इद् हुषा तो अगोपयीत् । पाय् न हुषा पीर इद् हुषा तो अगोपीत् । पीर एव पाय् पीर इद् दोर्ना न हुष तव अगोप्सीत् । एव ने रचा की ॥ १ ६ ॥

५ ७ ॥ भ्रूषोभ्रूषि । ८ । २ । २६ । भ्रूष परस्य सस्य शीपो भ्रूषि । अगौ प्ताम् । अगौप्सु । अगौप्सी । अगौप्तम् । अगौप्त । अगौप्सम् । अगौप्स्व । अगौप्सम् । अगोपायिष्यत् । अगोपिष्यत् । अगोप्स्यत् । चिष्ये १३ घयति चिष्याय । चिष्ययत् । चिष्ययुः । यत्प्रियाय इति निषेधे प्राप्ते ।

यदि परे भ्रूष् हो तो भ्रूष् से परे जो स् तिष्ठ का बोध जाये अगोप्याम् (उम होने रचा की । अगोप्सु - उमने रचा की । अगोप्सी - तुने रचा की । अगोप्तम् - तुम होने रचा की । अगोप्त - तुम ने रचा की । अगोप्सम् - मैंने रचा की । अगोप्स्व - हम दाने रचा की । अगोप्सम् हमने रचा की ।

उउ में । अगोपायिष्यत् अगोपिष्यत् अगोप्स्यत् - जो वह रचा करे । चि घटना या गाय । घयति वह घट 'जा' ता है । चिष्याय - वह घटा । चिष्ययत् - वे दोनजटहुए । चिष्ययु - वे नजट हुए । यस् से ४२० से जो इद् का ५ ४ से निवच पाया तो ॥ १०० ॥

५ ८ ॥ क्त्सुभ्रूषस्तुद्भ्रूषुषो चिटि । ७ । २ । १३ । क्त्सुभ्रूष एष चिटि इद् न स्वादभ्यस्मादनिटोऽपि स्यात् ॥

क्त् करना । सु पटना । भ्रू पलन पोषण करना । इ स्वीकार करना । स्तु (जट) स्तुति करनी । तु डौटना । सु बहना वा चूना । सु सुनना । इन पाठ ८ पातुभा से परे ही किट् को * इद् न होवे । परन्तु पीर पीर वातु अमिद् मी हो ती मी एव से परे न किट् को इद् हो ही जाये ॥ १ ८ ॥

५०८ ॥ अचस्तास्वत् अक्षपनिठी नित्यम् । ७ । २ । ११ । अपदेगोऽनन्ती यो धातुस्तासौ नित्यामिद् ततस्यच इद् न ॥

जो धातु अपदेग में अजन्त है पीर क तास् में नित्यही अमिद् है एव से परे भी यस् को इद् न होवे ॥ १ ८ ॥

५१० ॥ अपदेगोऽनन्त ७ । २ । १२ । अपदेगोऽकारवान् यस्तामौ नित्यामिद् तत परस्य यक्ष इद् न स्यात् ॥

अपदेग में अकारवान् जो अनन्त धातु पीर तास् में नित्य अमिद् हो एव से परे जो यस् एव को इद् का आगम न होवे ॥ ११ ॥

* (४२०) से आगम होता है । न क्त्सुभ्रूषि आर्षधातुज का । क्त्सुद् अकार का है ।

क्रामत् (वह टहले) । लङ् में अक्राम्यत् वा अक्रामत् (वह टहला) । वि० लिङ् में क्राम्येत् वा क्रामेत् (वह टहले) (१) क्रम्यात् (ईश्वर करे कि वह टहले) लुङ् में अक्रमीत् (वह-टहला) लृङ् में अक्रमिव्यत् वह जो टहले । १६ “पा” धातु का पीना अर्थ है ॥ ५१५ ॥

५१६ ॥ पाप्राधमास्थाम्नादाण्डृश्यत्तिसर्त्तिशदसदां पिबजिघ्र
धमतिष्ठमनयच्छपश्यर्कधौशीयसीदाः । ७ । ३ । ७८ । पादीनांपिवादयः
स्युरित्संज्ञकशादौ प्रत्यये । पिवादेशोऽदन्तस्तेन न गुणः । पिबति ।

पा आदि ग्यारह धातुओं को पिब आदिक ग्यारह आदेश क्रम से होते हैं यदि इत् श् है आदि जिस के ऐसा (२) प्रत्यय परे रहे तब वह क्रम ऐसा है, कि १ पा, पिब (पीना) २ घ्रा, जिघ्र (सूंघना) । ३ ध्मा, धम (फूकना) । ४ स्था, तिष्ठ (खड़ाहोना) ५ म्ना, मन (अभ्यास करना) । ६ दाण् = यच्छ (देना) । ७ दृश् = पश्य, (दिखना) । ८ ऋ, ऋच्छ (गमन) । ९ स्, धौ (दौडना) । १० श्द शीय (मुरझाना) । ११ षद्, सीद (पीडा) । यहा पिब आदेश अकारान्त है इसी लिये ४७६ से गुण (३) नहीं होता । पिबति, वह पीता है ॥ ५१६ ॥

‘५१७ ॥ आत आं णल् । ७ । १ । ३४ । पपौ ॥

आकार है अन्त में जिसके ऐसे धातु से परे जो णल् उसके औं हीजावे पा + णल् (४) = पपौ (उसने पीया) ॥ ५१७ ॥

५१८ ॥ आतो लोप इटि च । ६ । ४ । ६४ । अजाद्योशार्धधा-
तुकयोः क्ङिदिटोः परयोरातोलोपः । पपत् । पपुः । पपिथ, पपाथ ।
पपथु । पप । पपां । पपिव । पपिम । पाता । पास्यति । पिबत् । अपि-
बत् । पिबेत् ॥

(५) कित् वा डित् जो “(६) अजादि आर्धधातुक प्रत्यय” से परे ही वा इट् परे हो तो धातु के (७) आकार का लोप होय । पपत् (में ४८० से लिट् की कित् मान आ का लोप ५१८ से हुआ पपत् सिद्ध भया = उन दोने पिया । पपुः = उनने पिया । पपिथ, पपाथ तूने पिया । पपथुः = तुम दोने पिया । पप = तुमने पिया । पपौ ५१७ = मैंने पिया । पपिव = मह दोने पिया । पपिम = हमने पिया ॥ ५१८ ॥

(१) आभोर्लिङ् में । (२) सार्वधातुक और शतृ, शानच् । (३) क्योंकि अकार के पूर्वले वकार की ही उपधा सज्ञा है गुण किसे ही । (४) णल् को ५१७ से औं हुआ पुन., वृद्धिः (५) क् है इत् जिस का । (६) अच् (स्वर) है आदि में जिस को । ४३० से हुई है सन्ना । (७) आकारअन्त का ॥

५१३ ॥ सिचि ष्टि परस्मैपदेषु । ० । २ । १ । इग
 न्ताङ्गस्य ष्टि स्यात्परस्मैपदे सिचि । अक्षीपीत् । अक्षेप्यत् । तप संतापे
 १४ । तपति । तताप । तपसु । तेषु । तेषि । ततप्य । तपयु । तप्ता ।
 तप्स्यति । तपसु । अतपत् । तपेत् । तप्यात् । अताप्सौत् । अताप्ताम् ।
 अतप्स्यत् ॥ १५ क्रमु पाद्विधेये ॥

सिच् परे होते परस्मैपद में (१)इगन्त अङ्ग को ष्टि होय । अक्षीपीत् । अक्षेप्यत् । तप संतापे
 धृद् में अक्षेप्यत् (जो अक्षेप्ये) तप् (तप) अक्षणा (वा तपना) तपति अक्षता
 है । तताप (अक्ष तपा या) । तपसु ष्टि के दो तपे । तेषु ष्टि के अक्षे । तेषि ष्टि,
 ११ वा १११ से ततप्य (तू तपा या) । ष्टि में तप्ता (अक्ष तपेगा) तप्स्यति अक्ष
 तपेगा । तपसु (अक्ष तपे) । अतपत् (अक्ष तपा) तपेत् (अक्ष तपे) तप्यात् (अक्ष
 तपे) । अताप्सौत् ष्टि (अक्ष तपा) अताप्ताम् (के दो तपे) । अतप्स्यत् जो अक्ष तप ।
 क्रमु (क्रम्) किरणा (अक्षणा १५) ॥ ५१३ ॥

५१४ ॥ वाभाशम्भाशम्भमुक्रमुक्लमुक्लसिचुटिष्य । ३ । १ ।

० । एभ्य इयन्वा कर्त्तर्ये सावधातुके परे पक्षे शप् ॥

आश म्भाम् (अक्षणा) अम्भु (किरणा) क्रमु (अक्षणा) क्लमु (सुधी होना)
 अक् (अक्षणा) कुट् (कुट्) कप् (अक्षणा) इन पाठ वातुधो से परे इयन् ६६१ विषय
 अक्षे होते परन्तु अक्ष (१)कर्त्तर्ये सावधातुके परे हो तब (२)पक्ष में शप् ४१३
 होता है ॥ ५१४ ॥

५१५ ॥ क्रम परस्मैपदेषु । ० । १ । ०६ । क्रमो दीघ परस्मै
 पदे गिति । क्राम्यति । क्रामति । अक्राम । क्रमिता । क्रमिष्यति ।
 क्राम्यतु । क्रामतु । अक्राम्यत् । अक्रामत् । क्राम्येत् क्रामेरा । क्रम्यात् ।
 अक्रमीत् । अक्रमिष्यत् । पा पाने ॥ १६ ॥

परस्मैपद पद है परे क्रिस खेप्ये । कित् प्रत्यय परे रहे तो क्रम वातु के अक्ष को
 दीघ होवे । क्राम्यति (५१५ । ५१५) वा क्रामति अक्ष अक्षता है । अक्राम (५२१ । ५२१)
 अक्ष अक्षता या । कुट् में क्रमिता । कट् में क्रमिष्यति (अक्ष अक्षेमा । कौट् में क्राम्यतु वा

(१) " इ उ ष्टि " है अन्त में क्रिस के । (२)कर्त्ता अक्ष को अक्षणा वाता
 क्त को अक्ष । (३) क्रिस में इयन् न होना ।

क्रामन्तु (वह टहले) । लड् में अक्राम्यत् वा अक्रामत् (वह टहला) । वि० लिङ् में क्राम्येत् वा क्रामेत् (वह टहले) (१) क्रम्यात् (ईश्वर करे कि वह टहले) लुङ् में अक्रमीत् (वह-टहला) लृङ् में अक्रमिष्यत् वह जो टहले । १६ "पा" धातु का पीना अर्थ है ॥ ५१५ ॥

५१६ ॥ पात्राध्मास्थाम्नादाण्डृश्यर्त्तिसर्त्तिशदसदां पिबजिघ्र
धमतिष्ठमनयच्छपश्यर्कधौशीयसीदाः । ७ । ३ । ७८ । पादीनांपिवादयः
स्युरित्संज्ञकशादौ प्रत्यये । पिवादेशोऽदन्तस्तेन न गुणः । पिबति ।

पा आदि ग्यारह धातुओं को पिब आदिक ग्यारह आदेश क्रम से होते हैं यदि इत् श् है आदि जिस के ऐसा (२) प्रत्यय परे रहे तब वह क्रम ऐसा है, कि १ पा, पिब (पीना) २ घ्रा, जिघ्र (सूचना) । ३ ध्मा, धम (फूंकना) । ४ स्था, तिष्ठ (खड़ाहोना) ५ म्ना, मन (अभ्यास करना) । ६ दाण् = यच्छ (देना) । ७ दृग् = पश्य, (देखना) । ८ ऋट्, ऋच्छ (गमन) । ९ सृ, धौ (दौडना) । १० शद् शीय (सुरभाना) । ११ शद्, सीद (पीडा) । यहा पिब आदेश अकारान्त है इसी लिये ४७८ से गुण (३) नहीं होता । पिबति, वह पीता है ॥ ५१६ ॥

‘५१७ ॥ आत आ गल् । ७ । १ । ३४ । पपौ ॥

आकार है अन्त में जिसके ऐसे धातु से परे जो गल् उसे औ होजावे पा + गल् (४) = पपौ (उसने पीया) ॥ ५१७ ॥

५१८ ॥ आतो लोपद्विट् च । ६ । ४ । ६४ । अजाद्योर्धधा-
तुक्तयो क्ङिदिटो परयोरातोलीपः । पपत् । पपुः । पपिथ, पपाथ ।
पपथु । पप । पपां । पपिव । पपिम । पाता । पास्यति । पिबत् । अपि-
वत् । पिबेत् ॥

(५) कित् वा डित् जो “(६) अजादि आर्धधातुक प्रत्यय” से परे हो वा इट् परे हो तो धातु के (७) आकार का लोप होय । पपत् (में ४८० से लिट् को कित् मान आ का लोप ५१८ से हुआ पपत् सिद्ध भया = उन दोनों पिया । पपुः = उनने पिया । पपिथ, पपाथ तूने पिया । पपथु. = तुम दोनों पिया । पप = तुमने पिया । पपौ ५१७ = मैंने पिया । पपिव = मह दोनों पिया । पपिम = हमने पिया ॥ ५१८ ॥

(१) आगोर्लिङ् में । (२) सार्वधातुक और शतृ, शानच् । (३) क्योंकि अकार को पूर्वले वकार की ही उपधा सन्ना है गुण किसे ही । (४) गल् को ५१७ से औ हुआ पुनः, द्वि (५) क् है इत् जिस का । (६) अच् (स्वर) है आदि में जिस के । ४३० से हुई है सन्ना । (७) आकारअन्त का ॥

शुद्ध मं पाता षट् मं पास्यति	} वह पियेगा ।	{ मोट् मं (१) पिबतु = वह पिये । षट् अपिबतु = उस ने पिया । वि लिङ् मं पिबेत् = वह पिये ।
---------------------------------	---------------	---

५१८ ॥ एलिङि । ६ । ४ । ६० । घुसंज्ञकानां मास्यादीनां च

एत्वं श्यादाधधातुके किति लिङि । येयात् । गातिस्येति सिचोषुक् ।
 अपात् । अपाताम् ॥

कित् पार्श्वधातुके लिङ् परे रहे तब घु संज्ञावाले ६५६ और मा स्वा धादिक ६१८
 धातुओं के अच् को ए होये येयात् के ईस्वर वह पिये । ४६० में सिच् का जुग होता है
 तब अपात् = उस ने पिया । अपाताम् = उन दोनों पिया ॥ ६१८ ॥

५२ ॥ आत् । ३ । ४ । ११० । सिञ्क्षुवधादन्तादेव भेजुस् ।

सिच् क जुक् के (४६० में) होने पर आकारान्त धातु में ही परे भि को
 जुप् जाने ॥ ६२ ॥

५२१ ॥ अस्यपदान्तात् । ६ । १ । ८६ । अपदान्तादकारादुसि

पररूपमेधादेश । अपु । अपास्यत् । ग्लौ ष्यञये । १० । ग्लायति ॥

(२) अपदान्त आकार ने परे लृ को तो दोनों के स्त्रान में पर का रूप होता है ।
 अपा + भि ६२ = अपा + लृ = ६२१ से 'अपु' उसने पिया लृङ् में । अपास्यत् को
 वह पिये । धा १० । ग्लौ = ग्लानि करना । ग्लायति २६ वह ग्लानि करता है ॥ ६२१ ॥

५२२ ॥ आदेश उपदेशेऽगिति । ६ । १ । ४५ । उपदेशे एव

न्तस्य घातो रात्वं नत् गिति । अग्लौ । ग्लायता । ग्लायस्यति । ग्लायतु ।
 अग्लायत । ग्लायेत ॥

उपदेश में (१) एत्रन्त धातु को आकार होये परन्तु (४) कित् प्रत्य परे ही तो
 नहीं होता । (२) अग्लौ, वह ग्लानि करता था । शुद्ध में ग्लायता वह ग्लानि करेगा
 लृङ् में ग्लायस्यति । अथ पूजयत् । ग्लायतु वह ग्लानि करे । नत् में परमायत् वह
 ग्लानि करता हुआ । विधि लिङ् में ग्लायेत् अथ कीट् वत् ॥ ६२२ ॥

(१) एत्वं धन्त में न होने वाला (२) एप् (ए ची ऐ औ) से धन्त मं बिभ
 के । (३) गावधातुके में शप् । (४) लिङ् में शप् नहीं जाता इसी मं ऐ को या हुआ ता
 ११० में एप् को भी हुआ । (५) १६ स संयोग संज्ञा जाती है ॥

५२३ ॥ वान्यस्य संयोगादेः । ६ । ४ । ६८ । घुमास्था-
देरन्यस्य संयोगादेर्धातोरातएत्व वार्धधातुके किति लिङि । ग्लेयात् ।
ग्लयायात् ॥

घुसञ्जक और मा स्था आदि धातुओं से भिन्न जो हैं, और (१) संयोग है, आदि में जिन के ऐसे धातुओं के आ को विकल्प करके ए होता है, जब कित् लिङ् के स्थान में वार्धधातुक प्रत्यय परे रहे । ग्लेयात्, ग्लयायात्, ईग्वर करे कि, वह ग्लानि करे ॥ ५२३ ॥

५२४ ॥ यमरमनमातां सक् च । ७ । २ । ७३ । एषां सक्-
स्यादेभ्यः सिच इट् स्यात्परस्मैपदेषु । अग्लासीत् । अग्लास्यत् ।
ह्व कौटिल्ये । १८ । ह्वरति ॥

यम् = निवृत्त होना । रम् = क्रीडा करनी । नम् = नमस्कार करनी । इन को और आकार है, अन्त में जिन के ऐसे धातुओं को सक् का आगम होय । और उस से परे जो सिच् उसको इट् का आगम होवे जब परस्मैपद परे रहे तो । अग्लासीत् ४७३ = उस ने ग्लानि की । अग्लास्यत् जो वह ग्लानि करे । ह्व = कुटिलता करनी । १८ । ह्वरति ४१४ = वह कुटिलता करता है ॥ ५२४ ॥

५२५ ॥ ऋतश्च संयोगादेर्गुणः । ७ । ४ । १० । ऋदन्तस्य
संयोगादेरङ्गस्य गुणो लिटि । उपधाया वृद्धि । जह्वार । जह्वरतुः ।
जह्वरु । जह्वर्यु । जह्वरथुः । जह्वर । जह्वार । जह्वर । जह्वरिव । जह्व-
रिम । ह्वर्त्ता ॥

संयोग है आदि में जिस के ऐसे ऋदन्त अङ्ग को लिट् परे हो तो गुण होवे । उपधा को (०) वृद्धि हुई तब जह्वार = उसने कुटिलता की ॥ ५२५ ॥

जह्वरतुः (उन दो ने कुटिला की)	ऽ	{	जह्वर्यु = (तूने	कुटिलता की)
जह्वरु (उन ने " ")			जह्वरथु (तुम दो ने	" "
			जह्वर (तुमने	" "

ऽ	{	जह्वार, जह्वर (मैंने कुटिलता की)	}	लुट् लकार में ह्वर्त्ता, वह कुटिलता करेगा
		जह्वरिव (हम दो ने " ")		
		जह्वरिम (हम ने " ")		

(१) ५१६ में पिच् आदेश हुआ । (२) अत उपधायाः (४८३) से ॥

बुद् में पाता बुद् में पास्यति	} वह पियेगा ।	{ भोद् में (१) पिबतु = वह पिये । लङ् अपिबत् = उस ने पिया । वि लिङ् में पियेत् = वह पिये ।
-----------------------------------	---------------	---

५१६ ॥ एषिञि । ६ । ४ । ६० । घुसंज्ञकानां मास्थादीनां च एत्थं भ्यादाधधातुके किति लिङि । पेयात् । गतिस्वेति सिधोक्षुक् । अपात् । अपाताम् ॥

कित् पार्श्वधातुके लिङ् परे रहे तब घु संज्ञावाले ६१६ और मा स्था पाठिक ६१८ धातुओं के भष् को ए हीसे पेयात् से ईरवर वह पिये । ६६० से सिष् का लुक् होता है तब अपात् = उस ने पिया । अपाताम् = उन दोनों पिया ॥ ६१८ ॥

५२ ॥ आत् । ६ । ४ । ११० । सिष्लुवधादन्तादेव ऋषुस् ।

सिष् के लुक् के (६६० से) होने पर आकारान्त धातु से ही परे ऋ को लुक् होने ॥ ५२ ॥

५२१ ॥ उत्स्यदान्तात् । ६ । १ । ८६ । अपदान्तादकारादुसि पररूपमेकादेश । अप् । अपास्यत् । ग्लै ह्यचये । १० । ग्लायति ॥

(१) अपदान्त अकार से परे लृप् जो तो दोनों के स्थान में पर का रूप होता है । अपा + भि ६२ = अपा + लृप् = ६२१ से "अप्" उसने पिया लृक् में । अपास्यत् को वह पिये । भा १० । ग्लै = ग्लानि करना । ग्लायति १६ वह ग्लानि करता है ॥ ५२१ ॥

५२२ ॥ आदेश उपदेशेऽगिति । ६ । १ । ४५ । उपदेशे एव भ्रतस्य धातो राह्वं नतु गिति । अग्लौ । ग्लायता । ग्लायस्यति । ग्लायतु । अग्लायत । ग्लायेत ॥

उपदेश में (१) एतन्त धातु को आकार होने परन्तु (२) शित् प्रात्य परे जो तो नहीं होता । (३) अग्लौ, वह ग्लानि करता भा । लुद् में ग्लायता वह ग्लानि करेगा लृद् में ग्लायस्यति । अत्र पूषवत् । ग्लायतु वह ग्लानि करे । लृद् में अग्लायत् वह ग्लानि करता हुआ । विधि लिङ् में ग्लायेत् अत्र लोद् वत् ॥ ५२२ ॥

(१) पद को चान्त में न होने वाला (२) एप् (ए पी ऐ औ) है चान्त में अिभ के । (३) धातुधातुके में एप् । (४) लिद् में एप् नहीं होता अभी ने ऐ को या हुआ तो ११० से एप् को भी हुआ । (५) १६ ए संयोग संज्ञा धातो च ॥

{ शृणोषि = तू सुनता है } { शृणुयः = तुम दो सुनते हो }	{ शृणुय, तुम सुनते हो } { शृणोमि, मैं सुनता हूँ }
--	--------	--

५३१ ॥ लोपश्चास्यान्यतरस्यां स्वीः । ६ । ४ । १०७ । असंयोग-

पूर्वस्य प्रत्ययोकारस्य लोपो वा स्वीः परयोः । शृणवः । शृणुवः ।
 शृणमः । शृणुमः । शृण्वाव । शृणुवतुः । शृणुवुः । शृणुथ । शृणुवथुः । शृणुव
 शृण्वाव । शृणुव । शृणुम । श्रोता । श्रोष्यति । शृणोतु । शृणुताम् । शृण्वन्तु ॥

नही है संयोग पूर्व जिस के ऐसा जो प्रत्यय का "उ" तिसका म् वा व् परे रहते
 विकल्प करके लोप होवे । शृणव, शृणुव, हम दो सुनते हैं । शृणम, शृणुमः, हम सुनते हैं ।

॥ एकवचन ॥ ॥ द्विवचन ॥ ॥ बहुवचन ॥

प्रथम पु० { १ शृण्वाव, उसने सुना । } म० पु० { २ शृणुथ, तूने सुना । } उ० पु० { ३ शृण्वाव, मैंने सुना । }	{ शृणुवतुः, उन दोने सुना । } { शृणुवथुः, तुमदोने सुना । } { शृणुव, हम दोने सुना । }	{ शृणुवुः, उनने सुना । } { शृणुव, तुमने सुना । } { शृणुम, हमने सुना । }
---	---	---

लृट् में "श्रोता" । लृट् में "श्रोष्यति" वह सुनेगा । लोट् में शृणोतु, वह सुने ।
 शृणुताम्, वेदो सुने । शृण्वन्तु, वे सुने ॥ ५३१ ॥

५३२ ॥ उत्तश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात् । ६ । ४ । १०६ ।

असंयोगपूर्वात्प्रत्ययोतो हेर्लुक् । शृणु । शृणुतात् । शृणुतम् । शृणुत ।
 गुणावादेशौ । शृणवानि । शृणवाव । शृणवाम । अशृणोत् । अशृणुताम् ।
 अशृणवन् । अशृणोः । अशृणुतम् । अशृणुत । अशृणवम् । अशृणव
 अशृणुव । अशृणम । अशृणुम । शृणुयात् । शृणुयाताम् । शृणुयुः
 शृणुयाः । शृणुयातम् । शृणुयात । शृणुयाम् । शृणुयाव । शृणुयाम ।
 श्रूयात् । अश्रोषीत् । अश्रोष्यत् । गम्लृ गतौ ॥ २० ॥

संयोग पूर्व नहीं है जिसके ऐसा जो प्रत्यय का उकार तिस से परे (१) हि ही तो
 उख हि का लुक् होवे । शृणु, तुम सुनी । शृणुतात्, ईश्वर करे कि तू सुने ।

{ शृणुतम्, तुम दो सुनी । } { शृणुत, तुम सुनी । }	{ शृणवाणि, मैं सुनू । } { शृणवाव, हम दो सुने । } { शृणवाम, हम सुने । }	} यहाँ ४१४से गुण और २६से अच् होते हैं
---	--	---------------------------------------

५२६ ॥ ऋचमो स्ये । ७ । २ । ७० । ऋतो ऋन्तेश्च स्यस्वेट् ।

ऋरिष्यति । ऋरतु । अऋरत् । ऋरेत् ॥

अकारान्त धातु और ऋ धातु से परे जो (१) स्य तिसको इट् का धामम होने ।

ऋरिष्यति = अय सुट् पत् । अऋरत् वह कुटिलता करे । ऋरेत् (" ")

करता हुआ ॥ ५२६ ॥

५२७ ॥ गुणोर्त्तिसंयोगाक्षीः । ७ । ४ । २८ । अर्त्तेः संयोगा
देर्दन्तस्य च गुणो षक्ति यादावार्धधातुके छिच्छि च । ऋयात् ।
अऋर्षीत् । अऋरिष्यत् । अश्रवणे । १८ ॥

अ = चक्षणा और संयोगादि ऋदन्त धातु को गुण होनेजन (२)यक वा (३) यदि
(४) धातुधातुक छिद् परे हो तो । ऋयात् = इत्वर करे कि वह कुटिलता करे । अऋर्षीत्
= छमने कुटिलता की । अऋरिष्यत् = जो वह कुटिलता करे । अश्रु = सुनना १८ ॥ ५२७ ॥

५२८ ॥ अश्रु शृच । ३ । १ । ७४ । अश्रु शृ इत्यादेश स्यात्
इनुप्रत्ययश्च । शृषीति ॥

अश्रु धातु को शृ धादेय होने और छस से परे इनु प्रत्यय भी होने । शृषीति २२८
वह सुनता है ॥ ५२८ ॥

५२९ ॥ सावधातुषमपित् । १ । २ । ४ । अपित्सावधातुर्क
रिद्धत् । शृषुतः ॥

(१) अपित् जो सावधातुष प्रत्यय को कित् के सङ्ग ४२१ होने इस से मुनुत में
गुण न भया मुनुत वे दो मुनते हैं ॥ ५२९ ॥

५३० ॥ इरनुवोः सार्वधातुके । ६ । ४ । ८० । इरनुवीरनेका
षीऽसंयोगपूर्वस्थीवष्यस्य यष् स्वादचि सार्वधातुके । शृएवन्ति ।
शृषीषि । शृषुमः । शृषुय । शृषीमि ॥

इ = (इति को छाजना) के और "रनु प्रत्यय है अन्त में जिस के ऐसा की
पनेक चर्चा जाना चाह" कम क "(६) असंयोग पूर्व" अवयव को यष् होय अत्रादि साम
धातुक पर रहे तब । शृएवन्ति = वे मुनते हैं ॥ ५३० ॥

(१) "४२८" क पाता है । (२) ७८१ में होगा । (३) य् ई धादि में जिस के
(४) धागिनिक । (५) जिस का प् इन् नहीं गया होने । (६) तथैव जिसके पहिले नहीं है ।

प्रयति, वह जावेगा । लोट् में ५३३ से छ हुआ, गच्छतु, वह जावे । लङ् में अगच्छतु,
गया । वि० लिङ् में गच्छेत्, वह जावे । आ० लिङ् में गम्यात्, ईश्वर करे
वह जावे ॥ ५३५ ॥

५३६ ॥ पुषाद्व्युताद्य्लृदित. परस्मैपदेषु । ३ । १ । ५५ । श्यन्-
विकरणपुषादेर्द्युतादेर्लृदितश्च परस्य च्लेरङ् परस्मैपदेषु । अगमत्
अगमिष्यत् ॥

॥ इति प्रस्मैपद प्रक्रिया ॥

श्यन् ६६३ विकरण (दिवादि गण के) पुष् (मुष्ट करणा) आदि धातुओं से
परे और व्युत्, (दीप्ति करना) आदि से परे और जिनका लृ (१) इत् गया है, उन से
परे जो च्ल तिस को अङ् होवे परस्मैपद से । अगमत्, वह गया । अगमिष्यत्, ५३५ जो
वह जावे ॥ ५३६ ॥ ॥ भ्वादिगण के परस्मैपदी धातु समाप्त हुए ॥

॥ एध वृद्धी ॥ १ ॥

५३७ ॥ टितआत्मनेपदानां टेरे । ३ । ४ । ७६ । टितोलस्यात्म-
नेपदानां टेरेत्वम् । एधते ॥

आत्मनेपद में १—एध धातु बढ़ना अर्थ में है, उस की साधन प्रक्रिया ऐसे है ।
टित जो लकार ३८८ उस के स्थान में जो आत्मने पद सन्नक-(२) प्रत्यय उनकी टि की ए
होवे (एध् + त) = ४१३ से = (एध + त) ४३७ ए हुआ । तब एधते, वह बढ़ता है ॥ ५३७ ॥

५३८ । अतीङित् । ७ २ । ८१ । अतः परस्यङितामाकारस्य-
इय् स्यात् । एधेते । एधन्ते ॥

अकार से परे जो ङित् प्रत्यय उसके आकार की इय् होवे । (३) एधेते, बेटी बढ़ते
हैं एधन्ते, (४१५) वे बढ़ते हैं ॥ ५३८ ॥

५३९ । यास से । ३ । ४ । ८० । टितोलस्य यासः से स्यात् ।
एधसे । एधेथे । एधध्वे । अतीगुणे । एधे । एधावहे । एधामहे ॥

टित् लकार के स्थान में जो यास् तिसको से आदेश होवे । एधसे, तू बढ़ता है ॥
एधेथे, तुम दो बढ़ते हो । एधध्वे, तुम बढ़ते हो । एध + ए (४) अतीगुणे से पर रूप, एधे, मैं
बढ़ता हूँ । एधावहे, ५३७ । ४१५ हम दो बढ़ते हैं । एधामहे, हम बढ़ते हैं ॥ ५३९ ॥

(१) इत् सन्नक । (२) आदेशरूप (३) यहा “एध + इय् ताम्” (एधेय् ताम्) “लोपो
व्योर्बलि” से य् का लोप होने पर और ५३७ एधेते सिद्ध हुआ । (४) यहा पहिले एध + इ
५३७ से = एध + ए ।

॥ प्रथम पुरुष ॥ ॥ मध्यम पुरुष ॥ ॥ उत्तम पुरुष ॥

छाद् में	{	१ अगचोत् उचने सुना	अगचोः, तुम् सुना	अगचवम् मैने सुना
		२ अगचुताम् उचने	अगचुतम् तुमदीने	(१)अगचव इमदीने ,,
		३ अगचवन् उचने	अगचुत तुमने सुना	(२)अगचवम् इमने

वि लिङ् में	{	गुचुवात् वच् सुने	गचुया तू मुने	गचुयाम् मै सुनु
		गुचुयाताम् वदो ,,	गचुयातम् तुमदो	गचुयाव इमदो मुने
		गचुयु वे ,,	गचुयात तुम ,,	गचुयाम् इम सुने

भाषिर्लिङ् में चूयात् (३१२) इत्वर करे कि वच् सुने सुद् लकार में अचोपीत् (३१३) से ङि उचने सुना। सुद् में अयोप्यत् जो वच् सुने। गम् (गम्ब) जाना (२) ॥ ३३२ ॥

५३३ ॥ पूपुगमियर्मा छ । ७ । ३ । ७७ । एर्पा छ शिति । गच्छति । अगाम ॥

इयु इच्छा करनी। यम् जाना। यम् मिद्धत होना। इन घातुर्पा से परे मित् प्रत्यय होव तो इम तीनी के अन्त में होमे वाले अचर को छ पादेम होवे। गच्छति वच् जाता है। सिद् में ३८२, ३८३ अगाम वच् मया ॥ ३३३ ॥

५३४ ॥ गमङ्गजमखनघर्सा क्षीप क्ङित्यमङ्ङि । ६ । ४ । ६८ ।
एयामुपधायाक्षीपो ऽजादौ क्ङिति नत्वङ्ङि। अगमत्। अगम् । अगमिय,
जगन्थ। अगमयु । अगम । अगाम । जगम। जगिमय। जगिमम। गग्ता ॥

गम् जाना। जग मारना। जम् (३) उत्पन्न होना। खम् छोदना। यम् खाना इन घातुर्पा की उपधा का क्षीप होवे जब अच्वादि कित् वा ङित् प्रत्यय परे रहे तो परन्तु अच् परे हो तो नहीं। (४) अगमत् वे दो नये। अगम् व गये। अगमिच्च जगन्थ तू गया। अगमन्, तुम दो मय। अगम तुम गय। अगाम जगम मै मया वा। अगिमय इम दी गय। अगिमम इम नय। कुट में गग्ता ३ से इट नियेय धीर ८२ ८३ इन सं अनुस्वार पर सवथ पुप। वच् जावया ॥ ३३४ ॥

५३५ ॥ गमेरिट् परस्मैपदेषु । ७ । २ । ५८ । गमे सादेराधधातु
कस्येट् परस्मैपदेषु । गमिष्यति । गच्छतु। अगच्छत। गच्छेत्। गम्यात् ॥
गम् में परस्मैपद में (१) साटि पाठजान्क परे हो तो इद् का आगम होवे।

(१)पच सं अगचुव। (२)पच सं अगचुम। (३)पदा। (४)अगम् अतुम तच्च गच्छापो नर वलमान अच्चार काक्षीप बुधा ३३४म अगमत् निव मया। (५)म् है आन्तिगर्मे जिनक।

गमिष्यति, वह जावेगा । लोट् में ५३३ से छ हुआ, गच्छतु, वह जावे । लङ् में अगच्छत्, वह गया । वि० लिङ् में गच्छेत्, वह जावे । आ० लिङ् में गम्यात्, ईश्वर करे कि वह जावे ॥ ५३५ ॥

५३६ ॥ पुषाद्विद्युताद्लृदित् परस्मैपदेषु । ३ । १ । ५५ । श्यन्-
विकरणपुषादेर्द्युतादेर्लृदितश्च परस्य च्लेरङ् परस्मैपदेषु । अगमत्
अगमिष्यत् ॥ ॥ इति प्रस्मैपद प्रक्रिया ॥

श्यन् ६६३ विकरण (दिवादि गण के) पुष् (पुष्ट करणा) आदि धातुओं से परे श्रीर द्युत्, (दीप्ति करना) आदि से परे श्रीर जिनका लृ (१) इत् गया है, उन से परे जो च्लि तिस को अङ् होवे परस्मैपद में । अगमत्, वह गया । अगमिष्यत्, ५३५ जो वह जावे ॥ ५३६ ॥ ॥ भ्वादिगण के परस्मैपदी धातु समाप्त हुए ॥

॥ एध बृद्धौ ॥ १ ॥

५३७ ॥ टित् आत्मनेपदानां टरे । ३ । ४ । ७६ । टित् लस्यात्म-
नेपदानां टरेत्वम् । एधते ॥

आत्मनेपद में १—एध धातु बढना अर्थ में है, उस की साधन प्रक्रिया ऐसे है । टित् लो लकार ३६८ उस के स्थान मे जो आत्मने पद सञ्जक (२) प्रत्यय उनकी टि की ए होवे (एध् + त) = ४१३ से = (एध + त) ४३७ ए हुआ । तब एधते, वह बढता है ॥ ५३७ ॥

५३८ । अतोङित् । ७ २ । ८१ । अत परस्यङितामाकारस्य-
इय् स्यात् । एधेते । एधन्ते ॥

अकार में परे जो ङित् प्रत्यय उसके आकार को इय् होवे । (३) एधेते, वेदो बढते हैं एधन्ते, (४१५) वे बढते हैं ॥ ५३८ ॥

५३९ । थास से । ३ । ४ । ८० । टित् लस्य थासः से स्यात् ।
एधसे । एधेथे । एधध्वे । अतीगुणे । एधे । एधावहे । एधामहे ॥

टित् लकार के स्थान में जो थास् तिसकी से आदेश होवे । एधसे, तू बढता है ॥ एधेथे, तुम दो बढते हो । एधध्वे, तुम बढते हो । एध + ए (४) अतीगुणे से पर रूप, एधे, मैं बढता हू । एधावहे, ५३७ । ४१५ हम दो बढते हैं । एधामहे, हम बढते हैं ॥ ५३९ ॥

(१) इत् सञ्जक । (२) आदेशरूप (३) यद्वा “एध + इय् ताम्” (एधेय् ताम्) “लोपो व्योर्वलि” से य् का लोप होने पर और ५३७ एधेते सिद्ध हुआ । (४) यद्वा पहिले एध + इ ५३७ से = एध + ए ।

५४ ।। इजादेश्च गुसमतोऽनुच्छ । ३ । १ । ३६ । इजादिर्विधा

तुर्गुसमानुच्छत्यन्यस्तत आम् स्वाक्षिण्टि ।

इच् प्रत्याहारान्तगत वचो में से जोई एव ही खादि में जिसके पीर ४७७ । ४७८ से गुह संज्ञक स्वर वाक्वा जो "अच्छ" को जोइएर पीर जोई वातु छस से छिद् में आम् प्रत्यय हीवे ॥ ५४ ॥

५४१ । आम्प्रत्ययवत्कृञोऽनुप्रयोगस्य । १ । ३ । ६३ । आम् प्रत्ययो यस्मात् इत्यङ्गुबसंविभ्रानोबहुव्रीहिः । आम्प्रकृत्या तुल्यमनु प्रसुह्यमानात्कृञोऽप्यात्मनेपदम् ।

४८८ ५४ से आम् प्रत्यय विधान किया है । जिस से उसे (१)आम् प्रत्यय कहते हैं (यहां (२)पतदुबसंविधान बहुव्रीहि है) अर्थात् आम् की प्रकृति को समान कच् वातु से भी आत्मनेपद होने इछ का यह 'भाव' है कि "जिस वातु से आम् आया है यदि वह वातु आत्मनेपद ही हो तो कच् से भी आत्मनेपद होने नहीं तो नहीं आम् को पाने से उससे आने के प्रत्ययका ५ से कुछ होता है" ॥ ५४१ ॥

५४२ ॥ छिटस्तभयोरिगिरेच् । ३ । ४ । ८१ । छिटादेश्योस्तभयोरिगिरेचीस्तः । एधाञ्चक्रे । एधाञ्चक्राते । एधाञ्चक्रिरे । एधाञ्चकृषे । एधाञ्चक्राषे ॥

छिद् के स्थान में आदेश जो त पीर भ्र तिन को एम् पीर इरच् आदेश क्रम से होते हैं एधाञ्चके यह बडा । एधाञ्चक्राते से हो बडे । एधाञ्चक्रिरे, से बडे । एधाञ्चकृषे तू बडा । एधाञ्चक्रासे तुम हो बडे ॥ ५४२ ॥

५४३ । इजः यौध्वकुञ्छिटां षोडशात् । ८ । ३ । ७८ । इजन्तादङ्गात्खरेषां यौध्वकुञ्छिटां षस्य ढ । एधाञ्चकृत्वे । एधाञ्चक्रे । एधाञ्चकृषे । एधाञ्चकृमहे । एधावभूव । एधामास । एधिता । एधितारी । एधितार । एधितासे । एधितासाषे ॥

(१) आम् प्रत्ययान्त (२)बहुव्रीहि समास को प्रकार का है १म तदुब संविधान (यहां जिस कक्ष से पदार्थ का बोध हो ही छस में ही पीर तद्विगिष्ट पदार्थका बीच यमोद्व ही) यथा (कान्दवर्षे मानय अग्ने फान वासे को का पीर दूधरा पतदुब संविधान इछ से विद्व है यथा इष्टसागर मानय (जिसने सागर देखा हो उसे का ॥

(१) इत्यन्त अङ्ग से परे जो “ षीष्वा और लुङ्, लिट् ” इन के धकार को ढकार

होवे, एधाञ्चकृद्, तुम बढे । एधाञ्चक्रे, मैं बढा । एधाञ्चकृवद्, हम दो बढे ।
एधाञ्चकृमहे, हम बढे । एधाञ्चकृव, ५०१ और एधासास ये भी इसी काल के रूप
हैं । लुट् में, एधिता, बह बढेगा । एधितारौ, वे दो बढेंगे + एधितारः, वे बढेंगे । एधितासे
५३८ तू बढेगा । एधितासाधे, तुम दो बढोगे । ५४३ ॥

५४४ ॥ धि च । ८ । २ । २५ । धादौ प्रत्यये सस्य लोपः । एधि-
ताध्वे ॥

ध्व है, आदि में जिसके ऐसा प्रत्यय परे रहे तो स् का लोप होवे, एधिताध्वे, तुम
बढोगे ॥ ५४४ ॥

५४५ ॥ ह एति । ७ । ४ । ५२ । तासस्त्योः सस्य ह. स्यादेति परे ।
एधिताहे । एधितास्वहे । एधितास्महे । एधिष्यते । एधिष्येते । एधि
ष्यन्ते । एधिष्यसे । एधिष्येथे । एधिष्यध्वे । एधिष्ये । एधिष्यावहे ।
एधिष्यामहे ।

तास् प्रत्यय के और अस् धातु के स् को ह्व होवे, परन्तु जब एकार परे होय तो
एधिताहे, मैं बढूंगा । एधितास्वहे, हम दो बढेंगे । एधितास्महे, हम बढेगे । लृट् में
एधिष्यते । एधिष्येते ५३८ । एधिष्यन्ते । एधिष्यसे, ५३८ । एधिष्येथे, ५३८ । एधिष्यध्वे ।
एधिष्ये । एधिष्यावहे । एधिष्यामहे । अर्थ इन सभ के लुट् के समान हैं ॥ ५४५ ॥

५४६ ॥ आमेत. । ३ । ४ । ६० । लोट एत आम् । एधताम् । एधि
ताम् । एधन्ताम् ।

लोट् लकार के स्थान में जो आदेश तिसका अवयव जो एकार ५३७ तिसकी आम्
होवे । एधताम्, वह बढे । एधेताम्, ५३८ वे दो बढें । एधन्ताम्, वे बढे ॥ ५४६ ॥

५४७ ॥ सवाभ्यां वासौ । ३ । ४ । ६१ । सवाभ्यां परस्य लीडेत.
क्रमाद्वासौ स्त । एधस्व । एधेशाम् । एधध्वम् ।

स् और व् से परे जो लोट् का एकार तिस को क्रम से व और षम् होवें । एधस्व,
तू बढे । एधेशाम् । ५४६ । तम दो बढे । एधध्वम् (५३७) तुम बढो ॥ ५४७ ॥

५४८ ॥ एत ऐ । ३ । ४ । ६३ । लीडुत्तसस्य । एधै । एधावहै ।

(१) इण् प्रत्याहारान्तर्गत वर्णों में से कोई एक है, अन्त में जिस के ॥

५४० ।। ब्रुवादेश्च गुसुमतोऽनुचक्षः । १ । १ । १६ । ब्रुवादिर्योधा

तुगुसुमानुश्चत्यन्यस्तत आम् स्याद्विहितः ।

इत् प्रत्याशापान्तगत वचो में से कोर्र एक है आदि में जिसके पीर ३०० । ३०८ से मुब संज्ञक स्वर वाचा जो 'अच्छ' को जोड़कर पीर कोर्र वातु उस से छिट में आम् प्रत्यय होते ॥ ५४ ॥

५४१ । आम्प्रत्ययवत्कृञ्जीऽनुप्रयोगस्य । १ । १ । ६३ । आम् प्रत्ययो यस्मात् इत्यद्भुषसंविज्ञानोवहुनीहि । आम्प्रकृत्या तुष्यमनु प्रबुज्यमानात्कृञ्जीऽप्यात्मनेपदम् ।

३८८, ३४ से आम् प्रत्यय विधान किया है । जिस से उसे (१) आम् प्रत्यय कहते हैं (यहां (२) अतद्भुषसंविज्ञान वहुनीहि है) अर्थात् आम् की प्रकृति के समान कृञ् भातु से भी आत्मनेपद होते इस का यह "भाव" है कि "जिस वातु से आम् आया है यदि वह वातु आत्मने पदी हो तो कृञ् से भी आत्मने पद होते नहीं तो नहीं आम् के पाने से उसके पाने के प्रत्ययका ५ से जुक्त होता है" ॥ ३४१ ॥

५४२ ॥ छिटस्तभ्योरेथिरेष् । १ । ४ । ८१ । छिटादेश्योस्तभ्योरेथिरेषीस्त । एधाञ्चक्रे । एधाञ्चक्राते । एधाञ्चक्रिरे । एधाञ्चक्षुपे । एधाञ्चक्राये ॥

छिट् के स्थान में आदेश जो त पीर भ्र तिन को एम् पीर इरप् आदेश क्रम से होते हैं एधाञ्चक्रे वह बटा । एधाञ्चक्राते वे दो बटे । एधाञ्चक्रिरे, वे बटे । एधाञ्चक्षुपे तू बटा । एधाञ्चक्राये तुम दो बटे ॥ ३४२ ॥

५४३ । इष्य पीष्वंसुक्ष्मिटां धोक्तात् । ८ । १ । ०८ । इष्यतादङ्गा त्यरेषां पीष्वंसुक्ष्मिटां धस्य ङः । एधाञ्चकृत्वे । एधाञ्चक्रे । एधाञ्चकृत्रहे । एधाञ्चकृमहे । एधाञ्चभूव । एधाभास । एधिता । एधितारौ । एधितारः । एधितासे । एधितास्ये ॥

(१) आम् प्रत्ययात् (२) वहुनीहि समास दो प्रकार का है १म तद्भुष संविज्ञान (जहां जिस लक्ष्य से पदाद्य का बोध हो सी उस में ही पीर तद्विगिण्ट पदाद्यका बोध समीप्ट हो) यथा (सम्बलप मानय लम्बे काग बाबे को का पीर दूसरा अतद्भुष संविज्ञान हम से बिद्व है यथा इष्टसागर मानय (जिधने सागर इया कोउम का ॥

(१) इत्यन्त अङ्ग से परे जो “ ङीष् व और लुङ्, लिट् ” इन के धकार को ढकार

होवे, एधाञ्चकृद्दे, तुम बढे । एधाञ्चक्रे, मैं बढा । एधाञ्चकृवहे, हम दो बढे ।
एधाञ्चकृमहे, हम बढे । एधाञ्चकृव, ५०१ और एधासास ये भी इसी काल के रूप
हैं । लुट् से, एधिता, वह बढेगा । एधितारौ, वे दो बढेंगे+ एधितारः, वे बढेंगे । एधितासे
५३८ तू बढेगा । एधितासाथे, तुम दो बढोगे । ५४३ ॥

५४४ ॥ धि च । ट । २ । २५ । धादौ प्रत्यये सस्य लोपः । एधि-
ताध्वे ॥ .

ध्व है, आदि मे जिसके ऐसा प्रत्यय परे रहे तो स् का लोप होवे, एधिताध्वे, तुम
बढोगे ॥ ५४४ ॥

५४५ ॥ ह् एति । ७ । ४ । ५२ । तासस्त्योः सस्य ह् स्यादेति परे ।
एधिताहे । एधितास्वहे । एधितास्महे । एधिष्यते । एधिष्येते । एधि
ष्यन्ते । एधिष्यसे । एधिष्येथे । एधिष्यध्वे । एधिष्ये । एधिष्यावहे ।
एधिष्यामहे ।

तास् प्रत्यय के और अस् धातु के स् की ह् होवे, परन्तु जय एकार परे होय तो
एधिताहे, मैं बढूंगा । एधितास्वहे, हम दो बढेंगे । एधितास्महे, हम बढेगे । लृट् मे
एधिष्यते । एधिष्येते ५३८ । एधिष्यन्ते । एधिष्यसे, ५३८ । एधिष्येथे, ५३८ । एधिष्यध्वे ।
एधिष्ये । एधिष्यावहे । एधिष्यामहे । अर्थ इन सभ के लुट् के समान हैं ॥ ५४५ ॥

५४६ ॥ आसितः । ३ । ४ । ६० । लोट एत आम् । एधताम् । एधे
ताम् । एधन्ताम् ।

लोट लकार के स्थान में जो आदेश तिसका अवयव जो एकार ५३७ तिसकी आम्
होवे । एधताम्, वह बढे । एधेताम्, ५३८ वे दो बढें । एधन्ताम्, वे बढें ॥ ५४६ ॥

५४७ ॥ सवाभ्यां वासौ । ३ । ४ । ६१ । सवाभ्यां परस्य लीडेतः
क्रमाद्वासौ स्त । एधस्व । एधेथाम् । एधध्वम् ।

स् और व् से परे जो लोट् का एकार तिस को क्रम से व और अम् होवे । एधस्व,
तू बढे । एधेथाम् । ५४६ । तुम दो बढे । एधध्वम् (५३७) तुम बढो ॥ ५४७ ॥

५४८ ॥ एत ऐ । ३ । ४ । ६३ । लीडुत्तसस्य । एधै । एधावहै ।

(१) इण् प्रत्याहारान्तर्गत थया में से कीर्त एक है, अन्त में जिस के ॥

एधामहि । (भाट्टश्च) ऐधत । ऐधेताम् । ऐधन्त । ऐधया । ऐधेयाम् ।
ऐधन्म् । ऐधे । ऐधावहि । ऐधामहि ।

सोट् मकार के उत्तम पुरुष के ए को ऐ हीय । एधे में बट्टू । एधावहे इम दो बडे ।
एधामहे इम बडे । ऋद्ध में ४०२ में चाट् पा+एधत ०१२ से हहि होने पर ऐधत बह
बडा । ऐधेताम् से दो बडे । ऐधन्त ४१३ से बडे । ऐधयाः, तू बटा । ऐधेयाम् तुम दो बडे ।
ऐधन्म् तुम बडे । ऐधे में बटा । ऐधावहि इम दो बडे । ऐधामहि इम बडे ॥ ३४८ ॥

५४८ ॥ लिटः सौयुट् । ३ । ४ । १०२ । सलोपः । ऐधेत । ऐधेया
ताम् ।

लिट् को सौयुट् का प्रागम द्वये ४१३ में सू का लोप हुआ और ४३० में ए का
लोप होने पर । ऐधत बह बडे । ऐधेयाताम् से दो बडे ॥ ३४८ ॥

५४० । भ्रस्य रन् । ३ । ४ । १०५ । लिटः । ऐधेरन् । ऐधेयाः । ऐधे
यायाम् । ऐधेभ्यम् ।

लिट् क भ्र को रन् द्वय । ऐधेरन् ब बडे । ऐधेयाः, तू बटा । ऐधेयायाम् तुम
दो बडे । ऐधेभ्यम् तुम बडे ॥ ४१३ ॥

५५१ ॥ इटोऽतः । ३ । ४ । १०६ । लिटोऽदेगस्य । ऐधेय । ऐधेवहि ।
ऐधेमहि ।

लिट् मकार में ओ उत्तम पुरुष का इट् लिटका पठारहीय । ऐधेय में बट्टू । ऐधे
वहि इम दो बडे । ऐधेमहि इम बडे ॥ ४१३ ॥

५५२ ॥ सुट् तिथोः । ३ । ४ । १०७ । लिटस्तथोः सुट् । दलोपः ।
पाथे प्रागुत्तरात् सलोपीन । ऐधिषीष्ट । ऐधिषीयास्ताम् । ऐधिषीरन् ।
ऐधिषीष्टा । ऐधिषीयास्ताम् । ऐधिषीभ्यम् । ऐधिषीय । ऐधिषीवहि ।
ऐधिषीमहि । ऐधिषीष्ट । ऐधिषीयास्ताम् ।

तू धे ए ए को मर का प्रागम द्वय पठिजे (म सू) लिटोऽत के प्रागम धा ३१
३१३ में चाट् हुआ त - ३१३ में एका ए का लोप हुआ । ३१३ में चाटिष् चर्च में लिट
का प्रागम द्वये इटोऽत ३१३ में एका ए का लोप हुआ । तब लिटोऽत ही ३१३ में
(१) ए उत्तरात् इटोऽत लिट् बडे ३१३ ॥

प्रथमः मध्यमः पुरुषः	{	एधिषीयास्ताम्, ईश्वर करे कि वेदी वटे	}	प्रथमः मध्यमः पुरुषः	{	एधिषीय ईश्वर करे में वटूं ।
		एधिषीरन् ५५० " " " " " " " "				एधिषीवहि, ईश्वरक० हमदी वटें
		एधिषीष्ठाः " " " " " " " "				एधिषीमहि ईश्वरक० हमवटें ॥
		एधिषीयास्थाम् " " तुमदी वटो				
		एधिषीध्वम् " " तुम " "				

खुड में ऐधिष्ठा (४७२) (४६५) (४६६) (४२७) वह वटा ऐधिषाताम् वेदी वटे ।

५५३ ॥ आत्मने पदे ष्वनतः । ७ । १ । ५ । अनकारान्त्परस्यात्मनेप

देषु ऋस्यात्स्यात् । ऐधिषत । ऐधिष्ठाः । ऐधिषाथाम् । ऐधिष्वम् ।
ऐधिषि ॥ ऐधिष्वहि । ऐधिषमहि । ऐधिष्यत । ऐधिष्येताम् । ऐधि
ष्यन्त । ऐधिष्यथाः । ऐधिष्येथाम् । ऐधिष्वध्वम् । ऐधिष्ये । ऐधिष्या-
वहि । ऐधिष्यामहि ॥ कामवान्तौ ॥ २ ॥

आत्मनेपद में यदि भ् अकार से परे न हो तो उसे अत् होवे । ऐधिषत वे वटे ।

प्रथमः मध्यमः पुरुषः	{	ऐधिष्ठा., तू वटा ।	}	प्रथमः मध्यमः पुरुषः	{	ऐधिषि, मैं वटा ।
		ऐधिषाथाम्, तुमदी वटे				ऐधिष्वहि, हम दी वटे
		(१) ऐधिष्व, तुम वटे ।				ऐधिषमहि, हम वटे

॥ लृङ् में ॥

॥ प्रथम पुरुष ॥

॥ मध्यम पुरुष ॥

॥ उत्तम पुरुष ॥

प्रथमः मध्यमः पुरुषः	{	ऐधिष्यत, यदि वह वटे	}	प्रथमः मध्यमः पुरुषः	{	ऐधिष्ये, जो मैं वटूं ।	
		(२) ऐधिष्येताम् वेदीवटे				ऐधिष्येथाम्, तुमदी वटो	ऐधिष्यावहि, जो हमदी वटे
		ऐधिष्यन्त, वे दी वटे				ऐधिष्यध्वम्, तुम वटो	ऐधिष्यामहि, हम वटे ।

२ । धा० काम् (कम्) इच्छा करनी ॥

५५४ ॥ कामेणिङ् । ३ । १ । ३० । स्वार्थे । ङित्वात्तङ् । कामयते ।

कम् धातु से परे णिङ् प्रत्यय स्वार्थ में होवे । "४८६" से णिङ् प्रत्ययान्त (कम्) की धातु सन्ना हुई । णिङ् प्रत्यय ङित् है, इसी लिये ४०३ से आत्मने पद होता है ॥ कामयते, में ४८३ से वृद्धि, और ४१४ अय् होते हैं वह इच्छा करता है । ५५४ ॥

५५५ ॥ अयामन्ताल्लवाद्येतिन्वष्णुषु । ६ । ४ । ५५ । एषु षेरय् कामयाञ्चक्रे । आयाद्य-इतिणिङ् वा । चकमे । चकमाते । चकमिरे ।

एधामहे । (भाटग्रन्थ) ऐधत । ऐधेताम् । ऐधन्त । ऐधया । ऐधेयाम् ।
ऐधञ्जम् । ऐधे । ऐधावहि । ऐधामहि ।

श्रीट् लकार के उत्तम पुरुष से ए को ऐ होय । एधे में बर्द्ध । एधावहे इम दो बठे ।
एधानहे इम बठे । लङ् में ४०२ से आट् धा + एधत २१२ से इधि होने पर ऐधत यह
बढा । ऐधेताम् से दो बठे । ऐधन्त ४१३ से बठे । ऐधयाः, तू बढा । ऐधेयाम् तुम दो बठे ।
ऐधञ्जम् तुम बठे । ऐधे में बढा । ऐधावहि इम दो बठे । ऐधामहि इम बठे ॥ ५४८ ॥
५४९ ॥ लिङ् सौयुट् । इ । ४ । १०२ । सखीपः । एधेत । एधेया
ताम् ।

लिङ् को सौयुट् का आगम होने ४१३ से स् का लोप हुआ पीर ४१० से ए का
लोप होने पर । एधेत यह बठे । एधेयाताम् से दो बठे ॥ ५४८ ॥

५५० । अस्य रन् । इ । ४ । १५ । लिङ् । एधेरन् । एधेया । एधे
यायाम् । एधेञ्जम् ।

लिङ् के अ को रन् होने । एधेरन् से बठे । एधेया तू बढा । एधेयायाम् तुम
दो बठे । एधेञ्जम् तुम बठे ॥ ५११ ॥

५५१ ॥ इटोऽत् । इ । ४ । १०६ । लिङ् आदेशस्य । एधेय । एधेवहि ।
एधेमहि ।

लिङ् लकार में श्री उत्तम पुरुष का इट् तिप्तको आकार होने । एधय में बर्द्ध । एधे
वहि इम दो बठे । एधेमहि इम बठे ॥ ५११ ॥

५५२ ॥ सुट् तियोः । इ । ४ । १० । लिङ् स्तयोः सुट् । यमीपः ।
आध वातुकृत्वात् मलीषीम । अधिपीष्ट । अधिपीयास्ताम् । अधिपीरन् ।
एधिपीच्छा । अधिपीयास्याम् । अधिपीञ्जम् । अधिपीय । अधिपीवहि ।
एधिपीमहि । ऐधिष्ट । ऐधिपाताम् ।

तू चो र य को सुट् का आगम जाय यदि से (म्) लिङ्-देश से आगम ही ता
५५२ ध सोट् दृषा ता-४१० से इमसे स् का लोप हुआ । ४१८ से आगिप् पर्य में लिङ्
व-अध-कृत् से इपीलिते ४१३ से अ का लोप नहीं जाता । मय एधि + पी + इत् +
(१) अधिपीष्ट इत्यत्र अदे वि बह बठे ॥ ५११ ॥

५५८ ॥ गौ चङ्प्रपधाया ऋस्वः । ७ । ४ । १ । चङ्परे गौ यदङ्गं

तरुयोपधाया ऋस्वः ।

५५६ चङ् परे है जिसके ऐसी णि परे ही तो अङ्ग की उपधा को ऋस्व होता है ॥

इस से “काम् + अत” = “कम् + अत” ॥ ५५८ ॥

५५९ ॥ चङि । ६ । १ । ११ । अनभ्यासधात्ववयवस्यैकाचः प्रथ

मस्य द्वे स्तोऽजादेर्द्वितीयस्य ।

“चङ् परे हीतो” (१)अनभ्यास धातुका जो अवयव एकाच् (२) प्रथम भाग उत्ते हित्व हीवे परन्तु यदि (३) अजादि हो तो द्वितीय (दूसरे) एकाच भाग (अश्र) को हित्व हीवे। इससे और ४२२ “कम् + अत” = “ककम् + अत” । ४८२ से “चकम् + अत” हुआ । ५५९

५६० ॥ सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनगलोपे । ७ । ४ । ९३ । चङ्परे गौ

यदङ्ग तस्य योऽभ्यासो लघुपरस्तस्य सनीव कार्यं स्यात्सावगलोपेऽसति ।

चङ् परे है जिसके ऐसीणि जिस अङ्ग से परे हो उसका (४) जो “लघुपरे है जिसके” ऐसा अभ्यास उसको (५) “सन् ७४६ परे हीते जो कार्य होता है” वैसा कार्य हीवे परन्तु यदि णिको निमित्तमान किसी अक् प्रत्याहार सम्बन्धी वर्ण का लीप न हुआ हो तब ॥ ५६० ॥

५६१ ॥ सन्यतः । ७ । ४ । ७९ । अभ्यासस्यात इत्सनि ।

सन् परे रहते अभ्यास के अकार को इकार हीवे । इससे “चकम् + अत” = चिकम् + अत ॥ ५६१ ॥

५६२ ॥ दीर्घीलघो । ७ । ४ । ९४ । लघोरभ्यासस्य दीर्घः सन्व
द्भावविषये । अचीकमतः णिडभावपक्षे ।

“सन्वद्भाव ५६० के विषय में” (जिसमें ५६० से सन्वद्भाव हुआ ही) अभ्यासके लघु को दीर्घ हीवे । तब “चिकम् + अत” = “चीकम् + अत” ४५१ से अट् अचीकमत उसने इच्छा की जिस पक्ष में णिङ् नहीं होता ४९७ उस पक्ष में अगला वार्तिक लगता है ॥ ५६२ ॥

५६३ ॥ कश्चेष्टुश्चङ् वाच्यः । अचक्षत । अकामयिष्यत । अक
मिष्यत । अयगती । ३ । अयते ।

(१) जिस को हित्त नहीं हुआ । (२) एक स्वर वाला । (३) अच् (स्वर) है आदिमें जिस के । (४) अङ्गका १४६ । (५) अभ्यास को ।

चकमिषे । चकमाथे । चकमिष्वे, चकमिद्वे । चकमे । चकमिषहे ।
चकमिमहे । कामयिता । कामयितासे । कमिता । कामयिष्यते ।
कमिष्यते । कामयताम् । चकामयत । कामयेत । कामयिषीष्ट ।
कमिषीष्ट ।

जब चाम् ४८८ । चन्त । चाञ् । चाप्य । चत्सु । चौर इत्सु । इन प्रत्ययों में से कौई प्रत्यय धातु से परे हो तब चि ओ भ्य् होते। कामयां चले उसने इच्छा की। (१) चार्धधातुक में ४८० से नियमानुसार चिद् विकल्प करके होता है। तब पचमें। चकसे उसने इच्छा की ॥ ३३३ ॥

॥ प्रथम पुरुष ॥

॥ मध्यम पुरुष ॥

॥ छतम पुरुष ॥

चकमाते उसने ने इच्छा की	चकमासे तुमसे ने इच्छा की	चकमे मैंने इच्छा की ।
चकमिरे, उनमें इच्छा की	(२) चकमिद्वे तुमने इच्छा की	चकमिषहे हमने ने इच्छा की
	चकमिष्वे	चकमिमहे हमने इच्छा की

{ कामयिता } वह इच्छा करेगा ।	कामयितासे त इच्छा करेगा ।
{ कमिता } वह इच्छा करेगा ।	खोद में कामयताम् वह इच्छा करे ।
{ कामयिष्यते } वह इच्छा करेगा ।	कह में चकामयत उस ने इच्छा की ॥
{ कमिष्यते } वह इच्छा करेगा ।	

विधि चिद् में कामयेत् वह इच्छा करे ॥

या चिद् में { कामयिषीष्ट । } इत्पर करे की वह इच्छा करे ।
{ कमिषीष्ट । }

५५६ ॥ चिञ्चिदुञ्चुभ्यः कर्त्तरि चङ् । १ । १ । ४८ । एयन्तात्
श्रादिभ्यश्च च्लेशचङ् कश्चर्षे लुङि । कामि चत इतिस्विते ।

(१) एयन्त से परे चौर चि (चिञ्) - सेवाकरनी । दृ - दीडना जाना । सु - पढ़ना । इन धातुओं से परे जो चिञ् (५५७) तिञ् ओ 'कर्त्ता चर्ष में लुङ् हो तो' चङ् होते। (कामि + चत) ऐसे स्थित होने पर ॥ ३३६ ॥

५५७ ॥ चेरनिटि । ६ । ४ । ५१ । चमिष्ठादावाचधातुके खेर्लोप ।

इदं ४९० आदिमें नहीं जिसके ऐसा आधधातुक परे हो तो चि का लोप होता है । इन से चि का लोप होने पर "कामि + चत" = "काम् + चत" ॥ ३३७ ॥

(१) चिद् लुद् लुद् या चिद् लुद् लुद् ये च् लकार आधधातुके हैं । यहाँ
(२) जिस पद्य में इट की छोट इच् प्रत्याहार लिया है वहाँ चकमिष्वे चौर जिस पद्य में क्षामान्य इच् प्रत्याहार का पद्य है वहाँ चकमिद्वे । (३) चि है चन्त में जिसके ॥

५५८ ॥ गौ चङ्परे यदङ्गं तस्योपधाया ऋस्वः । ७ । ४ । १ । चङ्परे गौ यदङ्गं

तस्योपधाया ऋस्वः ।

५५६ चङ् परे है जिसके ऐसी णि परे ही तो अङ्ग की उपधा की ऋस्व होता है ॥

इस से “काम् + अत” = “कम् + अत” ॥ ५५८ ॥

५५९ ॥ चङि । ६ । १ । ११ । अनभ्यासधात्ववयवस्यैकाचः प्रथ

मस्य द्वे स्तोऽजादेर्द्वितीयस्य ।

“चङ् परे होतो” (१)अनभ्यास धातुका जो अवयव एकाच् (२) प्रथम भाग उभे द्वित्व होवे परन्तु यदि (३) अजादि ही तो द्वितीय (दूसरे) एकाच भाग (अथ) को द्वित्व होवे। इससे और ४२२ “कम् + अत” = “ककम् + अत” । ४८२ से “चकम् + अत” हुया। ५५९

५६० ॥ सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनगलोपे । ७ । ४ । ६३ । चङ्परे गौ

यदङ्गं तस्य योऽभ्यासो लघुपरस्तस्य सनीव कार्यं स्यात्सावगलोपेऽसति ।

चङ् परे है जिसके ऐसीणि जिस अङ्ग से परे हो उसका(४) जो “लघुपरे है जिसके” ऐसा अभ्यास उसकी (५) “सन् ७४६ परे होते जो कार्य होता है” वैसा कार्य होवे परन्तु यदि णिको निमित्तमान किसी अक् प्रत्याहार सम्बन्धी वर्ण का लीप न हुआ हो तब ॥ ५६० ॥

५६१ ॥ सन्यतः । ७ । ४ । ७९ । अभ्यासस्यात इत्सनि ।

सन् परे रहते अभ्यास के अकार को इकार होवे । इससे “चकम् + अत” = चिकम् + अत ॥ ५६१ ॥

५६२ ॥ दीर्घीलघोः । ७ । ४ । ९४ । लघोरभ्यासस्य दीर्घः सन्व

ज्ञावविषये । अचीकमतः णिडभावपक्षे ।

“सन्वज्ञाव ५६० के विषय में” (जिसमें ५६० में सन्वज्ञाव हुआ हो) अभ्यासके लघु को दीर्घ होवे । तब “चिकम् + अत” = “चीकम् + अत” ४५१ से अट् अचीकमत उसने इच्छा की जिस पक्ष में णिड नहीं होता ४९७ उस पक्ष में अगला वार्त्तिक लगता है ॥ ५६२ ॥

५६३ ॥ कामेश्चैश्चङ् वाच्यः । अचकसत । अकामयिष्यत । अक

मिष्यत । अयगतौ । ३ । अयते ।

(१) जिस की द्वित्व नहीं हुआ । (२) एक स्वर वाला । (३) अच् (स्वर) है आदिमें जिस के । (४) अङ्गका १४६ । (५) अभ्यास की ।

कम् से परे धि जो चङ ही ऐसा कहना चाहिये । अचकमत ११८ उसने इच्छा की
अक्षामयिष्यत अक्षमिष्यत ४८१ यटि वह इच्छा करे । १ । अय् (अय) चातु गमन अर्थ में
हे उसका लट में ४११ ११० अयते वह जाता है ॥ १६१ ॥

१६४ ॥ उपसर्गस्वायतौ । ८ । २ । १८ । अयतावुपसर्गस्थरेषस्य
स्तत्वम् । प्सायते । पसायते ।

अय् चातु परे हो तो (१) उपसर्गस्थ रेफ को लकार हो वे । प्र+अयते (२)प्सायते
वह मागता है । परा+अयते=पसायते=वह मागता है ॥ १६४ ॥

१६५ ॥ दयादासश्च । १ । १ । १० । एभ्य धाम् क्खिटि । अथा
ऊचक्रे । अयिता । अयिष्यते । अयताम् । आयत । अयेत । अयिषीष्ट ॥

दय = देना । अय = जाना । पास = बैठना । इन तीन चातुओं से पर धाम् होवे
क्खिटि में । अथाऊचक्रे = वहमया । कुट् में अयिता = वह आवेगा । कृट् में अयिष्यते = वह
आवेगा । लोट् में अयताम् = वह आवे । लङ् में आयत = वह गया । वि क्खि में अयेत
वह आवे । अयिषीष्ट ११२ है ईद्वर वह आवे ॥ १६५ ॥

१६६ ॥ विभाषेठः । ८ । १ । ७८ । इष्यः परो य इट् तत परेषां
षीष्वकुक्खिटि धस्य वा ठः । अयिषीष्वम् । अयिषीष्वम् । आयिष्यत् ।
आयिष्वम् । आयिष्वम् । आयिष्यत् । द्युत, दीप्तौ । ४ । खीतते ।

इत् प्रत्याहार से परे जो इट् इससे परे जो 'षीष्वम्' और कुक्खि वा सिद् इन से ध् को
विलक्षण करके द् जाने । यिषीष्वम्" अयिषीष्वम् = ईद्वर करे कि तुम जानो । कुक्खि में
आयिष्यत् ४०१ ४६१ वह मया । (१) आयिष्वम् आयिष्वम् तुम नए । आयिष्यत् जो नहीं
आवे ४ । द्युत् (द्युत) चातु कीप्ति (प्रकाश) अर्थ में है । (४) खीतते वह चमकता है ॥ १६६ ॥

१६७ ॥ द्युतिस्वाप्यौ सम्प्रसारणम् । ७ । ४ । ६० । अनयोरन्या
सस्य सम्प्रसारणं स्यात् । दिद्युते ।

द्युत = चमकना । १ स्वाप्यौ = झोकाना । इन ही चातुओं के सम्प्रसारण ४२१ को
सम्प्रसारण १०६ होवे दिद्युते = वह चमका ॥ १६७ ॥

(१) उपसर्ग में जो वर्तमान है । (२) पर से दीर्घ करना । (३) ये दोनों लट् के
मध्यम बहु वचन के रूप हैं । (४) ४११ र्ध अय् और ४०८ में कुक्खि । (५) यह विलक्षण
का क्खि में रूप है ॥

५६८ ॥ द्युङ्गीलुङि । १ । ३ । ६१ । द्युतादिभ्यः परस्मैपदं
वा लुङि । पुषादित्यङ् । अद्युतत् । अद्योतिष्ट । अद्योतिष्यत । एवं
शिवता, वर्णे । ५ । जिमिदा, स्नेहने । ६ । जिष्विदा, स्नेहनमीच-
नयोः । ७ । मोहनयोरित्येके । जिच्चिदा, चेत्येके । रुच, दीप्यावभि
प्रीतीच । घुट, परिवर्तने । ८ । शुभ, दीप्तौ । १० । क्षुभ, सचलने । ११
णभ तुभ हिंसायाम् । १२ । १३ ।

स्रसु, भ्रसु, ध्वसु, अवससने, । १४, १५, १६ । ध्वसु, (१) गती ।
१७ । स्रम्भु विश्वासे । १८ । हतु वर्तने । १९ । वर्तते । ववृते । वर्तिता ।
(२) द्युतादि धातुओं से परे लङ् लकार में परस्मैपद विकल्प करके होवे ५३६ वें
सूत्र से चिल्ल ४६५ को अङ् हुआ । अद्युतत्, अद्योतिष्ट (४६६, ४२७, ४६३) वह चमका ।
अद्योतिष्यत जो वह चमके । इसी तरह (प्रकार) से आगे लिखे धातु सिद्ध किये जाते हैं ।
५ । शिवता (शिवत्) = श्वेत होना । ६ । जिमिदा (मिद्) = चिकना करना । ७ । जिष्विदा-
(ष्विद्) = चिकना वा त्यागकरना । कई एक आचार्यों के मत में यह धातु चिकना करना
वा मोहित करना अर्थ में है । कई आचार्य जिष्विदा के स्थान में जिच्चिदा धातु कहते हैं
८ । रुच (रुच्) = दीप्ति वा प्रीति करना । ९ । घुट (घुट्) घोटना । १० । शुभ (शुभ्)
शोभित होना । ११ । क्षुभ (क्षुभ्) = घबरा के कापना । १२ । णभ (णभ्) भारना । १३ । तुभ
(तुभ्) = हिंसा करनी । १४ । स्रसु (स्रस्) = गिरना । १५ । भ्रसु (भ्रस्) = गिरना । १६ ॥
ध्वसु (ध्वस्) = गिरना । १७ । और ध्वसु (ध्वस्) = चलना । १८ । स्रम्भु (स्रम्भ्) = विश्वास
करना । १९ । हतु (हत्) = होना । लट् में वर्तते वह है । लिट् में वृहते ४४२, वह था । लुट्
में वर्तता "४२७, ४७९" वह होगा ॥ ५६८ ॥

५६९ । वृक्ष्णः स्यसनोः । १ । ३ । ६२ । वृतादिभ्यः पञ्चभ्यो वा
परस्मैपदं स्ये सनि च ।

वृत् (वृत्) इत्यादि ५ पाच धातुओं से परे परस्मैपद विकल्प से होवे स्य ४२९
और सन् ७४६ परे (३) होतो ॥ ५६९ ॥

५७० ॥ न वृक्ष्णश्चतुर्भ्यः । ७ । २ । ५९ । वृत्तुवृधुशृधुस्यन्दूभ्यः
सादेरार्धधातुकस्येट् न तडानयोरभावे । वत्स्यति, वर्तिष्यते । वर्त्

(१) "च" इत्यधिक, क्वचित्पाठ (२) द्युत धातु है आदिमें जिन को । (३) स्य, वा-
सन् स्थापन करने का विषय होती ।

काम् से परे धि को चङ् ही ऐसा कहना चाहिये । अचकमत ५१८ उसने इच्छा की
अकामयिष्यत अकमिष्यत ४८२ यटि वह इच्छा करे । १ । अय् (अय) धातु गमन चर्च में
ई उसका लट् में ४१२ ५१० अयते वह जाता है ॥ ५६२ ॥

५६४ ॥ उपसर्गस्यायतौ । ८ । २ । १८ । अयतावपसर्गस्यरेफस्य
सत्स्यम् । प्लायते । प्लायते ।

अय् धातु परे हो तो (१) उपसर्गत्व रेफ को हकार हो वे । प्र + अयते (२) प्लायते
वह मागता है । परा + अयते = प्लायते = वह मागता है ॥ ५६४ ॥

५६५ ॥ दयायासश्च । ३ । १ । ३० । एभ्य आम् छिटि । अया
ऊचक्रे । अयिता । अयिष्यते । अयताम् । आयत । अयेत । अयिपीष्ट ॥

दय = देना । अय = जाना । आस = बैठना । इन तीन धातुओं से परे आम् होवे
लिट् में । अयाञ्चक्रे = वह गया । लृट् में अयिता = वह आवेगा । लृट् में अयिष्यते = वह
आवेगा । लोट् में अयताम् = वह जावे । लङ् में आयत = वह गया । वि लिट् में अयेत
वह जावे । अपिपीष्ट ५१२ है ईश्वर वह जावे ॥ ५६५ ॥

५६६ ॥ विभाषेः । ८ । ३ । ७८ । इष परो य इट् तत परेषां
धीर्ध्वलुङ्छिटि वस्य वा ङ । अयिधीवम् । अयिधीध्वम् । आयिष्यत् ।
आयिष्वम् । आयिष्वम् । आयिष्यत । द्युत, दीप्तौ । ४ । द्योतते ।

इप् प्रत्याहार से परे जो इट् उससे परे जो 'धीर्ध्वम्' और लुङ् वा लिट् इन लो ष् को
विष्णुप करके द् होवे । यिधीष्यम्" अयिधीध्वम् = ईश्वर करे कि तुम जावो । लुङ् में
आयिष्यत् ४०२ ४६१ वह गया । (१) आयिष्वम् आयिष्वम् तुम गए । आयिष्यत जो वही
जावे ४ । द्युत् (द्युत) धातु दीप्ति (प्रकाश) अय में है । (४) द्योतते वह प्रमत्ता है ५५६६ ॥

५६७ ॥ द्युतिस्वाप्यीः सम्प्रसारणम् । ७ । ४ । ६० । अनयीरभ्या
सस्य सम्प्रसारणं भ्यात् । दिद्युते ।

द्युत = प्रमत्ता । इ स्वापी = झीनाना । इन दो धातुओं को अन्यास ४२१ जो
सम्प्रसारण १०६ होवे दिद्युते = वह प्रमत्ता ॥ ५६७ ॥

(१) उपसर्ग में जो वर्तमान है । (२) पर से हीर्ष करना । (३) ये दोनों लृट् लो
मध्यम बहु वचन से रूप है । (४) ४१२ से अय् और ४०८ से लुष् । (५) यह लिट्
का लिट् में अय है ॥

तृ, पार करना । फल, फलना । भज, सेवा करनी । चप्, लज्जा करणी । इन ४ चार धातुओं के अकार को एकार होवे और अभ्यास का लोप भी होवे, जब कित् लिट् ४८० और सेट् (इट् युक्त) थल् परे होतो । तब लिट् में चपे वह लज्जित हुआ था । लृट् में ५०५ से इट् विकल्प से हुआ तब चपिता “वा” चप्ता, वह लज्जित होगा । लृट् में भी ५०५ चपिष्यते, वा चप्स्यते वह लज्जित होगा ॥

लोट् में चपताम्, वह (१) लज्जित होवे } लृट् में अचपत, वह
वि० लिङ् में चपेत = वह ,, } लज्जित हुआ ।

आ० लिङ् में चपिषीष्ट ५०५ चप्सीष्ट ईश्वर करे कि वह लज्जित होवे । लृट् में अचपिषीष्ट वा अचपत (५०५) वह लज्जित हुआ । लृट् में ५०५ अचपिष्यत, वा अचप्स्यत यदि वह लज्जित होवे । लघु कौमुदीमें, भ्वादिगण के आत्मनेपदी धातुसमाप्तहुए ५७२ ॥

५७३ ॥ शिञ् सेवायास् । १ । अयति, अयते । शिञ्चाय, शिञ्चिये । अयिता । अयिष्यति, अयिष्यते । अयत्, अयताम् । अश्रयत्, अश्रयत । अयेत्, अयेत । अयीयात्, अयिषीष्ट । चङ् । अशिञ्चियत्, अशिञ्चियत । अश्रयिष्यत्, अश्रयिष्यत । भृञ् भरणे । २ । भरति, भरते । बभार । बभ्रत् । बभ्रु । बभ्र्य । बभ्रुव, बभ्रुम् । बभ्रे । बभ्रुषे । भर्त्सति । भर्त्सते । भरिष्यति, भरिष्यते । भरत्, भरताम् । अभरत्, अभरत । भरेत्, भरेत ।

अब निज धातुओं कि साधन प्रक्रिया लिखेंगे उन में ४०५, ४०६ इन सूत्रों से आत्मनेपद और परस्मैपद दोनों प्रकार के प्रत्यय होते हैं । १ । शिञ्, सेवा करणी । इस का लृट् में अयति, अयते ४१३, ४१४, और २६, वह सेवा करता है । खिट् में शिञ्चाय, वा शिञ्चिये, वह सेवा करता हुआ ।

॥ परस्मैपद ॥

॥ आत्मनेपद ॥

लृट् में अयिता, लृट् में, अयिष्यति, लोट् में अयितु, वि० लिङ् में अयेत्,	अयिता, वह सेवा करेगा अयिष्यते ,, ,, अयताम्, ,, करे अयेत, ,, ,,	लृट् में अश्रयत् वा अश्रयत वह सेवा करता हुआ ।
--	---	--

आ० लिङ् में, अयीयात् ५१२, वा अयिषीष्ट ५५२, ईश्वर करे कि वह सेवा करे । लृट्

ताम् । अवर्त्तत । वत्तत । वर्त्तिपीष्ट । अवत्तिष्ट । अवत्स्व्यत्, अवत्ति
ष्यत । दद दाते । २ । ददते ।

(१) तद् धोर (२)भान के अभाव में वृत्त होगा। वृष् - वठना। वृष् - कुत्सित अर्थ
करना। धोर स्वन्द् - बहना। इन चार धातुओं में परे (१)सादि आधधातुब की द्द का
आगम ४२० न होवे। इस लिये वृत् में (४)वत्स्व्यति वर्त्तिष्यतेवह होगा। श्रोत में वत्तताम्
वह आवे। वृत् में अवर्त्तत वह या वि लिङ् में वर्त्तत - वह होवे। आशिर्लिङ् में
वर्त्तिपीष्ट - १५१ इत्वर करे कि वह होवे। वृष् में अवर्त्तिष्ट वह या। वृष् में १५८,
५० अवत्स्व्यत् अवर्त्तिष्यत यदि वह होवे। २ । दद (दद्) देना वृत् में वृत्ते वह
देता है ॥ १५८ ॥

५०१ ॥ न शसद्दद्वादिगणानाम् । ६ । ४ । १२६ । शसेद्देर्व
कारादीनां गुणशब्देन विहितयोऽकारस्तस्य एत्वाभ्यासस्योपौ न ।
दददे । दददाते । दददरे । ददिता । ददिष्यते । ददताम् । अददत ।
ददेत । ददिपीष्ट । अददिष्ट अददिष्यत । अपृष् लज्जायाम् । २१ । अपते ।

शस - शिंसा करनी। दद - देना। धोर १ सादि धातु। धोर मुब अर्थ करके
विहित की प्रकार "६४०"। इन सब की एकार धोर अभ्यास का शोप न होवे। (४८८)।
दददे - उसने दिया। दददाते - उन दोनों में दिया। दददरे - उनमें दिया ॥ १० ॥

{ वृत् में ददिता - वह देगा	{ श्रोत में ददताम् - वह देवे।
{ वृत् में ददिष्यत वह देगा।	{ वृष् में अददत देता हुआ।

आशि लिङ् में ददिपीष्ट इत्वर " " { वृष् में अददिष्ट उसने दिया।
वि " ददेत वह देवे। { वृष् " अददिष्यत यदि वह देवे।
२१ । अपृष् (अप) लज्जा करनी। अपते वह लज्जा करता है ॥ १०१ ॥

५०२ ॥ तृप्तसम्भवप्रपञ्च । ६ । ४ । १२२ । एषामत एत्वम
भ्यासस्योपश्च क्वितिलिटिसेटिथलिष । जेपे । अपिता, अप्ता । अपि
ष्यते, अप्स्यते । अपताम् । अपपत । अपेत । अपिपीष्ट, अप्पीष्ट ।
अपपिष्ट, अपपत् । अपपिष्यत, अपप्स्यत ॥ वृत्त्यात्मनेपद् प्रक्रिया ।

(१) प्रत्याहार है आत्मनेपद् सप्तम प्रत्ययो का (२) यानच् धोर आनच् का ।
(३)च् है आदि लिङ्गे (४)१५८ से परस्मैपद् ५० से इतिषेच ।

भृषीष्ट, ईश्वर करे वह पाले । भृषीयास्ताम्, वे दी पाले । लुङ् में अभर्षीत् ४५१, ४६५, ४६६, वह पालता हुआ ॥ ५०५ ॥

५०६ ॥ ऋस्वाद्ङात् । ट । २ । २७ । सिचिलोपोभक्ति । अभृत ।
अभरिष्यत्, अभरिष्यत । हृञ् हरणे (३) हरति, हरते । जहार, जङ्गे ।
जहर्ष्य । जङ्गिव । जङ्गिमा । जङ्गिषे । हर्ता । हरिष्यति, हरिष्यत । हरतु,
हरताम् । अहरत्, अहरत । हरेत्, हरेत । ङियात्, हृषीष्ट । ङिषीया-
स्ताम् । अहर्षीत् । अहृत । अहरिष्यत्, अहरिष्यत ॥

धृञ् धारणे । ४ । धरति, धरते । णीञ् प्रापणे ५ नयति, नयते । डुपचप् पाके ६
पचति, पचते । पपाच, पेचिय, पपकथ । पेचे पक्ता । भज सेवायाम् ७ भजति, भजते । वभाज
भेजे । भक्ता भच्यति, भच्यते अभर्षीत्, अरक्त । अरक्ताताम् । यज देवापूजासङ्गतिकरण-
दानेषु ८ । यजति, यजते । भल् परे हो तो ङस्व अङ्ग से परे जां सिच् तिसका लोप होवे ।
अभृत, उसने पाला । लृङ् में अभरिष्यत्, अभरिष्यत जो (यदि) वह पाले । हृञ् (हृ) हर-
लेना । हरति, हरते, वह हर लेता है जहार, जङ्गे, उसने हर लिया । जहर्ष्य, तूने हर लियाथा
जङ्गिव, इस दोनें हर लिया । जङ्गिम, हमने हर लिया था । जङ्गिषे, तूने हर लिया था ।

{ हर्ता हरिष्यति हरिष्यते }	वह हर लेगा	{ हरतु, हरताम्, वह हर लेवे अहरत्, अहरत, वह हरता हुआ }
-----------------------------------	------------	--

वि० लिङ् में हरेत्, हरेत वह हरले । ङियात् (५०४, ३३१) वा हृषीष्ट (५४८
५५२) ईश्वरकरे कि वह हरले । हृषीयास्ताम् ईश्वरकरे कि वेदी हरले । अहर्षीत्, अहृत
५०६, वह हरता हुआ । अहरिष्यत्, अहरिष्यत यदि वह हरले । ४ । धृञ् (धृ) धारण
करणा धरति, धरते, वह धारण करता है । ५ । णीञ् (णी), लेजाना । नयति, नयते, वह
लेजाता है । ६ । डुपचप् (पच्), पकाना । पचति, पचते, वह पकाताहै । पपाच, उसने पकाया
पेचिय, पपकथ, तूने पकाया । पेचे पच्, उसने पकाया । पक्ता, वह पकावेगा । ७ । भज्ज
(भज्), सेवा करणी । भजति, भजते, वह सेवा करता है । वभाज ६८३, भेजे ५०२, उसने
सेवा करी । भक्ता, भच्यति, भच्यते, वह सेवा करेगा । अभर्षीत्, ४८३ अभर्ष, ५०७, वह-
सेवा करता हुआ । अभर्षाताम्, उन दोनें सेवा की ॥ ८ । यज (यज्), देवताओं की पूजा
करणी वा सम करणा वा दान करणा । यजति, यजते, वह पूजा करता है ॥ ५०६ ॥

५०७ ॥ लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् । ६ । १ । १७ । वच्यादीनां
अद्यादीनां चाभ्यासस्य सम्प्रसारण लिटि । इयाज ।

वच्यादि (वच् आदिक ५०८) और यह आदि ६६८ धातुओं की अभ्यास की ४२१
सम्प्रसारण होवे परन्तु जब लिट् लकार परे हो तब । (५०७, २७८, ४८३) इयाज, उसने
पूजाकी ॥ ५०६ ॥

में १५६ से लिख को बद्ध किया तब अग्रिययत् अग्रिययत् वह सेवा करता हुआ । मङ्ग
में अग्रिययत् अग्रिययत् यदि वह सेवा करे ॥ १०२ ॥

१। मृम् (मृ) पाठना करणी । इस के रूप सब में देखो—

॥ परस्मै पद ॥

॥ आत्मने पद ॥

कृट्	भरति ।	भरते	वह धरता है ।
कित्	(१)वभार ।	(२)वध्ने	यह पाठता हुआ ।
सुट्	(३)मभासि ।	भर्तासि	तू पासेगा ।
कृट्	भरिष्यति ।	भरिष्यते	वह पासेगा ।
कौट्	भरतु ।	भरताम्	वह पासे ।
कृट्	अभरत ।	अभरत	उसने पासा ।
वि क्तिठ	भरेत् ।	भरत्	वह पासे ।

५०४ ॥ रिङ् शयग्लिङ् ॥ ७ । ४ । २८ । शै सक्ति यादावार्ध-
धातुके लिङि षतोरिङ् । रौठि प्रकृते रिङ् विधामसामर्थ्याद्दीर्घान् ।
भियात् ॥

अकार को रिङ् हो कर श २८०" वा यक् ०८१ परे रह सकता यदि (अकार
है आदिमें त्रिभु को ऐसा 'आधधातुक का लिङ्' (या लिङ्) परे हो तब । (४)
प्रकृत रीङ् के होने पर पुनः रिङ् के विधान करने को सामर्थ्य स ५१२ से दीर्घ नहीं
होता । कियत् इत्वर करे कि वह पाठना करे ॥ १०४ ॥

५०५ ॥ उभ्रश्च । १ । ४ । १२ । अथर्थागतात्परौ भ्रशाटी लिङ्
सिचौ कितौ स्तस्त्रिङ् । भ्रुषीष्ट । भ्रुषीयास्ताम् अभाषीत् ।

अथर्थागत से परे भ्रम् है आदि न जिस के ऐसा को लिङ् और सिच् के कित्
होव तद् (प्रयाहार) पर हो तब । अथ कित् होने पर ४११ से गुञ् का नियम कया तब

(१) (इस के आने) वभ्रतु उन दो ने पालना करी । वभ्रु - उनमें पालना करी ।
वभ्रश्च - तूने पालना को वभव - हम दोने पालना की । वभ्रम - हमने पालना की । वभ्र भी
जागने । (२) इस के आगे वभ्रुप - तूने पालना करी । (३)म पुञ् से भर्ता वह पासेगा ।
(४) इसका यह भाव है यदि कोई यहाँ फिर ११२ से दीर्घ को लहे तो उसका प्रति
यह समाधान है । कि अष्टाध्यायी के क्रम से इस के पूर्वभ्र भूने में १११८ म रीङ् की
अनुवृत्ति इस भूने में कर लेते और ११२ दीर्घ विधि की स्मरण भी न करना पड़ता और
अथ रिङ् न पठन से जावन भी होता पुनः रिङ् विधान कहा किया उसका विधान ही
सामर्थ्य कल्पना करता है कि यहाँ दीर्घ नहीं होता ।

भृषीष्ट, ईश्वर करे वह पाले । भृषीयास्ताम्, वे दी पाले । लृङ् मे अभर्षीत् ४५१, ४६५, ४६६, वह पालता हुआ ॥ ५०५ ॥

५०६ ॥ ऋस्वाद्ङात् । ८ । २ । २७ । सिचिलोपोभक्ति । अभृत ।

अभरिष्यत्, अभरिष्यत । हृञ् हरणे (३) हरति, हरते । जहार, जङ्गे । जहर्ष्य । जङ्गिव । जङ्गिम । जङ्गिषे । हर्ता । हरिष्यति, हरिष्यत । हरतु, हरताम् । अहरत्, अहरत । हरेत्, हरेत । झियात्, हृषीष्ट । ऋषीयास्ताम् । अहर्षीत् । अहृत । अहरिष्यत्, अहरिष्यत ॥

धृञ् धारणे । ४ । धरति, धरते । णीञ् प्रापणे ५ नयति, नयते । डुपचष् पाके ६ पचति, पचते । पपाच, पेचिथ, पपकथ । पेचे पक्ता । भज सेवायाम् ७ भजति, भजते । वभाज भजे । भक्ता भक्ष्यति, भक्ष्यते अभक्षीत्, अभक्त । अभक्षाताम् । यज देवापूजासङ्गतिकरणदानेषु ८ । यजति, यजते । भल् परे हो तो ऋस्व अङ्ग से परे जो सिच् तिसका लोप होवे । अभृत, उसने पाला । लृङ् मे अभरिष्यत्, अभरिष्यत जो (यदि) वह पाले । हृञ् (हृ) हरलेना । हरति, हरते, वह हृ लेता है जहार, जङ्गे, उसने हर लिया । जहर्ष्य, तूने हर लियाथा जङ्गिव, हम दोने हर लिया । जङ्गिम, हमने हर लिया था । जङ्गिषे, तूने हर लिया था ।

{ हर्ता हरिष्यति हरिष्यते }	वह हर लेगा	{ हरतु, हरताम्, वह हर लेवे अहरत्, अहरत, वह हरता हुआ }
-----------------------------------	------------	--

वि० लिङ् मे हरेत्, हरेत वह हरले । झियात् (५०४, ३३१) वा हृषीष्ट (५४८ ५५०) ईश्वरकरे कि वह हरले । हृषीयास्ताम् ईश्वरकरे कि वेदी हरले । अहर्षीत्, अहृत ५०६, वह हरता हुआ । अहरिष्यत्, अहरिष्यत यदि वह हरले । ४ । धृञ् (धृ) धारण करणा धरति, धरते, वह धारण करता है । ५ । णीञ् (णी), लेजाना । नयति, नयते, वह लेजाता है । ६ । डुपचष् (णच्), पकाना । पचति, पचते, वह पकाताहै । पपाच, उसने पकाया पेचिथ, पपकथ, तूने पकाया । पेचे ५८८, उसने पकाया । पक्ता, वह पकावेगा । ७ । भज (भज्), सेवा करणी । भजति, भजते, वह सेवा करता है । वभाज ६८३, भजे ५०२, उसने सेवा करी । भक्ता, भक्ष्यति, भक्ष्यते, वह सेवा करेगा । अभक्षीत्, ४८३ अभक्त, ५०७, वह-सेवा करता हुआ । अभक्षाताम्, उन दोने सेवा की ॥ ८ । यज (यज्), देवताओं की पूजा करणी वा सग करणा वा दान करणा । यजति, यजते, वह पूजा करता है ॥ ५०६ ॥

५०७ ॥ लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् । ६ । १ । १७ । वच्यादीनां ग्रह्यादीनां चाभ्यासस्य सम्प्रसारण लिटि । इयाज ।

वच्यादि (वच् आदिक ५०८) और ग्रह आदि ६६८ धातुओं के अभ्यास की ४२१ सम्प्रसारण होवे परन्तु जब लिट् लकार परे ही तब । (५०७, २०८, ४८३) इयाज, उसने पूजाकी ॥ ५०६ ॥

में १५६ से शिष्ठ को बह किया तत्र अशियिद्यत् अशियिद्यत् वह सेवा करता हुआ । सट में अशियिद्यत् अशियिद्यत् यदि वह सेवा करे ॥ १०२ ॥

२। भृञ् (भृ) पालना करनी । इस के रूप सट में देखो—

॥ परस्मै पद ॥

॥ आत्मने पद ॥

सट्	भरति ।	भरते	वह पालता है ।
सिद्	(१)वभार ।	(२)वभ्रे	वह पालता हुआ ।
मुद्	(३)भत्तासि ।	भत्तासि	तू पालेगा ।
सृद्	भरिष्यति ।	भरिष्यते	वह पालेगा ।
षीद्	भरतु ।	भरताम्	वह पाले ।
सट्	अभरत् ।	अभरत	उसने पाला ।
वि सिट्	भरेत् ।	भरेत्	वह पाले ।

५०४ ॥ रिङ् श्यमिच्छु ॥ ७ । ४ । २८ । श्रे यकि यादावाध धातुके शिष्टि अतोरिङ् । रोठि प्रकृते रिङ् विधानसामर्थ्याद्दौर्घम । भ्रियात् ॥

अन्धकार को रिङ् हो जब म ६०० वा यञ् ०८१ परे रहे पचवा यदि (यकार के आदिमें) जिन क ऐसा 'धाधधातुञ् का सिङ्' (धा सिङ्) परे हो तत्र । (४) प्रकृत रोठ के ज्ञान पर पुनः रिङ् क विधान करने की सामर्थ्य से ५१२ से दीघ नहीं जाता । भ्रियात् हरहर करे कि वह पालना करे ॥ ५०४ ॥

५०५ ॥ उश्च । १ । २ । १२ । स्रवर्थात्तात्परौ भ्रुवाटौ सिङ् सिधौ कितौ स्तभ्याठि । भृपीष्ट । भृपीयास्ताम् अभार्पीत् ।

अन्धकार म परे भ्रुञ् है आदि में जिन के ऐसा को सिङ् और सिञ् से कित् दीघ तत्र (म याकार) पर हो तत्र । जब कित् होने पर ५६१ से शुच का निपथ किया तत्र

(१) (इस क आगे) वभ्रुत्' उन हो मे पालना करी । वभ्रु' = उनमें पालना थी ।

वभय = तुने पालना की वभय = हम दोम पालना की । वभस = हमस पालना की । यह भी ज्ञानम । (२) इस के आगे वभ्रुय = तुने पालना करी । (३) म पुत्र म भत्ता बह पालेगा ।

(४) इसका यह भाव है यदि जोर यहाँ फिर ५१२ से दीघ को कहे तो उससे प्रति यह समाधान है । कि अन्धकाराधी के ज्ञान से इस के पूजने मूच में १११८ म रोठ की अनुवृत्ति इस मूच में कर लते और ५१२ दीघ विधि की स्मरण भी न करना पड़ता और अन्य रिङ् न पाल म लावन भी होत' पुनः रिङ् विधान तथा जिया उसका विधान ही सामर्थ्य कल्पना करता है कि यहाँ दीघ नहीं जाता ।

ऊहे । वोढा । वक्ष्यति । अवाचीत् । अवीढाम् । अवाक्षु । अवाचीः ।
 अवीढम् । अवीढ । अवाक्षम् । आवक्ष्व । अवाक्ष्म । अवीढ । अवक्षाताम् ।
 अवक्षत । अवीढाः । अवक्षाथाम् । अवीढ्वम् । अवक्षि । अवक्ष्वहि ।
 अवक्ष्महि ।

॥ इति भ्वाद्यः ॥

सह्, सहना । वह (लेजाना) । इन दो धातुओं के अर्थ की ओकार हीवे जब ढ
 का लोप ५८१ से । ही चुका ही । उवीढ, तू लेगया था । ऊहे, वह लेगया वह् + ता = २७१,
 ५८०, ७५, ५८१, ५८२, वीढा, वह ले जाएगा । वह् + स्यति = (२७१, ५७८, १६३) वक्ष्यति,
 वह लेजावेगा । अवाचीत्, वह लेगया । अवीढाम्, ५८२ वे दो लेगए । अवाक्षु, वे लेगए ।
 अवाचीः, तू लेगया । अवीढम्, तुम दो लेगए । अवीढ, तुम लेगए । अवाक्ष्म, मैं लेगआ ।
 अवक्ष्व, हम दो लेगए । अवक्ष्म, हम लेगए ।

आत्मनेपद के लुङ् में (२७१, ५८०, ७५, ५८१, ५८२) अवीढ वह लेगया । अवक्षा-
 ताम् (२७१, ५७८,) वे दो लेगए । अवक्षत (५५३) वे लेगए । अवीढाः, तू लेगया । अवक्षा-
 थाम्, तुम दो लेगए । अवीढ्वम्, तुम लेगए । अवक्षि, मैं लेगया । अवक्ष्वहि, हम दो
 लेगए । अवक्ष्महि, हम लेगए । लघुकीमुदी में भ्वादिगण के धातु समाप्त हुए ॥ ५८२ ॥

॥ भ्वादि गण समाप्त हुआ ॥

॥ अथ-अदादयः ॥

—००००—

+॥ अद् भक्षणे ॥ १ ॥+

५८३ ॥ अदिप्रभृतिभ्यः शप् । २ । ४ । ७२ । लुक् स्यात् ।
 अत्ति । अत्त । अदन्ति । अत्तिस् । अत्थ । अत्थ । अद्धि । अह् । अद्म ।
 अथ, अद् है आदिमें जिन के उन धातुओं का वर्णन किया जाता है । १ । अद् =
 खाना । अद् आदि धातुओं में परे जो शप् ४१४ तिस्र का लुक हीवे । अद् + शप् + तिप् =
 (५८३) अद् + ति ८० से ढ की त् पुनः, "अत्ति" वह खाता है । अत्त. (वेदीखाते हैं) ।
 (१) अदन्ति, वे खाते हैं । अत्तिस् ८०, तू खाता है । अत्थ, तुम दो खाते हो । अत्थ, तुम
 खाते हो । अद्धि, मैं खाता हु । अहः, हम दो खाते है । अद्म, हम खाते हैं ॥ ५८३ ॥

५०८ ॥ वधिस्वपियजादीनां किति । ६ । १ । १५ । वधिस्व
 प्योर्यजादीनां च सम्प्रसारथं किति । ईँअतु ईँअु । इयञिथ, इयण्ठ ।
 ईँअे यण्ठा ॥

यच् बोकना स्वप् सोना । पीर यच् पाटि ओ चातु उगको सम्प्रसारच होवे
 कित् (१) प्रत्यय परे होय तब इअ से (२) ईँअतु उग टोमे पूजा की । इअु उगने
 पूजा की । इयञिथ इयण्ठ तूने पूजा करी । (३) इअे उगने पूजा की । यण्ठा इ२८ से च
 पीर ०५ से द मिथा ने से यण्ठा वङ यञ करेगा ॥ ५०० ॥

५०९ ॥ यठी क सि । ८ । २ । ४१ । यस्य ठस्य च क
 स्यात्सकारे परे । यइयति, यइयते । इअ्यात्, यञीण्ठ । अयाञीत्,
 अयण्ठ । वङ प्रायणे । १८ । वइति, यइते अयाङ् । अइत् । अइयि ।

सकार परे हो ती, य् पीर इ को क होवे । प्रथम इ२८ से य् पुन' इ०८ से उअको
 क (१६३) यइयति यइयते वङ यञ करेगा । इअ्यात् इ०८ २०८, वा यञीण्ठ इअवर
 करे कि वङ पूजा करे । अयाञीत् (४८३ इ२८, इ०८) वा अयण्ठ इ ० उअने यञ किया ॥
 ८ । वङ (वङ्) सेजाना । वइति वइत वङ से जाता है । सिद् सकार म अयाङ् (इ००,
 २०० ४८३) वङ सेगया वा । अइत् इ०८ से दो से गये से । अइत् से अेनय । अयिअ
 तू से गया वा ॥ ५०८ ॥

५०० ॥ भायस्तयोर्धोऽध । ८ । २ । ४ । भाय परयोस्तयोर्धः
 स्थान्मत्तु दधातिः ॥

(४) 'वा भातु से अययव से भिन्न को मत्त् तिस से परे प्रत्यय का अययव
 को त् वा य् तिस को भ् होवे वङ् + व - (३१) से इद् का अभाव । २०१ से इ को इ पीर
 इ८ से इ को इ पीर उसे ०५ से द् बुधा तब ॥ ४८ ॥

५०१ ॥ ठीठे क्षीप । ८ । ३ । १३ ॥

अब द् परे रडे तब पूजा इ का क्षीप होता है ॥ ५०१ ॥

५०२ ॥ सच्चिद्विरोदयस्य । ६ । ३ । ११२ । ठक्षीप । अवीठ

(१) इ८ से कित् होता है । (२) इअको साधन प्रसिधा ऐसी है प्रथम
 यञ् + अतुम् = (इ०८ २०८ ४२२, इ२) ईँअतु । (३) पाठमनेपद म (इ०८ २०८, पादि
 पीर इ३२) उग मूर्धा मे इअे । (४) बुधाम् पारण करवा वा पजना ।

ऊहे । वोढा । वक्ष्यति । अवाचीत् । अवीढाम् । अवाक्षुः । अवाची ।
 अवीढम् । अवीढ । अवाक्षम् । आवक्ष्व । अवाक्षम् । अवीढ । अवक्षाताम् ।
 अवक्षत । अवीढा । अवक्षाथाम् । अवीढम् । अवक्षि । अवक्ष्वहि ।
 अवक्षमहि ।

॥ इति भ्वाद्यः ॥

सह, सहना । वह (लेजाना) । इन दो धातुओं के अर्वाङ्गी की ओकार ह्रस्व अव ङ्
 का लोप ५८१ से । ही चुका ही । उवीढ, तू लेगया था । ऊहे, वह लेगया वह् + ता = २७१,
 ५८०, ७५, ५८१, ५८२, वीढा, वह ले जाएगा । वह् + स्यति = (२७१, ५७८, १६३) वक्ष्यति,
 वह लेजावेगा । अवाचीत्, वह लेगया । अवीढाम्, ५८० वे दी लेगए । अवाक्षुः, वे लेगए ।
 अवाची, , तू लेगया । अवीढम्, तुम दो लेगए । अवीढ, तुम लेगए । अवाक्षम्, मैं लेगआ ।
 अवाक्ष्व, हम दो लेगए । अवाक्षम्, हम लेगए ।

आत्मनेपद के लुङ् में (२७१, ५८०, ७५, ५८१, ५८२) अवीढ वह लेगया । अवक्षा-
 ताम् (२७१, ५७८,) वे दो लेगए । अवक्षत (५५३) वे लेगए । अवीढा, तू लेगया । अवक्षा-
 थाम्, तुम दो लेगए । अवीढम्, तुम लेगए । अवक्षि, मैं लेगया । अवक्ष्वहि, हम दो
 लेगए । अवक्षमहि, हम लेगए । लघुकौमुदी में भ्वादिगण के धातु समाप्त हुए ॥ ५८२ ॥

॥ भ्वादि गण समाप्त हुआ ॥

अथ-अदादयः ॥

+॥ अद् भक्षणे ॥ १ ॥+

५८३ ॥ अदिप्रभृतिभ्य शपः । २ । ४ । ७२ । लुक् स्यात् ।
 अत्ति । अत्त । अदन्ति । अत्सि । अत्थि । अत्थि । अद्भि । अद्भ । अद्भि ।

अव, अद् है आदिमें जिन के उन धातुओं का वर्णन किया जाता है । १ । अद् =
 खाना । अद् आदि धातुओं से परे जो शप् ४१४ तिस्र का लुक होवे । अद् + शप् + तिप् =
 (५८३) अद् + ति ८० से ङ् को त् पुन, "अत्ति" वह खाता है । अत्त (वेदोखाते हैं) ।
 (१) अदन्ति, वे खाते हैं । अत्सि ८०, तू खाता है । अत्थि, तुम दो खाते हो । अत्थि, तुम
 खाते हो । अद्भि, मैं खाता हू । अद्भ, हम दो खाते हैं । अद्भि, हम खाते हैं ॥ ५८३ ॥

५८४ ॥ लिट्प्रत्ययान्तस्याम् । २ । ४ । ४० । अदी घञ्भूत्यात् ।

अघास । उपधासोप । घस्य घत्वम् ॥

लिट् अकार में अद् धातु को घञ् (घस्) आदेश विकल्प करके होवे । इस से अद्-घञ्-घञ्+अञ्-=(४२ ४२२ ४२२ ४२३) अघास-उसने खाया । द्विवचन में ५१४ से घञ् की उपधा को अ का सोप होता है तब घ को ८० से * अर् होता है ॥ ५८४ ॥

५८५ ॥ शासिवमिघसीमां च । ८ । ३ । ६ । इष्कुभ्यामेर्षा

मभ्य प । अचतु । अघु । अघसिध । अघयु । अघ । अघास । अघस । अघिव । अघिम । आद् । आदतु । आद् ॥

इष् प्रत्याहारान्तगतवर्षं वा कवय (क् ष् ग् ष् ष्) से परे आम् (शिवाकरणी) वम् (बसना) चस (खाना) इन तीन धातुओं के स् की प् होवे । अचतु-वे दो खाए । अघु-वे खात हुए । अघसिध-तूने खाया । अघयु (तुम दो ने खाया) अघ (तुमने खाया) अघास ४८३ अघस ४८ -मने खाया । अघिव (हम दो ने खाया) अघिम (हमने खाया) ५८४ के अनुसार दूसरे पक्ष में आट (४०१) आदतु आद् अर्ष इनके पूव पत् जानने ।

५८६ ॥ बुद्धत्यतिव्ययतीनाम् । ७ । २ । ६६ । अद् ष्ट व्येञ्

एभ्यस्यसो मित्यमिद् स्यात् । आदिय । अत्ता । अत्स्यति । अत्तु । अत्तात् । अत्ताम् । अदन्तु ॥

अद् (खाना) अत् (बसना) व्येञ् (अच्छादन करना) इन तीन धातुओं से परे ओ यत् उस को मित्यमिद् इट् (इ) होवे । आदिय-तूने खाया । अत् में अत्ता ८०-वह खायागा । अद् में अत्स्यति-वह खायागा । अत् में (५८६ ४१०, ८०) अत्तु-वह खाया । अत्तात् ४१८ ईश्वर करे वह खाया । अत्ताम्-वे दो खावे अदन्तु-वे खावे ॥ ५८६ ॥

५८७ ॥ बुभूतभ्योऽधि । ६ । ४ । १ । अदि । अत्तात् ।

अत्तम् । अत्त । अदानि । अदाव । अदाम ॥

बु- (होम करवा वा खाना) अत्त और † भूतान्त धातुओं से परे ओ 'दि ४११' तिष्ठसो वि होवे । अदि-तूखावे । अत्तात् ४१० ईश्वर करे कि तू खावे । अत्तम् (तुम दो खाया) अत्त (तुम खावो) अदानि में आत् । अदाव (हम दो खावे) अदाम (हम खावे) ५८७

* अ् ओ अ् होता है । † भूत प्रत्याहारान्तगतवर्षो मेष कोई पक्ष है अन्त में विच ले ॥

५८८ ॥ अद्. सर्वेषाम् । ७ । ३ । १०० । अदोऽपृक्तसार्वधातुक-

स्याट् स्यात् । आदत् । आत्ताम् । आदन् । आद् । आत्तम् । आत्त ।
आदम् । आह । आह् । अद्यात् । अद्याताम् । अद्यु । अद्यात् ।
अद्यास्ताम् । अद्यासुः ॥

सब व्याकरण के आचार्यों के मत में, अद् धातु से परे (१) अपृक्तसार्वधातुक ही तो उसे अट् का आगम होवे । आदत् ४७२ = उसने खाया । (२) आत्ताम् = उन दो ने खाया । आदन् = उनने खाया । आद् (४७२, ५८८, १२०, १०८) = तूने खाया । आत्तम् = तुम दो ने खाया । आत्त = तुमने खाया । आदम् = मैंने खाया । आह ४४८ = हम दोने खाया । आह् = हमने खाया । या वि० लिङ् में अद्यात् ४५५ वह खावे । अद्याताम् = वे दो खावें । अद्यु. (४५८, ५२१) = वे खावें । अद्यात् ३३१ । ईश्वर करे वह खावे । अद्यास्ताम् = ईश्वर करे कि वे दो खावें । अद्यासुः = वे खावें ॥ ५८८ ॥

५८९ ॥ लुङ्सनोर्घस्तृ । २ । ४ । ३७ । अद् । अङ् । अघसत्
आत्स्यत् । हन् हिंसागत्यो । २ । हन्ति ॥

जब लुङ् और सन् ७४६ । परे ही तो अद् धातु को वस्तृ (घस्) आदेश होवे । च्लि ४६५ को ५३६ से अङ् हुआ । तब । अघसत् = वह खाता हुआ । आत्स्यत् = यदि वह खावे । २ । हन् (मारना) वा (जाना) हन्ति (५८३, ६२, ६३) = वह मारता, है ॥ ५८९ ॥

५९० ॥ अनुदात्तोपदेशवनतितनोत्यादिनामनुनासिकलोपी
भालि क्ङिति । ६ । ४ । ३७ । अनुनासिकान्तानामेषां लोप किति ङिति ।
यमिरमिनमिगमिहनिमन्यतयोऽनुदात्तोपदेशा तनुक्षणाक्षिणुक्त्वात्तृणु-
घृणुवनुमनुतनोत्यादय हत । घन्ति । हंसि । हय , हय । हन्मि ।
हन्व । हन्म । जघान । जघनत् । जघन् ॥

(३) अनुदात्तोपदेश जो धातु हैं और वन् (मागना) तन् (फैलाना) इत्यादि जो धातु हैं ये यदि (४) अनुनासिकान्त हों तो इन के अनुनासिक का लोप होता है । जब भलादि कित् वा ङित् प्रत्यय परे हो तो । यम् (निवृत्त होना) रम् (क्रीडा करणी) यम् (नमस्कार करणी) गम् (जाना) हन् (चलना, मारना) और (५) मन्य (मानना जानना) ये छः

- (१) एक अल् रूप वाले प्रत्यय को अपृक्त कहते हैं (१६२ में देखो) । (२) ४७२, ८७ ॥
(३) उपदेश में अनुदात्त जो धातु हैं । (४) अनुनासिक वर्ण है अन्त में जिन के ॥
(५) दिवादि गण का मस् धातु ॥

धातु धनुनासिकान्त धोर = उपदेश से धनुदास ३ ४ हैं । तन् (चैवना) धनु (मारना)
 धिष् (मारना) धष् (धष्) = धाना । तुष् = धाना । धष् (धमकना) वन् (मांगना) मन्
 (मानना) ये धाठ = धातु तन् इत्यादि धनुनासिकान्त हैं । तत्र धन् + तस् = ३२८ से धित्
 धोर ३८ से यहाँ न् का शीघ्र करने पर । इतः सिद्ध हुआ वे दो मारते हैं । इन्ति (४२१
 ३३४ ३ ८, ८२, ८३) = वे मारते हैं । इति ८२ तू मारता है । इय ३८० = तुम दो मारते हो ।
 इव = तुम मारते हो । इष्मि = मैं मारता हूँ । इन्व = हम दो मारते हैं । इन्म = हम
 मारते हैं । अघान (३ ८, ४८२ ४८३) = छमने मारा । अघनतु ३३४ = छम दो ने
 मारा । अघनु (छमने मारा) ॥ ३८ ॥

५८१ ॥ अम्यासात्ष । ७ । ३ । ५५ । इन्तेर्हस्य कुन्धम् ।

अघमिय । अघन्य । अघम्यु । अघम । अघान । अघन । अघिनव । अघिनम ।
 इन्ता । इनिष्यति । इन्तु । इतात् । इताम् । इन्तु ॥

अम्यास से परे इन् धातु से इ को कर्म ज्ञेय । अघमिष (३११ ३१) अघम्य
 तू ने मारा । अघनतु (३३४) तुम दोन मारा । अघन तुमने मारा । अघान वा (१) अघन
 (मने मारा) अघिनव ३ = हम दाने मारा । अघिनम ३३४ हमने मारा ।

{ कुट से इन्ता ५ ४ वह मारता }
 { कुट से इनिष्यति ३२३ }

लोट से । इन्तु इताम् (४१८ ५८) इतर करे वह मारे । इताम् ५८ वे दो मारे ।
 इन्तु (३३४ ३ ८, ८२ ८३) वे मारे ॥ ३८१ ॥

५८२ ॥ इन्तेष ६ । ४ । ३६ । ही ॥

अव हि परे ही तत्र "इन् धातु को "अ आदेश होवे # इन् + हि = अ + हि
 अव ४४२ से हि का शीघ्र पाया तत्र ३ ५८२ ३

५८३ । अमिहवदभाभात् । ६ । ४ । २२ । इत उवमापाद्

समाप्तेराभौयम् । समानाश्रये तस्मिन् कराव्ये तदसिद्धम् । इति जस्या
 सिद्धत्वात्तन् इलुक् । अहि । इतात् । इतम् । इत । इनामि । इनाव ।
 इनाम । अइन् । अइताम् । अइनन् । अइन् । अइतम् । अइत । अइनम् ।
 अइन्व । अइन्म । इन्यात् ॥

इस सूत्र से लेकर ६ छठे अध्याय के ४ चतुर्थ पाद की समाप्ति पर्यन्त जितने सूत्र हैं वे सभी आभीय सज्ञा वाले हैं। जब एक आभीय का कार्य किसी निमित्त को मान कर प्रयोग में ही चुका हो और दूसरे आभीय का कार्य उसी निमित्त को मान उसी प्रयोग में होने लगे तो प्रथम आभीय का कार्य अस्मिद्ध ही जावे। (१) इस से ज ५८२ के अस्मिद्ध होने पर हि का लुक् नहीं होता। जहि, तू मार। छतात् ४३८, ५६० ईश्वर करे तू मारे। हतस्, तुम दो मारो। हत, तुम मारो। हनानि, मैं मारू। हनाव, हम दो मारें। हनाम, हम मारें। लड् में, अहन् (४५२, १८३) उसने मारा। अहताम् ५६० उन दो ने मारा। अहन् = उन ने मारा। अहन् = तूने मारा। अहतस् = तुम दो ने मारा। अहत ५६० तुम ने मारा। अहन्म् (मैं ने मारा) अहन्व = हम दोने मारा अहन्म्। हमने मारा। अन्यात् ४५५ = वह मारे।

५८४ ॥ आर्धधातुके । २ । ४ । ३५ । द्रुत्यधिष्ठात्य ॥

सम्भव के होने पर (२) जिनकायों का आर्धधातुक निमित्त हो वहा इस का अधिकार है।

५८५ ॥ हनो वध लिङि । २ । ४ । ४२ ॥

(३) आर्धधातुक लिङ् परे ही तो हन् धातु को वध आदेश होवे ॥ ५८५ ॥

५८६ ॥ लुङि ष । २ । ४ । ४३ । वध्यात् । वध्यास्ताम् ।

अवधीत् । अहनिष्यत् । यु मिश्रणामिश्रणयोः । ३ ॥

और जब लुङ् लकार परे हो तब भी हन् को वध ५८५ आदेश होवे। वध्यात् । (३३२) = ईश्वर करे कि वह मारे। वध्यास्ताम् = ईश्वर करे कि वे दो मारें। अवधीत् (४७३, ४७४) = उसने मारा। अहनिष्यत् "५२६" जो वह मारे। ३ यु (मिलाना वा अलग करणा) ॥ ५८६ ॥

५८७ ॥ उत्ती वृद्धिर्लुकि हलि । ७ । ३ । ८६ । लुग्विषये उत्ती वृद्धिः पिति हलादौ सार्वधातुके नत्वभ्यस्तस्य। यीति । युत । युवन्ति । यौषि । युथ । युथ । यौमि । युव । युम । युयाव । यविता । यविष्यति । यीत् । युतात् । अयीत् । अयुताम् । अयुवन् । युयात् । इहवृद्धिर्न । "भाष्ये"

(१) जहि, ऐसे स्थित होने पर, हि, का अतोच्ः से लोप नहीं होता क्योंकि ज ५८३ से अस्मिद्ध है। जैसे कि ५८२ सूत्र ६ । ४ । ३६ । प्रकृति प्रत्यय को निमित्तमान जिस प्रयोग में हुआ है उसी प्रयोग में वही निमित्तमान ४४२ सूत्र ६ । ४ । १०५ से हि का लुक् पाया तो (ज) ५८३ से अस्मिद्ध होगया तब अकारान्त के अभाव से हि वा ४४२ से लुक् नहीं होता। (२) या सूत्रों का। (३) आशिष् में लिङ् ॥

पिच्य ङिन्न ङिच्य पिन्नेति व्याख्यानात्। युयाताम् । युयु । यूयात् ।
यूयास्ताम् । ययासु । अयाधीत् । अयविष्यत् । या प्रापथे । ४ । याति ।
यात । यान्ति । ययौ । याता । यास्यति । यातु । अयात् । अयाताम् ॥

सुष् के विषय में (१)(इष् डै) आदि में जिस के ऐसे पित् (पू डै इत् जिसका) सार्व
धातुस के परे रहते उकार जो ङिचि जोवं परन्तु अम्यस्त संप्रत्ययो न जाने। यु + अप् + तिप्
(३८२ ३८०) यौति वह मिखाता है युत वेदो मिखाते है युपन्ति २१४ से उवङ् के मिखाते
है। यौधि(तू मिखाता है)युयु तुमदो मिखाते हो युव तुम मिखाते हो। यौमि में मिखाता है। युव
हमदो मिखाते है। युम हम मिखाते है। युवाव (१८३ २३) वह मिखाता "हुषा" (घा)। यवित
(४२० ४१४ २३) वह मिखावेगा (ऐसेही) यविष्यति, वह मिखावेगा। यौतु (३८२ ३८३) वह
मिखावे। युतात् ईरवर करे कि वह मिखावे। अयौत् (३८२ । ३८२ । ४५२) -उसने
मिखाया। अयुताम् -उस दो ने मिखाया (२)अयुवन् -उसने मिखाया। २१४ । विवि
खिद् सं "यूयात्" (४५३ ४५४ ४५५, ४५२) -वह मिखावे। यहाँ युयात् में ३८० से
ङिचि नहीं होती क्योंकि महाभाष्य में पतञ्जलि जी ने 'पिच्य ङिन्न ङिच्य पिन्न'
(पित् जो है सो ङित् नहीं होता और ङित् जो है सो पित् नहीं होता) यह कहा है तो
इस महर्षि के वचन से यासुट जो ४५४ सूत्र में ङित् कहा है पुन वह पित् नहीं हासकला
और पित् रूप निमित्त जो न होने से ३८० सूत्र की प्राप्ति ही नहीं है ङिचि किस से हो।
रुयाताम् ४४ ४५५ (वे दो मिखाव) युयु (४५८ ३२२) -व मिखावे। यूयात् ३१२ से
दीर्घ और ३१२ से ष्ट् का लोप) -ईरवर करे कि वह मिखावे। यूयास्ताम् -ईरवर, करे
कि वेदो मिखावे। यूयासु ईरवर करे कि वे मिखावें अहंमै अयाधीत् (३१३ २३) उसने मिखाया।
अहंमै अयविष्यत् (४२०, ४१४ २३) यहि वह मिखावे। ४ या (आमा) याति ३८३ 'वङ्' काता है
यात वेदो खाते है। यान्ति वे खाते है। ययौ। (४२ ४२३, ३१०) वह गया। याता (वह जावेगा)
यास्यति वह जावेगा। यातु (वह जावे अयात् -वह गया। अयाताम् -वे ही मये ॥ ३८० ॥

५८८ ॥ अङ् आकटायमस्यैव । ३ । ४ । १११ ॥ आदन्तावस्य

ऌोर्ऌैर्षुम् वा । अयुः । अयान् । यायात् । यायाताम् । यायु । यायात् ।
यायास्ताम् । यायासु । अयासीत् । अयास्यत् ॥

एवं 'वा' मतिगन्धनयो । ५ । मा दीप्तो । ३ । अया मीचे । ० । आ पाके । ८ ।
इा कुरुषायां गतो । ८ । प्ठा मचचे । १ । रा जाने । ११ । आ आदाने । १२ । वापु वचने । १३ ।
इया प्रवचने । १४ । अयं सावधातुस एव प्रयाज्यम् । विक्राने । १५ ।

(१) अङ् प्रत्याहारान्तमत कीर एक वच है । (२) ५५१ ५५२ ॥

केवल गाकटायन आचार्य के मत में आकारान्त धातु से परे जो लङ् के स्थान में भक्ति, उस को विकल्प करके जुस् होवे । अया + भि = अया + जुम् १४२ से = अया + उम् ५२१ से = अयुस् १२०, १०८ = अयुः = वा अयान् (४१५, ४४२, २३) = वे गये । वि० लिङ् में यायात् ४५५, ४५२) = वह जावे । यायाताम् = वे दो जावे । यायुः (५२१) वे जावें यायात् ३३२ ईश्वर करे कि वह जावे । यायास्ताम् = ईश्वर करे कि वे दो जावें । यायासुः = ईश्वर करे कि वे जावे । अयासीत् (५२४, ४७३, ४७४) = वह गया । अयास्यत् (जो वह जावे) इस "या" धातु की साधन प्रक्रिया के तुल्य इन आगे आने वाले आकारान्त धातुओं की भी साधन प्रक्रिया जाननी, वे धातु ये हैं यथा—
 ५ वा (जाना वा सूचन) ६ भा (चमकना) ७ षणा (पवित्र होना = नहाना) ८ आ पकाना) ९ द्रा (बुरीगति) १० ष्सा (खाना) ११ रा (देना) १२ ला (लेना) १३ दा (काटना) १४ ख्या कथन, वा, वर्णन करणा । ख्या धातु का केवल सार्वधातुक में ही प्रयोग होता है । १५ । विद् (विद्), जानना ॥ ५८८ ॥

५८९ ॥ विदोलटोवा । ३ । ४ । ८३ । वेत्तेर्लट् । परस्मैपदानां णलादयो वा । वेद् । विदतु । विदु । वेत्थ । विदथु । विद् । वेद् । विह । विह्व । पच्चे । वेत्ति । वित्त । विदन्ति ॥

विद् धातु से परे जो परस्मैपद के तिवादिक ४०१ उनकी णलादिका ४१८ प्रत्यय विकल्प करके होते हैं । विद् + तिप् = विद् + णल् (४०९, ८०) वेद्, वह जानता है ॥ ५८९ ॥

॥ प्रथम पुरुष ॥

॥ मध्यम पुरुष ॥

॥ उत्तम पुरुष ॥

श्लि	{	एकव० वेद्, वह जानता है ।	वेत्थ तू जानता है	{	वेद्, मैं जानता हू ।
		द्विव० विदतु, वे दो जानते हैं	विदथु, तुम दो जानते हो		विह हम दो जानते हैं ।
		बहुव० विदु, वे जानते हैं	विद् तुम जानते हो		विह्व हम जाते हैं ।

॥ दूसरे पद में ॥

* (वेत्ति ४०९, ८०) । वित्त, ४६१ । विदन्ति ४१५ ।)

६०० ॥ उपविद्जागृभ्योऽव्यतरस्याम् । ३ । १ । ३८ । एभ्यो लिट्याम् वा । विद्देरदन्तत्वप्रतिज्ञानादासि न गुण । विदाञ्चकार । विवेद् । वेदिता । वेदिष्यति ॥

उष (जलाना) विद् (जानना) जागृ (जागना) इन तीन धातुओं से आम् प्रत्यय हो वे लिट् परे हो तब । इस सूत्र में विद् की आकारान्त प्रतिज्ञा करने से

* इन के अर्थ पहिलो के सदृश हैं ।

(विद् की धकारान्त पठने से) ४७८ से गुण (१) नहीं होता । विदाञ्चकार (५ १ ४२ ५ २, ४२ ४८२ और १८६) वा विवेत् ४७८, उसने जाना । सुट् में वेदिता (४२०, ४७८) और खट् में वेदिष्यति (यह काम खेना) ॥ ६ ॥

६०१ ॥ विदाङ्गुर्वन्तिवत्यन्यतरस्याम् । ३ । १ । ४१ । वेत्ते खीटग्राम् गुण्याभावो खीटो लुक् खीटभ्तकरोत्थनुप्रयोगश्च निपात्यते । पुरुषवचने न विवक्षिते । विदाङ्गरोत् ।

विद् भातु से खोट् में धाम् विकल्प करके होवे गुण ४७८ का अभाव अर्थात् । उपमा की गुण न होवे और खोट् का लुक् हो जावे और खोट् जिस के अन्त में ई ऐसे खरोति (क) अर्थात् करोतु आदिओं का उस के अनन्तर प्रयोग होवे (यह सम कार्य निपात से होते हैं) । पुद्गल और वचन की यहाँ (२) विवक्षा नहीं है । विदाङ्गरोत् यह जाने ॥ ६ १ ॥

६०२ ॥ तनादिक्लञ्च्य उ । ३ । १ । ७५ । शपोऽपवादः । तत् (विस्तार करवा) पाठि भातु ०१३, खो से और क भातु से परे उ प्रत्यय होवे । यह सूत्र शप् ४१३ का अपवाद है ॥ ६ २ ॥

६ ३ ॥ अतसत् सार्वधातुके । ६ । ४ । ११० । अप्रत्ययान्तस्य क्तप्रोऽत उत् सावधातुके क्किति । विदाङ्गुसतात् । विदाङ्गुसताम् । विदाङ्गुवन्तु । विदाङ्गुरु । विदाङ्गरवाचि । अवेत् । अविताम् । अविदुः ॥

(उ) प्रत्यय ६ २ है अन्त में जिस के ऐसे कम् (क) भातु के अकार की उकार होवे । विदाङ्ग + तात् — विदाङ्गुसतात् । ईपर करे कि यह जाने । विदाङ्गुसताम् वेदो जाने । विदाङ्गुवन्तु (६ १ ६ २, ६ ३) से जाने । विदाङ्गु, (६ १ ६ २ ६ ३, ६ ३२) तू जान ।

(१) नहीं कि उपमा में खटु है ही नहीं गुण जिसे हो । (२) इस का यह भाग्य है कि (विदाङ्गुर्वन्तु) प्रमति प्रयोग बहुत स्थानों में उीख पड़ते हैं परन्तु इन के साधने के लिये बिना इस सूत्र ६ १ से और कोइ पाणिनि की ने युक्ति नहीं लिखी और यहाँ भी सिद्ध रूप ही लिख दिया है और पद्य में (वेत्तु) आदिभ का निर्णय भी किया है और विदाङ्गरोत् विदाङ्गुसतात् विदाङ्गुसताम् विदाङ्गु इत्यादि रूपों के साधनार्थ यह सूत्र ही युक्ति है । तो यह सिद्ध हुआ कि सूत्र में जो प्रथम पुद्गल और बहुवचन है यह कोई नियम कारण नहीं है अविबचन होने से अर्थात् और पुद्गल में और और अर्थों में भी यह अभी निपात से कार्य होते हैं ।

विदाङ्ङरवाणि (४४२, ४४४, ४१४) मै जानू । अवेत् (४५२, ४७६, १६३) उसने जाना ।
 षवित्ताम्, उन देने जाना । अविद्ः (४७५) उन नेजाना ॥ ६०३ ॥

६०४ ॥ दृश्च । ढ । २ । ७५ । धातोर्दस्यपदान्तस्य सिप् सिर्वा ।
 अवेः । अवेत् । विद्यात् । विद्यास्ताम् । अवेदीत् । अवेदिष्यत् । अस्
 भुवि । १६ । अस्ति ॥

धातु के "पद के अन्त में होने वाले" (पदान्त) दृ को विकल्प करके रु होवे यदि
 सिप् परे हो तब । अवेः १०८ वा अवेत् (तूने जाना) आ० लिङ् में विद्यात्, ईश्वर करे
 कि वह जाने । विद्यास्ताम् ईश्वर करे कि वे दो जानें । लुङ् में अवेदीत् ४२७, ४७३, ४७४
 और ४७६ से गुण करणा उसने जाना । लृङ् में अवेदिष्यत्, यदि वह जाने । १६ अस्
 (अस्) होना । अस्ति, वह है ॥ ६०४ ॥

६०५ ॥ श्नसोरल्लोप । ६ । ४ । १११ । श्नस्यास्तेश्चाती लोपः
 सार्वधातुके क्ङिति । स्तः । सन्ति । अस्ति । स्थ । स्थ । अस्मि । स्वः ।
 स्मः ॥

श्नम् ७०८ प्रत्यय के और अस् धातु के 'अ' का लोप होवे जब कित् वा ङित्
 सार्वधातुक परे हो तब । (स्तः) में ५२६ से तस् ङित् हुआ और ६०५ से अलोप हुआ
 स्तः, वे दो हैं । सन्ति (वे हैं) अस्ति ४३२ (तू है) स्थः (तुम दो हो स्थ (तुम हो) अस्मि
 में हू) स्वः (हम दो हैं) स्मः (हम हैं) ॥ ६०५ ॥

६०६ ॥ उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः । ढ । ३ । ८७ । उपसर्गणः
 प्रादुसश्चास्तेः सस्य षो यकारेऽचि च परे । निष्यात् । प्रनिषन्ति ।
 प्रादु षन्ति । यच्परः । किम् । अभिस्तः ॥

(उपसर्गस्थ इण्) (१) के आगे वा प्रादुस् अव्यय के आगे जो अम् धातु उसके स् को
 ष होवे जब य् (वा) अच् परे रहे तब । निष्यात्, यही उपसर्गस्थ इण् के आगे ष हुआ ।
 निष्यात्, वह निकल जावे । प्रनिषन्ति, वे बाहिर जाते हैं । यहाभी उपसर्गस्थ इण् के
 आगे ष हुआ है । प्रादु षन्ति, यहा प्रादुस् के आगे ष हुआ है । (वे प्रकट होते हैं) यहा
 (इस सूत्र में) "य् वा अच् परे हो" यह क्यों कहा ? इस प्रश्न का समाधान यह है ।
 कि (यच् पर) न करते तो (अभिस्तः) में भी 'अभि' उपसर्गस्थ इण् के आगे स् को ष ही

(१) उपसर्ग में स्थित जो इण् प्रत्याहारान्तर्गत षणो में से कोई एक वर्ण ।

(विद् को चकारान्त पठने से) ४०८ से गुञ् (१) नहीं होता । विदाञ्चकार (३ १ ४२ १ २, ४२ ४८२ और १८६) वा विवेड ४०८, उसने जाना । कुट् में वेदिता (४२०, ४०८) और कट् में वेदिष्यति (यह जान लेगा) ॥ ६ ॥

६०१ ॥ विदाङ्कुर्वन्तिवत्यम्यतरस्याम् । ३ । १ । ४१ । वेत्ते क्रीडिषाम् गुणाभावो षोडोऽसुक् षोडन्तश्चरोत्यनुप्रयोगश्च निपात्यते । पुरुषवचने न विवक्षिते । विदाङ्करोतु ॥

विद् धातु से षोड् में याम् विकल्प करके होवे गुञ् ४०८ का अभाव अर्थात् । उपधा को गुञ् न होवे और षोड् का सुक् हो जावे और षोड् जिस के अन्त में है ऐसे करोति (क) अर्थात् करोतु आदिषीं का उस के अनन्तर प्रयोग, होवे (यह सम कार्य निपात से होते हैं) । पुरुष और वचन की यहाँ (२) विवक्षा नहीं है । विदाङ्करोतु यह जाने ॥ ६ १ ॥

६ २ ॥ तनादिक्लञ्च्य उ । ३ । १ । ७८ । शपोऽपवादः । तन् (विस्तार करवा) आदि धातु ०११ जो से और च धातु से परे उ प्रत्यय होवे । यह सूत्र मू ४११ का अपवाद है ॥ ६ २ ॥

६ ३ ॥ अतसत् सार्यधातुके । ६ । ४ । ११ । उप्रत्ययाग्नस्तस्य क्लञ्चोऽत उत सावधातुके क्लञ्चिति । विदाङ्करोतात् । विदाङ्करोताम् । विदाङ्कुर्वन्तु । विदाङ्कुरु । विदाङ्करवाचि । भवेत् । भवित्ताम् । भविष्युः ॥

(उ) प्रत्यय ६ २ है अन्त में किस से ऐस कञ् (क) धातु के अकार को अकार होवे । विदाङ्क + तात् = विदाङ्करोतात् । ईश्वर करे कि यह जाने । विदाङ्करोताम् वेदी जाने । विदाङ्कुर्वन्तु (६ १ ६ २ ६ ३) वे जाने । विदाङ्क (६ १ ६ २, ६ ३ ६ ३२) नू जान ।

(१) क्योंकि उपधा में नपु है ही नहीं गुञ् क्लिसे ही । (२) इस का यह आशय है कि (विदाङ्करोतु) प्रभृति प्रयोग बहुत स्थानों में उचित पड़ते हैं परन्तु इन के साधने के लिये बिना इस मू ६ १ में और कार्य पाणिनि की ने सुझि नहीं लिखी और यहाँ भी सिद्ध रूप ही लिख दिया है और पर म (वेत्तु) आदिष का निर्णय भी किया है और विदाङ्करोतु विदाङ्करोतात् विदाङ्करोताम् विदाङ्कुरु इत्यादि रूपों के साधनाथ यह सूत्र ही युक्ति है । तो यह सिद्ध हुआ कि मू ६ में जो प्रथम पुरुष और बहुवचन है यह कोई नियम कारण नहीं है अविद्यमान जाने स अर्थात् और पुरुषों में और और वचनों में भी यह अभी निपात से काय होते हैं ।

६११ ॥ दीर्घङ्गा किति । ७ । ४ । ६६ । इणोऽभ्यासस्य दीर्घः

किति लिटि । ईयत् । ईयुः । इययिथ । इयेथ । एता । एष्यति । एतु ।
ऐत् । ऐताम् । आयन् । इयात् । ईयात् ॥

कित् ४८० लिट् परे हीतो इण् धातु को अभ्यास को दीर्घ होवे । ईयत्, वे दो गण,
ईयुः = वे गण । इययिथ (५११) वा इयेथ (५०६, ४१४, ६१०) तू = गया । एता (वह जावेगा)
एष्यति (४१४) = वह जाएगा । एतु (४३७ वह जावे) (१) ऐत्, वह गया । (ऐताम् वे दो
गण) आयन् (२६) वेगण । वि० लि० इयात्, वह जावे । आ० लिङ् में ईयात् (५१२) ईश्वर
करे कि वह जावे ॥ ६११ ॥

६१२ ॥ एतेर्लिङि । ७ । ४ । २४ । उपसर्गात्परस्य इणोऽणोऽङ्गस्व
आर्धधातुके किति लिङि । निरियात् । उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्
अभीयात् । अण् । किम् । समेयात् ॥

उपसर्ग से परे इण् धातु का जो अण् उसको ङ्गस्व होवे, परन्तु जब आर्ध धातुक
सन्नावाला कित् ४६० लिङ् (२) परे हो तो । निर् + ईयात् = निरियात्, ईश्वर करे कि
वह निकल जावे । किसी कार्य के लिये जब प्रयोगमें पूर्वभाग, और परभाग,
का आश्रयण एक में किया जावे वहा (३) (अन्तादिवच्च) नहीं लगता है ।
इसी कारण से "अभीयात्" में ङ्गस्व नहीं होता क्योंकि अभि + ईयात् यहां जब ५२ से
दीर्घ एका देश किया तब अभीयात् के ईकार को पूर्व और पर का अन्वय एक समय
ही नहीं मान सकते, तो ६१२ की प्राप्ति भी नहीं हो सकती

६१३ ॥ इणो गा लुङि । २ । ४ । ४५ । गतिस्थेति सिचिलुक् ।
अगात् । ऐष्यत् । शीङ् स्वप्ने । १८ ॥

लुङ् लकार में इण् धातु को गा आदेश होता है । ४६०, से सिच् ४६६, का लुक् होता
है । अगात्, वह गया । लुङ् में ऐष्यत् (४०२, २१२) यदि वह जावे । १८ । शीङ् (सोना)
सोजाना ॥ ६१३ ॥

इस सूत्र की वृत्ति में अण् क्यों कहा ? ऐसा कोई प्रश्न करे तो उस को उत्तर देता
है, (समेयात्) अण् ग्रहण न करे तो सम् + आ + ईयात् यहा प्रथम गुण करने पर
सम् + एयात् = एमे रूप में ङ्गस्व ही जावेगा तो समेयात् नहीं बनेगा । परन्तु अण् ग्रहण
करने से समेयात्, में ङ्गस्व नहीं होता ॥ ६१२ ॥

(१) इण् का, लुङ् के प्रथम पुरुष एक वचन में (४०२, २१२) ऐत् । (२) आशिप् में
जो लिङ् है । (३) एकादश पूर्व के अन्त के सदृश और पर के आदि के सदृश होता है ॥

जावेगा । यही दोष पठेमा परन्तु (यच् पर) कहने से तो यहाँ "अभिस्र" में सकार के आगे न तो 'य्' है न 'अच्' है इधीलिये य् नहीं होता । अभिस्र' वे दो सभ प्रकार के हैं ।

६० ॥ अस्तेभू । २ । ४ । ५२ । आर्धधातुके । धभूव । भविता ।

भविष्यति । अस्तु । स्तात् । स्ताम् । सन्तु ।

आर्धधातुके परे हो तो अस् की भू आदेश हो जावे । (१) वभूव वह वा ॥

{	भविता वह होगा ।		छोट में अस्तु वह होवे ।
	भविष्यति वह होमा ।		स्तात् ४१८ ६ ५ वह होवे ।

स्ताम् वे दो होवे । सन्तु (वे होवे) ॥ ६० ॥

६०८ ॥ षसीरेद्याभ्याससोपश्रच । ६ । ४ । ११८ । घोरस्तेहषैत्व

स्यात् ही अभ्याससोपश्रच । एधि । स्तात् । स्त । स्त । असानि ।

असाव । असाम । आसीत् । आस्ताम् । आसन् । स्वात् । स्याताम् ।

स्यु । भूयात् । अभूत् । अभविष्यत् । वृष गतौ । १० । एति । वृत् ४

"वि (४४१) परे होते" सु सप्तम भातुषो की ६५६ और अस् भातु की एकार होने

और अभ्यास का लोप होने । ६०० में वि की वि वृषा एधि तू ही । स्तात् (४१८ ६ ५)

असाव (हम दो होवे) असाम (हम होवे) । अह में आसीत् (४०२ ४०२) वह वा ।

आस्ताम् (वे दो वे) आसन् (वे ये) । वि लिङ में स्यात् (६ ४) वह होवे । स्याताम् ।

वे दो होवे स्यु (वे होवे) । आ लिङ में (६ ०) भूयात् अरवर परे वह होवे । वृत् में

(६ ०) से भू आदेश । अभूत् वह वृषा या । अह म अभविष्यत् यदि वह हवे । १० । एच्

(अलना आमा) एति (४१४) वह जाता है । इत' वे दो जाते हैं ॥ ६०८ ॥

६१ ॥ वृषो यष् । ६ । ४ । ८१ । अजादी प्रत्यये परे । यम्ति ॥

जिस के आदि में अच् (स्वर) हो ऐसा प्रत्यय परे हो तो एच् को यच् होने । यम्ति

वे जाते हैं ॥ ६१ ॥

६१ ॥ अभ्यासस्यासवर्णे । ६ । ४ । ०८ । वृत्तवर्णयोरियङुवङी

स्तोऽसवर्णेऽपि । । वृषाय ॥

अभ्यास के ४२१ इयच् और उयच् की लाम से इयङ् और उयङ् होते हैं । (२) अस्

यच् अच् परे हो तो । वृषाय (४२ १८६ ६१ २६) यह गया ॥ ६१ ॥

(१) इस की सिद्धि प्रथम लिख पाए हैं भू भातु पर ही । (२) ना समान

यच् वासा (विषमरूपी) ।

६११ ॥ दीर्घङ्गः किति । ७ । ४ । ६६ । इणोऽभ्यासस्य दीर्घः
किति लिटि । ईयत् । ईयुः । इययिथ । इयेथ । एता । एष्यति । एतु ।
ऐत् । ऐताम् । आयन् । इयात् । ईयात् ॥

कित् ४८० लिट् परे हीतो इण् धातु के अभ्यास को दीर्घ होवे । ईयत्, वे दो गण,
ईयु' = वे गण । इययिथ (५११) वा इयेथ (५०६, ४१४, ६१०) तू = गया । एता (वह जावेगा)
एष्यति (४१४) = वह जाएगा । एतु (४३७ वह जावे) (१) ऐत्, वह गया । (ऐताम् वे दो
गण) आयन् (२६) वे गण । वि० लि० इयात्, वह जावे । आ० लिट् में ईयात् (५१२) ईश्वर
करे कि वह जावे ॥ ६११ ॥

६१२ ॥ एतेर्लिङि । ७ । ४ । २४ । उपसर्गात्परस्य इणोऽणोऽङ्गस्व
आर्धधातुके किति लिङि । निरियात् । उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्
अभीयात् । अणः किम् । समेयात् ॥

उपसर्ग से परे इण् धातु का जो अण् उसको ङ्गस्व होवे, परन्तु जब आर्ध धातुक
सन्नावाला कित् ४६० लिङ् (२) परे हो तो । निर् + ईयात् = निरियात्, ईश्वर करे कि
वह निकल जावे । किसी कार्य के लिये जब प्रयोगमें पूर्वभाग, और परभाग,
का आश्रयण एक में किया जावे वहा (३) (अन्तादिवच्च) नहीं लगता है ।
इसी कारण से "अभीयात्" में ङ्गस्व नहीं होता क्योंकि अभि + ईयात् यहा जब पूर से
दीर्घ एका देश किया तब अभीयात् के ईकार को पूर्व और पर का अवयव एक समय
ही नहीं मान सकते, तो ६१२ को प्राप्ति भी नहीं हो सकती

६१३ ॥ इणो गा लुङि । २ । ४ । ४५ । गतिस्थेति सिचोलुक् ।
अगात् । ऐष्यत् । शीङ् स्वप्ने । १८ ॥

लुङ् लकार में इण् धातु को गा आदेश होता है । ४६०, से सिच् ४६६, का लुक् होता
है । अगात्, वह गया । लृङ् में ऐष्यत् (४०२, २१२) यदि वह जावे । १८ । शीङ् (सोना)
सोजाना ॥ ६१३ ॥

इस सूत्र की श्रुति में अण् क्यो कहा ? ऐसा कोई प्रश्न करे तो उस को उत्तर देता
है, (समेयात्) अण् ग्रहण न करे तो सम् + आ + ईयात् यहा प्रथम गुण करने पर
सम् + एयात् = ऐषे रूप में ङ्गस्व ही जावेगा तो समेयात् नहीं बनेगा । परन्तु अण् ग्रहण
करने से समेयात्, में ङ्गस्व नहीं होता ॥ ६१२ ॥

(१) इण् का, लङ् के प्रथम पुरुष एक वचन में (४०२, २१२) ऐत् । (२) आशिष् में
जो लिङ् है । (३) एकादश पूर्व के अन्त के सदृश और पर के आदि के सदृश होता है ॥

६१४ ॥ शीङ् सार्वधातुके गुण । ७ । ४ । २१ । श्येते श्याते ॥

शीङ्धातुकीगुण होने के लिये सार्वधातुके प्रत्यय परे रहे तब । श्येते (३२०) वह सोता है । श्याते (३२०—२६) वे दो सोते हैं ॥ ६१४ ॥

६१५ ॥ शीङ्गी रुट् । ७ । १ । ६ । शीङ्गी भाट्टेशस्यातीरुट् । शेरते । श्येते । श्याते शेष्वे । शये । शेष्वे । शेमहे । शिमहे । शिश्ये । शिश्याते । शिश्रिये । शयिता । शयिष्यते । शेताम् । शयाताम् । शेरताम् । अशेत । अशयाताम् । अशेरत । शयीत । शयीयाताम् । शयीरन् । शयिषीष्ट । अशयिष्यत् । अशयिष्यत । अशयिष्यते । अशयिष्यते १८ इच्छिकावध्युपसर्गती न ष्यभिषरत । अधीयते । अधीयाते । अधीयते ॥

शीङ् धातु से परे ष् के स्थान में आदेश की अत् (३१२) उस की रुट् (६) का आगम होने । शेरते (३१२ ३२०) वे सोते हैं । श्येते (तू सोता है) २

२ {	श्याते तुम दो सोते हो ।	}	}	३१	{	श्ये	६१५—२६—में सोता है ।
				३२		श्ये	६१५—२० हम दो सोते हैं
				३३		शेमहे	हम सोते हैं

॥ शिद् में ॥

शिर्ये (४२ ३४२) वह सोया था । शिर्याते वे दो सोये थे शिरियरे वे सोये ३४२ । श्रुट् में शयिता (४२० ४१४ २६) अट् में शयिष्यते वह सोयेगा । शीट् में शेताम् ६१५ ४४६ वह सोये । शयाताम् व दो सोये । शेरताम् (६१४ ३१२ ६१५) वे सोये । शट् में अशेत १४ वह सोया । अशयाताम् (२६) वे दो सोये । अशेरत (३१२ ६१५) वे सोये । शि शिङ् में 'शयीत' (६१५ ३४८, ३१५, ३२०, २६) वह सोये । शयीयाताम् वे दो सोये । शयीरन् (३१) वे सोये । शि शिङ् में शयिषीष्ट (३१२ ४१०) शरशर करे शि वह सोये । श्रुट् में अशयिष्यत् (४१४ ४६६ ४२०, २६) वह सोया । अट् में अशयिष्यत् (४१४ ४२८ ४२० २६) यदि वह सोयावे । १८ । इट् (३) अध्ययन (पठन) अथ में है । इट् और इण (स्मरण) ये दो धातु अथि उपसर्ग से भिन्न नहीं हो सकते (इन का प्रयोग 'अथि सहित ही आता है) । अट् में अथि + इ + त (३२०, ३२) अधीते (वह अध्ययन करता) (पढ़ता है) । अधीयाते (३२०, ३१४) व दो अध्ययन करते हैं । अधीयते (३१२ ३१४) व अध्ययन करते हैं ॥ ६१५ ॥

६१६ ॥ गाड् लिटि । २ । ४ । ४६ । ड्ड । अधिजगे । अध्येता ।

अध्येष्यते । अधीताम् । अधीयाताम् । अधीयताम् । अधीष्व । अधीया-
याम् । अधीष्वम् । अध्ययै । अध्ययावहै । अध्ययामहै । अध्यैत । अध्यै-
याताम् । अध्यैयत । अध्यैथाः । अध्यैयाथाम् । अध्यैष्वम् । अध्यैयि ।
अध्यैवहि । अध्यैमहि । अधीयीत अधीयीयाताम् । अधीयीरन् । अध्येषीष्ट ।

लिट् परे हो तो ड्ड् को गाड् आदेश होवे । (१) अधिजगे (५४२, ५१८) उसने
अध्ययन किया था । लुट् मे अध्येता (४१४ मे गुण और "१८" से यण्) = वह अध्ययन
करेगा । लट् में अध्येष्यते (४१४ से गुण और "१८" से यण्) = वह अध्ययन करेगा ।
लोट् में अधीताम् (५४६) वह अध्ययन करे ॥

॥ प्रथम पुरुष ॥

॥ मध्यम पुरुष ॥

लिट्	एकव० अधीताम्, ५४६ वह अध्ययन करे	}	अधीष्व, (५३६, ५६७) तू पठे
	द्वि० अधीयाताम्, ५४६, २१४, २६वेदो ,,		अधीयाथाम्, तुम दो अध्य०
	बहु० अधीयताम्, ५५३, २१४, २६ वे ,,		अधीष्वम्, ५४७ तुम अध्य०

॥ उत्तम पुरुष ॥

लोट् में— { (२) अध्ययै, मैं अध्ययन करू
अध्ययावहै, हम दो अध्ययन करें
अध्ययामहै, हम अध्ययन करे }

॥ लट् में ॥

प्रथम पुरुष { अध्यैत = (४७२, २१२, १८) उसने अध्ययन किया
अध्यैयाताम् (४७२, २१२, १८) उन दोनें अध्ययन किया
अध्यैयत, ५५३ (४७२, २१२, १८) उनने अध्ययन किया }

मध्यम पुरुष { अध्यैथा' = (४७२, २१२, १८) तूने अध्ययन किया
अध्यैयाथाम् = (४७२, २१२, १८) तुम दोनें अध्ययन किया
अध्यैष्वम् = (४७२, २१२, १८) तुम ने अध्ययन किया }

उत्तम पुरुष { अध्यैयि = (२७२, २१२, १८) मैंने अध्ययन किया
अध्यैवहि = (२७२, २१२, १८) हम दोने अध्ययन किया
अध्यैमहि = (२७२, २१२, १८) हमने अध्ययन किया }

विधि लिट् में (अधीयीत ५४६, ४५५, ४५७, २१४, ५२) वह अध्ययन करे

(१) यहा गाड् (गा) को ४२० से द्वित्व, और ४२३ से अभ्यास को ङ्रस्व, और ४८२ से उसको ल, ये भी कार्य करलेने । (२) ५३७, ५४८, ४१४, २६, १८ ॥

अधीयीयाताम्—वेदी अध्ययन करें। अधीयीरन् (११) वे अध्ययन करें। प्राग्भि
 सिद्ध में अभ्येपीष्य—(१४८, ११२ ४१०) ईरवर करें कि वह अध्ययन करे।

६१० ॥ विभाषा लुङ्लुङी । २ । ४ । ५० । लुङी गाङ् ।

लुङ् चौरलुङ् परे होतो इङ्घातुकीगाङ् (६१६) आदेशविकल्प करने होते ॥६१०॥

६१८ ॥ गाङ्गुटादिभ्योऽङ्घिणन्ङित् । १ । २ । १ । गाङ्गादेशात्कु

टादिभ्यश्चाङ्घितः प्रत्यया ङित् स्यु ॥

गाङ् ६१६ ६१० आदेश से चौर "कुटादिषी" से परे को प्रत्यय ङित् वा ङित्
 नहीं है वे ङित् होते ॥

६१८ ॥ घुमास्यागापावशातिसां ङिति । ६ । ४ । ६६ । एपासात्

ईत् स्वादखादी क्ङित्यार्धधातुके। अघ्वगोष्ठा। अघ्यैष्ठा। अघ्यगोष्वात्।
 अघ्यैष्वात्। दुह प्रपरणे। २ । दीग्धि। दुग्ध। दुह्मिति। धीधि।
 दुग्धे। दुहाते। दुहते। घुचे। दुहाये। घुग्ध्वे। दुहे। दुह्वे। दुह्वे।
 दुदोह। दुदुहे। दीग्धा। धीह्यति। धीह्यते। दीग्धु। दुग्धात्।
 दुग्धाम्। दुहन्तु। दुग्धि। दुग्धात्। दुग्धम्। दुग्ध। दीहानि।
 दुग्धाम्। दुहाताम्। दुहताम्। घुह्व। दुहायाम्। घुग्ध्वम्। दीहे।
 दीहावहे। दीहामहे। अधीक्। अदुग्धाम्। अदुहन्। अदोहम्। अदुग्ध।
 अदुहाताम्। अदुहत। अघुग्ध्वम्। दुह्यात्। दुह्येत ॥

घु (६१४) संघा वाले धातुषीं से चौर मा (मापना) र्या (पठा) (बहा होना)

गा (अध्ययन करणा) या (पीना) अजाति (जा) जीहना। यो (नाय करना) इन
 धातुषीं से आकार को ईकार होते जब ह् च है आदि में ङित् से ऐसा ङित् वा ङित्
 आर्धधातुक परे हो तो। जब लुङ् में ६१० से गा र्पा तो (अघ्यगोष्ठा) दूसरे पक्ष में
 अघ्यैष्ठा (४०२, २१२ १८) वह अध्ययन करता हुआ। लुङ् में अघ्यगोष्वात् (६१०,
 ११८) वा अघ्यैष्वात् (४०२ २१२, १८) यदि वह अध्ययन करे। २ । दुह (दुहना)
 (दुह्+गप्+तिप्) (१८१ ४०८, २०२ १८ २२) दीग्धि वह दुहता है। दुग्ध (१)
 (४६१) वे ही दुहते हैं। दुह्मिति से दुहते हैं। धीधि ४०८ से (गुह) २०२ से (घु) २०१
 से (ह) जो ह् धीह्+सि=पुन १६१ ८०, धीधि (तू दुहता है)। (२) दुग्धे ११० से

(१) ४६१ वा (तम्) में ङित्ति ने गुह नियेव ही नियेव है चौर सभी कार्य एक
 वचन से गुह्य ही होते हैं। (२) आत्मने पद के रूपों से पक्ष परस्मैपद से समान मानने ॥

(टि को एकार और गुणा भाव) अन्यत् पूर्ववत् । दुहाते ५३० । दुहते ५५३ से भ् को अत् धुत्वे (२७२, २७३, १६३, ८७) । दुहाये, तुम दो दुहते हो । धुग्ध्वे (२७२, २७३, २२) तुम दुहते हो । द्हे (मैं दोहता हूँ) । द्दह्ये हम दो दुहते हैं । द्दह्ये, हम दुहते हैं ।

॥ परस्मैपद ॥

॥ आत्मने पद में ॥

लिट्-दुदोह (४२०, ४२३) ४७८ (उसने दहा)	ददुहे (४२०, ४२३, ५४२)	} यह दोहेगा ।
लुट्-दोगधा, (२७२, ५८०, २२) वह दोहेगा	दोगधा, (४२०, ४२३, ५४२)	
लृट्-धोच्यति, (४७८, २७२, २७३, १६३, ८७)	धोच्यते, वह दोहेगा ।	

प्रं प्रं लृं	{	१—दोगधु = (१)दग्धात् (४७८, २७२, ५८०, २२)	}
		२—दग्धाम् = (२७२, ५८०, २२) =वे दो दुहें	
		३—दुहन्तु = (४१५, ४३७) वे दुहें ।	

प्रं म म	{	दुग्धि, दग्धात् (२७२, ५८७ । ४३८) तू दुहले	} ईश्वर करे तूदोहे ।	
		दग्धम् (२७२, ५८०, २२) =तुम दोहो ।		} दोहानि मैं दोहूँ ।
		दुग्ध (२७२, ५८०, २२) तुम दो दोहो ।		

आत्मने पद में लोट् के रूप नीचे देखो.—

॥ प्रथम पुरुष ॥

॥ मध्यम पुरुष ॥

॥ उत्तम पुरुष ॥

{ दग्धाम् (५४६, २७२, ५८०, वह दुहे)	{ धुक्त्वं २७३, ८७, ६३ तू दुह ।	{ दोहै ५४६ मैंदोहूँ }
{ दुहाताम् (वे दो दोहें) ५४६ ।	{ दुहायाम् ५४६, तुम दो दोहो	{ दोहावहै हमदो० }
{ दुहताम् (५४६, ५५३,) वे दुहें ।	{ धुग्ध्वम् २७२, २७३ तुम दोहो	{ दोहामहै हम० }

॥ परस्मैपद लङ् में ॥

अधोक् (४७८, ४५२, १८३, २७२, २७३, ८७) वह दुहता हुआ । अदुग्धाम्, उन दोने दुहा अदुहन्, उनने दुहा । अदोहम्, ४७८, (मैं ने दुहा) ॥

॥ आत्मने पद के लङ् में ॥

अदुग्ध, (२) (२७२, ५८०, २२,) अदुहाताम्, (४५१) अदहत्, (५५३) अधुग्ध्वम्, (४५१, २७२, २७३, २२) तुमने दुहा । वि० लिङ् में (दुघ्यात्, (वा) द्हीत्, वह द्हे ५४८ ॥ ६१८ ॥

६२० ॥ लिङ्मिचावात्मनेपदेषु । १ । २ । ११ । इक्समीपाह्वलः

परौ भलादी लिङ्सिचौ कितौ स्तस्तडि । धुक्लीष्ट ॥

इक् के समीप जो हल् उस से परे जो 'भलादी' (१) लिङ् लकार और सिच् वे

(१) वह द्हे, ४३८ ईश्वर करे कि वह दुहे । (२) इनको, अर्थ, परस्मैपद के समान हैं । (३) भल् है आदि में जिन के ऐसे ।

लृट् में । अधोच्यत्, अधोच्यत, जी वह दोहे । ऐसी रीतिसे, २१ । टिह् (वृद्धि, राशिकरणा) धातु की भी साधन प्रक्रिया जाननी ॥ २२ । लिह् (चाटना) लेटि (४७८, २७१, ५८०, ७५, ५८१) वह चाटता है । लीट्. (२७१, ५८०, ७५, ५८१, १२७) वे दो चाटते हैं । लिहन्ति, वे चाटते हैं । लेटि (२७१, ५७८, १६३) तू चाटता है । (१) लीटे ५३७, लिहाते, लिहते ५५३, लिह्ते (२७१, ५७८) लिहाये, तुम दो चाटते हो । लीट्. (२७१, ७५, ५८१, १२७) तुम चाटते हो ॥

लिट् में प० लिलेह् आ० लिलिहे = वह चाटता (या) हुआ । लोट् में, (२) लेटासि (३) लेटासे, तू चाटेगा । लृट् में, प० लेच्यति । आ० लेच्यते, वह चाटेगा । लोट् में प० लेटु, लीटात्, वह चाटे । लीटाम्, वे दो चाटें । लिहन्तु, वे चाटें । लीटि (४४१) ५८७ तू चाट । लेहानि (४४३, ४४४) मैं चाटू । आ० लोट् में लीटाम् ५८८, ५८१, १२७ वह चाटे । लङ् में, अलेट् २७१, १८३, १५८ वा अलेड्, वह चाटता हुआ । लृङ् में प० ६२१ अलिचत् ६२२ आ० अलीढ, अलिचत् २७१, ५७८ उस ने चाटा । लृङ् में प० अलेच्यत् आ० मे अलेच्यत २७१, ५७८ यदि वह चाटे । ब्रूञ् (ब्रू) = स्पष्टबोलना ॥

६२४ ॥ ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः । ३ । ४ । ८४ । ब्रुवो-
लटस्तिवादीनां पञ्चानां णलादयः पञ्च वा स्युर्ब्रुवश्चाहादेशः ।
आह । आहतुः । आहुः ॥

ब्रू धातु से परे जी लट् के स्थान में तिवादि पांच (१ तिप्, २ तस्, ३ क्ति, ४ सिप्, ५ थस्) इन को णलादि पांच (१ णल्, २ अतस्, ३ उस्, ४ थल्, ५ अथुस्) आदेश क्रम से होंगे, और ब्रू को आह आदेश होंगे । ब्रू + तिप् (आह + णल्) तो आह = वह कहता है । आहतु, वे दो कहते हैं । आहु, वे कहते हैं ॥

६२५ ॥ आहस्यः । ८ । २ । ३५ । भालि । चत्वंस् । आत्थ ।
आह्युः ॥

जब भाल् परे हो तब आह ६२४ के अन्तिम वर्ग को थ, होंगे । पुनः खरि च से थ् की त् किया आत्थ, तू कहता है । आह्यु, तुम दो कहते हो ॥

६२६ ॥ ब्रुव ईट् । ७ । ३ । ६३ । ब्रुवो हलादेः पित ईट् । ब्रवीति ।
ब्रूत । ब्रुवन्ति । ब्रूते । ब्रुवाते । ब्रुवते ॥

(१) आत्मने पद में "अर्थ" परस्मैपद के समान जानने । (२) परस्मै पद में मध्यम प० एकवचन में ५८०, ५८१ । (३) आत्मनेपद में मध्यम प० कण्वचन में ५८०, ५८१ ॥

भ्रूम् (भ्रू) चातु से परे जो वृत्तादि (१) पित् प्रत्यय छद्म को रंद् का आगम होवे। प्रवीति ३१३ २६ वह वीर्यता है। भ्रूत् ५२८ वे ही बोलते हैं। भ्रुवन्ति (२१३) वे बोलते हैं। भात्मने पद में लृट् का भ्रूते ३३० भ्रुवाते भ्रुवते चर्ब पूर्ववत् ॥

६२० ॥ भ्रुवोवधि । २ । ४ । ५३ । आधधातुके । उवाच, छचतु, छचुः, उवधिय, उवधय, “छचे” “वत्सा” “वक्ष्यति” वक्ष्यते, प्रवीतु, प्रूतात्, प्रूताम्, भ्रुवन्तु, भ्रुवि, भ्रुवाधि, “प्रूताम्” “प्रवे” “अभ्रवीत्, अभ्रूत्” । “भ्रूयात्, भ्रुवीत्” “उच्य्यात्, वक्षीष्ट” ॥

आर्धधातुक प्रत्यय परे रंद् तो भ्रू को वष् आदेश होय। सिद्ध में उवाच (३२ ४२२, ३००, २०८, ४८३) वह बोला। छचतु (३०८) वे ही बोले। छचु वे बोले। उवधिय ३११ (या) उवधय (३००) (३२८) तू बोलाया। भात्म सिद्ध में छचे ३०० ३०८। लृट् में वत्सा ३२८ लृट् में वक्ष्यति। आ में वक्ष्यते ३२८ वह बोलगा। लृट् में प्रवीतु ३२६ ४२४ २६ ४३० (या) प्रूतात् वह बोले प्रूताम् वह ही बोले। भ्रुवन्तु २१४ ३३० वे बोले। भ्रुवि प्रूतात् तू बोले। भ्रुवाधि में बोले। भात्मने पद में प्रूताम् (२) प्रवे। लृट् में अभ्रवीत् ३२६ आ में अभ्रूत् वह बोला। वि सिद्ध में भ्रूयात् (आ में) भ्रुवीत् वह बोले। आभिव् सिद्ध में उच्य्यात् ३०८ (आ में) वक्षीष्ट ३२८ हे इत्पर! वह बोले ॥

६२८ ॥ अस्यतितवस्त्रिभ्यातिभ्योऽच् । ३ । १ । १५ । छलेः ॥

अस् प्रेक्षना। वष् बोलना। क्यया कहना। इन तीन धातुओं से परे जो लिट् ३६६ उसको पठ होवे ॥

६२९ ॥ वचसम् । ० । ४ । २ । अङि परे । अवीचत्, ‘अवक्ष्यत्, अवक्ष्यत’ ॥

पठ ६२८ परे ही तो वष् धातु को लृट् का आगम होय। लृट् में अवीचत् । वह बोला। लृट् में अवक्ष्यत् ३२८ (आ में) अवक्ष्यत यदि वह बोले ॥

६३ ॥ चर्करीत च। चर्करीतमिति यच्छुगन्तं तद्दादौ वीध्यम् २४ छचुञ् । आच्छादने ॥

चर्करीत वह यच् (३) कुनन्त की प्राचीनी के रूप में लंघा है उसको भी पदादि ३२८ यच् में जान लेना। २४ छचुञ् (छर्चु) आच्छादन (लक्ष लेना ॥ ६३ ॥

— ६३२ छर्चोतेर्विभाषा । ० । ३ । ६० । छर्चिश्चादौ पिति सार्व

* (१) तिप् बिप् सिप्। (२) प्र ए प्रूताम् है। उ ए प्रवे है (३)। ०१८ ले जोगा ॥

धातुके । जर्णोति, जर्णोति, जर्णुतः । जर्णुवन्ति । जर्णुते, जर्णुवाते,
जर्णुवते ॥

जब हलादि पित् सार्धधातुक परे हो तो जर्णु धातु की विकल्प करके वृद्धि होवे ।
लट् में जर्णोति वा जर्णोति ४१४ वह ढकता है । जर्णुत वे दो ढ० जर्णुवन्ति, वे ढकते हैं
आत्मनेपदके लट् में प्रथम पु० ए० जर्णुते हि० जर्णुवाते, अर्थ परस्मै० की तरह है ॥ ६३१ ॥

६३२ ॥ जर्णोतेराम्नेति वाच्यम् ॥ * ॥

जर्णु धातु से आम् ५४० न ही ऐसा कहना चाहिये ॥ ६३२ ॥

६३३ ॥ नन्द्राः संयोगादयः । ६ । १ । ३ । अच् पराः संयोगा-
दयो नद्रा द्विर्न भवन्ति । नुशब्दस्य द्वित्वम् । जर्णुनाव । जर्णुनुवतुः,
जर्णुनुवु ॥

अच् से परे संयोग के आदि में “न्, द्, र्” इन में से कोई एक ही तो उसे द्वित्व
न होवे । इस नियम के लगने से ऊ से परे र् को द्वित्व न हुआ किन्तु ‘नु’ मात्र को ही
द्वित्व हुआ । तो लिट् के प्र० ए० जर्णुनाव, १८६, २६ उसने ढका था । जर्णुनुवतुः, उन दोनों
ढ० । जर्णुनुवु, उनमें ढका था ॥ ६३३ ॥

६३४ ॥ विभाषोर्णो । १ । २ । ३ । इडादिप्रत्ययो ङित् जर्णुनविथ,
जर्णुनविथ । जर्णुविता, जर्णुविता । जर्णुविष्यति, जर्णुविष्यति । जर्णोतु
जर्णोतु । जर्णवानि । जर्णवै ॥

इट् है आदि में जिसके ऐसा प्रत्यय जर्णुञ् (जर्णु) धातु से परे हो तो वह विकल्प
करके ङित् होवे । जहां ङित् हुआ वहां २१४ से उवङ् हुआ, तो जर्णुनविथ सिद्ध हुआ ।
और दूसरे पक्ष में गुण ही २६ से अव हुआ तो जर्णुनविथ सिद्ध हुआ तूने ढका था । लुट् में
(१) जर्णुविता, जर्णुविता । लृट् में जर्णुविष्यति, जर्णुविष्यति, वह ढकेगा । लोट् में जर्णोतुः,
(२) जर्णोतु, वह ढके । लो० उ० ए० में जर्णवानि, जर्णवै, मैं ढकु ॥ ६३४ ॥

६३५ ॥ गुणोऽपृक्तो । ७ । ३ । ६१ । जर्णोतेर्गुणोऽपृक्तो हलादी पिति
सार्वधातुके । और्णोत् और्णोः । जर्णुयात् । जर्णुयाः । जर्णुवीत । जर्णु-
यात्, जर्णुविषीष्ट । उर्णुविषीष्ट ॥

जर्णु धातु की गुण होवे जब अपृक्त हलादि पित् सार्वधातुक परे हो तो । लङ् में

(१) लृट् में अर्थ लृट् के समान है । (२) ६३१ से वृद्धि विकल्प हुआ ॥

पौर्णात् (४५२ ४०२, २१२) उसने ठका । पौर्णात् नू ने ठका । विधि सिद्ध में ऊर्ध्वात्
 वह ठके । ऊर्ध्वात् नू ठका । ऊर्ध्वात् वह ठके । पा सि में ऊर्ध्वात् ५१२ ऊर्ध्विष्यत्
 ६१४ ऊर्ध्विष्यत् इत्पर करे कि वह ठके ॥ ६१५ ॥

६१६ अर्थातिर्विभाषा । ० । २ । ६ । इडाक्षौ परस्मैपद्ये सिधि
 षड्विः । पञ्चे गुण । पौर्णावीत्, पौष्वीत्, पौर्णुवीत्, पौर्णाविष्टाम्,
 पौष्विष्टाम्, पौर्णुविष्टाम् । पौष्विष्ट, पौर्णुविष्ट, पौर्णुविष्यत्,
 पौष्विष्यत् ॥ ॥ इत्यदादयः ॥

इत् ४२० है पादि में जिन के ऐसा सिच् परे होती 'ऊर्ध्व' भातु की षड्वि विवक्ष्य
 करके होते । दूसरे-पक्ष में ४१४ गुण जाता है पौर्णावीत् ४०२—४०३ ४०४ पौष्वीत्
 (४१४ ४०४ पौर्णुवीत् ६१४ उसने ठका । पौर्णाविष्टाम् पौष्विष्टाम् पौर्णुविष्टाम् उन
 दोने ठका । पात्स में इत् के पौष्विष्ट ६१४ पौर्णुविष्ट उसने ठका । नइ में पौष्वि-
 ष्यत् ६१४ यदि वह ठके ॥ गम ॥ ६१६ ॥ पदादिगण समाप्त भया ॥

इत् ॥ अथ जुहोत्यादयः ॥ इत् ॥

॥ १ ॥ इदानीदनयो ॥

६३० । जुहोत्यादिभ्य इत् १ । २ । ४ । ७५ । गपः ॥

'अथ इत् (यत् करना) है पादि में जिन के ठका कचन किया जाता है । १ । इत्
 (विधि पूर्वक षड्वि की अग्नि में जेकना वा खाना) है पादि में जिन के उन पातुर्पा
 के आगे जो गप् तिसका र्णु होते ॥ ६३० ॥

६३८ । इत् १ । २ । १ । धातोर्हे स्त । जुहोति । जुहुत ॥

जब र्णु की विषयता हो तब धातु का इत्त्व होते । जुहोति—४०२—४१४ यह
 यत् करता है । जुहुत के दा यत् करते हैं ॥ ६३८ ॥

६३९ ॥ पदभ्यस्तात् ० । १ । ४ । ऋस्य । जुहुवोरिति यष् । जुहति ।

पदभ्यस्तत्तत्र धातुर्पा न परे ऋ की यत् होते । ३१ के यत् इत् । जुहति
 के यत् करते हैं ॥ ६३९ ॥

६४० ॥ भीष्मोभूवृषा इत्त्वश्च । ० । १ । ७८ । ऋथी लिट्याम्वा स्या

दासि इत्त्वश्च कायं च । जुहुवाञ्चकार । जुहुवा । जोता । जोप्यति । जुहोतु
 जुहुतात् । जुहुताम् । जुहत्तु । जुहुधि । जुहुवामि । जुहुवामि । जुहुवामि । जुहुवामि ।

भी, डरना । झी, लज्जा करनी । भृ, पालना । हु, यज्ञ करना । इन धातुओं से परे आम् होता है लिट् ल० में विकल्प करके । और आम् के होने पर प्रलु के परे होने से जो कार्य होता है वह भी होवे अर्थात् ६३८ से द्वित्व ही । जुहवाञ्चकार (५०१, ४२० ५०२, ४२२, ४८२, १८६) वा जुहाव उसने यज्ञ किया । लृट् में होता, । लृट् में होष्यति लोट् में जुहोतु, जुहुतात् । जुहुताम् । जुह्वतु । ६३८ । ५३० (हि का) जुहुधि ५८७ जुह्वानि में यज्ञ करूँ । लड् में अजुहोत् ६३८ । द्विवच० में अजुहुताम् ॥ ६४० ॥

६४१ ॥ जुसि च । ७ । ३ । ८३ । इगन्ताङ्गस्य गुणोऽजादौ जुसि । अजु हवुः । जुहुयात् । हूयात् अहोषीत् । अहोष्यत् । जिभीभये । २ विभेति ॥

इक् (इ उ ऋ लृ) है अन्त में जिसके ऐसे अङ्ग को गुण ही, अच् है आदि जिस के ऐसा जुस् ४०५ परे ही तब । अजुहवुः उनने यज्ञ किया । वि० लिङ् में जुहुयात् आधि लिङ् में हूयात् ५१२, ईश्वर करे कि वह यज्ञ करे । लुड् में अहोषीत् ५१३ उसने यज्ञ किया लृड् में अहोष्यत्, यदि वह यज्ञ करे । २ । जिभी (भी) डरना लट् प्र० ए० में विभेति । (६३८, ४२३,) ४२५ वह डरता है ॥ ६४१ ॥

६४२ ॥ भियोऽन्यतरस्याम् । ६ । ४ । ११५ । इ. स्याद्दलादौ क्ङिति- सार्वधातुके । विभित् । विभीत । विभ्यति । विभयाञ्चकार । विभाय । भेता । भेष्यति । विभेतु । विभितात् । विभीतात् । अविभेत् । विभियात् । विभीयात् । भीयात् । अभैषीत् । अभेष्यत् । ३ । झी लज्जा- याम् । जिङ्गति, जिङ्गीत् । जिङ्गियति । जिङ्गयाञ्चकार, जिङ्गाय । ङेता । ङेष्यति । जिङ्गेतु । अजिङ्गेत् । जिङ्गीयात् । ङीयात् । अङ्गैषीत् अङ्गेष्यत् । ४ पू पालनपूरणयोः ॥

भी धातु को इकार ही जब हलादि कित् वा डित् सार्वधातुक प्रत्यक परे हो विभित्, विभीतः, वे दो डरते हैं । विभ्यति, वे डरते हैं । लिट् में विभयाञ्चकार, विभाय ६४० से आम् का विकल्प हुआ । वह डरा । लुड् में (१) भेता, लृट् में भेष्यति । लोट् में विभेतु विभितात् ४३८ से तातड् और ६४२ से इकार, पक्ष में विभीतात्, ईश्वर करे वह डरे । लड् में अविभेत् । वि० लिङ् में विभियात् ६४२ विभीयात्, वह डरे । आ० लिङ् में भीयात्, ईश्वर करे कि वह डरे । लुड् में (२) अभैषीत् (४७३, ५१३) लृड् में अभेष्यत् यदि वह डरे । ३ । झी, लज्जा करणो ॥

(१) लुट् और लृट् में वह डरेगा । (२) अर्थ लिट् के समान हैं ।

॥ प्र ए ॥

॥ प्र हि ॥

॥ प्र ष ॥

सट्-भिञ्जेति यह लज्जा करता है ॥ भिञ्जीत वे दो ॥ भिञ्जियति ६२८ वे लज्जा करते हैं ॥

सिद्ध में । भिञ्ज्यान्वकार, भिञ्जाय यह सञ्जित हुआ ॥

(१) { सुट् में सट् में सोट् में सड् में वि शिङ् में पा शिङ् में |
 ज्ञेता ज्ञेभ्यति, भिञ्जेतु भविञ्जेत् भिञ्जीयात् ज्ञीयात् }

सुट् में भञ्जेयीत् ६६६, ४०२ ५१२ यह सञ्जित हुआ । सट् में भञ्जेवत् यदि यह सञ्जित होवे । य पासना करनी या पूरा करवा ॥ ६४२ ॥

६४३ ॥ भत्तिपिपत्स्योश्च । ७ । ४ । ७७ । भन्त्यासस्य इः स्यात् ।

शशी । पिपत्ति ॥

रखु ६३० परे हो तो अ और पु चातु के अच् को र होवे । पिपत्ति ६३०, ६२८ यह पासता है । ६४२ ॥

६४४ ॥ सदीच्छग्रपूर्वस्य । ७ । १ । १०२ । अज्ञावयधीच्छग्रपूर्वीय

अज्ञादन्तस्याङ्गस्य च ॥

अङ्ग का अवयव जो धोष्ठ स्वामीय (२) वर्ध यह है पूर्व जिस के ऐसा अ है अन्त में जिस के उस अङ्ग को च ३४ हो ॥ ६४४ ॥

६४५ ॥ इक्षि च । ८ । २ । ७७ । रिकवास्तस्य धातीरुमधाया इको

दीर्घो इक्षि । पिपूर्त्तः । पिपुरति । पपार ॥

(रेक) रकार 'वा वकार है अन्त में जिस के ऐसे चातु की लपटा के इक् को दीर्घ होवे । पिपूर्त्त ६४४ वे दो (पासते) पूरा करते हैं । पिपुरति ६२८, वे पूरा करते हैं । सिट् में पपार (४२ ३ २ ४२२ १८६ ३४) लपटने पूरा किया ॥ ६४५ ॥

६४६ ॥ अदुर्गाङ्गस्वी वा ७ । ४ । १२ । किति सिटि पप्रतु ।

गु मारना । दु पावना । पु पासना । इन चातुपी को विकरण कारके इरव हो अच् कित् सिद्ध परे होय तब । (१) पप्रतु उन दो ने पूरा किया ॥ ६४६ ॥

६४७ ॥ षट्पठत्युताम् । ७ । ४ । ११ । तौदादिकष्टच्छेष्टधाती

षट् दन्तानां च गुणो लिटि । पप्रतु । पप्रतुः ॥

(१) इन का अच् सञ्जित पद अधिक्त लगा कर पुषवत् कर लेने । (२) (पु) प् फ् व् भ् म् इन पाँचों का अङ्ग होता है और में सम्भव ही नहीं (३) यहाँ इरव कर के १८ में अच् कर लगा ।

तुदादि गण की ऋच्छ धातु को और 'ऋ' धातु को और ऋदन्त धातुओं को गुण होवे जब लिट् परे हो तब । अतः जिस पक्ष में ६४६ से । ऋस्वन हुआ वहा इस से गुण हो पपरतुः सिद्ध हुआ पपरः, उनने पूरा किया ॥ ६४७ ॥

६४८ ॥ वृतो वा । ७ । २ । ३८ । वृड् वृज्भ्यामृदन्ताच्चेटो दीर्घो वा स्यान्नतु लिटि । परिता, परीता । परिष्यति, परीष्यति । पिपर्तु । अपिपः अपिपूर्ताम् । अपिपरुः । पिपूर्यात् । पूर्यात् । अपारीत् ।

वृड्, सेवा करणी । वृज्, स्वीकार करणा । और ऋदन्त धातु । इन से परे जो इट् ४३७ तिस को विकल्प कर के दीर्घ होवे । परन्तु यह दीर्घ लिट् में न होवे । लृट् में परिता, परीता । लृट् में परिष्यति, परीष्यति, वह पूर्ण करेगा ॥

लोट् में पिपर्तु, वह पूरा करे । लड् में अपिपः ४५२, ४१४, १९३, १०८ उसने पूरा किया अपिपूर्ताम् ६४३—६४४—६४५, उन दोनो ने पूरा किया । अपिपरुः, उन ने पूरा किया । वि० लिङ् में पिपूर्यात् ६४३, ६४४, ६४५, वह पूरा करे । आशिर्लिङ् में पूर्यात् ईश्वर करे को वह पाले लुङ् में अपारीत् ५१३ उस ने पूरा किया ॥ ६४८ ॥

६४९ ॥ सिचि च परस्मैपदेषु । ७ । २ । ४० । अत्र वृत् इटो न दीर्घः । अपारिष्टाम् । अपरिष्यत् । अपरीष्यत् ॥ ओहाक् त्यागे । जहाति ॥

'वृड्' 'वृज्' और ऋदन्तजो धातु इनको दीर्घ न हो परस्मैपद के सिच् परे होते । अपारिष्टाम्, उन दोने पूर्ण किया । लृड् में अपरिष्यत्, अपरीष्यत् ६४८, यदि वह 'पालना' वा 'पूर्ण' करे । ५ । ओहाक् (हा) त्याग करणा । लट् में जहाति ६३८, ४२३, ४८२, वह त्याग करता है ॥ ६४९ ॥

६५० ॥ जहातेश्च ६ । ४ । ११६ । इहास्याहलादी क्ङिति हलि सार्वधातुके । जहितः ।

क्रित् वा डित् सार्वधातुकपरे हो तो हा धातु को इ विकल्प करके होवे । जहितः वे दो त्याग करते हैं ॥ ६५० ॥

६५१ ॥ ई हल्यघो । ६ । ४ । ११ । श्नाभ्यस्तयोरात् ईत् सार्वधातुके क्ङिति हलि । जहीतः ।

पु ६५६ सन्नको से भिन्न जो अभ्यस्त सन्नक धातु उस के और श्ना, ७२४ के

॥ प्र ए ॥

॥ प्र ङि ॥

॥ प्र ष ॥

सद्-सिद्धेति षड् सन्धा करता है ॥ सिद्धीत् वे दो ॥ सिद्धियति ६१८ वे सन्धाकरते हैं ॥
 सिद्धि में । सिद्धयान्प्रकार, सिद्धाय षड् सन्धित्तु बुधा ॥

(१) { सुट् में सुट् में लोट् में षड् में वि सिद्धि में चा सिद्धि में }
 जेतु, जेत्यति, सिद्धेतु सिद्धीत् सिद्धीयात् ङीयात् ।

सुट् में पञ्जेपीत् ४६६ ४०१ ५११ षड् सन्धित्तु बुधा । सद् में पञ्जेप्यत् यदि षड् सन्धित्तु
 होवे । प पासना करणी वा पूरा करणा ॥ ६४२ ॥

६४३ ॥ अर्षिपिपत्योश्च । ७ । ४ । ७७ । अभ्यासस्य ष् स्यात् ।

इषी । पिपति ॥

इत् ६१० परे हो तो ष्ट पीर पृ घातु के षष् को ङ होवे । पिपति ६१०, ६१८
 षड् पासता है । ६४१ ॥

६४४ ॥ उदीष्टयपूर्वस्य । ७ । १ । १०२ । अङ्गावयवीष्ठयपूर्वस्य

सुत्तदन्तस्याङ्गस्य च ॥

अङ्ग वा अवयव की षोष्ठ, र्वागीय (२) वय षड् है पूर्व जिस के ऐसा ष्ट है
 अन्त में जिस के उस अङ्ग को च १४ हो ॥ ६४४ ॥

६४५ ॥ इक्षि च । ८ । २ । ७७ । रेफवान्तस्य धातोरुपधाया प्रकी

दीर्घो इक्षि । पिपूतः । पिपुरति । पपोर ॥

(रेफ) रकार वा फकार है अन्त में जिस के ऐसे घातु की उपधा के इक्ष की
 दीर्घ होवे । पिपूत ६४४ वे दो (पासते) पूरा करते हैं । पिपुरति ६१८, वे पूरा करते हैं ।
 सिद्धि में पपोर (४२ १ २, ४२१ १८६ १४) उसने पूरा किया ॥ ६४५ ॥

६४६ ॥ गृद्वर्माङ्गस्वी वा ७ । ४ । १२ । किति सिद्धि पप्रतु ।

गृ मारणा । दृ फाड़ना । प पासना । इन घातुओं को निष्करण करने इत्त्व ही
 अत्र कित् सिद्ध परे होय तत्र । (१) पप्रतु, उन दो ने पूरा किया ॥ ६४६ ॥

६४७ ॥ षट्शतस्युताम् । ७ । ४ । ११ । तीदादिकषट्शतैर्षट्धातो

षट् दन्तानां च गुणो सिद्धि । पप्रतु । पप्रतुः ॥

(१) इन के अय सन्धित्तु षड् अक्षिप्त लगा कर पूरवत् कर सेन । (२) (पृ) पृ ष
 ष् भू ष् इन पाँचों का षड्त्व होता है पीर में सम्भव ही नहीं (३) यहाँ इत्त्व कर के
 १८ वे षष् पर लेना ।

तुदादि गण की ऋच्छ्र धातु को और 'ऋ' धातु को और ऋदन्त धातुओं को गुण होवे जब लिट् परे ही तब । अतः जिस पक्ष में ६४६ से । ऋस्व न हुआ वहा इस से गुण ही परपरतुः सिद्ध हुआ पररुः, उनने पूरा किया ॥ ६४७ ॥

६४८ ॥ वृत्तो वा । ७ । २ । ३८ । वृड् वृज्भ्यामृदन्ताच्चेटो दीर्घो वा स्यान्ननु लिटि । परिता, परीता । परिष्यति, परीष्यति । पिपर्तु । अपिपः अपिपर्ताम् । अपिपरुः । पिपर््यात् । पूर्यात् । अपारीत् ।

वृड्, सेवा करणी । वृज्, स्वीकार करणा । और ऋदन्त धातु । इन से परे जो इट् ४३७ तिस को विकल्प कर के दीर्घ होवे । परन्तु यह दीर्घ लिट् में न होवे । लुट् में परिता, परीता । लृट् में परिष्यति, परीष्यति, वह पूर्ण करेगा ॥

लोट् मे पिपर्तु, वह पूरा करे । लड् में अपिपः ४५२, ४१४, १९३, १०८ उसने पूरा किया अपिपर्ताम् ६४३—६४४—६४५, उन दीनो ने पूरा किया । अपिपरुः, उन ने पूरा किया । वि० लिङ् में पिपर््यात् ६४३, ६४४, ६४५, वह पूरा करे । आशिर्लिङ् में पूर्यात् ईश्वर करे की वह पाले लुङ् में अपारीत् ५१३ उस ने पूरा किया ॥ ६४८ ॥

६४९ ॥ सिचि च परस्मैपदेषु । ७ । २ । ४० अत्र वृत् इटो न दीर्घः । अपारिण्टाम् । अपरिष्यत् । अपरीष्यत् ॥ ओहाक् त्यागे । जहाति ॥

'वृड्' 'वृज्' और ऋदन्त जो धातु इनको दीर्घ न हो परस्मैपद के सिच् परे होते । अपारिण्टाम्, उन दोने पूर्ण किया । लृड् मे अपरिष्यत्, अपरीष्यत् ६४८, यदि वह 'पालना' वा 'पूर्ण' करे । ५ । ओहाक् (हा) त्याग करणा । लट् में जहाति ६२८, ४२३, ४८२, वह त्याग करता है ॥ ६४९ ॥

६५० ॥ जहातेश्च ६ । ४ । ११६ । इहास्याहलादौ क्ङिति हलि सार्वधातुके । जहितः ।

क्रित् वा ङित् सार्वधातुक परे ही तो हा धातु को इ विकल्प करके होवे । जहितः वे दो त्याग करते हैं ॥ ६५० ॥

६५१ ॥ ई हल्यघो । ६ । ४ । ११ । श्नाभ्यस्तयोरात् ईत् सार्वधातुके क्ङिति हलि । जहीतः ।

षु ६५६ सन्नको से भिन्न जो अभ्यस्त संज्ञक धातु उस के और श्ना, ०२४ के

धाकार को इकार होवे अथ इसादि कित् वा डित् प्रत्यय परे रहे तब । अहीत (१) वे दो त्याग करते हैं ॥ ६५१ ॥

६५२ ॥ इनाभ्यस्तयोरात् ६।४।११२। शोष कृडिति सार्वभा तुक्ते । अहति । अही । हाता । हास्यति । अहात् । अहितात्, अहीतात् ।

अब कित् वा डित् सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तब इना ६२४ प्रत्यय के शीर अभ्यस्त संज्ञक धातु के धाकार (धा) का शोष होवे । अहति ६१८, ६५२ वे त्यागते हैं चिद् में अही ४२० ४२१ ४२२ ४८२, ५१० उचने त्यामा ॥

॥ बुद् में ॥

॥ छट में ॥

॥ शोद् में ॥

॥ हाता वह त्यागेगा ॥

॥ हास्यति (२) ॥

॥ अहात् वह त्याग करे ॥

अहितात् ६५ अहीतात् ६५१ ईश्वर करे चि वह त्याग करे ॥ ६५२ ॥

६५३ ॥ आ अ ही । ६।४।११०। अहातेः । चादिदौती । अहाहि, अहिहि, अहीहि । अअहात्, अअहु ॥

अब हि परे हो तब हा धातु के धाकार को धाकार होवे चकार से इकार वा इकार होवे । अहाहि । अहिहि ६५ । अहीहि ६५१ । तू त्याग कर । अह में अअहात् वह त्याग ता हुआ । अअहु, उचने त्यामा ॥ ६५३ ॥

६५४ ॥ शोपो यि । ६।४।११८। अहातेराशोपो, यादौ साध धातुक्ते । अहात् । एषिडि । ज्ञेयात् । अहासीत् । अहास्यत् ॥ ६ ॥ माड् माने शब्दे च ॥

यूँ ई यदि में जिस के ऐसा साधधातुक परे हो तब हा (शोडाष्) धातु के धा का शोष होवे । यि चिड् में 'अहात्' धामिचिड् में एषिडि से धा को पकार हुआ तो ज्ञेयात् (ईश्वर करे चि वह त्यागे) सिध हुआ । अह में अहासीत् ६२४ ४०१ ४०४ उच ने त्याग किया । अह में अहास्यत् धो वह त्याग करे । ६ । माड् (मा) मापना वा मण्ड करना ॥ ६५४ ॥

६५५ ॥ भुआमित् । ०।४।०६। भूञ् माड् शोडाष् एपामभ्या सस्येत्स्यात् इक्षौ । मिमीते । मिमाते । मिमते । ममे । माता । मास्यते मिमीताम् । अमिमीत । मिमीत । मासीष्ट । अमास्त । अमास्यत ॥ ०।

ओहाङ् गती । जिहीते । जिहाते । जिहते । जहे । हाता हास्यते । जिही-
ताम् । अजिहीत । जिहीत । हासीष्ट । अहास्त । अहास्यत ॥ ८ ।
डुभृञ् धारणपीषणयोः । विभर्ति । विभृतः । विभति । विभृते । विभ्राते ।
विभ्रते । विभराञ्चकार । वभार । वभर्थ वभृव । विभराञ्चक्रे । वभ्रे ।
भर्ता । भरिष्यति । भरिष्यते । विभर्तुं विभराणि । विभृताम् । अविभः
अविभृताम् । अविभरुः । विभृयात् । विभ्रीत । भ्रियात् । भृषीष्ट ।
अभार्षीत् । अभृत । अभरिष्यत् । अभरिष्यत । डुदाञ् दाने । ददाति ।
दत्त । ददति । दत्ते । ददाते । ददते । ददौ । ददे । दाता । दास्यति ।
दास्यते । ददातु ॥

भृञ् (भृ) पालना । माङ् (मा) मापना । ओहाङ् (हा) जाना । इन धातुओं के अभ्यास के अच् को इकार होवे, जब शप् को लु हुआ हो, लट् में = मिमीते ६५१- वह मापता है । मिमाते ६५२ वे दो मापते हैं । मिमते ६३८, ६५२ वे मापते हैं । लिट् में ममे ५४२, ४२०, ५१८ वह मापता था । लुट् में माता, वह मापेगा लृट् में, मास्यते = वह मापेगा ।

लोट् में मिमीताम् (६५१) वह मापे । लङ् में अमिमीत = उस ने मापा । वि० लिङ् में मिमीत = ६५२ वह मापे । आशीर्लिङ् में मासीष्ट = ईश्वर करे कि वह मापे । लुङ् में अमास्त ४६६ उस ने मापा । लृङ् में अमास्यत यदि वह मापे । ओहाङ् (हा) जाना = लट् में (१) जिहीते, जिहाते, जिहते = वेजाते हैं । लिट् में, जहे = वह गया । लुट् में, हाता । लृट् में हास्यते = वह जाएगा । लोट् में जिहीताम् = वह जावे । लङ् में, अजिहीत = वह गया विधि लि० में जिहीत । आ० लिङ् में हासीष्ट = वह जावे । लुङ् में अहास्त = वह गया लृङ् में अहास्यत = यदि वह जावे ।

डुभृञ् (भृ) धारणकरना वा पालना । लट् में (२) विभर्ति विभृतं विभ्रति = वे पालते हैं । आ० लट् प्र० पु० में (३) विभृते, विभ्राते, विभ्रते = वे पालते हैं ।

लिट् प्र० पु० एक वचन में ६४० से आम् विकल्प हुआ = विभराञ्चकार, वभार ५०२ और १८६ से वृद्धि हुई । उस ने पाला । वभर्थ = तू ने पाला । वभृव = हम देने पाला ।

(१) यहा ६३७, ६३८, ६५५, ४८२, ६५१, वह कार्य कर लेने वह जाता है ।

(२) यहा ६५५, से अभ्यास को इकार और अभ्यासेचर्च से अभ्यास के भृ को व कर लेना और प्र० पु० बहु वचन में ६३८ से भि के भृ को अत् और इकोयणचि से यण कर लेना । और वह पालता है इत्यादि इन के अर्थ जानने ।

धात्म प्र पु एक वचन में विभक्त्यन्तरे वस्त्रे १४२ छस ने पाळा । शुद्ध में मर्त्ता
 लट् में मरिष्यति १२६ वा मरिष्यते - वह पासेगा । लोट् में विभर्त्तु । विभरति में पाळू ।
 या लोट् में विभृताम् । लृट् में अभिम ४१४ से गुण - १८३ से त् का शोप और १ ८ से
 र की विभर्त्ता हुई - वह पाळता हुआ । अभिभृताम् - छन होने पाळा । अभिमह - यहाँ
 ४०१ से 'वुस और ६४१ गुण हुआ । छनने पाळा । (विभृयात् (१) वा विन्वीत) आधिप
 में लिङ् यथा म्रियात् १०४ वा मुषोष् - ईरवर करे कि वह पासे । शुद्ध में अमार्षीत्
 ११३ वा (२) अमृत - छसने पाळा । लृट् में अमरिष्यत् वा अमरिष्यत - यदि वह पासे ।

शुद्धम् (वा) - देना । लट् में ददाति ६३८ । ४२३ वह देता है । दा' यहाँ ६३२ से
 या का शोप और अरिच से द् की त् कर लेना । (ददति ६३८, ६५२) - वे देते हैं । या
 लट् में दत्ते ददाते ददते । लिट् में ददौ ५१० वा ददे ५१८ ५४२ छसने दिया । शुद्ध में दाता
 लृट् में दास्यते - वह देगा । लोट् में ददातु - वह देगा ॥ ६५५ ॥

६५६ ॥ दाधाष्वदाप् । १ । १ । २० । दाकृपाधाकृपाश्च धातवी
 घुसंघ्रा स्युर्दापृद्वैपौ विना । ध्वसोरित्येत्थम् । देहि । दत्तम् । अददात् ।
 अदत्त । दद्यात् । ददीत् । देयात् । दासीष्ट्य अदात् । अदाताम् । अदुः ।

(दाप) काटना और दैप् - मोहन करना इन से विना (१) वा से रूप और वा से रूप
 पासे वातु घु संघ्रा पासे ही । घु संघ्रा पासे से परे कम हि हो तो ६ ८ से एकार और
 अन्व्यास या शोप भी होता है तो देहि - तू दे । दत्तम् - तुम दो देवो । लृट् में अददात्
 'वा' अदत्त ६३२ वह देता हुआ । विधि लिङ् में दद्यात् वा ददीत् १४८-६५२ वह देवे ।
 या लिङ् में देयात् ५१८ वा दासीष्ट - ईरवर करे कि वह देवे । शुद्ध में अदात् ४६०
 लृट् ने दिया । अदाताम् - छन होने दिया अदु' । (५२०-५२१) ॥ छन में दिया ॥

६५७ ॥ स्थाष्वोरिश्च १ । २ । १० । अमयीरिदन्तादेश सिञ्च
 किदात्मनेपदे । अदित । अदास्यत्, अदास्यत । १ शुधाञ् धारश्चपी
 पञ्चयो । दधाति ॥

धात्मनेपद में स्वा और घु संघ्रको से अन्वयवर्ष को इकार होने और सिप् कित्
 होने । अदित - छसने दिया । लृट् में अदास्यत् वा अदास्यत यदि वह देवे । १ । शुधाञ्
 (वा) - धारश्चरणा वा पोषश्च करणा । दधाति - वह धारश्च करता है ॥

६५८ ॥ दधस्तथीश्च । ८ । २ । ३८ । विरक्तस्य भ्रपन्तस्य धाञी

(१)विधि लिङ् में वह पासे । (२)रत्नकी सिद्धि म्नादिगण में या चुकी है । (३)दा - देना ।
 दी - अण्वन करना । दे - प्रत्ययन करना । धा - धारश्च करना । धे - पीना ।

वशी भष् तथोः स्ध्वीश्च परतः । धत्तः । दधति । दधासि । धत्थ. ।
धत्ते । दधाते । दधते । धत्से । धद्ध्वे । ध्वसोरेद्भावभ्यामलोपश्च । धेहि
अदधात् । अधत्त । दध्यात् । दधीत् । धेयात् । धासीष्ट । अधात् ।
अधित । अधास्यत् । अधास्यत । ११ णिजिर् शीचपोषणयोः ॥

द्वित्व किया गया भष् प्रत्याहारान्त जो धा धातु तिस के वश् को भष् हीय जब
त्, थ्, स्, ध्व् इन में से कोई परे रहे तब । धत्तः ६५२ से आलोप् और खरिच से त्
हुष्वा = वे दो धारण करते हैं । दधति = वे धारण करते हैं । दधासि = तू धारण करता है ।
धत्थ. = तुम धारण करते हो ॥

॥ आत्मनेपद में लट् ॥

धत्ते = वह धारण करता है । दधाते = वे दो धारण करते हैं । दधते = वे धारण
करते हैं । धत्से = तू धारण करता है । धद्ध्वे । तुमधारण करते हो । ६०८ एकार
और अभ्यास का लोप हुआ । धेहि = तू धारण करता है । लट् (१) में अदधात् "वा"
अधत्त उस ने धारण किया । वि० लि० में दध्यात् "वा" दधीत् = वह धारण करे । आ०
लि० में धेयात् "वा" धासीष्ट, ईश्वर करे कि वह धारण करे । लृट् में अधात् वा
अधित = उस ने धारण किया । लृट् में अधास्यत् वा अधास्यत यदिवह धारण करे ।
११ णिजिर् (णिज्) शुद्ध करना वा पोषण करना ॥

६५६ इर इत्सञ्ज्ञा वाच्या ॥

इर् की इत्सञ्ज्ञा कहनी चाहिये ॥

६६० ॥ निजां त्रयाणां गुणः श्लौ । ७ । ४ । ७५ । निजविजविषा-
मभ्यासस्य गुणः श्लौ । नेनेक्ति । नेनिक्तः । नेनिजति । नेनिक्ते । निनेज
निनिजे । नेक्ता । नेक्ष्यति । नेक्ष्यते । नेनेक्तु । नेनिग्धि ॥

श्लु की विषयता में १ णिज् = शुद्ध करना । २ विज् = भिन्न करना । ३ विष् =
व्याप्त होना । इन तीन धातुओं के अभ्यास को गुण हीवे । नेनेक्ति ४७६-३२८ = वह
शुद्ध करता है । नेनिक्तः = वे दो शुद्ध करते हैं । नेनिजति = वे शुद्ध करते हैं । नेनिक्ते = वह
शुद्ध करता है । लिट् में निनेज वा निनिजे = वह शुद्ध करता हुआ । लृट् में नेक्ता, लृट् में
नेक्ष्यति, नेक्ष्यते = वह शुद्ध करेगा । लोट् में नेनेक्तु ६६०-४७६-३२८ वह शुद्ध करे । नेनिग्धि
५८७-३२८ तू शुद्ध कर ॥ ६६० ॥

(१) इन में दा के तुल्य सूत्र लगाने ।

६६१ ॥ नाभ्यस्तस्याधि पिति सार्वधातुको ७ । ६ । ८० । लघूप-
धगुणो न । नेमिजानि । नेमिक्ताम् । अनेनेक् । अनेमिक्ताम् । अनेमिजु ।
अनेमिजम् । अनेमिक्त । नेमिज्यात् । नेमिजीत् । मिज्यात् । मिज्जीष्ट ॥

आजादि पित् सार्वधातुष परे हो तो अम्यरत संज्ञावासे धातु की उपधा के लघु की
गुण न हो । नेमिजानि में मुह कर्त् । नेमिक्ताम् १४६ वह मुह करे । लङ् में अनेनेक् ।
अनेमिक्ताम् अनेमिजु = अने ने घोषा । अनेमिजम् = में ने मुह किया । आ सिङ् में
अनेमिक्त = अनेने मुहकिया वि सि नेमिज्यात् "वा" नेमिजीत् । आ सि में मिज्यात्
"वा" मिज्जीष्ट = ११२-१२ और ३११ से गुण निषेध = ईश्वर करे वि वह मुह करे ६६१ ॥

६६२ ॥ वृरिती वा । ६ । १ । ५० । वृरितीधातोश्चैरङ् वा पर-
स्मैपदेषु । अमिजत् । अमैजीत् । अमिक्त । अनेह्यत्, अनेह्यत् ॥

॥ वृति जुहोत्यादय ॥

जिस धातु का इत् इत् ६१८ से हो उस की षित् को अङ् हो परस्मैपद में ।
मुह में अमिजत् अमैजीत् "वा" अमिक्त १ ० = अने ने मुह किया । लङ् में अनेह्यत्
= "वा" अनेह्यत् = यदि वह मुह करे ।

॥ इति जुहोत्यादि गण समाप्त हुआ ॥

॥ अथ दिवादयः ॥

(१) दिवु क्रीडाविक्रिणीषाध्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमद्स्वप्नकाञ्चित्गतिषु
१ दिवु टिप् = खेलना जीतने की रक्षा करणी ध्यापार करणा प्रकाश स्तुति-
करणा इर्वरणा उन्मत्त होना । होना इच्छाकरना पहना ।

६६३ ॥ दिवादिभ्य इयन् ६ । १ । ६८ । शयोऽपषाद्ः । इक्षिचेति
दौच । दौष्यति । दिदेव । देविता । देविष्यति । दौष्यत् । अदौष्यत् ।
दौष्येत् । दौष्यात् । अदेवीत् । अदेविष्यत् । एवं २ धिवु सन्तुसन्ताने ।
६ मृती गात्रविक्षेपे । मृत्यति । नमत् । मसिता ।

दिनादि धातुषो से इयन् हो, यह गप् का ३११ का अपवाद है । ६४४ से उपधा की

दीर्घ हुआ । दीव्यति = वह क्रीडा करता है । लिट् में दिदेव ४०८ = उस ने क्रीडा की लुट् में, देविता । लृट्, मे देविष्यति = वह क्रीडा करेगा । लोट् से दीव्यतु ६४५ वह क्रीडा करे । लङ् में अदीव्यत् ६४५-४५१-४५२ उस ने क्रीडा की । वि० लिङ् में दीव्येत्-आ० लि० में दीव्यात् = ईश्वर करे कि, वह क्रीडा करे । लुङ् में ४०३-४०४ अदेयीत्, उत्तने क्रीडा करी । लृट् में, अदेविष्यत् = यदि वह क्रीडा करे, इसी रीति से २ पिवु (पिव्) = सीवना — धातु के रूप साधलेने । ३ नृती (नृत्) = नाचना । लट् में नृत्यति, वह नाचता है । लिट् में ननर्त् ५०२, ४०८ वह नाचताया । लुट् में, नर्त्तिता = वह नाचेगा ।

६६४ ॥ से ऽसिचि कृतचृतच्छृदृत्तृदनृतः । ७ । २५७ । एभ्यः लिङ्-भिन्नस्य सादेरार्धधातुकस्येड्वा । नर्त्तिष्यति । नत्स्यति । नृत्यतु । अनृत्यत् । नृत्येत् । नृत्यात् । अनर्त्तीत् । अनर्त्तिष्यत् । अनत्स्यत् । ४ चसी उद्देशे । वा भाशेतिश्यन् वा । चस्यति । चसति । तत्रास ॥

कृत् = काटना । चृत् = मारना । छृट् = चमकना । तृट् = मारना वा अगादर करना । नृत् = नाचना । इन धातुओं से परे सिच् को ङोड़ सकारादि आर्धधातुक प्रत्यय ही लोटे-उभे इट् विकल्प करके होंगे । लृट् में, नर्त्तिष्यति 'था' नत्स्यति = वह नाचेगा । (१) लोट् में नृत्यतु । लङ् में, अनृत्यत् । वि० लि० में नृत्येत् । आशीर्लिङ् में नृत्यात् । लुङ् में अनर्त्तीत् ४०३-४०४ । लृट् में अनर्त्तिष्यत् 'वा' अनत्स्यत् । चसी (चस्) घवराना 'वा' डरना । ५१४ से इड् धातु की श्यन् का विकल्प हुआ । लट् में चस्यति 'वा' चसति ४१२ = वह डरता है । लिट् में, तत्रास = ४८३ वह डरा ।

६६५ ॥ वा जृभमुत्रसाम् । ६ । ४ । १२४ । एषां किति लिटि सेटि थलि च एत्वाभ्यासलोपौ वा । त्रसतु । तत्रसतु । त्रसिथ । त्रसिता । ५ । शो तनुकरणे ॥

जृ = पुराणा होना । भ्रसु = फिरणा । चस् = डरना । इन धातुओं के अकार को एकार विकल्प करके होंगे जब कित्, लिट् वा इट् युक्त थल् परे ही तब । त्रसतु 'था' तत्रसत, वेदो डरते थे । त्रसिथ 'था' तत्रसिथ = तू डरता था । त्रसिता = वह डरेगा । ५ शो = पतला करना ।

६६६ ॥ श्रोतः श्यनि । ७ । ३ । ७१ । लोपः स्यात् श्यनि । श्यति । श्यत । श्यन्ति । श्यौ । श्यतु । श्यु । श्याता । श्यास्यति ॥

(१) यद्वा से लृङ् पर्यंत ये सभी प्रथम पुरुष की एका वचन की रूप जान लेने ।

भीकार का लोप होवे जब इयन् परे रहे तब । कट् में—(१)इयति इयत्, इयन्ति ।
 सिद् में (२) यमी इ२२, इ१० । ययत् ३१८ । ययु । कट् में-याता इ२२ । कट् में यायति
 —वह पतला करेगा ।

६६० ॥ विभाषा प्राघेष्वाच्छासः २ । ४ । ७८ । एभ्य सिचोऽनुवा
 परस्मैपदेषु । अशात् । अशाताम् । अशुः ॥

भा—सूचना । भेद—पीना । शा— शो—पतला करणा । शो—काटना । शौर
 शा—यो—नाम करणा । इन बातुंहीं से परे शो सिच् तिस का विकल्प करके सुच् होवे ।
 सुच् में अशात्—उस ने पतला किया । अशाताम्—उस यो ने पतला किया । अशु ३२२
 ३२० उन ने पतला किया ।

६६८ ॥ यमरसनमातां सक् च । ७ । २ । ७३ । एषां सक् एभ्य
 सिच इट परस्मैपदेषु । इट्सकी । अशासीत् । अशासिष्टाम् । ६ ।
 शी छेदने । इषति । ७ । शी अन्तकमसि । स्यति । ससी । ८ । शी अष
 खण्डने । शति । द्दौ । देयात् । अदात् । ९ । उभघ ताडने ।

यम्—निहत होना । रम्—क्रीडा करनी । अम्—नमस्कार करनी । इन बातुंहीं
 को शौर आकारान्त बातुंहीं को सक् का आगम होवे शौर इन से परे शो सिच् तिस को
 इट होवे । परस्मैपद में अशासीत्—उस ने पतला किया । अशासिष्टाम्—उस कोने
 पतला किया । ६ शो—काटना । कट में इषति ६६६—वह काटता है । ७ । यो—नाम-
 करणा । कट में स्यति—(२०३) (६६६) वह नाम करता है । सिद् में ससी ३२२ ३२
 उस ने नाम दिया ८ शो—काटना—शति (६६६)—वह काटता है । सिद् में द्दौ—उस
 ने काटा । आशीच्छिञ् में देयात्—(३२८) ईश्वर करे कि वह काटे । सुच् में अदात् (६६७)
 उस ने काटा । ९ अघघ—ताडन करना ।

६६९ ॥ अहिष्यामधिष्यधिषष्टिविषतिष्वरचतिपृच्छतिभूषतीनां
 ङिति च ६ । १ । १६ । एषां संप्रसारणं स्यात् किति ङिति च । विष्यति
 विष्याध । विविधत् । विविधुः । विष्यधिय । विष्यस्य । वहा । ध्यत्स्यति
 विष्येत् । विष्यात् । अष्यात्सीत् । १ । पुष पुष्ठी । पुष्यति । पुषोप ।

(१) यहां से तीनां कट् ने प्रथम पुष्य ने रूप है, (२) यहां से तीन रूप सिट् ने
 प्रथम पुष्य ने है ।

पुपोषिथ । पीष्टा । पीक्ष्यति । पुषादीत्यङ् । अपुषत् । ११ । शुष शोषणे
शुष्यति । शुशीष । अशुषत् १२ यश् अदर्शने । नश्यति । ननाश । नेशतुः ॥

ग्रह् = लेना । ज्या = बूढा होना । वय् = बुनना । व्यध् = ताडन करना । वश् =

इच्छाकरणी । व्यच् = ठगना । व्रश्च = काटना । प्रच्छ = पकना । भ्रज् = भुनना । इन
धातुओं को कित् वा डित् प्रत्यय परे रहे, तो सम्प्रसारण होवे । ५२८ से प्रयन् भी डित्
है तो व्यध की सम्प्रसारण हुआ । लट् में = विध्यति = वह विन्हता है । लिट् में विव्याध
५७७ उस ने ताडन किया । विविधतुः = उन दो ने ताडन किया । विव्यधिथ 'वा' विव्यह
५१७-५८० तूने ताडन किया । लुट् में व्यह्या ५८० । लृट् में व्यत्स्यति = वह ताडन करेगा
वि० लिङ् में विध्येत्, आशिष् में विध्यात्, ईश्वर करे कि वह ताडन करे । लुङ् में अव्या-
त्सीत् । ४७३, ४८३ उस ने ताडन किया, १० पुप् = पुष्ट करणा । लट् में पुष्यति = वह
पुष्ट करता है । लिट् में पुपोष ४७८ = उस ने पुष्ट किया । पुपोषिथ = तूने पुष्ट किया ।
लुट् में पीष्टा । लृट् में पीक्ष्यति । ५७८ वह पुष्ट करेगा ।

लुङ् में ५३६ से इस धातु की च्लि वा अङ् हुआ, अपुषत् उस ने पुष्ट किया ।
११ शुष् = सूखना । लट् में शुष्यति = वह सूखता है । लिट् में, शुशीष ४६८ वह सूख्या
१२ । (१) यश् = नष्ट होना । लट् में नश्यति = वह नष्ट होता है । लिट् में ननाश =
४८३ वह नष्ट हुआ था । नेशतुः ४७८ वे दो नष्ट हुए थे ।

६७० ॥ रधादिभ्यश्च । ७ । २ । ४५ । बलाद्यार्धधातुकस्य वेट् ।

नेशिय ॥

रध् = आदि धातुओं से परे आर्धधातुक यदि बलादि होतो उसे इट् विकल्प
करके होवे । नेशिय (४८८) = तू नष्ट हुआ ।

६७१ ॥ मस्जिनशीर्कलि । ७ । १ । ६० । नुम् । ननंठ । नेशिव ।
नेश्व । नेशिम । नेशम । नशिता । नंठ्ठा । नशिष्यति । नक्ष्यति । नश्यतु
अनश्यत् । नश्येत् । नश्यात् । अनशत् । १३ । षूङ् प्राणिप्रसवे । सूयते
सुषुवे । क्रादिनियमादिट् । सुषुविषे । सुषुविवहे । सुषुविमहे । सोता ।
सविता । १४ । दूङ् परितापे । दूयते । १५ । दीङ् क्षये । दीयते ॥

मस्ज् = सूचना । नश् इन दोनों को भल् परे होतो नुम् का आगम होवे तो ६७० को
पक्षांतर में ननठ ३२८ से ष् और ७५ से ट् हुआ वह नष्ट हुआ था । नेशिव ४८८ वा

(१) यहाँ ण् को न् ४८६ से प्रथम ही करलेना ।

नेत्रवदम दो नष्ट हुए थे । नेत्रिस ३० ४८८ वा नेत्रम इम नष्ट रूप छि । मुद् में नविता वा नष्टा सृष्ट में नविष्यति वा नश्यति ३२८-३०८ वह नष्ट होगा । षोड में नश्यतु । षड् में चनश्यत । विषि विड में नश्येत् । षा विड में नश्यात् हे ईश्वर षण नष्ट होवे । सुड् में चनश्यात् ३३६ वह नष्ट हुआ । ११ पूड (पू) - प्राचि को उत्पन्न करेगा । सट् में मूयते - वह उत्पन्न करता है । सिट् में सुपुवे २१४ उस ने उत्पन्न किया था । षादि नियम से इष को इट हुआ तो सपुविषे - तू ने उत्पन्न किया था । सुपुविषे - हम होने उत्पन्न किया था । सुपुविमहे - हमने उत्पन्न किया था । सुट् में सविता वा १ १ षोता - य उत्पन्न करेगा । १४ । दुड् (दू) - दू फी होगा । सट् में - दूयते वह दु फी होगा है । १५ । दोड (दो) - दय होगा । सट् में - दौयते - वह दौय होता है ।

६०२ ॥ दीङोयुठचि क्छिति । ६ । ४ । ६३ । दीङ परस्याआदेः क्छिदाधधातुस्य युट् ॥

अमादि चित् वा चित् पाचपातुष परे को तो दीङ् भातु को युट् का पागम् होवे ।

६०३ ॥ वा । सुग्युटावुषड्यषी सिधौ पक्ष्ण्यौ । दिदीये ॥

उषड् वा यष् करना हो, तो सुगुं पोर युट् सिङ् कइने पादि (१) दिदीये - वह धीप हुआ ॥

६०४ ॥ मीनातिमिमोतिदौङी ष्यपि च । ६ । १ । ५ । एषामात्वं स्यपि । चादगित्ये ज्निमित्ते । षाता । षास्यते । अदास्त । १६ । ङीङ् त्रिहायसागती । ङीयते । ङिङेय । ङयिता । १७ । पीङ् यामे । पीयते । पेता । अपेष्ट । १८ । माङ् मामे । मायते । ममे । १९ । यनी प्रादुशवि ।

मीम् - भिगा करनी । युमङ् - जेजना । पोर दीङ् इन भातुषी को (०) न्यप् परे षीनो पाकार होन । अकार य गित् इति कोर यष् करने का निमित्त परे होतो । षट् में दाता षट् में नायते - वह चीन होगा । मुट् में अदागत वह चीन हुआ । १६ ङीङ् (ङी) - ङयता । षट् में ङीयते - वह टइता है । ङिट् में ङिङेय - वह उडाया । षट् में ङयिता - वह उटता १७ ङीङ् (वी) पीना षट् में पीयते - वह पीता है । मुट् में १ ४ से इट् का निषेध है । पेता - वह पीयेगा । णट् में षं षट् - बनने दिया । १८ । माङ् (मा) - मायता । षट् में मायते - वह मायता है । तिङ् में मन - इषने माया १९ यनी (यन) - यजत होना ।

(१) यह! अतिवचनभात् ५८९ से मुद् अदिह होता तो यष् बीजात् परन्तु ६०१ व तिस र्थे तू सिङ् हे इष निषे यष् नही हुआ (१) ६३६ से ज मा ।

६७५ ॥ ज्ञाजनीर्जा । ७ । ३ । ७६ । श्रिति । जायते । जज्ञे । जनिता

जनिष्यते ॥

'ज्ञा' जानना । और जन् इन धातुओं की श्रित् प्रत्यय परे होते 'जा' होवे । लट् में जायते = वह प्रगट होता है । लिट् में (४२०, ५३४, ७३) जज्ञे = वह प्रगट हुआ था । लुट् में, जनिता । लृट् में, जनिष्यते = वह प्रगट होगी ।

६७६ ॥ दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम् ३ । १ । ६१

एभ्यश्चेशिचण् वा एकावचनेतश्चट्टे परे ॥

दीप = चमकना । जन् = उत्पन्न होना । बुध् = जानना । पू = भरण । ताप् = फैलाना । प्याय् = वृद्धि इन धातुओं से परे जो च्लि तिसे चिण् विकारप करके होवे जब एकावचन का त प्रत्यय परे होती ॥

६७७ ॥ चिणोलुक् । ६ । ४ । १०४ । चिण् परस्य लुक् ॥

चिण् ६७६ से परे जो प्रत्यय तिस को लुक् होवे ।

६७८ ॥ जनिवधयोश्च । ७ । ३ । ३५ अनयोर्न वृद्धिशिचणि ङिणति क्वति च । अजनि । अजनिष्ट । २० । दीपी दीप्तौ । दीप्यते । दिदीपे । अदीपि । अदीपिष्ट । २१ । पट गतौ । पद्यते । पेदे । पत्ता । पत्सीष्ट ॥

जन् = प्रगट होना । और वध = मारना । इन को वृद्धि न होवे, जब चिण् अथवा श्रित् वा श्रित्, क्वत् प्रत्यय परे हो, तब लुङ् में, अजनि वा अजनिष्ट = वह प्रगट हुआ । २० । दीप् = दीप्ति । लट् में दीप्यते = वह चमकता है । लिट् में = दिदीपे = वह चमका । लुङ् में, अदीपि ६७६ वा अदीपिष्ट = वह चमका । २१ पट (जाना) लट् में पद्यते वह जाता है । लिट् में = पेदे ४८८ वह गया । लुट् में, पत्ता = वह जावेगा । आशिष् लि० में पत्सीष्ट = हे ईश्वर वह जावे ।

६७९ ॥ चिण् ते पटः । ३ । १ । ६० । पटश्च्लेशिचण् ते परे । २२ । विदसत्तायाम् । विद्यते । वेत्ता । अवित्त । २३ । बुध अवगमने । बुध्यते । वीद्वा । भोत्स्यते । भुत्सीष्ट । अवोधि । अवुद्ध । अभुत्साताम् । २४ । युध संप्रहारे । युध्यते । युयुधे । योद्वा । अयुद्ध । २५ । सृज विसर्गे । सृज्यते । ससृजे । ससृजिषे ॥

एक वचन के 'त' परे होने पर पट् धातु की च्लि को चिण् होवे । लुङ् में अपादि ६७७ = वह गया । अपत्साताम् = वे दी गये । अपत्सत = वे गये २२ । विद् = होना ।

सट् मं 'विद्यते । सुट् में वेत्ता । सुट् में चरित्त-वह वा । २१ सुट्-जागता । सट् में, युध्यते । सुट् में घोडा इत् = वह समभेगा । कृट् में मोत्स्यते २०१ ८० वह जानेगा । पा सि में मुत्सीष्ट-हे इत्पर वह जाने । सुट् में चमोषि (६०६ ६००) वा चमुष । ६२० वह समभता हुआ । अमुत्सताम्-उत्त दोने समभता । २४ युट्-सहाइ करनी । सट् मं युध्यते-वह बढ़ता है । सिट् में युयुजे-वह सहाया । सुट् में घोडा इत् वह सहेगा । सुट् में चयुह-वह सहा २१ । सुट्-त्यागता । सट् में चय्यते-वह त्यागता है । सिट् में चमृजे-उत्त ने त्यागा । सचक्रिये-तू ने त्याग किया था ।

६८० ॥ सुनिहृगोक्तस्यमकिति । ६ । १ । ५८ । अमयीरम् मलादा
वकिति । स्रष्टा । स्रष्टयते । सुष्टीष्ट । असृष्ट । असृष्टाताम् । २६ । मृप
तितिधायाम् । मृप्यति । मृप्यते । ममप । ममपिथ । ममृषिये मपि
तासि । मपितासे । मपिप्यति । मपिप्यते । २७ चह बन्धने । नहति ।
नहते । ननाह । नमव । नेहिय । नेहे । नहा । नहस्यति । अनाहसीत् ।
अनह ॥

॥ इति दिवाद्यः ॥

सुट्-सोडना । इत्-देखना । इन धातुओं को अम् धातुम जोड़े जब अकारि
पौर कित् रहित प्रत्यय परे जोड़ तब । सुट् में स्रष्टा १२८ कृट् में स्रष्टयते १२८ १०८ वह
त्यागेगा । पा सिट् में मसृष्ट-हे इत्पर वह सोडे । सुट् में असृष्ट १ ०-वह त्यागता
हुआ । असृष्टाताम्-उत्त दोने त्याग किया । २६ सृप (सृप्) सहायता । सट् में सृप्यति
वा सृप्यते वह सहायता है । सिट् में ममप ४०८ उत्तने सहा । ममपिथ 'वा ममृषिये
तू ने सहा । सुट् म प मे (मपितासि मपितासे) तू सहायेगा । सट् में मपिप्यति 'वा'
मपिप्यते-वह सहेगा । २७ चह (चह्) बन्धना । सट् म प नहति नहते ४८६ ।
सिट् म ननाह-उत्तने सहा । (१) नमव 'वा नेहिय वा सिट् म प नेहे । सुट् में
नहा । सट् में नहस्यति वह सहेगा । सुट् में अनाहसीत् (वा) अनह-वह सहायता हुआ ।

॥ दिवादिगण समाप्तमया ॥

॥ स्वादयः ॥

१ ॥ षुञ् अभिषवे ॥

६८१ ॥ स्वादिभ्यः श्नु । ३ । १ । ७३ । शपोऽपवादः । सुनोति ।

सुनुत । हुश्नुवोरिति यण् । सुन्वन्ति । सुन्वः । सुनुवः । सुनुते । सुन्वाते ।
सुन्वते । सुन्वहे । सुनुवहे । सुषाव । सुषुवे । सीता । सुनु । सुनुवानि ।
सुनवै । सुनुयात् । सूयात् ॥

१ । षुञ् (सु) स्नान करणा, सीमलता की कुटना । और मद्य बनाना । सु आदि
धातुओं से परे श्नु होवे यह शप् का अपवाद है । लट् में सुनोति = वह स्नान करता है ।
सुनुतः वे दी स्ना० । सुन्वन्ति = वे स्ना०, यहा ५३० से यण् कर लेना । सुन्वः, सुनुवः,
५३१ हम दो स्ना० । आ० लट् में प्र० ए० सुनुते द्वि० सुन्वाते । वह ७० सुन्वते = वे स्ना० ।
सुन्वहे, सुनुवहे ५३१ । लिट् में 'सुषाव' 'वा' सुषुवे वह स्नान करता था । लुट् में सीता
वह सीम की पीडेगा । लोट् मध्य० ए० में सुनु ५३२ । ली० उत्त० सुनुवानि 'वा' सुनवै में
नहाउ । वि० लिङ् में सुनुयात् । आ० लि० में सूयात् ५१२ हे ईश्वर वह नह लाए ॥

६८२ ॥ स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु । ७ । २ । ७२ । एभ्यः सिच इट्

असावीत् । असोष्ट । २ । चिञ् चयने । चिनोति । चिनुते ॥

स्तु = स्तुति करणा । सु = स्नान० । धूञ् कामपना । इन धातुओं से सिच् की इट्
षागम होय जब परस्मैपद प्रत्यय परे रहे । असावीत् 'या' असोष्ट = वह स्नान० ।
२ । चिञ् (चि) इकशा करणा । लट् में चिनोति 'वा' चिनुते = वह इकशा करता है ॥

६८३ विभाषा चैः । ७ । ३ । ५८ । अभ्यासाच्चेः कुत्वं वा सनि
लिटि च । चिकाय । चिचाय । चिके । चिच्ये । अचैषीत् । अचेष्ट । ३
स्तृञ् आच्छादने । स्तृणोति । स्तृणुते ॥

अभ्वास से परे जो चि तिसके च् के स्थान में (१) कुत्वं विकल्प करके होवे जब
सन् 'वा' लिट् परे होवे तब । चिकाय 'वा' चिचाय । आत्म० में चिके 'वा' चिच्ये उस
ने एगुडा किया । लुङ् में अचैषीत् 'वा' अचेष्ट । ३ । स्तृञ् (स्तृ) ढकना । लट् में स्तृणोति
'वा' स्तृणुते वह ढकता है ॥

६८४ ॥ शर्पूर्वाः खयः ७ । ४ । ६१ । अभ्यासस्य शर्पूर्वा खयः शिष्यन्ते

(१) कवर्म (क् ष् ग् घ् ङ्)

ऽन्ये । इलोऽप्यन्ते । तस्तार तस्तरत् । तस्तरे । गुयोऽतीतिगुः । स्तर्यात् ।

यद् ईं पूर्वं विष को पेया को भन्यास का छय मो बचे पीर हर्षो या खोप होवे ।
तस्तार १८६ - उचने ठका । तस्तरत् १२१ उचने ठका । तस्तरे - उचने ठका । पा०
सिद्ध में स्तर्यात् १२० - धरवर करे कि यह ठके ॥

६८५ ॥ षट्तरश्च सयोगादेः । ७ । २ । ४३ । षट्दन्तात्सयोगादे
खिष्त्सिचीरिठवा । स्तरिपीष्ट । स्तृपीष्ट अस्तरिष्ट । अस्तृत । ४ ।
धूञ् काम्पने । धूनीति धूमते । दुधाव । स्वरतीति । वेट् । दुधविध । दुधीय ।

विष घातु को अन्त में ष हो पीर आदि में मंगीम ही उच से परे को सिद्ध पीर
धिष् तिग की इट का आगम हो विकल्प करके । स्तरिपीष्ट स्तृपीष्ट हे धरवर यह ठ के
मुट् में अस्तरिष्ट, अस्तत १०५ - १०६ उचने ठका । ४ । धू - काम्पना षट् में धूनीति
धूमते - यह कापता है । सिद्ध में दुधाव यह काम्पना या । १ १ से इट विकल्प हुआ तो
दुधविध दुधीय - तृणापा या ॥

६८६ ॥ श्रुक् किति ७ । २ । ११ । श्रिञ् एकाच उगन्तात्च
गित्कितोरिट् न घृति प्राप्ते । झार्दिनियमान्नित्यमिट् । दुधुवे ।
अधावीत् । अधविष्ट । अधीष्ट । अधविष्यत् । अधीष्यत् । अधविष्य
ताम् अधीष्यताम् । अधविष्यत । अधीष्यत ॥ घृति स्वादयः ॥

त्रि घातु या उक्त प्रत्याहारान्त एवाप् घातु से परे अत्र मित् वा कित् प्रत्यय हो
तत्र उच को इट का आगम न होवे । इस से इट कामिषेय पाया तो १ ८ के अनुसार नित्य
की इट हुआ तब दुधुविज हम से कापे । दुधुवे - यह कापा । मुट् में अधावीत् ६८२ पीर
अधविष्ट १ १ अधीष्ट यह कापा । झूट् में अधविष्यत् अधीष्यत् १ १ या अधविष्यत्
अधीष्यत - यदि यह कापे ॥ स्वादिष्य समाप्त हुआ ॥

६८७ ॥ तुदादयः ॥

१ ॥ तुदम्पने ॥

६८७ ॥ तुदादिभ्य ष । १ । १ । ७७ । यपोऽपवाद । तुदति ।
तुदते । तुतोदा । तुतोदिय । तुतुदे । तोता । अतोत्सीत् अतुत् । २ । मुट्
प्रेरणे । मुदति मुदते नुमीद् । नीता । ३ । मस्थ पाके । यच्चिष्येति संप्र
सारणम् । सस्य ष्चुत्वेन षः । यस्यञ्च ष्चुत्वेन चः । मृञ्जति मृञ्जते ॥

उभये । इक्षीक्षुष्यन्ते । तस्तार तस्तरत् । तस्तरे । गुषीऽतीतिगुषः । स्तर्यात् ।

यद् हे पूर्व्वं लिख्ये के ऐसा जो धम्यास का ख्यु हो बचे और इक्षी का खीप होवे । तस्तार १८६ - उसने ठका । तस्तरत् ४२६ उन दोमें ठका । तरतरे - उसने ठका । आ लिट् में स्तर्यात् ३२० - इतर करे लि वह ठके ॥

६८५ ॥ षट्तरच सयोगादे । ७ । २ । ४३ । षट्दन्तात्सधीगादे
लिङ्सिधोरिङ्गा । स्तरिपीष्ट । स्तृपीष्ट अस्तरिष्ट । अस्तृत । ४ ।
धूष् कम्पने । धूनोति धूनते । दुधाष । स्वरतीति । वेट् । दुधविद्य । दुधीय ।

लिख्ये चातु के अन्त में षट् ही और चादि में मयोग हो कम से परे जो लिङ् और सिष् तिन जो इट् का भागम हो लिख्ये करके । स्तरिपीष्ट स्तृपीष्ट हे इतर वह ठ के मुट् में अस्तरिष्ट, अस्तृत ३०५-३०६ उस ने ठका । ४ । धू - कम्पना षट् में धूनोति धूनते - वह कांपता है । लिङ् में दुधाष वह धाम्या था । ३ । से इट् लिख्ये दुधा तो दुधविद्य दुधीय - तूकाया था ॥

६८६ ॥ श्रुक् किति ७ । २ । ११ । श्रिञ् एकाच उगन्ताच्च
गित्कितोरिट् न घृति प्राप्ते । क्लादिनियमाग्निस्थमिट् । दुधुवे ।
अधावीत् । अधविष्ट । अधोष्ट । अधविष्यत् । अधोष्यत् । अधविष्य-
ताम् अधोष्यताम् । अधविष्यत । अधोष्यत ॥ घृति स्वादयः ॥

यि चातु या उक् प्रत्याहारान्त एकाच् चातु से परे अब मित वा कित् प्रत्यय हो तब उस जो इट् का भागम ग जावे । इस से इट् का निषेध पाया तो ३ ८ के अनुसार लिख्ये ही इट् दुधा तब दुधुविद्य कम से कवि । दुधुवे - वह काया । मुट् में अधावीत् ६८६ और अधविष्ट ३ । अधोष्ट वह काया । मुट् में अधविष्यत् अधोष्यत् ५ । या अधविष्यत् अधोष्यत - यदि वह कवि ॥ स्वादिमच समाप्त दुधा ॥

६८७ ॥ तुदादयः ॥

१ ॥ तुदश्मने ॥

६८७ ॥ तुदादिभ्यः शः । १ । १ । ७७ । शपोऽपवादः । तुदति ।
तुदते । तुतोदा । तुतोदिय । तुतुदे । तोता । अतीत्सीत् अतुत्त । २ । अट्
प्रेरखे । मुदति मुदते नुनोद् । नोता । ३ । अस्त्र पाके । अडिञ्चेति संप्र
सारणम् । अस्य इच्छुत्वेन शः । अस्यञ् इच्छेन जः । मृञ्जति मृञ्जते ॥

लट् में मुञ्चति 'वा' मुञ्चने = वह त्यागता है। लुट् में मीक्षा। आशीर्लिङ् में, मुञ्च्यात् 'वा' मुञ्चिष्यति हे ईश्वर वह छोड़े। लुङ् में, अमुचत् ५३६ 'वा' अमुक्त = उसने त्यागा। अमुक्ताताम् उन दोनों छोड़ा। ७। लुप् (लुप) काटना। लुम्पति 'वा' लुम्पते = वह काटता है। लुट् में लोप्ता ४७८ = वह काटेगा। लुङ् में, अलुपत् ५३६ वा अलुप्त = उसने काटा। विद् (विद्) = लभना। लट् में, विन्दति वा विन्दते = वह लभता है। लिट् में, विवेद ४७८ वा विविदे = वह पाता हुआ। व्याघ्रभूति के मत में यह धातु सेट् है तब लुट् में, वेदित। महाभाष्यकार के मत में अनेट् है, तब परिवेत्ता = वह बड़े भाई से प्रथम स्त्री लभेगा। ८। पिच्। सिच् = सीचना। लट् में सिञ्चति वा सिञ्चते = वह सींचता है।

६६२॥ लिपिसिचिञ्चश्च। ३। १। ५३। एभ्यश्चत्सेरङ्। असिञ्चत्

लिप्, सिच्, और छेञ् = स्पर्शा करणी। इन से परे जो च्लि तिसे अङ् होवे लुङ् में। असिञ्चत् = उसने सींचा।

६६३॥ आत्मनेपदेष्वन्यतरस्याम्। ३। १। ५४। लिपिसिचिञ्चः

परस्य चत्सेरङ् वा। असिञ्चत्। असिक्त १० लिप उपदेहे। उपदेहो वृद्धिः। लिम्पति। लिम्पते। लेप्ता। अलिपत्। अलिपत। अलिप्त॥

॥ इत्युभयपदिन ॥

आत्मनेपद में, लिप्, सिच्, और छेञ्, इन धातुओं कि च्लि की अङ् विकारण से होवे। असिञ्चत् वा असिक्त = उसने सींचा। १०। लिप् = पोचना। उपदेह का अर्थ वृद्धि है। लट् में, लिम्पति वा लिम्पते = वह लेपता है। लुट् में, लेप्ता वह लिपेगा। लुङ् में, अलिपत् ६६२ वा अलिपत। अलिप्त ६६३ = उसने लिपा। (१) उभयपदि धातु समाप्त हुए।

६६४॥ ११ क्वाती छेदने। क्वन्तति। चकर्त्त। कर्तिता। कर्तिष्यति क्वत्स्यति। अकर्त्तीत्। १२। खिदपरिघाते। खिन्दति। चिखेद्। खेत्ता १३ पिश अवयवे। पिंशति। पेशिता। १४ श्रीद्रश्चू छेदने। वृश्चति। वद्रश्च वद्रश्चिच्य। वद्रष्ठ। व्रश्चिता। व्रष्टा। व्रश्चिष्यति व्रक्ष्यति। व्रश्च्यात्। अद्रश्चीत्। १५। व्यञ्च व्याजीकरणे। विञ्चति। विव्याच। विविञ्चत्। व्यञ्चिता। व्यञ्चिष्यति। विञ्च्यात्। अव्याचीत्। अव्यञ्चि। व्यञ्चेः कुटादित्वमनसीतितु न प्रवर्त्तते। अनसीति पर्युदासेन क्वन्माच-

(१) जो परस्मैपद और आत्मनेपद में धातु ही।

वह मूने । मृज्यास्ताम् । मृज्याम् । घास्म म ए मर्षीष्ट 'वा' भ्रषीष्ट ईरवर करे
 सि वह मूने । बुद् में पमार्शीत् पभाषीत् 'वा' अमर्ष्ट अमर्ष्ट उस ने मूना । ४ । ह्र
 ह्र जीतना वा खेचना । कट में कपति कपते छिद् में चर्ष्य चर्ष्ये—उसने खेचा ।

६८८ ॥ अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम् । ६ । १ । ५८ । उप
 देशेऽनुदात्ती य षट्पुपधस्तस्याम् वा भ्रलाहावकिति क्राष्टा, कर्ष्ठा ।
 क्राष्ठीष्ट ॥

जो धातु उपदेश में अनुदात्त ही थीर षट्पुपध (जिसकी लपथा ष हो) तिसकी
 धम् आगम विकल्प से ही अब कित् से भिन्न भ्रषादि पार्धधातुष परे हो । तब बुद् में
 क्राष्टा 'पथमें' कर्ष्ठा । आयीर्षि म ए में क्राष्ठीष्ट से ईरवर नह खेचे ।

६८० ॥ वा० । स्पृशस्प्रशक्तपत्पह्येरक्षे सिक्वा वास्य । अक्ता
 घीत् । अकार्षीत् । अकृचत् । अकृष्ट । अकृचाताम् । अकृचत । ५
 मिथ सङ्गमे । मिथति । मिथते । मिमेष । लेखिता । अमेलीत् । ६ ।
 मुच्लुमोचने ।

रह्य—रूना । ह्य्—हना । कृप्—खेचना । तृप्—तृप्तहीना । ह्रप्—अभिमान
 करवा । इन धातुषी से परे जो चित्त लसे चिप् विकल्प करके हो ऐसा कइना चाहिये ।
 बुद् में म ए अक्तावीत् अकार्षीत् ६८१ अकृचत् ६२१ 'वा' अकृष्ट । चि में अकृचाताम्
 अकृचत दोने खेचा । अकृचत ६१२—उसने खेचा ॥ ५ मिथ्—मिथना । कट् में मिथति
 मिथते । छिद् में मिमेष । कुट् में लेखिता । बुद् में अमेलीत् । ४०८, ४०, वह मिमा । ६
 मुच्ल (मुच्) खोचना ॥

६८१ ॥ शे मुष्वादीनाम् । ७ । १ । ५८ । मुष्लिप्विद्लुप्सिष्
 कृत्खिद्पिशा नुम् । मुञ्चति । मुञ्चते । मोक्षा । मुष्वात् । मुष्ठीष्ट ।
 अमुचत् । अमुक्ष । अमुष्वाताम् । ७ । लुप्लृ छेद्ने । लुम्पति । लुम्पते ।
 लोप्ता । अलुपत् । अलुप्त । ८ । विद्लृ लामे । विन्दति । विन्दते । विवेद् ।
 विविदे । व्याघ्रभूतिमते सेट् । वेदिता । भाष्यमतेऽनिट् । परिवेत्ता ९ ।
 पिचर् चरथे । सिञ्चति । सिञ्चते ॥

मुष्—खोचना । चिप्—खेचना । विद्—पाना । लुप्—काटना । चिष्—खोचना ।
 कृत्—काटना । चिद्—पीबाइना । पिम्—पीपना । इन धातुषी की म परे जीते नुम् की

६६५ ॥ तीपसहलुभरुपरिषः ७। २। ४८। इच्छत्यादे. परस्य
तादेरार्धधातुकस्येड्वा स्यात्। लोभिता। लोब्धा। लोभिष्यति। २०, २१
तृप्तृम्फ तृप्ती। तृप्ति। ततर्प। तर्पिता। अतर्पीत्। तृम्फति ॥

इप् = इच्छा करणी, नह् = सहना, लुभ = लुभाना, र्ष = मारणा, णिष = मारणा।
इन धातुओं से परे तादि आर्धधातुक को इट् विकल्प करके हीवे। लुट् में, लोभिता।
लोब्धा = वह लुभावेगा। लृट् में, लोभिष्यति = वह लोभावेगा। २०, २१, तृप्, तृम्फ = तृप्त
होना। लट् में, तृप्ति = वह तृप्त होता है। लिट् में, ततर्प ४७८ = वह तृप्त हुआ था।
लुट् में, तर्पिता = वह तृप्त होगा। लुड् में, अतर्पीत् ४७८ = वह तृप्त हुआ। (ऐसे)
तृम्फति = वह तृप्त होता है ॥

६६६ ॥ शे तृम्फादीनां नुम् वाच्यः। आदिशब्दः प्रकारे तेन येच
नकारानुषक्तास्ते तृम्फादयः। ततृम्फ। तृफ्यात् २२, २३ सृडपृड। सुखने
सृडति पृडति २४। शुन गती। शुनति २५। इप् इच्छायाम्। इच्छति।
एषिता एष्टा एषिष्यति। इष्यात् ऐषीत्। २६। कुट कौटिल्ये। गाङ्गु-
टादीति डित्वम्। चुकुटिय। चुकोट। चुकुट कुटिता। २। ७। पुट संश्ले-
षणे। पुटति। पुटिता। २८। स्फुट विकसने। स्फुटति। स्फुटिता।
२९, ३० स्फुर स्फुल संचलने। स्फुरति स्फुलति ॥

जब श (६६७) परे ही तब तृम्फादि धातुओं को नुम् हीवे। यहाँ मूल में आदि
शब्द प्रकार का वाचक है, इस लिये तृम्फ के सट्प्रकार वाले वे धातु हैं जिनकी उपधा
में नकार है। लिट् में, ततृम्फ = वह तृप्त हुआ। आ० लिङ् में तृफ्यात् = हे ईश्वर वह
तृप्त हो ॥ २२-२३। सृड् पृड् = सुखीकरना। लट् में, सृडति, पृडति = वह सुखी करता है
२४। शुन् = जाना। लट् में, शुनति = वह जाता है। २५। इप् = इच्छा करणी। लट् में,
इच्छति ५३३ = वह इच्छा करता है। लट् में, एषिता वा एष्टा ६६५ = लृट् में, एषिष्यति
वह इच्छा करेगा। आ० लिङ् में, इष्यात्। लुड् में, (१) ऐषीत् = उसने इच्छा करी। २६।
कुट्—कुटिलता करणी। इस धातु से परे जो प्रत्यय वित् वा णित् न हो वे ६१८ से डित्
माने जाते हैं। लिट् म० पु० ए० में, चुकुटिय = तूने कुटिलता की। यहाँ ही उत्तम पु०
ए० में, ४८४ से णित्व विकल्प हुआ तो चुकोट वा चुकुट = मैंने कुटिलता की। लुट् में

(१) यहा ४७२ से आट् और (आट्प्रच से वृद्धि करलेनी।

विषयत्वात् । १६ । उच्छिन्न उच्छिन्ने । उच्छिन्न । कृष्णश आदानं काशिगाय
 र्जन शिखामिति यादव । १७ । अच्छ गतीन्द्रियप्रलयमूर्तिभाषेणु । अच्छ
 ति । अच्छत्युतामिति गुण । द्विहल्यहसस्यानेकहलुपलक्षणात्पान्मुट् ।
 आनच्छ । आनच्छत् । अच्छिता । १८ । उच्छ उच्छर्त्ते । उच्छति । १९
 सुभ विमोहने । सुभति ॥

११ छती (छत्) = काटना । छट में छन्ति ६८१ = वह काटता है । छिद् में
 चक्षत् = उसने काटा । छुट में छतिता = वह काटेगा । छट् में छतिष्यति कात्यति
 ६६७ वह काटेगा । छुट् में चक्षतात् ४०८ = उसने काटा । १२ छिद् पीडा देनी । छट्
 प्र प में छिन्दति । छिद् में चिच्छेद = उसने पीडा दी । छुट् प्र प्र में छेत्ता ११
 पिय् = पीसना । छट् में पियति = वह पीसता है । छुट् में पेयिता = वह पीसेगा । १५ । पीत्र
 रच् (अरच्) = काटना । छट् में अरचति ६६८ = वह काटता है । छिद् में अरच ४२,
 ५०० ५ २ पीर ५२२ = उसने काटा । अरचिष्य अरच्छ १ १ = तुने काटाया ।

छुट् में अरिचता अष्टा ५ १ । छट् में अरिच्यति अरच्यति ११२ १२८ १०८
 पुन ५ = वह काटेगा । आशीर्षिञ् में अरच्यात् ६६८ । छुट् में अरच्यीत् = उसने काटा
 ११ व्यच् = ठगना । छट् में विचति ६६८, २०८ = वह ठगता है । छिद् में विच्यत् ५००
 = उसने ठगा । विचिचतु ६६८, उन दो ने ठगा । छुट् में व्यचिता । छुट् में व्यचिष्यति
 = वह ठगेगा । आशीर्षिञ् में विच्यात् ६६८ = ईश्वर करे कि वह ठग । छुट् में अरच्यीत्
 ४८५, अरच्यीत् = उसने ठगा । व्यच् वातु अच् रूप छत् प्रत्यय होइ अन्त्य प्रत्यय परे
 होते जुटाठि मागा आवे । इस वार्तिक की प्रवृत्ति यहाँ छिदि नियेच के छिये नहीं होती
 क्यों कि वहाँ 'अनधि' में नच् पूर्वदास (उससे मिल्न उससे तुक्त का पाइय) है इस
 छिये छत्प्र त्यय माच ही इस वार्तिक का विषय है । १६ उच्छि (उच्छ) = दाचा २
 चुचना । यहाँ यादव कोप में पीसा छिया है कि उच्छ से चर्त्त दाचा २ कर चुचना ।
 पीर काशिगायिकी का उच्छा करवा सिखा चुगया ये हैं । १७ अच्छ = आना इन्द्रियों
 से विच्छिन्न होना और अक्षय होना । छट् में अच्छति = वह आता है । छिद् में ६४० से
 गुञ् चुपा । पीर ४८२ में द्विहल् पाञ्च को अनेक हलां का अक्षय होने पर ४८२ से (१)
 मुट् आनच्छ = वह गया । आनच्छतु = वे दा गए । छुट् में अच्छिता = वह आपना
 १८ उच्छ = त्याग करवा । छट् में उच्छति = वह छोडता है । १९, सुम् = सुभागा
 मोहयेवा । छट् में सुभति = वह सोमाता है ॥

(१) तत्पान्मुट्द्विचन' इस सूत्र में ही वनों में अनेक हल् भी सम्मिलत हैं ।

६६५ ॥ तीषसहलुभरुषिषः ७ । २ । ४८ । इच्छत्यादेः परस्य

तादेरार्धधातुकस्येड्वा स्यात् । लोभिता । लोब्धा । लोभिष्यति । २०, २१
तृपतृम्फ तृप्तौ । तृपति । ततर्ष । तर्पिता । अतर्षीत् । तृम्फति ॥

इष् = इच्छा करणी, नह् = सहना, लुभ = लुभाना, रुष = मारणा, रिष = मारणा ।
इन धातुओं से परे तादि आर्धधातुक को इट् विकल्प करके होंगे । लुट् में, लोभिता ।
लोब्धा = वह लुभावैगा । लृट् में, लोभिष्यति = वह लोभावैगा । २०, २१, तृप, तृम्फ = तृप्त
होना । लट् में, तृपति = वह तृप्त होता है । लिट् में, ततर्ष ४७६ = वह तृप्त हुआ था ।
लुट् में, तर्पिता = वह तृप्त होगी । लुङ् में, अतर्षीत् ४७६ = वह तृप्त हुआ । (ऐसे)
तृम्फति = वह तृप्त होता है ॥

६६६ ॥ श्रे तृम्फादीनां नुम् वाच्यः । आदिशब्दः प्रकारे तेन येच
नकारानुषक्तास्ते तृम्फादयः । ततृम्फ । तृफ्यात् २२, २३ ष्टडपृड । सुखने
ष्टडति पृडति २४ । शुन गतौ । शुनति २५ । इष् इच्छायाम् । इच्छति ।
एषिता एष्टा एषिष्यति । इष्यात् ऐषीत् । २६ । कुट कौटिल्ये । गाङ्गु-
टादीति डित्वम् । चकुटिथ । चुकोट । चुकुट कुटिता । २७ । पुट संश्ले-
षणे । पुटति । पुटिता । २८ । स्फुट विकसने । स्फुटति । स्फुटिता ।
२९, ३० स्फुर स्फुल्ल संचलने । स्फुरति स्फुल्लति ॥

जब श (६८०) परे ही तब तृम्फादि धातुओं को नुम् होंगे । यहा मूल में आदि
शब्द प्रकार का वाचक है, इस लिये तृम्फ के षट्प्रकार वाले वे धातु हैं जिनकी उपधा
में नकार है । लिट् में, ततृम्फ = वह तृप्त हुआ । आ० लिङ् में तृफ्यात् = हे ईश्वर वह
तृप्त हो ॥ २२-२३ । ष्ट ड पृड् = सुखीकरना । लट् में, ष्टडति, पृडति = वह सुखी करता है
२४ । शुन् = जाना । लट् में, शुनति = वह जाता है । २५ । इष् = इच्छा करणी । लट् में,
इच्छति ५३३ = वह इच्छा करता है । लट् में, एषिता वा एष्टा ६६५ = लृट् में, एषिष्यति
वह इच्छा करेगा । आ० लिङ् में, इष्यात् । लुङ् में, (१) ऐषीत् = उसने इच्छा करी । २६ ।
कुट्—कुटिलता करणी । इस धातु से परे जो प्रत्यय जित् वा णित् न हों वे ६१८ से डित्
माने जाते हैं । लिट् म० पु० ए० में, चुकुटिथ = तूने कुटिलता की । यहा ही उत्तम पु०
ए० में ४८४ से णित्व विकल्प हुआ तो चुकोट वा चुकुट = मैंने कुटिलता की । लुट् में

(१) यहा ४७२ से आट् और (आट्प्रश्न से षडि करलेनी ।

कुटिता । २० । पुट् - आशिङ्गनकरणा । छट् में पुटति । कुट् में पुटिता ६१८ - वह आशिङ्गन करेगा । २८ । स्फुट् - फूलना । छट् में स्फुटति - वह फूलता है । कुट् में स्फुटिता ६१८ - वह फूलेगा । २९ । स्फुर स्फुस् - फुरकना । छट् में स्फुरति स्फुसति - वह फुरकता है ।

६६० ॥ स्फुरति स्फुलस्योर्भिर्निर्विभ्यः । ८ । ३ । ०६ । षत्वं वा । निष्फुरति । निस्फुरति ३१ ष् स्तवने । परिष्पृतगुणोदयः । मुवति । नुनाव । नुविता । ३२ । टुमस्वो शुहौ । मज्जति । ममज्ज । मस्जिनथोरिति नुम ।

मिर् नि चोर वि उपसर्ग से परे स्फुट् चोर स्फुस् घातु के स् को प् विकल्प से होवे । छट् में निष्फुरति निस्फुरति - वह छटा फुरकता है । ३१ । ष् स्तति करणी । यद्वा दीर्घ ही अन्तार है वैसे परिष्पृतगुणोदय - जिसके गुणों का उदय रतु है । इस उदाहरण में यदि इत्य होता तो इत्य दूट जाता । छट् में मुवति । क्तिट् में नुनाव । कुट् में नुविता - वह स्तुति करेगा । ३२ । टुमस्वो - मस्ज् शुभकरणा । छट् में (१) मज्जति - वह मुज्जकरता है । क्तिट् में ममज्ज - वह मुज्जकरता वा ६०१ से मज्ज परे होते इस घातु को नुम होता है ।

६६८ ॥ षा । मस्जेरन्त्यात्पूर्वोनुम् वाच्यः । संयोगादिषोप । ममज्जय ममज्जिय । मज्ज्ज्ञा । मज्ज्यति । अमाज्जीत् । अमाज्जाम् । अमाज्ज् । ३३ । रुषो भङ्गे । रुजति । रीक्षा । रीक्ष्यति । अरीक्षीत् । अरीक्षीत् ॥ ३४ । मुञ्जी कौटिल्ये । रुषिषत् । ३५ । विद्य प्रवेद्यने । विगति । ३६ । मृग्य प्राप्तयने । प्राप्तयर्गं स्पर्श । अनुदात्तस्य अर्द्धमधस्यान्यतरस्याम् । अमाज्जीत् । अमाज्जीत् । अमृजत् । ३७ । पद्लु विधरणगत्यवसादनेषु । सौदतीत्यादि । ३८ । गद्लु गातने ।

मरज घातु के अन्तर्ध अघरस पूव नुम् ही येमा कहना चाहिये । चोर ३३२४ ग् का शोप दुषा । तत्र ममज्जय ३२ ३२८ वा ममज्जिय - तूने मुज्ज किया । कुट् में मज्ज् ६०१ ६८८, ३३२ ३२८ ८९, ८९ - वह घोषेगा । छट् में मज्जति । कुट् में (२) अमाज्जीत् - अमाज्जाम् । अमाज्ज् ३ ३३ । अम् - तोडना । छट् में अजति वह तोडता है । कुट् म पु प में रीक्षा । छट् में रीक्ष्यति । कुट् में अरीक्षीत् ६८९ छट् में तीडा । ३४ । मुज्ज् - कुटिन करणा । इसको रूप अज के समान धावे आते हैं । ३६ । विम् - प्रवेद्य करणा । छट् में विगति - वह प्रवेद्य करता है । ३६ । मृग्य - जूना - ६८८ सं अम् विचरण से दुषा । तत्र

(१) यद्वा रतीऽनुनास्यु से इत्युत्थ चोर भर्णात्रम् अग्नि से अम् कर लने ।

(२) यद्वा ये तीर्ती कुट् के प्रथम पुण्य के रूप हैं ।

लुङ् में अस्माचीत् ३२६, ५७६, वा अमार्चीत् वा ६६० असृञ्चत् ६२१ = उसने कुआ ॥ ३७ ॥
प्रद्लृ (सट्) = विशीर्ण होना वा जाना वा दुःखी होना । लट् में, ५१६ सीदति इसी प्रकार
के और रूप भी जान लेने ॥ ३८ । शब्द = विशीर्ण होना ॥

६६६ । शब्देः शितः । १ । ३ । ६० । शिङ्गाविनोऽस्मात्तडानौ स्तः ।
शीयते । शीयताम् । शीयेत । अशीयत । आशाद । शत्ता । शत्स्यति
अशदत् । अशत्स्यत् ॥ ३९ । कृ विक्षेपे ॥

शब्द धातु से जब शित् प्रत्यय होने वाला हो तब तड्, और आन, होवे = लट् में
शीयते, ५१६ वह विशीर्ण होता है । लोट् में, (१) शीयताम् । वि, लिङ् में, शीयेत । लङ्
में, अशीयत । शित् प्रत्यय के अभाव में, लिट् में ४८३ (२) आशाद । लुट् में शत्ता ५०४ । लृट्
में, शत्स्यति । लुङ् में, अशदत् ५४६ । लृङ् में, अशत्स्यत् ॥ ३९ । कृ = फँकना ॥

७०० । ञ्छत इञ्जातोः । ७ । १ । १०० । किरति । चकार । चकारतुः
चक्ररुः । करिता करीता । कीर्यात् ॥

ञ्कारान्त धातु की इकार होवे । लट् में, किरति ७००, ३४ = वह फँकता है ।
लिट् में, चकार ६४७, ४८३ = उस ने फँका । चकारतुः = उन दोने फँका । चक्ररुः = उन ने
फँका । लुट् में, करिता, करीता ६४८ = वह फँकेगा । आ० लिङ् में, कीर्यात् ७०० ६४५
है ईश्वर वह फँके ॥

७०१ । किरतौ लवने । ६ । १ । १०४ । उपात् किरतेः । सुट् छे-
दने । उपस्किरति ॥

काटने अर्थ में उपसे परे जो कृ धातु उसे सुट् प्रागम होवे । उपस्किरति = वह काटता है

७०२ । अङ्गभ्यासव्यवायेऽपि । ६ । १ । १३६ ।

जब अट् वा अभ्यास का व्यवधान हो तो भी ७०१ से सुट् हो ॥

७०३ ॥ वा । सुट्कात्पूर्व इति वक्तव्यम् । उपास्किरत् । उपचस्कार ।

धातु के कृ से पूर्व सुट् हो यह कहना चाहिये, उपास्किरत् ७०१, ७०२ । उपचस्कार
= उस ने काटा ॥

७०४ । हिंसायां प्रतेश्च । ६ । १ । १४१ । उपात्प्रतेश्च किरतेः

(१) यहासे तीनों प्रथम पुरुषों के रूप हैं (२) यहा से लृङ् पर्यन्त प्रथम पुरुषों के
एक वचन के रूप हैं ।

सुट् हिंसायाम् । उपस्कारति । प्रतिस्कारति ॥ ४० ॥ गु निगरणे ॥

हिंसा चर्च में उप और प्रति परे ह्र घातु को सुट् हो। उपस्कारति वा (१) प्रतिस्कारति ॥ ४० ॥ गु—नियम सेना ॥

०५ । अचि विभाषा । ८ । २ । ०१ । गिरते रेफस्य खोऽखादी प्रत्यये । गिञ्छति । गिरति । अगाञ्च । अमार । अगलिय । अगरिय । गञ्छिता । गञ्छीता । गरिता । गरीता । ४१ । प्रच्छ शीप्सायाम् । यद्विठयेति ॥ सम्प्रसारणम् । पृच्छति । प्रच्छ । प्रच्छतुः । प्रच्छुः प्रच्छा । प्रच्छति प्रमादीत् ॥ ४२ ॥ मृच्छ प्राश्त्वामि ॥

अच्चादि प्रत्यय परे हो तो गु घातु के रेफ खो ए हो विच्छत्य करके । छट् में गिरति—वह निगलता है । छिट् में अगाञ्च वा अमार—वह निगलता था । चस् में अगलिय वा अगरिय । सुट् में गञ्छिता गञ्छीता ६४८ वा गरिता गरीता—वह निगलनेगा । ४१ । प्रच्छ—पूछना । छट् में ६६८ से सम्प्रसारण हुआ तो पृच्छति—वह पूछता है । छिट् में प्रच्छ—उसने पूछा । प्रच्छतु उम दोने पूछा । प्रच्छु—उसने पूछा । सुट् में प्रच्छा ३२८ ०१ वह पूछेगा । छट् में प्रच्छति । सुट् में प्रमादीत्—उसने पूछा । ४२ । अ—भरना ॥

० ६ । म्रियतेर्मुञ्चिस्तीश्च । १ । ३ । ६२ । लुञ् लुञ्छी गितश्च प्रकृतिमूतान्मृच्छस्तङ्गौ नान्यश्च । रिञ् । इयञ् । म्रियते ममार । मर्ता मरिष्यति । म्रयीष्ट । म्रुत । ४३ । पृञ् व्यायामे । प्रायेषार्य व्याञ् पूर्वः । व्याप्रियते । व्यापमे व्यापमते । व्यापरिष्यते । व्यापृत । व्यापृपाताम् । ४४ । जुपी प्रीतिसेवनयोः । जुयते । जुयुपे । ४५ । शोविष्ठी भयचलनयो । प्रायेष उत्पूर्व । उद्विजते ॥

अ घातु से आत्मने पद प्रत्यय होबे जब मृच्छ छिट् और म्रिन् प्रत्यय की विषयता रहे तब अन्यत्र नहीं । छट् में १०४ से रिञ् (रि) और २१४ से इयञ् (इय्) हुए । म्रियते—वह भरता है । छिट् में ममार—वह मरा वा । सुट् में मता । छट् में मरिष्यति । ४२६—वह मरेगा । चा, छिट् में, खोऽच्छ १०१ से ईश्वर वह मरे । सुट् में म्रुत १०१ ४३६ ४६१ वह मरा ४३१ प (उच्यते कटणा) । इस क पूर्व वि और धाञ् प्राय् चने हो रहते हैं । छट् में व्याप्रियते । छिट् में व्यापमे । व्यापमते उम दान् उच्यते म्रिया वा

लृट् में व्यापरिष्यते । लुङ् में, व्यापृत = उसने उद्यम किया । व्यापृताताम् = उनदो ने उद्यम किया ॥ ४४ ॥ जुष् = प्रेम और सेवा अर्थ में है । लट् में, जुषते लिट् प्र० पु, ए, में जुजुषे = उसने सेवा की ॥ ४५ ॥ ओविनी (विज्) = डरना वा काम्पना । प्रायः यह धातु १ (उत् पूर्व) ही रहता है । लट् में उद्विजते = वह डरता है ॥

७०७ ॥ विज इट् १ । २ । २ । विजे पर डडादि. प्रत्ययो डिङ्गत्

उद्विजिता ॥

॥ इति तुदादयः ॥

इट् है आदिमें जिसके यदि ऐसा प्रत्यय विज धातु से परे ही तो वह प्रत्यय डिट् के सदृश ही । लुट् में, उद्विजिता = वह काम्पेगा ॥ ॥ तुदादिगण समाप्त हुआ ॥

अथ रुधादयः ॥

१ । रुधिर् आवरणे ।

७०८ ॥ रुधादिभ्यः शनम् । ७ । १ । ७८ शपोऽपवादः । रुणञि ।

शनसौरल्लोप । रुन्ध्व । रुन्धन्ति । रुणत्सि । रुन्धः । रुन्ध्व । रुणधिमि । रुन्ध्वः । रुन्धस् । रुन्ध्वे । रुन्धाति । रुन्धते । रुन्धसे । रुन्धाथे । रुन्ध्वे रुन्धे । रुन्ध्वहे । रुन्धमहे । रुरोध । रुरुधे । रोद्धा । रोत्स्यति । रोत्स्यते रुणञु । रुन्धात् । रुन्धाम् । रुन्धन्तु । रुन्धि । रुणधानि । रुणधाव । रुणधाम । रुन्धाम् । रुन्धाताम् । रुन्धताम् । रुन्धस्व । रुणधै । रुणधावहै । रुणधामहै । अरुणत् । अरुणद् । अरुन्धाम् । अरुन्धन् । अरुन्ध्व । अरुन्धाताम् । अरुन्धत । रुन्ध्यात् । रुन्धीत । रुन्ध्यात् । रुत्सी- ष्ट । अरुधत् । अरोत्सीत् । अरोत्स्यत् । अरोत्स्यत । २ भिद्विर् विदा- रणे । ३ । छिद्विर् द्वैधीकरणे । ४ । युजिर् योगे । ५ । रिचिर् विरेचने । रिणक्ति । रिङ्के । रिरेच । रेक्ता । रेक्ष्यति । अरिणक् । अरिचत् । अरेक्षीत् अरिक्त । ६ । विचिर् पृथग्भावे । विनक्ति । विङ्के । ७ । जुदिर् संप्रेषणे । जुणक्ति । जुन्ते । जोत्ता । अजुदत् । अजोत्सीत् । अजुत्त । ८ । उचकृदिर् दीप्तिदेवनयोः । कृणक्ति । कृन्ते । चच्छर्दं । सेसिचीतिविट् । चच्छृत्से

(१) उत् है पूर्व जिम के ॥

अचक्षुदिये । छर्दिता । छर्दिष्यति । छत्स्यति । अचक्षुदत् । अचक्षुदीत् ।
अचक्षुदिष्ट । ८ अतृदिर् हिंसानादरयो । तृषि । तृते । १० कृती
नेष्टमे । कृषि । ११, १२ तृहृ हिंसि हिंसायाम् ॥

अथ रुधादि मष षी चातुषीं का वर्धन क्रिया जाता है । अचिर (अच्) चावरण
कारणात् घेरना(१)रुधादि चातुषींसे परे इमम होवे। अच् मष् का अणवाहरी। अट में अचि
१११ ५८ २२ अच् घेरता है। ६ ६ से अकार का षीय हुआ तो अच्, ५८ २२ ८१,
८१ येदो घेरते हैं। अन्धन्ति वेधेरते हैं। अचत्सि ८०, तू घेरता है। अन्ध' ३८ तुम दो
घेरते हो। अन्ध तुम घेरते हो। अचभि मी घेरता हूँ। अन्ध्व' इम दो घेरते हैं। अन्धम्,
इम घेरते हैं। (२) अन्धी ३८ । अन्धाते ८२, ८१ । अन्धते ५११। अन्धसे ८० । अन्धाये।
अन्धे। अन्धे। अन्धये। अन्धये। अिद् में अरोध वा अरधे उचने घेरा। अुद् में राध
३०८, ३८ २१। अद् में रोत्स्यति ८० वा रोत्स्यते अच् घेरना। अोद् में अचवु १११ १८
२२, अच् घेरे। अन्धात् ३१८ ईरवर करे कि अच् घेरे। अन्धाम्। (३) अन्धन्तु। अन्धि १८०,
८५ तूघेर। अचयानि १५१ मैवेहं। अचधाम इम दो घेरे। अचधाम इमघेरे। वा(४)अन्धी
५८ ८२, ८१ अन्धाताम्। अन्धताम् ५११। अन्धस्य ८०। अचधे ३०८। अचवावही। अच
धामही अच् में अरधत् वा अरधत् ११८, उचने घेरा। अन्धाम् ६ ६ ३८ २१, ८१
८१ अच् अने घेरा। अरधन् अचने घेरा वा अा में अरधन् अरधधाताम्। अरधन्त
अचने घेरा। वि अिद् में अन्ध्यात् वा अन्धीत अच् घेरे। आधीरुअिद् में अन्ध्यात् वा अ
न्धीत् अच् ईरवर अच् घेरे। अुद् में अरधत् ६६२। अरधीत् ३८१, उचने घेरा। अच् में
अरोत्स्यत् वा अरोत्स्यत ३०८ यदि अच् घेरे। २ अिदिर् (अिद्) = तोडना। ३ अिदिर् = अिद्
दो टुकड़े करणे। ४। अुदिर् (अुच्) = मिसाना। इन चातुषीं की (अचिर्) के समान साध
सेना। १। अिचिर् (अिच्) = आली करणा। अद् में अिचिर् वा अिचिर् ६ १, ८१, ८१ = अच्
आली करता है। अिद् में अिचिर् = उचने आली क्रिया। अुद् में रेखा ३०८। अद् में अिचिर्
= अच् आलीकरेगा। अद् में अरिचिर् १८१। अुद् में अरिचिर् ६६२ वा अरिचिर् आत्मने।
अट में अरिचिर् (६२ १ ०) उचने आलीक्रिया ६ अिचिर् (अिच्) अुच्च = अिचिर् होना।
अट में अिचिर् वा अिचिर् = अच् अिचिर् होता है। ० अुचिर् (अुच्) पीठना अद् में
अुचिर् वा अुचिर् = अच् पीठना है। अुद् में अुचिर् = अच् पीठना। अुद् में अचुदत् ६६२

(१) अच् घेरना है आदिमें अिचिर्। (२) यहाँ स नव ८ रूप आत्मनेपद में अद्
के हैं। (३) अच् अीर् अोद् के म पु अिचि अरधन्त के रूप हैं। (४) यहाँ में १ आत्मने
पद में अोद् के प्रथम पुत्र अ. पुन' १ मध्यम क अरधन्त आ पुन' ३ तीन उचने के रूप हैं।

अचौत्सीत् ४६३ वा अचुत् ५०७ = उसने पीसा । ८ उच्छृदिर् (च्छृद्) = चमकना वा खेलना
लट् में कृणत्ति वा कृन्ते = वह खेलता है । लिट् में चच्छर्द = उसने खेला । स् परे होते ६६४
से इट् विकल्प करके हुआ तव । चच्छृत्से, चच्छृदिषे = तूं चमका । लुट् में छर्दिता । लृट् में
छर्दिष्यति, छत्स्यति ६६४ = वह खेलेगा । लुङ् में अच्छृदत्, अच्छर्दीत् वा अच्छर्दिष्यत् ६
उत्तृदिर् (तृद्) = मारणा वा अनादर करना । लट् में = तृणत्ति वा तृन्ते = वह हिंसा करता
है । १० कृत्ती कृत् = घेरना (लपेटना) लट् में कृणत्ति = वह लपेटता है । ११, १२ तृह
(तृह) और (हिस्) = हिंसा करणी ।

७०६ ॥ तृणह इम् । ७ । ३ । ६२ । तृह. श्नमि कृते इम् हलादौ
पिति । तृणोढि । तृणठः । ततर्ह । तर्हिता । अतृणोष् । श्नान्नलोपः । हि-
नस्ति । जिहिंस । हिंसिता १३ । उन्दी क्लेदने । उनत्ति उन्तः । उन्दन्ति
उन्दाञ्चकार । औनत् । औन्ताम् । औन्दन् । औनः । औन्दम् । १४
अञ्जू व्यक्तिसलक्षणकान्तिगतिषु । अनक्ति । अङ्कः । अञ्जन्ति । आनञ्ज ।
आनञ्जय । आनङ्क्य । अञ्जिता । अङ्गा । अङ्धि । अनजानि आनक् ॥

हलादि पित् प्रत्यय परे ही तो तृह् को इम् का आगम हीवे, जब श्नम् ७०८ से
स्थापन किया जावे (१) तब लट् में तृणोढि (७०८, ७०९, ३२, २७१, ५८०, ७५, ५८१) = वह
मारता है । तृणठः (६०५, २७१, ५८०, ७५, ५८१, ६२, ६३) = वे दो मारते हैं । लिट् में
ततर्ह ४७६ = उस ने हिंसा की । लुट् में तर्हिता = वह हिंसा करेगा । लङ् में अतृणोष् ३२,
१६३, २७१, ७६ = उसने मारा । हिंसि घातु को ४६१ 'ने नुम् हुआ । और ७११ से उसका
लोप हुआ तो लट् में हिनस्ति = वह हिंसा करता है । लिट् में जिहिंस ४८२ = उसने मारा
लुट् में हिंसिता = वह हिंसा करेगा । १३ उन्दी (उन्द्) = गीला करणा (भिगोना) लट् में
उनत्ति ७११ वह भिगोता है । उन्तः ७११, ६०५, ८६, ६२, ६३ = वे दो भिगोते हैं । उन्दन्ति
७११, ६०५ = वे भिगोते हैं । लिट् में उन्दाञ्चकार ५४० उसने भिगोयाथा । लङ् में औनत्
७११, ४७२, २१२ उसने भिगोया । औन्ताम् ७११, ६०५, ८६, ६२, ६३ = उन दो ने गीला
किया । औन्दन् ६०५ = उनने गीला किया । औन = तूने भिगोया । औन्दम् = मैंने गीला
कियाथा । १४ अञ्जू (अञ्ज्) प्रकाश करणा, तैलादिमर्दन, सुन्दर होना, और गमन
करणा । लट् में अनक्ति ७११, ३२८ = वह जाता है । अङ्कः ७११, ६०५ वेदो जाते हैं ।
अञ्जन्ति = वे प्रकाश करते हैं । लिट् में आनञ्ज ४२०, ४२१, ४७१, ४६२ = उसने प्रकाश
किया । आनञ्जय वा आनङ्क्य ५०५ तूने प्रकाश किया । लुट् में अञ्जिता वा अङ्गा

(१) अर्थात् जब तृह का (तृणह) ऐसा रूप ही जावे तब ।

१ १-वह प्रकाय करेगा। लोट म पु ए में चङ्चि १८०-तू प्रकाय कर। चनञ्चि-
में प्रकाय करे। लट में चानच् ०११-उसने प्रकाय किया।

०१०॥ चञ्जे सिचि। ०। २। ०१। चञ्जे: सिचो नित्यमिट्।
चाञ्चीत्। १५ तञ्चू संकोचने। तमञ्चि। तञ्जा, तञ्जिता। १६ षोविञी
भयचञ्चनयो। विनञ्चि। विञ्च। विञ्चुडिति ङित्वम्। विविञ्चि। वि
ञ्जिता। अविमक्। अविञ्चीत्। १७ शिञ्चु विशेष्ये। शिनञ्चि। शिञ्च
शिञ्चन्ति। शिनञ्चि। शिञ्च्ये। शिञ्च्येपिय। शेञ्च। शेञ्चति। शेञ्चि।
शिञ्चि। शिनञ्चि। अशिनञ्चि। शिञ्च्यात्। शिञ्च्यात्। अशिञ्चत्। एवं
१८ पिञ्चु सञ्चर्षने। १९ भञ्चो चामर्षने ॥

चञ्च् घातु से परे जो चिच् उसको इट आगम नित्य होने। लुङ् में चाञ्चीत्
(००१) (००४)-उसने प्रकाय किया। ११। तञ्चू (तञ्च्)-सङ्कुचित होना। लट में
०११ १२८ तमञ्चि-वह सङ्कुचित होता है। लुट में तञ्जना 'वा' तन्वितता १ ३, वह मुक्त
सेगा। १६। षोविञी (विञ्च)-भय करणा 'वा' चाम्पना। लट में विनञ्चि-वह चाम्पता
है। विञ्च-वे दो चाम्पते हैं। १ ० से इस घातु से परे जो इट का आगम वह ङित्
होता है तब विविञ्च (तू चाम्पना वा) में ३६१ से गुण नियेच हुआ। तब लट में
विञ्जिता-वह चाम्पेगा लट में अविमक्-उस में भय किया। लुङ् में अविञ्चीत्-उसमें
भय किया। १०। शिञ्च (शिच्)-विशेष करणा। लट में शिनञ्चि-वह विशेष करता
है। शिञ्चः। १ ३, ८२-वे दो विशेष करते हैं। शिञ्चन्ति-वे विशेषे। शिनञ्चि १०८
१६१-तू विशेष करता है। लिट् में शिञ्च्ये-वह विशेष करता हुआ। शिञ्च्येपिय-तूने
विशेष किया था। लुट में शेञ्च। लुट में शेञ्चति (१०८, १६१)-वह विशेष करेगा।
५८० से (ङि) को (चि) हुआ पुनः ०३, ०८, १ ३ ८२, ८२ से शिञ्चि (तू विशेष कर)
गिर हुआ। शिनञ्चि में विशेष करे। लट में अशिञ्चि (०८)-उस में विशेष किया।
वि लित् में शिञ्च्यात् ०११ वह वि करे। चायोर् लुङ् में शिञ्च्यात्-हे इतर वह
विशेष करे। लुङ् में अशिञ्चत् १११-उस में विशेष किया एसे १८ पिञ्चु (पिच्)-
(पीसना) चातु भी साधसेगा। १८। मञ्चो (मञ्च)-तोड़ना।

०११ ३ इमान्मलोपः ६। ४। ३७। इम परस्य नस्य लोप
स्यात्। भनञ्चि। यमञ्चि। वमञ्च्ये। भञ्जा। भञ्जधि। अभाञ्चीत्।
०। भुञ्च पास्तनाभ्यवहारयो मुञ्चि। भोञ्चा। भोञ्चति। अमुञ्चत् ॥

श्रनम् ७०८से परे जो न उसका लोप होवे । लट्में भुनक्ति ३२८ = वह तोड़ताहै । लिट् म० पु० ए० में वभञ्जिथ 'वा' ५११ वभङ्क्षथ = तूने तोड़ा था । लुट्में भङ्क्षा ३२८, ६२, ६३ = वह तोड़ेगा । लोट् म० ए० में = भङ्ग्धि ५८७ = तूं तोड़ । लुङ्में आभाङ्क्षीत् ४६३, ३२८, ६२, ६३, ४७३ = उसने तोड़ा । २० । भुञ् पालना 'वा' खाना । लट्में भुनक्ति = वह पालताहै । लुट् में, भोक्ता ३२८ = वह पालेगा । भोक्ष्यति ४७६ । लङ् में अभुनक् = उस ने पाला ।

७१२ ॥ भुजोऽनवने । १ । ३ । ६६ । तडानौ स्तः । औदनं भुङ्क्ते । अनवने किम् । महीं भुनक्ति । २१ जिङ्न्धी दीप्तौ । इन्धे । इन्धाते । इन्धते । इन्त्से । इन्ध्वे । इन्धाञ्चक्रे । इन्धता । इन्धाम् । इन्धै । ऐन्ध । ऐन्धाताम् । ऐन्धा । २२ । विद् विचारणे । विन्ते । वेत्ता ॥

॥ इति रुधादयः ॥

पालन अर्थ को छोड़ अर्थात् खाने अर्थ में भुज धातु को तड् और (१) आन होवे । औदन भुङ्क्ते = वह चावल खाता है । (पालन अर्थ में न ही) यह क्यों कहा । इसका उत्तर देता है, 'कि' यदि ऐसा न कहोगे तो, (महीं (२) भुनक्ति) इस उदाहरण में भी आत्मनेपद ही जावेगा । २१ । इन्ध् = चमकना । लट् में, इन्धे ७११, ६०५ = वह चमकता है । इन्धाते = वे दो चमकते हैं । इन्धते = ७११, ६०५ = वे चमकते हैं । इन्त्से = तू चमकता है । इन्ध्वे ७११, ६०५ ८६, ६२, ६३ = तुम चमकते हो । लिट् में इन्धाञ्चक्रे, ५४० = वह चमका । लुट् में इन्धता = वह चमकेगा । लोट् में इन्धाम् ७११, ६०५ = वह चमके । इन्धाताम् = वे दो चमके । इन्धै ७११, ५४८ = मैं चमकू । लङ् में, ऐन्ध = वह चमका था । ऐन्धाताम् = वे दो चमके । ऐन्धाः = तूं चमका । २२ । विद् = विचार करणी । विन्ते = वह विचारता है । लुट् में, वेत्ता = वह विचारेगा ॥ रुधादिगण समाप्त हुआ ॥

॥ अथ तनादयः ॥

१ तनुविस्तारे ।

अथ तनादिगण की धातुओं का वर्णन किया जाताहै १ तनु (तन्) = विस्तार करणा । ७१३ ॥ तनादिङ्गञ्भ्य उ. ३ । १ । १७ शपोऽपवाद्ः । तनोति । तनुते । ततान तेने । तनितासि । तनितासे । तनिष्यति । तनिष्यते । तनुताम् । अतनीत् । तनुयात् । तन्वीत् । तन्यात् । तनिषीष्ट । अतनीत् । अतानीत् ॥

(१) ये दोनों आत्मने पद के प्रत्यय हैं (२) ष्टवी की पालता है ॥

तन् प्रादि धातु धौर क् धातु से परे उ प्रत्यय होते। यह सूत्र ४१३ का अपवाद है। छट् में तनोति ४१४ वा तनुते - वह विस्तार करता है। छिट् में तताम वा तेने ४८८ वह विस्तार करता वा। कुट् के म ए में तनितासि वा तनितासे। कुट् में तनिष्यति वा तनिष्यते - वह विस्तार करेगा। छोट् भात्मने में तनुताम्। ३४६ वह विस्तार करे। कृत् में अतनोत् ४१४ उसने विस्तार किया। विधिच्छिट् में तनुयात् वा तन्वीत - वह विस्तार करे। या छिट् में तन्यात् वा तनियीष्ट - वे ईस्वर वह विस्तार करे। कुट् परस्मै पद में अतनोत् वा (१) अतानीत् ४०३ ४०४ - उसने विस्तार किया।

०१४। तनादिभ्यस्तथासो । २ । ४ । ८६ । तनादे सिचो वा ।
 लुक् तथासो । अतत । अतनिष्ट । अतया । अतनिष्ठा । अतनिष्यत् ।
 अतनिष्यत ॥ २ । पशु दाने । सनोति । सनुते ॥

तनादिधी से परे छिट् का विकल्परके कुट् होते जब "त" धौर वास् प्रत्यय परे होते। प्रात्मने पद के कुट् के म पु एक वचन में अतत ३८ वा अतनिष्ट। धौर म पु ए अतवा वा अतनिष्ठा। कुट् में अतनिष्यत् वा अतनिष्यत - यदि वह विस्तार करे। २ पशु (पशु) - देना। २०५, ४१४ सनोति वा सनुते - वह देता है।

०१५। वे विभाषा । ६ । ४ । ४३ । अमसमखनामात्स्यं वा यादौ
 क्ङिति । सायात् सन्धात् ॥

अन् - उत्पन्न होना। सन् - देना। अन् - खोदना। इन धातुधों को (१) यादि कित् वा ङित् प्रत्यय परे होती चात्प्र विकल्प करके होता है। या छिट् में सायात् ३२ वा सन्धात् - ईस्वर करे कि वह देवे।

०१६। अमसमखनां सन्मखोः । ६ । ४ । ४२ । एषामकार समि
 ऋहादौ ङिति । असात । असनिष्ट । असायाः असनिष्ठा । ३ । अषु
 ङिसायाम् । अषोति । अषुते । अयन्तेति न ङिति । अषपीत् । अषत ।
 अषषिष्ट । अषयाः । अषषिष्ठाः । ४ । अषुच । उप्रत्यये लघूपधस्य
 गुणोवा । अषोति । अषोति । अषिता । अषपीत् । अषित । अषेषिष्ट । ५ ।
 तृष अदने । तृषोति । तृषोति । तृषुते । तृषुते ॥ ६ ॥ लुक्कञ् करणे ॥

अन् सन् धौर अन् इन धातुधों को आकार हो। जब सन् वा असादि कित् वा

(१) यदा (४८२) से ङिति का विकल्प है। (२) यकार है चादि में जिस के।

डित् प्रत्यय परे ही तब । असात ७१४ वा असनिष्ट उमने दिया । असाथा: ७१४ वा असनिष्ठा: =तूने दिया था । ३ क्षणु (क्षण्) = हिसाकरणी । लट् में क्षणोति वा क्षणुते = वह मारताहै, लुङ् में ४६४ से वृद्धि का निषेध हुआ (तब) अक्षणीत् वा अक्षत ७१४, ५६० औन अक्षणिष्ट = उसने हिसा करी ४ । क्षिणु (क्षिण्) हिसाकरणी ।

“जब ‘उ’ ७१३ प्रत्यय परे ही तब लघूपधधातु को गुण ४७६ विकल्प करके होवे” । लट् में क्षिणोति । क्षिणोति = वह हिसा करता है । लुट् में क्षिणता = वह मारेगा । लुङ् में अक्षणीत् वा, अक्षित, ७१४-५६० अक्षणिष्ट = उस ने मारा । ५ । तृणु = खाना । लट् में तृणोति । तृणोति वा तृणुते । तृणुते = वह खाता है । ६ डुकृञ् (कृ) = करना ।

७१७ । अत उत्सार्वाधातुके । ६ । ४ । ११० । कुरुतः ॥

उ प्रत्ययान्त कृ धातु के अकार को उकार होवे कित् वा डित् सार्वधातुक परे ही तो । कुरुत. ७१३, ७१७ वे दो करते हैं ।

७१८ । न भकुर्क्षुराम् । ८ । २ । ७६ । भस्य कुर्क्षुरोरुपधाया न दीर्घः । कुर्वन्ति ॥

‘भ’ सन्नक, और कृ और कुरु = काटना इन की उपधा को दीर्घ न होवे (१) कुर्वन्ति वे करते हैं ॥

७१९ । नित्यं करोते । ६ । ४ । १०८ । करोतेः प्रत्ययीकारस्य नित्यं लोपोम्बो । कुर्वं । कुर्मं । कुरुते । चकार । चक्रे । कर्ता । करिष्यति । करिष्यते । करोतु । कुरुताम् । अकरोत् । अकुरुत ॥

म वा व परे होते कृ धातु के प्रत्यय रूप उकार का नित्य लोप होवे । कुर्वः ७१७ = हम दो करते हैं । कुर्मः = हम करते हैं । वा कुरुते ७१३, ७१७ = वह करता है । लिट् में चकार वा चक्रे = उस ने कियाथा । लुट् में कर्ता । लृट् में करिष्यति । वा करिष्यते । ५२६ वह करेगा । लोट् में करोतु = वा कुरुताम् = वह करे । लङ् में अकरोत् वा अकुरुत ७१७ = उसने किया ।

७२० । ये च । ६ । ४ । १०६ । कृञ् उलोपो यादौ प्रत्यये । कुर्यात् कुर्वीत् । क्रियात् । कृषीष्ट । अकृषीत् । अकृत । अकरिष्यत् । अकरिष्यत ।

कृ धातु से परे जो (उ) प्रत्यय तिस का यादि प्रत्यय परे होते लोप होवे । वि० लिङ् में कुर्यात् वा कुर्वीत् ७१७ इस से उकार हुआ । आ० लिङ् क्रियात् ५७४ वा कृषीष्ट

(१) यद्वा ६४५ से दीर्घपायाथा । पुनः ७१८ से निषेध हुआ ।

१०१ ईश्वर करे कि वह करे। बुद्ध में चकार्पात् वा चक्षत १०१ उच्यते किये। बुद्ध में चक्रिष्यत वा चक्रिष्यत - यदि वह करे ॥

०२१। संपरित्या करोती भूषणे। ६। १। १३० ॥

सम् वा परि उपसर्ग से परे छ धातु की भूषण चय में सुद् होते।

०२२। समवायेच। ६। १। १३८। सुट् ॥ संस्करोति। असह

रोतीत्यर्थ। संस्कुर्वन्ति। सङ्गीभवन्तीत्यर्थ। संपूर्वस्य षवचिदभू
षयेपि सुट्। संस्कृतं भवा इति प्रापकात् ॥

उभूषण धर्म में भी छ को सुद् प्रागम होते। संस्करोति ०२१ चक्षत करता है। संस्कुर्वन्ति ०२२ - वे इच्छते होते हैं। सम् उपसर्ग पूर्व होते छ धातु की नहीं भूषण धर्म में भी सुद् होता है (संस्कृत (१) नया) १११२ इस सूत्र के प्रापक होने से।

०२३। उपात्प्रतिघ्नन्वैकृतवाक्याध्याहारिषु च। ६। १। १८।

कृञ् सुट्। चात्प्रागुक्तयोर्ययो। प्रतियत्नो गुणाधानम्। विकृतमेव
विकृतं विकार। वाक्याध्याहार चाकाङ्क्षितैकदेशपूरणम्। उपस्कृता
कन्या। उपस्कृता ब्राह्मणा। एधीदकास्योपस्कुरुते। उपस्कृतं मुञ्जे।
उपस्कृतं ब्रूते। ७। वनु याचने। वनुते। यचने। ८। मनु चयवोधने।
मनुते। मेने। मनिता। मनिष्यते। मनुताम्। अमनुत। मन्वीत।
मनिपीष्ट। अमनिष्ट अमनिष्यत ॥ ॥ इति तनादयः ॥

(उप) उपसर्ग से परे छ धातु की 'प्रतियत्न' 'वैकृत' और वाक्याध्याहार इन धर्मों में सुद् प्रागम होते चकार के बन्ध से भूषण और इच्छा होना इन धर्मों में भी सुद् होता है। किन्ती प्रकार में नूतनगुण देने की प्रतियत्न कहते हैं। वैकृत = विकृत होना। अथात् विकार। वाक्य का अध्याहार अथात् बातचीत को भूषण करने से छ को कृञ् से पूरा करवा (भूषण में जैसे उपस्कृता कन्या अक्षत की यह सबकी २ समवायमें जैसे उपस्कृता ब्राह्मणा - इच्छेद्युय ब्राह्मणकी ३ प्रतियत्नमें जैसे एधीदकास्योपस्कुरुते - सबकी पानी की नया गुण देती है। ४ विकृत में जैसे उपस्कृतं मुञ्जे - वह विकृत घन को खाता है।

(१) १११२ के सूत्र में पाणिनिजी न (संस्कृत) ऐसा कहा है और उस का भूषण धर्म भी नहीं किन्तु संस्कार चक्र है - इस से सिद्ध क्या कि भूषण से बिना भी संपूर्ण छ धातु को सुद् वा जाये।

द वाक्याध्याहार से जैसे उपसृत ब्रूते = वह पक्ष वा। अध्याहार करके कहता है। ० वनु
(वन्) = सांगना। लट् से वनुते = वह सांगता है। लिट् से। वधने = उसने याचना की थी।
८। मनु (मन्) = मानना। लट् में मनुते = वह मानता है। लिट् में। मेने ४८८ = उम ने
मानलिया था। लुट् में मनिता = वह मानेगा। लृट् में मनिष्यते। लोट् में मनुताम्। लङ् में
अमनुत। विधित्तिङ् में। मन्वीत। आयीर्लिङ् से सनिषीष्ट = हे ईश्वर वह माने। लुङ् से
असनिषट् = उस ने माना। लृङ् में अमनिष्यत = यदि वह माने ॥ तनादिगण समाप्त हुआ ॥

अथ क्रियाद्वयः ॥

१ ॥ लुक्क्रीञ् द्रव्यविनिमये ॥

अथ 'क्री' है आदि जिन के उन धातुओं का वर्णन किया जाता है ॥ १ ॥ लुक्क्रीष्
(क्री) = द्रव्यों का बटाना (अपना द्रव्य देकर दूसरे का द्रव्य लेना) ॥

७२४। क्रादिभ्यः श्ना। ३। १। ८१। शपोऽपवादः। क्रीणाति
ईहल्यघोः। क्रीणीत। श्नाऽभ्यस्तयोरातः। क्रीणन्ति। क्रीणासि। क्री-
णीथ। क्रीणीथ। क्रीणामि। क्रीणीवः। क्रीणीमः। क्रीणीते। क्रीणाते।
क्रीणते। क्रीणीषे। क्रीणाये। क्रीणीध्वे। क्रीणे। क्रीणीवहे। क्रीणीमहे।
चिक्राय। चिक्रियतुः। चिक्रियुः। चिक्रेथ। चिक्रयिथ। चिक्रिये क्रेता।
क्रेष्यति। क्रेष्यते क्रीणातु। क्रीणीतात्। क्रीणीताम्। अक्रीणात्। अक्री-
णीत। क्रीणीयात्। क्रीणीत क्रीयात्। क्रेषीष्ट। अक्रेषीत्। अक्रेषट्।
अक्रेष्यत्। अक्रेष्यत ॥ २। प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च। प्रीणाति प्रीणीते
३। श्रीञ् पाके। श्रीणाति। श्रीणीते ॥ ४। मीञ् हिंसायाम् ॥

क्रादि धातुओं से परे श्ना प्रत्यय होवे, यह शप् का अपवाद है। लट् से क्रीणाति।
१५१ = वह खरीदता है। ६५१ से आकार को ईकार होने से क्रीणीत = वे, दो मोल लेते
हैं। ६५२ से आकार को लोप होने से, क्रीणन्ति = वे मोल लेते हैं। क्रीणासि = तू खरीदता
है। क्रीणीथ = तुम दो मोल लेते हो। क्रीणीथ = ६५१ = तुम खरीदते हो। (१) क्रीणामि।
क्रीणीव। क्रीणीम। आत्मने पद के लट् से, (२) क्रीणीते ६५१ क्रीणाते। ६५२। क्रीणते।
क्रीणीषे। क्रीणाये। क्रीणीध्वे। क्रीणे। क्रीणीवहे ६५१। क्रीणीमहे। लिट् में, चिक्राय,
४२०। ४२२। ४२३। ४८२। १८६। २६ = उसने मोल लिया था। चिक्रियतुः = उन दोनों
मोल लिया। चिक्रियुः = उन नें मोललिया। चिक्रेथ 'वा'। चिक्रयिथ = ५१२ = तूने मोललिया।

(१) ये तीन लट् के उत्तम के रूप हैं। (२) यहाँ से नी आत्मने पद के लट् के रूप हैं।

१०१ इत्वर करे कि इह करे । सुट् में अकारोत् वा अक्षत १०१ उच्यते किये । सुट् में अकारिण्यत वा अकारिण्यत — यदि वह करे ॥

०२१ । संपरित्या करोती भूपणे । ६ । १ । १३० ॥

सम् वा परि उपसर्ग से परे अ धातु को भूपण पर्यं में सुट् होवे ।

०२२ । समवायेच । ६ । १ । १३८ । सुट् ॥ संस्कारोति । अक्षत गीतीत्यर्थ । संस्कुर्वन्ति । सङ्गीभवन्तीत्यर्थ । संपूर्वस्य क्वचिद्भू पद्येपि सुट् । संस्कारं भवा इति ज्ञापकात् ॥

सम् अक्ष में भी अ को सुट् प्रागम होवे । संस्कारोति ०२१ अक्षत करता है । संस्कुर्वन्ति ०२२ — वे इच्छते होते हैं । सम् उपसर्ग पूर्व होते अ धातु को कहीं भूपण पर्यं में भी सुट् होता है (संस्कारं (१) भवा) ११११ इस सूत्र से ज्ञायक होने से ।

०२३ । उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारिषु च । ६ । १ । १८ ।

सुट् । चात्प्रागुक्तयोरर्थयो । प्रतियत्नो गुणधामम् । विकृतमेव वैकृतं विकार । वाक्याध्याहार आकाङ्क्षितकदेशपूरणम् । उपस्कृता कन्या । उपस्कृता ब्राह्मणा । एधीदकस्योपस्कुरुते । उपस्कृतं मुञ्जे । उपस्कृतं ब्रूते । ७ । वमु याचने । वनुते । यवने । ८ । ममु चवदोधने । मनुते । मेने । मनिता । मनिष्यते । मनुताम् । अमनुत । मन्वीत । मनिपीष्ट । अमनिष्ट अमनिष्यत ॥ ॥ इति तनादयः ॥

(उप) उपसर्ग से परे अ धातु को 'प्रतियत्न 'वैकृत' और वाक्याध्याहार इन अर्थों में सुट् प्रागम होवे अकार के वन से भूपण और इच्छा होना इन अर्थों में भी सुट् होता है । किसी पदार्थ में नूतनमुच देने को प्रतियत्न कहते हैं । वैकृत — विकृत होना । अकार विकार । वाक्य का अध्याहार अर्थात् वातकर्त्त को भूषण करने को अर्थात् से पूरा करना । भूपण में जैसे उपस्कृता कन्या अक्षत की गह अर्थात् २ समजायमें जैसे उपस्कृता ब्राह्मणा — इच्छेत्पु ब्राह्मणसीम ३ प्रतियत्नमें जैसे एधीदकस्योपस्कुरुते — लक्ष्मी पानी की गया गुण देती है । ४ विकृत में जैसे उपस्कृतं मुञ्जे — वह विकृत अन्न को खाता है ।

(१) ११११ वे सूत्र में प्रागिति ने (संस्कारं) ऐसा कहा है और उस का भूपण पर्यं भी नहीं किन्तु संस्कार पर्यं है — इस में सिद्ध अर्थात् कि भूपण से बिना भी संपूर्ण अ धातु को गट् वा जाने ।

(स्तन्म्, स्तुन्म्, स्कन्म्, स्कुन्म्) = रोकना । और । स्कुष् (स्कु) = उछल जाना । इन धातुओं से परे 'श्नु' ६८१ प्रत्यय, होवे । (और 'श्ना' भी होवे) यह सूत्रस्थ चकार से विदित हुआ है । लट् में स्कुनोति 'वा' स्कुनुते । स्कुनाति 'वा' स्कुनीते ६५१ = वह उछल २' कर जाता है । लिट् में, चुस्काव ६८४ वा चुस्कुवे उसे ने कूदा । लुट् में, स्कोता = वह उछल कर जावेगा । लुङ् में, अस्कीषीत् ५१३ 'धा' अस्कीषट् = वह कूद २ कर गया । ये, स्तन्म् आदि चारों धातु सूत्र ७२६ में ही लिखे हैं, पाणिनि जी के धातुपाठ में नहीं हैं । और इन चारों का रोकना अर्थ है । और इन से परस्मै पद को प्रत्यय होते हैं ॥

७२७ । हल. श्न. शानजभौ । ३ । १ । ८३ । स्तभान ॥

हि ४४१ परे ही तोहल्से परे 'श्ना' को 'शानच्' होवे । स्तभान ४४२, ३५७, तूने रोका ।

७२८ । जृस्तम्भस्त्रुचुम्लुचुद्युचुग्लुञ्चुशिवभ्यश्च । ३ । १ ।

५८ । च्लेरङ् वा ॥

जृ = षष्ठ होना । स्तम्भु = रोकना । (स्त्रुच्, और म्लुच्) = जाना । (युच्, ग्लुच् । = चोराना । ग्लुञ्च् = जाना । और शिव = गमन करणा । इन धातुओं से परे च्लि को अङ् विकल्प करके होवे ॥

७२९ । स्तन्भे । ८ । ३ । ६७ । स्तन्भेः सौत्रस्थ सस्य षः स्यात् व्यष्टभत् । अस्तम्भीत् ॥ ७ । युञ् बन्धने । युनाति । युनीते । यीता । ८ । क्रूञ् शब्दे । क्रूनाति । क्रूनीते । क्रूविता । ९ । दृञ् हिंसायाम् । दृणाति । दृणीते । १० । द्रूञ् हिंसायाम् । द्रूणाति । द्रूणीते ॥ ११ । पूञ् पवने ॥

उपसर्गस्थ निमित्त से परे सूत्र पठित स्तन्म् धातु के स् को ष् होवे । लुङ् में, व्यष्टभत् 'वा' अस्तम्भीत् = ९२, ९३ = उसने रोका । ७ । युञ् (यु) = बान्धना । लट् में, युनाति 'वा' युनीते = वह बान्धता है । लुट् में, यीता = वह बान्धेगा । ८ । क्रूञ् (क्रू) = शब्द करणा । लट् में क्रूनाति 'वा' क्रूनीते ६५१ = वह शब्द करता है । लुट् में । क्रूविता = वह शब्दकरेगा । ९ । दृञ् = मारणा । लट् में दृणाति 'वा', दृणीते । वह मारता है । १० । द्रूञ् मारणा । लट् में = द्रूणाति 'वा' द्रूणीते = वह मारता है । ११ पूञ् (पू) = पवित्र करणा ॥

७३० । प्वादीनां ऋस्व. । ७ । ३ । ८० । पूञ् लूञ् स्तञ् क्रूञ् वधञ् श्पवभमजभघनध्वक् ऋग्यारीलीप्लीप्लीनां चतुर्विंशते. शिति । ऋस्वः । पुनाति । पुनीते । पविता । १२ । लूञ् छेदने । लुनाति । लुनीते

'वा' (१) विक्रिये । कृद् में ज्ञेता । कृद् में ज्ञेयति वा ज्ञेयते = वह मीठ लेया । छीद् में प्रीयातु = वह मोख लेवे । प्रीयीतात् ६११ 'वा' । प्रीयीताम् = वह मोख ले । छद् में (२) प्राप्तीयात् वा प्राप्तीयीत । विधि विद् में प्रीयीयात् 'वा' प्रीयीत = या विद् में प्रीयात् 'वा' ज्ञेयीष्यत् । कृद् में प्रप्रीयात् ५११ वा' प्रप्रीयत् । कृद् में प्रप्रीयति 'वा' प्रप्रीयते । १ । प्रीय् (प्री) = तुल्य करवा (वा) इच्छा करवा । छद् में प्रीयाति 'वा' प्रीयीत । १ । प्रीय् (प्री) = पाक करवा । छद् में प्रीयाति १५१ 'वा' प्रीयीते ६११ = वह पकाता है । १ । प्रीय् (प्री) = मारवा ॥

०२५ । हिनुमीना । ८ । ४ । १५ । उपसर्गस्याग्निमित्तात्परस्यैतयोर्नस्य चः स्वात् । प्रमीयाति । प्रमीयीते । मीनातीत्यप्रवम् । ममी । मिस्यतुः । ममिय । ममाय । मिस्ये । माता । मास्यति । मीयात् । मासीष्यत् । अमासीत् । अमासिष्यत् । अमास्त । ५ । पिञ् बन्धने । सिमाति । सिमीते । सिषाय । सिष्ये । सेता । ६ । स्कुञ् चाप्यवने ॥

उपसर्गस्य विहित से परे 'हिनु' धीर 'मीना' शब्दी से (न्) को (प्) छोड़े । छद् में प्रमीयाति 'वा' प्रमीयीते = वह बहुत हिंसा करता है । ६०४ से आकार पादेय होने पर विद् में ममी ११० = छछने हिंसा करी । मिस्यतु = छन दोने हिंसा की । ममिष्य ६०४ । १११ । ११८ 'वा' ममाय ६०४ तुने हिंसा की । या विद् में मिस्ये । कृद् में, माता ६०४ । कृद् में मास्यति = वह मारेगा । या विद् में मीयात् 'वा' मासीष्यत् = इतर करे कि वह मारे । कृद् में अमासीत् ६०४ ११४ = छछने हिंसा की । अमासिष्यत् = छन दोने हिंसा की । 'वा' अमास्त ६०४ । पिञ् (पि) = बान्धना । सिमाति 'वा' सिमीते = वह बान्धना है । विद् में सिषाय 'वा' सिष्ये छछने बान्धना वा । कृद् में सेता २०३, ४१४ = वह बान्धना । ६ । स्कुञ् (स्कु) = छछन २ कर जाना ॥

०२६ । स्तम्भुस्तुम्भुस्त्रम्भुस्कुम्भुस्कुञ्स्व' श्नुश्च । १ । १ । ८२ । चात् । श्ना । स्नुमीति । स्नुमुते । स्नुमाति । स्नुमीते । चुस्त्वाव । चुस्कुवे स्कीता । अस्क्रीपीत् । अस्क्रीष्यत् । स्तम्भवादयश्चत्वारः सीचाः सर्वे रोधमार्याः । परस्मैपदिन ॥

(१) ११४ = छछन मोख किया वा । (२) यहाँ से कृद् पर्यन्त प्रथम पुत्रवो से पञ्च

(स्तन्म्, स्तुन्म्, स्कन्म्, स्कुन्म्) = रोकना । और । स्कुष् (स्कु) = उछल जाना । इन धातुओं से परे 'श्नु' ६८१ प्रत्यय, होवे । (और 'श्ना' भी होवे) यह सूत्रस्य चकार से विदित हुआ है । लट् में स्कुनोति 'वा' स्कुनुते । स्कुनाति 'वा' स्कुनीते ६५१ = वह उछल २' कर जाता है । लिट् में, चुस्काव ६८४ वा चुस्कुवे उसे ने कूदा । लुट् में, स्कोता = वह उछल कर जावेगा । लुङ् में, अस्कीषीत् ५१३ 'घा' अस्कीष्यत् = वह कूद २ कर गया । ये, स्तन्मु आदि चारों धातु सूत्र ७२६ में ही लिखे हैं, पाणिनि जी के धातुपाठ में नहीं हैं । और इन चारों का रोकना अर्थ है । और इन से परस्मै पद को प्रत्यय होते हैं ॥

७२७ । हलः श्नः शानञ्भी । ३ । १ । ८३ । स्तभान् ॥

हि ४४१ परे ही तो हल् से परे 'श्ना' को 'शानच्' होवे । स्तभान् ४४२, ३५७, तूने रोका ।

७२८ । जृस्तम्भुञ्चुम्लुचुद्युचुग्लुञ्चुशिवभ्यश्च । ३ । १ ।

५८ । च्लेरञ् वा ॥

जृ = षष्ठ होना । स्तम्भु = रोकना । (म्भुच्, और म्लुच्) = जाना । (युच्, ग्लुच् । = चोराना । ग्लुञ्चु = जाना । और शिव = गमन करणा । इन धातुओं से परे च्लि को अञ् विकल्प करके होवे ॥

७२९ । स्तन्भे । ८ । ३ । ६७ । स्तन्भेः सौत्रस्य सस्य षः स्यात् व्यष्टभत् । अस्तम्भीत् ॥ ७ । युञ् बन्धने । युनाति । युनीते । - योता । ८ । क्लूञ् शब्दे । क्लूनाति । क्लूनीते । क्लूविता । ९ । दृञ् हिंसायाम् । दृणाति । दृणीते । १० । द्रूञ् हिंसायाम् । द्रूणाति । द्रूणीते ॥ ११ । पूञ् पवने ॥

उपसर्गस्य निमित्त से परे सूत्र पठित स्तन्म् धातु के स् को ष् होवे । लुङ् में, व्यष्टभत् 'वा' अस्तम्भीत् = ८२, ८३ = उसने रोका । ७ । युञ् (यु) = बान्धना । लट् में, युनाति 'वा' युनीते = वह बान्धता है । लुट् में, योता = वह बान्धेगा । ८ । क्लूञ् (क्लू) = शब्द करणा । लट् में क्लूनाति 'वा' क्लूनीते ६५१ = वह शब्द करता है । लुट् में, क्लूविता = वह शब्द करेगा । ९ । दृञ् = मारणा । लट् में दृणाति 'वा, दृणीते । वह मारता है । १० । द्रूञ् मारणा । लट् में = द्रूणाति 'वा' द्रूणीते = वह मारता है । ११ पूञ् (पू) = पवित्र करणा ॥

७३० । प्वादीनां ऋस्व । ७ । ३ । ८० । पूञ् लुञ् स्तञ् क्लूञ् वधञ् श्पुवभमजभघनध्वक् ऋग्ल्यारीलील्लीप्लीनां चतुर्विंशते । शिति । ऋस्व । पुनाति । पुनीते । पविता । १२ । लूञ् छेदने । लुनाति । लुनीते

१३। स्तुञ् आच्छादने। स्तुष्यति। शर्पूर्वाः खय। तस्तार। तस्तरत्। तस्तरे। स्तरिता। स्तरीता। स्तुषीयात्। स्तुषीत। स्तीयात् ॥

पू-घुञ् करणा। शू-काटना। स्तु-आच्छादनकरणा। कञ्-मारणा। वृ-स्वीकार करणा। वृ-काम्यमा। गृ-मारणा। पृ-पाठना। वृ-स्वीकार करणा। मृ-मय देना। मृ-मारणा। वृ-बूझा होना। भृ-बुझ होना। घ-बढ़ना। गृ-प्राप्तकरणा। वृ-टेठा होना। कृ-मारणा। खृ-चसना। गृ-घट्ट करणा। ज्ञ्या-हृद होना। री-मारणा। ली-भिसाना। वृ-स्वीकार करणा। ष्ठी-जाना। ये ली वीधीष घातु वै तिन ली इस्व होवे गित् प्रत्यय परे होते। रुद् में पुनाति 'वा' पुनीते-वह पवित्र करण है। रुद् में पविता-वह शुद्ध करेगा। १२। (धू)-काटना। रुद् में पुनाति वा पुनीते वह काटना है। १३। स्तुञ् ((स्तु)) आच्छादन करणा। रुद् में स्तुष्यति। शिद् में तस्तार ६८४-उसने आच्छादन किया या। तस्तरत् ६४०-उसने आच्छादन किया। 'वा' तस्तरे ६४०-उसने आच्छादन किया या। रुद् में स्तरिता 'वा' स्तरीता ६४८ वह उठेया। विधि शिद् में स्तुषीयात् 'वा' स्तुषीत ६४२। या शिद् में 'स्तीर्यात् (०) ६४३-हे ईश्वर वह उठे ॥

०३१। पिङ्सिष्वावात्मनेपदेषु । ०। २। ४२। वृञ् वृञ्भ्या मृदन्ताच्च परयोऽपिङ्सिष्वावात्स्व स्यात्तच्छि ॥

वृञ्-सेवना। वृञ्-स्वीकार करणा। चोर अदन्तभो घातु वै इन से परे शिद् चोर पिङ् लो आत्मनेपद में इट (पायस) बिलम्ब स होवे ॥

०३२। न सिद्धि । ०। २। ३६। वत इटो न दीघः। स्तरिपीष्ट। उश्च अनेन कित्त्वम्। स्तीर्पीष्ट। सिचि च परस्मैपदेषु। अस्तारीत् अस्तारिष्टाम्। अस्तारिपु। अस्तरिष्ट। अस्तीष्ट। १४। वृञ् हिंसायाम्। कृष्यति। कृषीते। चकार चकरे। १५। वृञ् वरणे। वृष्यति वृषीते। ववार। ववरै। वरिता। वरीता। उदोष्टे अत्युत्त्वम्। वर्यात्। वरिपीष्ट। वरिपीष्ट। अवारीत्। अवारिष्टाम्। अवरिष्ट। अवरीष्ट। अदृष्ट। १६। धृञ् कम्पने। धुनाति। धुनीते। धीता। धविता। अधा वीत्। अधविष्ट। अधोष्ट। १७। यष उपादाने। गृह्णाति। गृह्णीते। जघाप। जगहे ॥

हृङ्, वृञ्, और ऋदन्त धातु को लिङ् परे होते (१) दीर्घ न होंगे । आ० लिङ् में स्तरिषीष्ट ७३१ ५०५ वे से कित्त्व हुआ तो स्तीर्षीष्ट ७००, ६४५ हे ईश्वर वह ठके । लुङ् को ६४६ से इट् को दीर्घकानिषेध हुआ तो अस्तारीत् ५१३ उस ने ठका । (२) अस्तारि-
ष्टाम् । अस्तारिषु । 'वा' अस्तारिषट्, अस्तीर्षट् ५०५ । ७०० । ६४५ ॥ १४ । कृञ् (कृ) मारना
लट् में कृणाति ७३० 'वा' कृणीते = वह मारता है । लिट् में चकार 'वा' चकरे ५४७ = उस
ने मारा था ॥

१५ । वृञ् (वृ) = स्वीकार करणा । लट् में वृणाति वा वृणीते ७३० = यह स्वीकार
करता है । लिट् में ववार 'वा' ववरे ६४७ = उस ने स्वीकार किया था । लुट् में वरिता =
वरीता = ६४८ = वह स्वीकार करेगा । ६४४ से उत्त्व किया तो (आ० लिङ् में) वूर्यात्
६४५ 'वा' वरिषीष्ट ७३१ वूर्यीष्ट । लुङ् में अवारीत् ५१३ अवारिष्टाम् = 'वा' अवरिषट्
७३१ अवरीषट् ६४८ अवूर्यट् ६४४ उस ने स्वीकार किया १६ । धृञ् (धृ) = काम्पना । लट्
में धुनाति 'वा' ६३० धुनीते = वह काम्पाता है । लुट् में धोता 'वा' धविता ५०५ वह
काम्पावेगा । लुङ् में अधावीत् ६८२ 'वा' अधविषट् अधोषट् = उस ने काम्पाया । १७ अह
(अह्) = लेना । लट् में ६६६ गृह्णाति 'वा' गृह्णीते = वह लेता है । लिट् में जग्राह 'वा'
जगृहे = उस ने लिया था ॥

७३३ । ग्रहील्लिटि दीर्घ । ७ । २ । ३७ । एकाचोग्रहेर्विहितस्येटो
दीर्घान तु लिटि । ग्रहीता । गृह्णातु ॥

एकाच् (३) अह धातु से परे विहित जो इट् उस को दीर्घ होंगे । लिट् में न होंगे
लुट् में—ग्रहीता = वह लेगा । लोट् में = गृह्णातु ६६६ = वह लेवे ॥

७३४ । हलः श्नः शानञ्झी । ३ । १ । ८३ । हल. परस्य श्नः
शानजादेशो ह्यौ । गृहाण । गृह्यात् । ग्रहीषीष्ट । ह्यान्तेति न द्वि. ।
अग्रहीत् । अग्रहीष्टाम् अग्रहीषट् । अग्रहीषाताम् । १८ । कुष निष्कर्षे
कुष्याति । कौषिता । १९ । अश भोजने । अशनाति । आश । अशिता ।
अशिष्यति । अशनातु । अशान । २० । मुष स्तेये । मीषिता । मुषाण ।
२१ । ज्ञा अवबोधने । जज्ञौ । २२ । हृङ् सम्भक्तौ । हृणीते । ववृषे । ववृ-
ट्वे । वरिता । वरीता । अवरिषट् । अवरीषट् । अहत ॥ इति द्वाद्यादयः ॥

(१) दीर्घ जो ६४८ से पाया था (२) में दीनो लुङ् प्र० पु० हि वचन और वहु वचन के
रूप हैं । (३) एक स्वर वाला ।

इत् सं परे रना को यानप् होवे हि के परे होते । गुडाच ४४२ तू से । चाबीर्बिच
 में-गुग्गात् वा' अहीबीष्ट ०२३-हे इरवर वह अइव करे । सुट में ४८४ से हवि का
 नियेव हुपा तो-अयहीत् । अयहीष्टाम् ०२३-वे की सेते हुए । 'वा "अयहीष्ट" ०२३
 अयहीपाताम् । १८ कुप् मिचीङ्गा । कट् में । कुङ्वाति-कुट् म-कोविता-वह मिचोवे
 गा ॥ १८ । अग्-खाना । कट् में-अरनाति । सिद् में-घाम । कुट् में अगिता । कुट् में-
 अगिप्यति-वह खावेगा ॥ खोट में-अरनात्-वह खावे । अयान-तू खा ॥ २ मुव
 (मुप्) चुरागा । कुट् में-मोचिता-वह चुरावेगा । खोट म य में मुदाच ०२४+४४२
 १२१-तू चुरा ॥ २१ । डा-जानना । सिट् में-अघो ११०-वह जानता वा ॥ २१ । इव्
 (उ) सेवा करवी । कट् में-हचोते ६११-वह सेवा करता है । सिट् म य में-
 वउपे-तू सेवा करी बी । (१) वहइवे । कुट् में-परिता वरीता-वह सेवा करेगा ।
 सुट् में-अपरिष्ट ०२१ अपरीष्ट ६४८ अहत १०१ १०६-उस ने सेवा की ॥
 ॥ अत्रादि गच समाप्त हुपा ॥

अथ चुरादयः ॥१॥

। १ । चुर स्तेये ॥

अथ चुरादि अथ का अथन क्रिया जाता है ॥ १ ॥ चुर (चुर्)-चोरी करवी ॥

०३५ । सत्यापपायरूपयौषातक्षरलोकसेमाखीमत्वचवर्मवर्ष्यचूर्ण
 चुरादिभ्योचिच् । इ । १ । २५ । स्यार्धे । मुगन्तेति गुण । सनाद्यन्ता
 इति धातुत्वम् । तिप्श्वादि । गुप्चायादेर्गौ । चोरयति ॥

सत्याप पाय रूप वीचा, गुण इलोऊ सेना खीमन् त्वप् वमन् वर्ष्य चोर
 चूर्ण इन शब्दों से चोर चुरादि धातुओं से स्वास में चिच् प्रत्यय होते । ४७८ से 'गुण
 कर सेना । चोर यद्वा ४८६ में धातु संज्ञा होती है । पुन तिप् चोरयप् चादि प्रत्यय होते हैं ।
 ४१४ से गुण चोर एचायःपायाय' में (अप्) हुपा तो । कट् में चोरयति-वह चुराता है ॥

०४६ । चिचश्च । १ । ३ । ०४ । चिकन्तातात्मने पदं कतृगामि
 नि क्रियाफले । चोरयते । चोरयामास । चोरयिता । चोर्यात् चोरबि
 पीष्ट । चिशीति चर् । चोषणीति ऊस्वः । चि चित्स्वम् । इलादिभ्यः
 दीर्घाच्चोरित्यभ्यामन्य दीघः । अचूचुरत् । अचूचुरत । २ । कायवाचन
 प्रवन्धे । अल्लोप ॥

(१) ३४३ से उच्य होता है-तुम न सेवा की थी ।

णिजन्त से आत्मने पद ही परन्तु जब क्रिया का फल कर्ता को पहुँचाता हो ।
 चोरयते = वह अपने लिये चुराता है । लिट् में—चोरयामास ४८८ = उस ने चुराया । लुट्
 में—चोरयिता = वह चुरायेगा । आ० लिङ् में चोर्यात् ५५७ 'वा' चोरयिषीष्ट । लुङ् में
 ५५६ से चिु को चङ्, ५५८ से उपधा की ङ्स्व, औन ५५९ से द्वित्व, ४२२ से अभ्यास से
 (चु) रहा, और ५६२ से अभ्यास के लघु को दीर्घ हुआ तो अचूचुरत् 'वा' अचूचुरत ।
 २ । कथ = कहना । ४८९ से इस के अन्त्य अकार का लोप होता है ॥

७३७ । अच परस्मिन्पूर्वविधौ । १ । १ । ५७ । परनिमित्तोऽजा
 देशः स्थानिवत् स्थानिभूतादचः पूर्वत्वेन दृष्टस्य विधौ कर्तव्ये इति ।
 स्थानिवत्त्वान्नोपधावृद्धिः । कथयति । अग्लोपित्वाहीर्षसन्वज्ञावौ न ।
 अचकथत् । ३ गण संख्याने । गणयति ॥

पर को निमित्त मान, अच् के स्थान में यदि कोई आदेश हो तो वह आदेश जिस
 अच् के स्थान में हो उसी के तुल्य माना जावे, परन्तु जब कोई सूत्र उस अच् से पूर्व वर्ण
 में लगने वाला हो । इस से यद्वा अकार के लोप को स्थानिवत् मानने से (१) उपधा की
 ४८३ से वृद्धि न हुई । लट् में कथयति = वह कहता है ॥ अग्लोपि (२) होने से लुङ् में
 दीर्घ ५६२ और सन्वज्ञाव ५६० न हुए—अच कथत् ५५९ = वह कहता हुआ ॥ ३ । गण
 (गण) = गिनना । लट् में—गणयति ॥

७३८ । ईचगणः । ७ । ४ । ९७ । गणयतेरभ्यासस्य ईत्स्याच्चा-
 दचचङ्परे शौ । अजीगणत् । अजगणत् ॥ इति चुरादयः ॥

गण धातु के अभ्यास को ईकार हीवे । सूत्र में चकार के पठन से यह ज्ञात होता
 है कि, अकार भी पदान्तर में हीवे, जब चङ्परक णि परे हीवे तब । लुङ् में अजीगणत्
 वा अजगणत् ५५६, ५५९, ४२२, ४८२ = उस ने गिना ॥ चुरादि गण समाप्त हुआ ॥

अथ गयन्ताः ॥

अब णिजन्त धातुओं के साधने की प्रक्रिया (णिजन्तप्रक्रिया) का वर्णन किया जाता है ।

७३९ । स्वतन्त्रः कर्ता । १ । ४ । ५४ । क्रियायां स्वातन्त्र्येण वि-
 वक्षितोर्थः कर्ता स्यात् ॥

(१) जब कथ के अकार को स्थानि वत् माना तो उपधा रूप (यु) आगया
 अकार नहीं वृद्धि किसे हो । (२) कथ के अकार का ४८९ से लोप हुआ है और अकार
 अक् प्रत्याहार में है इस लिये कथ अग्लोपि है ॥

क्रिया में स्वतन्त्रता से जिस की विषया हो (कि यह क्रिया करने वासा है) वह कर्ता कहलाता है ॥

०४० । तत्प्रयोञ्ज्वी हेतुश्च । १ । ४ । ५५ । क्तु प्रयोञ्ज्वी हेतुसंज्ञ क्तुसंज्ञश्च ॥

कर्ता की प्रेरणा करने वासा 'हेतु संज्ञा वासा' और कर्तुं संज्ञक जाने में

०४१ । हेतुमति च । ३ । १ । २६ । प्रयोञ्ज्व्यापारे प्रेषणादी च वाच्ये धातीर्णिच् । भवन्त प्रेरयति भाषयति ॥

प्रेरणा करने वाले के व्यापार अर्थात् प्रेरणादिकों की जब प्रत्याग करना हो तब वातु से चिन् ०३३ होवे । दूसरा यह होना वाले की प्रेरणाकरता से (भाषयति) ॥

०४२ । धी पुयण्परि । ० । ४ । ८० । सनिपरे यद्वृत्त तद्वय वाभ्यासीत् क्तु स्यात् पत्रगयञ्कारिष्वणपरिषु परतः । अवीभवत् । ष्ठा गतिमिष्टत्तौ ॥

जिस धर्म से पने सन् (२) हो उस का अवयव जो अभ्यास उस के उच्चार की उच्चार होवे परन्तु जब अवयवपरक (३) पवर्ग (पूष् वृम्) वा यन् (य्वृद्) का लकार परे रहे तब । कुछ में अभीभवत् ३५६ ३५७, ३५८, ३६ । ष्ठा = ठहरना ५

०४३ अतिञ्जीम्होरीम्होयीह्माय्यातां मुञ्चि । ० । ३ । ३६ । स्थापयति ॥

क = जाना । जी = सज्जा करणी । हो = मानना । रो = हिंसा करणी । मुञ्चि = मज्ज करवा । ह्मायी = काम्यना । इन वातुओं की और आन्त्यागत वातुओं की चि परे होने (पुष्) होवे । स्थापयति = वह उसे ठहराता है ॥

०४४ । तिष्ठतेरित् । ० । ४ । ५ ॥ उपधायाश्चरूपरे षौ । अति ष्ठिपत् । घट षेष्ठायाम् ॥

स्या वातु की उपधा की उच्चार में उच्चार होवे जब चरूपरक चि परे जा ती । अतिष्ठिपत् ०४३ । घट (बद) = षेष्ठा करणी ॥

(१) यहाँ आदि पद में अव्ययवासा (सन्कार पूनक मुवादि प्रेरणा) और विद्यापना का भी पक्ष है । (२) (०३६) से होना (और) सम्बन्ध का भी पक्ष यह कर लेना । (३) अन्तरे से परे भिन्न के । इस पद के पक्ष में (पुमुपनि) में उच्चार न हुआ ।

७४५ ॥ मित्तां ङस्वः । ६ । ४। ६२। घटादीनां ज्ञपादीनां च ङस्वः ।

घटयति । ज्ञप ज्ञाने ज्ञापने च । ज्ञपयति । अजिज्ञपत् ॥

॥ इति ग्यन्तप्रक्रिया ।

(घट्) आदि और (ज्ञप्) आदि धातु जो मित् हैं उन को ङस्व होवे । घटयति ।

ज्ञप (ज्ञप्) = जानना 'वा' बनाना । लट् में—ज्ञपयति = वह जनाता है । लुङ् में । अजि-
ज्ञपत् । ५६०, ५६१ ॥ गिजन्त प्रक्रिया समाप्त हुई ॥

॥ सन्नन्ताः ॥

॥ सन् है जिन के अन्त में उन का वर्णन ॥

- ७४६ ॥ धातोः कर्मण समानकर्तृकादिच्छायां वा । ३ । १ । ७ ।

इषिकर्मणो धातोरिषिणैककर्तृकात्सन्वेच्छायाम् । पठ व्यक्तायां वाचि ॥

इच्छा क्रिया का कर्म जो धातु उस से यदि उस का और इच्छा रूप क्रिया का
कर्ता एक हो तो इच्छा अर्थ में सन् विकल्प करके होवे ॥ १ । पठ = पठना ॥

७४७ । सन्यडो ॥ ६ । १ । ६ ॥ सन्नन्तस्य यङन्तरस्य च प्रथम-

स्यैवाचो द्वेस्तोऽजाद्वेस्तु द्वितीयस्य । सन्यत । पठितुमिच्छति पिप-

ठिषति । कर्मण किम् । गमनेनेच्छति । समानकर्तृकात् किम् । शिष्याः

पठन्त्वित्तीच्छति गुरुः । वा ग्रहणाद्वाक्यमपि । लुङ्सनोर्घस्लृ ॥

सन् प्रत्ययान्त और यङ् प्रत्ययान्त धातु के प्रथम एकाच् (एक स्वर वाले) भाग
को द्वित्व होवे, परन्तु यदि उस प्रथम भाग के आदि में अच् ही तो द्वितीय एकाच् भाग
को द्वित्व होवे । ५६१ से अभ्यास के अकार को इकार किया तब पिपठिषति = वह पठने
की इच्छा करता है । ७४६ सूत्र में "कर्मण," यह पद क्यों कहा? इस का यह उत्तर है कि
गमनेनेच्छति = यहां गमन रूप करण से न सन् हो जावे । पुन' यदि कोई कहे कि वहा ही
"समान कर्तृकात्" यह पद क्यों कहा? तो इस का यह उत्तर है कि—शिष्या पठन्त्वित्-
तीच्छति गुरुः = शिष्य पठे यह गुरु चाहता है । यहा पठने वाले शिष्य हैं इच्छा करणे
वाला गुरु कर्ता भिन्न है यहा पठ धातु से सन् न ही जावे । उसी सूत्र में (वा) ग्रहण से
दूमरे पक्ष में (१) वाक्य ही पडा रहता है । सन् परे होते ५८८ से (घट्) धातु को
(घस्लृ) आदेश होता है ॥

०४८॥ स स्यार्धधातुके । ० । ४ । ४६ । सस्य त स्यात्सादा

वार्धधातुके । अत्तुमिच्छति विघत्सति । एकाच इति नेट् ॥

यादि धार्धधातुके परे हो तो स् खो त् होवे । विघत्सति - वह खाने की इच्छा करता है । १. ४ से यहां इट् का निषेध हुआ ॥

०४९ । अजन्तगमां सनि । ६ । ४ । १६ । अजन्तामां वृन्तेरजादेश्च

गमेरच दीर्घो भ्रलादौ सनि ॥

अजन्त धातु की पीर वृन् पीर अजादेश्च मम् (इप् इव के स्थान में मम्) तिप् की दीर्घ दीर्घ भ्रलादि सन् परे हो तब ॥

०५॥ इकी भ्रक्ष् । १ । २ । ९ । इगन्ताभ्रक्षादि सन् कित् ।

प्लव वृद्धाती । क्तुमिच्छति । चिकीयति ॥

इगन्त धातु से भ्रक्षादि सन् कित् होवे । ० से इट् में चिकीयति - ६४१ वह करने की इच्छा करता है ॥

०५१॥ समिद्यद्गुहोश्च । ० । २ । १२ । यद्गुहोसगन्ताश्च सन

इएन स्यात् । युभूषति ॥ इति सनन्ताः ॥

यद् - सना । गुह - छल खेना । पीर उक् प्रत्याहार है अन्त में जिम के इन से परे सन् को इट् न हो । इट् में युभूषति ०४१ । ०४० । ४२१ । ४२५ - वह होने की इच्छा करता है ॥ सनन्त प्रक्रिया समाप्त हुई ॥

॥ अथ यङन्ता ॥

। यह यङन्त प्रक्रिया का वचन किया जाता है ।

०५२॥ धातीरेकाचो इजादेः क्रियासमभिहारे यङ् इ । १ । २२

पौनःपुन्ये मृशार्थे च द्योत्ये धातीरेकाचो इजादेर्यङ् ।

क्रिया का बारंबार करवा या क्रिया का अतिशय प्रकाश करवा जा तो इसादि (१) यदाच् धातु में यङ् हो ॥

०५३॥ गुणोयङ्लुको ० । ४ । ८२ । अभ्यासस्य गुणोयङि मङ्

लुक्ति च । डिदन्तत्वादात्मनेपदम् । पुन पुनरतिशयेन वा भवति ।

योमूयते । योमूयारुचक्रे । अयोमूयिष्ठ ।

(१) इन से यादि में जिम के पीर एक से एक जिस म ।

यङ् परे हो 'वा' यङ् का लुक् भया हो तब अभ्यास को गुण हो। यङ् को डिट् होने से यङन्त धातु से आत्मनेपद (१) होता है। वीभूयते = वह बारबार 'वा' अतिशय करके होता है। लिट् में वीभूयाञ्चक्रे। लुट् में-अवीभूयिष्ट = वह बारबार हुआ।

७५४ ॥ नित्यं कौटिल्ये गतौ ३ । १ । २३ गत्यर्थात्कौटिल्ये एव

यङ् न तु क्रियासमभिहारे ॥

गति अर्थ वाले धातु से सर्वदा कुटिलता अर्थ में यङ् हो। क्रिया समभिहार में न हो।

७५५ ॥ दीर्घोऽकितः ७ । ४ । ८३ अकितोऽभ्यासस्य दीर्घो यङ्

लुकोः । कुटिलं व्रजति । वात्रज्यते ।

अकित अभ्यास को दीर्घ होवे, जब यङ् 'वा' उस का लुक् होवे तब। वा व्रज्यते = वह टेढा जाता है ॥

७५६ ॥ यस्य हलः ६ । ४ । ४६ हलः परस्य यस्य लोप आर्धधातुके ॥ आदिः परस्य । अतीलोपः । वात्रजाञ्चक्रे । वात्रजिता ।

आर्धधातुक प्रत्यय परे होते हल् से परे (य) का लोप होवे। लिट् में आम् के परे होते ष के अनुसार य् का लोप हुआ। पुन. ४६६ से 'ध' का लोप हुआ। वा व्रजाञ्चके = वह टेढा गया। लुट् में-वात्रजिता = वह टेढा जावेगा ॥

७५७ ॥ रीगृदुपधस्य । ७ । ४ । ६० । ऋदुपधस्य धातोरभ्यासस्य रीगागमो यङ् लुकोः । वरीहृत्यते । वरीहृताञ्चक्रे । वरीहृतिता ॥

यङ् और यङ् के लुक् में ऋदुपध (२) धातु को अभ्यास को 'रीक्' का आगम होता है। लट् में वरीहृत्यते = वह बारबार रहता है। लिट् में-वरीहृताञ्चक्रे ७५६ लुट् में वरीहृतिता = वह बारबार रहेगा ॥

७५८ ॥ जुम्नादिषु च ८ । ४ । २६ यात्वं न । नरीनृत्यते । जरीगृह्यते ॥

॥ इति यङन्त प्रक्रिया ॥

जुम्नादियों में न् को ण् न हो। नरीनृत्यते ७५७ = वह बारबार नाचता है। जरीगृह्यते ७५७ ॥ ॥ यङन्त प्रक्रिया समाप्त हुई ॥

~~॥~~ यङ्लुगन्ताः ॥ ~~॥~~

॥ यङ्लुगन्त प्रक्रिया का वर्णन ॥

७५९ ॥ यङोऽचि च २ । ४ । ७४ यङोऽचि प्रत्यये लुक् स्याञ्च-

(१) ४०४ से होता है। (२) जिस की उपधा में 'ञ्' होवे ॥

कारात् यिनापि क्वचित् । अनेमित्तिकोऽयम् । अन्तरङ्गत्वादादौ भवति
 सत प्रत्ययलक्षणमेव यङ्गन्तत्वाद्द्वित्वम् । अभ्यासकार्यम् । घातुत्वा
 ललाटादयः । शेषात्कसरौति परस्मैपदम् । चर्करौतल्लघेत्यदादौ पाठा
 चक्षुषीलुक् ॥

जब यह प्रत्यय परे हो तब यह का लुक् हो । सूत्र में चकार पक्ष से यह बात
 बुझा कि उस के बिना भी नहीं होता है इस लिये यह (२) यह का लुक् अनेमित्तिक है
 क्यों कि किसी भी निमित्त को मान कर नहीं बुझा । अन्तरङ्ग होने से यह यह का लुक्
 प्रथम होता है । पुनः २ ४ से प्रत्यय लक्षण मान यङ्गन्त होने से ०४० से द्वित्व बुझा ।
 और अभ्यास कार्य भी होते हैं । ४८६ से यङ्गन्त की घातु संज्ञा होने से लट् पाठि प्रत्यय
 होते हैं । ४ ६ से परस्मैपद के प्रत्यय किये जायें । ६२ में लिख लिया है कि यङ्गुगन्त
 का पाठ घटादि गण में है इस हेतु से यप् का लुक् १८२ से बुझा ।

०६ ॥ यङो वा ७ । ३ । ६४ यङ्गुगन्तात्परस्य इत्यादि पित
 सार्वधातुकस्येड्वा स्यात् । भूसुवीरिति निषेधो यङ्गुकि भाषायां न
 वीभूतु तैत्तिक् इति छन्दसि निपातनात् । वीमवीति । वीभोति । वीभूत
 अदभ्यस्तात् । वीभुवति । वीभवाठ्-षकार । वीभवामास । वीभविता ।
 वीभविष्यति । वीभवीतु । वीभीतु । वीभूतात् । वीभूताम् । वीभुवतु ।
 वीभूहि । वीभवामि । अवीमवीत् । अवीभोत् । अवीभूताम् । अवीभवु
 वीभूयात् । वीभूयाताम् । वीभूयु । वीभूयात् । वीभूयास्ताम् । वीभू
 यासु । गातिस्येति सिधो लुक् । यङोबेतीट्पक्षे गुणं वाधित्वा नित्य
 त्वाद्भुक् । अवीमवीत् । अवीभोत् । अवीभूताम् । अवीभवुः । अवीभवि
 ष्यत् ॥ ॥ इति यङ्गुगन्ताः ॥

यङ्ग (२) गुगन्त से परे इत्यादि पित् सावधातुक हो तो उसे इट् का धातु
 विक्षण करके होवे ॥

४६८ म जो म् धातु को गुण का निषेध है वह मापा के युङ्गुग में नहीं भवता

(१) चकार पक्ष से भवति । (२) त्रिषु धातु के यप् का ०१८ से लुक् बुझा हो ।

“बोभूतु” ऐसा वेद में निपातन (१) करने से। लट् में-बोभवीति, बोभोति ०५६-०५३ = वह बारबार होता है। बोभूतु = वे दो बारबार होते हैं। ३६६ से भू को अत् हुआ, बोभुवति = वे बारबार होते हैं। लिट् में-बोभवाञ्चकार (वा) बोभवामास। लुट् में-बोभविता। लृट् में-बोभविष्यति = वह बारबार होगा। लोट् में-बोभवीतु। बोभोतु ०५६, ०६०, ०५३ = वह बारबार होवे। बोभूतात् ४३८। बोभूताम्। बोभुवतु ६३६। बोभूहि = तू बारबार हो। बोभवानि ४४३, ४४४ में बारबार होवू। लङ् में-अबोभवीत् (वा) अबोभोत् = वह बारबार हुआ। अबोभूताम् = वेदो०। अबोभवुः = वे०। विधि लिङ् प्रथ० पु में बोभूयात् १ व०। बोभूयाताम् २ व०। बोभूयु ३ व०। आ० लिङ् में-बोभूयात्। बोभूयास्ताम्। बोभूयासु = हे ईश्वर वे बारबार होवे। लुङ् में ४६७ से सिच् का लुक् हुआ। और ०६० में जिस पद में ईट् आता है वहा ४१४ गुण को बाध कर नित्य (२) होने से ४१६ से लुक् होता है। अबोभूवीत् (वा) अबोभोत् = वह बारबार हुआ। लृङ् में-अबोभविष्यत् = यदि वह बारबार होवे ॥ ॥ यङ्लुगन्त प्रक्रिया समाप्त हुई ॥

॥ अथ नामधातवः ॥

॥ अब नामधातुओं का वर्णन किया जाता है ॥

०६१ ॥ सुप् आत्मनः क्यच् ३। १। ८ द्वषिकर्मणः एषितुः संबन्धिनः सुबन्तादिच्छायामर्थे क्यज्वा।

इष् का कर्म और इच्छा करणे वाले का आत्मसम्बन्धी जो सुबन्त उस से इच्छा अर्थ में विकल्प करके क्यच् प्रत्यय होवे ॥

०६२ ॥ सुपो धातुप्रातिपदिकयोः २, ४, ७१ एतयोरवयवस्यसुपो लुक् ॥

धातु (वा) प्रातिपदिक का अवयव जो सुप् उस का लुक् होवे ॥

०६३ ॥ क्यचि च ७। ४। ३३। अवर्णम्य ईं। आत्मनः पुत्रमिच्छतिपुत्रीयति ॥

क्यच् परे होते अवर्ण को ईं होवे। पुत्रीयति = वह अपने लिये पुत्र की इच्छा करता है ॥

(१) “बोभूतु” इस वैदिक रूप में गुण न हो इसी लिये “बोभूतु तेतिक्ते” इत्यादि सूत्र से ‘बोभूतु’ ऐसा प्रयोग निपातन किया है। परन्तु यदि ४६८ से गुण निषेध वेद में न होता तो पुनः निपातन क्यों किया, इस से यह सिद्ध हुआ कि वेद में वह निषेध लगता है तो निपातन सार्थक हुआ। और वेद से विना अन्य शास्त्रों के यङ्लुक् में वह निषेध नहीं लगता है। (२) जो अपने विरोधी को लगने पर भी हो जाये वह विधि नित्य कहलाती है।

०६४ ॥ न वये १।४। १५ वयचि वयञि च नान्तमेव पदं नाम्बत्
 नलोप । राञीयति । नाम्तमेवेति किम् । वाच्यति । इति च । गौर्यति ।
 पूयति । घातोरित्थेव नेह दिवमिच्छति दिव्यति ॥

वयच् वा वयञ् परे हो ता नकारान्त की हो पद माना जाए । घोर की पद संज्ञा
 न हो । १८४ सं नकार का लोप हुआ । राञीयति—वह रामा की इच्छा करता है ।
 “नाम्तमेव” यह वहाँ कहा—उत्तर देता है (१) वाच्यति—वह बाबी की इच्छा करता
 है । ६४६ से दीघ करने पर गौर्यति—वह बाबी की इच्छा करता है । पूयति—वह पुर
 की इच्छा करता है । ६४६ से दीर्घ चातु की हो जाता है इस से दिव्यति (२) (वह स्वर्ग
 की इच्छा करता है) में दीघ न हुआ ॥

०६५ ॥ वयस्य विभाषा ६।४।५० इल परयो वयञ् वयञीर्लोपी
 वार्धधातुके । चादेः परस्व । चतीलोप । तस्य स्थानिवत्वावशेषूपधगुबीन ।
 समिधिता । समिधियता ।

वार्धधातुक परे होते वच् से परे वयच् (वा) वयञ् हो तो उस का लोप है ।
 ८२ से व् का लोप घोर ४८८ से अकार का लोप होता है । अकार के लोप को स्थानिवत्त्व
 मान कर ४०८ से गुण न हुआ । समिधिता (वा) समिधियता—वह सवड़ी की इच्छा करेगा ।

०६६ ॥ काम्यश्च । ३।१।८ । अत्रविषये काम्यच् । पुत्रमात्मन
 वृच्छति । पुत्रकाम्यति पुत्रकाम्यिता ॥

अत्र विषय ७२१ सं काम्यच् प्रत्यय भी हो । अट् में पुत्रकाम्यति । सुट् सं-पुत्रकाम्यिता
 ०६७ ॥ उपमानादाचारे ३, १, १० उपमानात् कामयः सुवन्तादा
 चारेऽर्थे वयञ् । पुत्रमिवाचरति पुत्रीयति छात्रम् । विष्णुयति द्विजम् ।

उपमान वाचक कम संज्ञक मुहूर्त से आचार अथ में वयच् हो । पुत्रीयति ७२१
 छात्रम्—वह विद्यार्थी की पुत्र के समान मानता है । विष्णुयति ३१२ द्विजम्—वह ब्राह्मण
 की विष्णु के तुल्य मानता है ।

०६८ ॥ वा० । सवप्रातिपदिकोभ्यः विवक्षया यत्तव्यः । चतीगुणे ।
 कृष्ण वृवाचरति कृष्णति । स्व वृवाचरति स्वति । स्वस्वी ।

(१) यदि नाम्त मेव यह न कहते तो वाच्यति सं ३२८ से कृष्ण वाचाता परन्तु
 जब यहाँ नाम्त की हो पद संज्ञा करी तो वाच् की पर संज्ञा न हुई तब कृत्य भी न
 हुआ । (२) यहाँ दिव् यच्च स्वमवाचन प्रातिपदिक है चातु नहीं है ।

सभी प्रातिपदिकों से क्विप् विकल्प करके ही ऐसा कहना चाहिये । २८५ से पर
रूप कर लेना । कृष्णति = वह कृष्ण के तुल्य कार्य करता है । स्वति = वह अपने तुल्य
कार्य करता है । लिट् स्वस्वी ५१७ = उस ने अपने समान कार्य किया ।

७६६ ॥ अनुनासिकस्य क्विबभाली. क्ङिति ६। ४। १५ अनुना-
सिकान्तस्योपधाया दीर्घः स्यात्क्वौ भलादौ च क्ङिति । इदमिवाच-
रति इदामति । राजेव राजानति । पन्था इव पथीनति ।

अनुनासिकान्त की उपधा को दीर्घ ही जब क्विप् (वा) भलादि कित् वा ङित्
प्रत्यय परे ही इदामति = वह इस के तुल्य काम करता है । राजानति = वह राजा के
तुल्य काम करता है । पथीनति = वह मार्ग के तुल्य आचरण करता है

७७० ॥ काष्ठाय क्रमणे ३, १, १४ चतुर्थ्यन्तात्काष्ठशब्दादुत्साहे
क्वङ् । काष्ठाय क्रमते । काष्ठायते । पापं कर्तुमुत्सहत् इत्यर्थः ॥

चतुर्थ्यन्त काष्ठ शब्द से उत्साह अर्थ में क्वङ् प्रत्यय हो । काष्ठायते = ७६२, ५१२
= वह पाप करणे को उत्साह करता है ।

७७१ ॥ शब्दवैरकलहाभ्रकरणमेघेभ्यः करणे । ३। १। १७। एभ्यः
कर्मभ्य करोत्यर्थे क्वङ् । शब्दं करोति शब्दायते ॥

शब्द । वैर । कलह = झगडा । अभ्र = मेघ । करण = पाप । मेघ । जब ये कर्म ही ती
जन से करणे (ने) अर्थ में क्वङ् प्रत्यय होवे । शब्दायते ५१२ = वह शब्द करता है ।

७७२ ॥ तत्करोति तदाचष्टे । इति णिच् ।

वह उस काम को करता है वा उस को कहता है इन अर्थों में णिच् प्रत्यय होवे ।
इस से णिच् हुआ ।

७७३ । प्रातिपदिकाद्वात्वर्थे बहुलमिच्छवच्च। प्रातिपदिकाद्वात्वर्थे
णिच् स्यात् इच्छे यथा प्रातिपदिकस्य पुवङ्गावरभावटिलोपविन्मत्तुब्लो-
पयणादिलोपप्रस्थस्फाद्यादेशमसंज्ञास्तद्वशावपि स्यु । इत्यग्लोप ।
घटं करोत्याचष्टे वा घटयति ॥ इतिनामधातवः ॥

प्रातिपदिक से धात्वर्थ में णिच् प्रत्यय होवे । और उस को परे होते इच्छन् प्रत्यय
के तुल्य कार्य होवे अर्थात् जब इच्छन् १३०० परे होता है तब जैसे पुवङ्गाव षट् को र् आदेश
टि का लोप, विन् और मत्तुप् का लुक्, यणादि का लोप, मिय को म, स्थिर को स्थ, आदेश

घोर म संज्ञा होती है वैसे ही बि परे रहे तब भी ये सभी काय होंगे । इस से अस्त्रीय (घट की टि का लोप) हुआ । तब घटयति - वह घड़े को घनता है वा घट को कटता है ।

॥ नामधातु प्रक्रिया समाप्तहूर्ण ॥

॥ अथ कर्ह्वाद्य ॥

कर्ह्वादिर्षो का वचन ।

०७४ ॥ कर्ह्वादिभ्योयक् । [णभ्यो धातुभ्यो नित्यं यक् स्यात् स्वार्थे । १ । कर्ह्वाञ् गात्रविघ्नपथे । कर्ह्यति । कर्ह्यते । इत्यादि ॥

कर्ह्वादि धातुओं से परे स्वात् सं यक् प्रत्यय नित्य होते १ कर्ह्वाञ् (कर्ह्) - सुबनाना - पुरकना । कर्ह् से कर्ह्यति वा कर्ह्यते - वह पुरकता है । इत्यादि घोर भी जान लेने । ॥ कर्ह्वादि प्रक्रिया समाप्तहूर्ण ॥

॥ अथात्मनेपदम् ॥

आत्मनेपद प्रक्रिया का वचन ।

०७५ ॥ कर्त्तरि क्मव्यतिहारि । १ । ३ । १४ । क्रियाविनिमये । द्योत्ये कर्त्तयात्मनेपदम् । द्यतिलुनीते । अन्यस्य योग्यं स्वर्णं करोतीत्ययः ॥

कब क्रिया का विनिमय पदक बदल प्रकार करना हो तब कता पद में आत्मनेपद है । द्यतिलुनीते - पद क योग्य आठना को कर्म उसे ब्राह्मण करता है ।

०७६ ॥ न गतिहिसायेभ्यः । १ । ३ । १५ । द्यतिगच्छन्ति । द्यतिष्मन्ति ।

गति घोर द्विधा पद वाले धातु से आत्मनेपद न होते । द्यतिगच्छन्ति - वे परस्पर विरह जाते हैं । द्यतिष्मन्ति - वे परस्पर विरह मारते हैं ।

०७७ ॥ निविशः । १ । ३ । १० । निविशते ।

नि पूर्वक बिग धातु से आत्मनेपद हो । निविशते - वह भीतर प्रवेश करता है ।

०७८ ॥ परिक्रीषीते क्रिय । १ । ३ । १८ । परिक्रीषीते ।

विक्रीषीते । अक्क्रीषीते ।

परि वा वि वा अक् उपमग से पर को धातु से आत्मनेपद होते । परिक्रीषीते अक् गान्य होता है । विक्रीषीते अक् बनता है । अक्क्रीषीते अक् गोन्यता है ।

७७६ । विपरास्यां जेः । १ । ३ । १६ । विजयते । पराजयते ॥

वि वा परा उपसर्ग से परे जि धातु हो तो उसे आत्मनेपद ही । विजयते, वह जीतता है । पराजयते, वह हार करता है ।

७८० । समवप्रविभ्यः स्थः । १ । ३ । २२ । सन्तिष्ठते अवतिष्ठते । प्रतिष्ठते । वितिष्ठते ॥

सम् वा अच् वा प्र वा वि इन से परे ठा धातु से आत्मनेपद हो । सन्तिष्ठते, वह अच्छी रीति से स्थित होता है । अवतिष्ठते, वह ठहरता है । प्रतिष्ठते, वह प्रकर्म से ठहरता है । वितिष्ठते, वह विशेष से स्थित होता है ।

७८१ । अपङ्गवे ज्ञ । १ । ३ । ४४ । शतमपजानीते । अपलपतीत्यर्थः ।

क्षिपाने अर्थ से ज्ञा धातु से आत्मनेपद ही शतमपजानीते । वह सौ रुपये के कर्जे से मुकरता है ॥

७८२ । अकर्मकाच्च । १ । ३ । ४५ । सर्पिषोजानीते । सर्पिषो-
पायेन प्रवर्त्तत इत्यर्थः ॥

अकर्मक ज्ञा धातु से आत्मनेपद ही । सर्पिषोजानीते, घृत उपायसे वह प्रवृत्त हीबा है ।

७८३ । समस्तृतीयायुक्तात् । १ । ३ । ५४ । रथेन सञ्चरते ॥

सम् पूर्वक श्रीर तृतीयान्त से युक्त चर धातु से आत्मनेपद ही । रथेन सञ्चरते वह रथसे जाता है ॥

७८४ । दाणश्च सा चेच्चतुर्थ्यर्थे । १ । ३ । ५५ । समोदाणस्तृ-
तीयान्तेन युक्तादुक्तं स्यात्तृतीया चेच्चतुर्थ्यर्थे । दास्या संयच्छते कामी ॥

सम् पूर्वक दाष् (दा) धातु यदि तृतीयान्त से युक्त हो तो उस से परे आत्मनेपद ही परन्तु यदि तृतीया चतुर्थी के अर्थ में हो तब । दास्या संयच्छते कामी, कामी दासी को देता है ।

७८५ । पूर्ववत्सनः । १ । ३ । ६२ । सनः पूर्वोद्योधातुस्तेन तुल्यं
सन्नन्तादप्यात्मनेपदं स्यात् । एदिधिपते ॥

सन् प्रत्यय से पूर्व जो धातु जैसा ही उसी के तुल्य सन्नत से भी आत्मनेपद ही होता है ।

७८६ । हलन्ताच्च । १ । २ । १० । इक्समीपाञ्चल परीभलादि-
सन् कित् । निविचिचते ॥

इत् के समीप जो इस् तिस से परे (१) भ्रष्टादि सन् कित् संज्ञक हो । निविचिञ्चते ००० ०८५ यह प्रयोग करके की रक्षा करता है ।

०८० । गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्वप्रतियत्नप्रक्षयनोपयोगेषु
 वृत्तः । १ । २ । ३५ । गन्धम सूचनम्, उत्सुकते सूचयतीत्यर्थ । अव
 क्षेपणं भस्सनम्, श्येनो वलिकामुत्सुकते । भरत्सयतीत्यर्थः । हरिमुप-
 कुरते । सेवत इत्यर्थ । परदारान् प्रकुरुते । तेषु सङ्घसा प्रवर्तते । एधोद
 क्षस्वीपस्कुवते । गुणमाधत्ते । कथा प्रकुरुते, कथयतीत्यर्थ । शर्तं प्रकु-
 रते । धर्मादि विनियुक्तो । एषु किम् । कटं करोति । मुञ्जीऽनवने । शोदनं
 भुञ्जते । अनवने किम् । महीं भुनक्ति ॥ इत्यात्मनेपदप्रक्रिया ॥

गन्धनादि चर्चों में जो धातु से आत्मनेपद हो । गन्धन चुगली करनी (कैरे)
 उत्सुकते यह चुगली करता है । अवक्षेपण भस्सन श्येनो वलिकामुत्सुकते याक बटेरी का
 भय देता है । हरिमुपकुरुते यह हरि की सेवता है । परदारान् प्रकुरुते यह पर की खे धार
 बलात्कार करता है । (२) एधोदक्षस्वीपस्कुवते क्वक्षी पानी को अपनागुच देती है । कथा
 प्रकुरुते यह कथा करता है । शर्तं प्रकुरुते यह धर्मादि की इपया बाँटता है । मुञ्जीं चर्चोंमें
 पक्षी कहाँ उत्तर देता है कि न कहोगे तो (कटं करोति) यहाँ भी आत्मनेपद हो जावेगा ।
 ०१२ की स्मरण कराता है । शोदनं मुञ्जते । उस ०१२ सूच में 'अनवने' कहीं कहाँ उत्तर
 देता है "महीं भुनक्ति" यहाँ आत्मनेपद न होजावे ॥ आत्मनेपद प्रक्रिया समाप्त हुई ॥

॥ परस्मैपदम् ॥

परस्मैपद प्रक्रिया का बचन ।

०८८ । अनुपराभ्यां वृत्तः । १ । २ । ०८ । कर्तृगे च फले गन्ध
 मादौ च परस्मैपदं स्यात् । अनुकरोति । पराकरोति ॥

यस क्रियापद (१) कर्तृमामि हो तब गन्धनादि ०८० चर्चों में अनु या परा से
 परे लडातु च परस्मैपद हो । अनुकरोति यह नकल करता है । पराकरोति यह निराकरण
 करता है ।

(१) विना इत् के सन् भ्रष्टादि होता है । (२) यहाँ प्रतियत्न का अर्थ मुषपद्वच है ।

(३) कथा को पढ़ता हो ।

७८६ ॥ अभिप्रत्यतिभ्यः । क्षिपः । १ । ३ । ८० । क्षिप प्रेरणे ।

स्वरितेत् । अभिक्षिपति ।

अभि, प्रति और क्षति उपसर्ग से परे जो क्षिप धातु तिस से परस्मैपद होवे । क्षिप, फेंकना । यह धातु स्वरितेत् है । अभिक्षिपति, वह सब प्रकार से फेंकता है ।

७८० ॥ प्राहहः । १ । ३ । ८१ । प्रवहति ।

प्र से परे वह धातु से परस्मैपद हो । नदी प्रवहति, वह नदी बहती है ।

७८१ ॥ परेर्मृषः । १ । ३ । ८२ । परिमृषति ।

परिपूर्वक मृष से परस्मैपद होवे । परिमृषति, वह सहता है ।

७८२ ॥ व्याङ्परिभ्यो रमः । १ । ३ । ८३ । रमु क्रीडायाम्
विरमति ॥

वि आङ् परि, से परे जो रम् धातु तिस से परस्मैपद प्रत्यय होवे । रमु (रम्) क्रीडा करणी । विरमति, वह निवृत्त होता है ।

७८३ । उपाच्च । १ । ३ । ८४ । यज्ञदत्तमुपरमति । उपरमयती-
त्यर्थः । अन्तर्भावितण्यर्थोऽयम् । इति पदव्यवस्था ।

उप उपसर्ग पूर्वक रम् धातु से परस्मैपद होवे । यज्ञदत्तमुपरमति, वह यज्ञदत्त को निवृत्त करता है (१) यज्ञा णि का अर्थ अन्तर्गत है ॥ (२) पदव्यवस्था की प्रक्रिया समाप्त हुई ॥

॥ भावकर्मप्रक्रिया ॥

भावकर्म प्रक्रिया का वर्णन ।

७८४ । भावकर्मणो । १ । ३ । १३ । लस्यात्मनेपदम् ॥

भाव (वा) कर्म अर्थ में लकार के स्थान में धातु से परे आत्मनेपद सन्नक प्रत्यय होवे ॥

७८५ । सार्वधातुके यक् । ३ । १ । ६७ । भावकर्मवाच्चिनि धातो-
र्यक् सार्वधातुके । भावः क्रिया सा च भावार्थकलकारेणानूद्यते । युष्म-
दस्मद्भ्यां सामानाधिकारण्याभावात्प्रथम पुरुष । तिङ्वाच्यक्रियाया

(१) यहाँ उप पूर्वक रम का निवृत्त होना अर्थ नहीं किन्तु निवृत्त करणा अर्थ है ।

(२) आत्मनेपद और परस्मैपद इन दोनों की व्यवस्था (गति) । (३) यहाँ लकार का अर्थ भाव है और युष्मद् और अस्मद् से कर्ता का बोध होता है, यही एकाधिकरणत्व का अभाव है ।

अद्रव्यरूपत्वेन हित्वाद्यप्रतीतेर्म द्विवचमाद्दि । किन्त्वेक्यचनमेवीरुस
गंत । त्वया मया अन्यैश्च भूयते । वभूवे ॥

भाव 'वा' क्तम का भावक सावधातुक्त परे जो तो घातु से यच् प्रत्यय होते । भाव
क्रिया की कहते हैं और पच क्रिया भाव पच के लकार से चनुवाट की जाती है ।
(१) युष्मद् और अस्मद् के साथ (भाव की) एकाधिकारता के प्रभाव से भाव प्रत्ययान्त
से प्रथम पुरुष होता है । तिङ् वाच्य क्रिया द्रव्यरूप नहीं है इसी से हित्वादिकों की
प्रतीति के अभाव से द्विवचन और बहुवचन नहीं होते किन्तु स्वभाव से एतदचन ही
क्रिया जाता है । उद् में त्वया मया अन्यैश्च भूयते तुम हम और इतर लोग होते हैं ।
तिङ् मं वभूवे ४१८ पच रूप भा ।

७२६ । स्यसिच्सौमुट्तासिपु भावकमणीरुपदेशेऽन्वययष्टर्गा
वा चिपवदिट् च । ६ । ४ । ६२ । उपदेशेयोऽच् तदन्तानां इमादीनां च
त्रिणीवाङ्कार्ये वा स्यात् स्याद्विषु भावकमणोगम्यमानयो स्यादीना
सिहागमश्च । चिश्चद्वावपक्षेयमिट । चिश्चद्वावावृत्ति । भाविता । भविता ।
भाविष्यते । भविष्यते । भूयताम् । अभूयत । भाविषीष्ट । भविषीष्ट ।

लकार के भाव वा क्तम मं होने पर उपदेश में जो अच् तदन्तां को (उपदेश में
पञ्चम घातुर्धा की) और इन पच इय । इन घातुर्धों को चिप् प्रत्यय होते जैसे जो कार्य
होता है विसा ही पच संज्ञा निमित्तक काय विकल्प करके जो परान्तु क्तम स्य सिच् सीमुट्
ताम् परे जो तब और स्य आदिकों को इट भी होते । जिस पच में चिश्चद्वाव पचां ही
यच् इट भी होता है । चिश्चद्वाव के होने से १८५ उच्चि होती है । मुट् में भाविता भविता
मुट् में भाविष्यते भविष्यते । उद् में भूयताम् । उद् में अभूयत । आ तिङ् में भावि-
षीष्ट भविषीष्ट ।

७२७ । चिष् भावकमणी । ६ । १ । ६६ । च्छेचिष् स्याद्वावक
मवाचिमि ते परे । अभवि । अभविष्यत । अभविष्यत । अकर्मकीऽप्यु
पसगवशात्सक्तमक । अनुभूयते आमर्द्दश्चैवेच त्वया मया च । अनुभूयते
त्वमनुभूयसे । अहमनुभूये । अन्वभावि । अन्वभाविष्याताम् । अन्वभवि
ष्याताम् । चिषीप । भाव्यते । भावयाञ्छते । भावयाञ्चभूये । भावया
मासे । चिश्चदिट् । भाविता । आभीसत्वेनासिहत्वास्त्रिषीप । भावयिता

भावविषीष्ट । अभावि । अभावविषाताम् । अभाविषाताम् । बुभूष्यते ।
बुभूषाञ्चक्रे । बुभूषिता । बुभूषिष्यते । वीभूष्यते । वीभूषिष्यते ।
अकृतसार्वधातुकयोर्दीर्घः । स्तुयते विष्णुः । स्ताविता । स्तोता । स्तावि
ष्यते । स्तोष्यते । अस्तावि । अस्ताविषाताम् । अस्तीपाताम् । ऋ गतौ ।
गुणोत्तीति गुणः । अर्थते । स्मृ स्मरणे । स्मर्यते । सस्मरे । उपदेशग्रह-
णाच्चिण्वदिट् । आरिता । अर्ता । स्मारिता । स्मर्ता । अन्दिदितामिति
नलोपः । स्वस्यते । इदितस्तु । नन्द्यते । सरूपसारणम् । इज्यते ॥

भाव वा कर्म का वाचक 'त' परे हो तब च्लि को चिण् हीवे । लुङ् में अभावि
६०७, १८६ लृङ् में अभाविष्यत ७८६ (वा) अभविष्यत । अकर्मक भी उपसर्ग के सयोग से
सकर्मक (१) होजाता है । अनुभूयते आनन्दश्चैत्रेण त्वया मया च । (२) चैत्र से तुमसे और
हम से आनन्द अनुभव किया जाता है । बहुवचन में (३) अनुभूयन्ते । त्वमनुभूयसे, तू
किसी से अनुभव किया जाता है । अहमनुभूये, मैं अनुभव किया जाता हूँ । लुङ् में अन्व-
भावि, अनुभव किया गया । अन्वभाविषाताम् वा अन्वभविषाताम् । ७८६ वे दो अनुभव
किये गये ।

णिजन्त को कर्म में लाने पर ५५७ से णि का लोप हुआ । लट् में भाव्यते वह
उस से ही आया जाता है, लिट् में । भावयाञ्चक्रे । भावयाञ्चभूवे वा भावयामासे । ७८६ से
चिण्वद्भाव और इट् के होने पर भाविता, यद्वा आभीय (४) होने पर ७८६ को अस्मिन्न मान
कर णि का ५५७ से लोप हुआ है । वा । भावयिता, वह किसी से ही आया जायेगा । आ० लिङ्
में भावविषीष्ट । लुङ् में अभावि अभाविषाताम् । ५५७ (वा) अभावविषाताम्, किसी से
वे दो हीआये गये । सन्नन्त में जैसे लट् में (५) बुभूष्यते । लिट् में बुभूषाञ्चक्रे । लुट्
में बुभूषिता । लृट् में बुभूषिष्यते । यङन्त से जैसे लुट् में वीभूष्यते । लृट् में वीभूषिष्यते ।
५१२ वे से दीर्घ करने पर (६) स्तुयते विष्णुः, भक्त से विष्णु स्तुति किया गया ।
लुट् में स्ताविता ७८६ वा स्तोता । लृट् में स्ताविष्यते ७८६ वा स्तोष्यते । लुङ् में

(१) क्योंकि उपसर्गों से धातुओं के अर्थ का परिवर्तन ही जाता है, जैसे भू का अर्थ
होना है, अनु के लगाने से अनुभव करणा हुआ । (२) किसी पुरुष की सज्ञा है, (३) बहुते
(आनन्द) अनुभव किये जाते हैं और सभ पूर्ववत् । (४) यद्वा ५८३ के अनुसार, ५५७ की
दृष्टि में ७८६ वा अस्मिन्न है । (५) इन के अर्थ सन्नन्त के समान जैसे, लट् में, उस से
होने को ईच्छा की जाती है ऐसे और भी जान लेने । (६) यद्वा । ष्टु (स्तुति करणी)
धातु है । "भक्तोविष्णु स्तौति" यह रूप कर्तृवाच्य में है ॥

अद्रव्यरूपत्वेन द्वित्वाद्यप्रतीतेन द्विवचनादि । किन्त्वैकावचनमेवोक्तं
गतं । त्वया मया अन्यैश्च भूयते । वभूवे ॥

भाव वा काम का वाचक यावधानुक्त परे भी तो भातु से एक प्रत्यय होवे । भाव
क्रिया की कहने हैं और वच क्रिया भाव पद्य के लकार से अनुपाद की जाती है ।
(१) युष्मद् और परस्मद् के साथ (भाव की) यथाधिकारवता के प्रभाव से भाव प्रत्ययान्त
से प्रथम पुङ्गव होता है । तिरु वाच्य क्रिया द्रव्यरूप नहीं है इसी से द्वित्वादियों की
प्रतीति के प्रभाव से द्विवचन और बहुवचन नहीं होते किन्तु स्वभाव से एकवचन ही
क्रिया जाता है । कृद् संख्या मया अन्यैश्च भूयते तुम इम और इतर क्षीन होते हैं ।
कृद् सं भूवे ४१८ वच हुआ था ।

७८६ । स्यसिष्सीयुट्तासिपु भावकर्मणीरुपदेशेऽङ्गान्त्यहृद्गां
वा चिष्वद्विट् ष । ६ । ४ । ६२ । उपदेशेयोऽष् तदन्तामां इमादीनां च
चिषीवाङ्कार्यं वा स्यात् स्याद्विपु भावकर्मणीगम्यमानयोः स्यादीना
मिहागमश्च । चिष्वद्वावपक्षेयमिट् । चिष्वद्वावाङ्घ्रि । भाविता । भविता ।
भाविष्यते । भविष्यते । भूयताम् । अभूयत । भाविषीष्ट । भविषीष्ट ।

लकार के भाव वा काम में होने पर उपदेश में जो अष् तदन्ती को (उपदेश में
पञ्चम धातुभी को) और इन षड् हय । इन धातुधां को चिष् प्रत्यय होते हैं जो कार्य
होता है वैया ही षड् संज्ञा निमित्तक काय विकल्प करके ही परन्तु जव स्य सिष् सीयुट्
ताम् परे हो तब और स्य आदिकों को कृद् भी होवे । जिस पद्य में चिष्वाव पदां ही
यह कृद् भी होता है । चिष्वद्वाव के होने से १८६ वचि होती है । कृद् में भाविता भविता
कृद् में भाविष्यते भविष्यते । कृद् में भूयताम् । कृद् में अभूयत । आ चिष् में भावि
षीष्ट भविषीष्ट ।

७८७ । चिष् भावकर्मणी । ६ । १ । ६६ । च्छेचिष् स्याद्वावका
र्मवाचिनि ते परे । अभवि । अभविष्यत । अभविष्यत । चकमकोऽप्यु
पसगवधात्सकमक । अनुभूयते आगन्दश्चैवेक त्वया मया च । अनुभूयन्ते
त्वमनुभूयसे । अहमनुभूये । अश्वभावि । अश्वभाविपाताम् । अश्वभवि
पाताम् । चिषीप । भाष्यते । भावयाच्छक्रे । भावयाश्वभूवे । भावया
मासे । चिष्वद्विट् । भाविता । आभीवत्वेनासिष्वत्वास्त्रिषीपः । भावयिता

८०२ ॥ विभाषा चिन्मसुलो । ७ । १ । ६६ । लभेर्नुम् । अलम्भि ।

अलाभि ॥ इति भावकर्मप्रक्रिया ॥

चिण् 'वा' णमुल् परे ही तब लभ धातु को विकल्प कर्के नुम् आगम होवे । अलम्भि ८२ । ८३ 'वा' अलाभि, किसी से वह पाया गया ॥ भावकर्म प्रक्रिया समाप्त हुई ।

॥ अथ कर्मकर्तृप्रक्रिया ॥

॥ अत्र कर्म (१) कर्तृ प्रक्रिया का वर्णन ॥

८०३ ॥ यद्वा कर्मैव कर्तृत्वेन विवक्षितं तदा सकर्मकाणामप्य-
कर्मकर्त्वात्कर्त्तरि भावे च लकारः ॥

जब कर्म को ही कर्ता कहने की इच्छा हो तब सकर्मक धातुओं की भी अकर्मक होने से उन से कर्ता वा भाव अर्थ से लकार होते हैं ॥

८०४ ॥ कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः । ३ । १ । ८७ । कर्मस्थया
क्रियया तुल्यक्रियः कर्त्ता कर्मवत्स्यात् । कार्यातिदेशोऽयम् । तेन
यगात्मनेपदचिण्चिण्वदिटः स्युः । पच्यते फलम् । भिद्यते काष्ठम् ।
अपाचि । अभेदि । भावे भिद्यते काष्ठेन ॥ इति कर्मकर्तृप्रक्रिया ।

कर्म स्थित क्रिया (२) के तुल्य क्रिया (३) वाला कर्ता कर्म के तुल्य माना जावे । अर्थात् कर्म के कार्य उस को होवे । यह कार्यातिदेश है । इह लिये यक् ७८५ आत्मनेपद ७८४ चिन् को चिण् ७८७ । और चिण्वद्भाव और इट् ७८६ होते हैं । (४) पच्यते फलम् । फल आप से पकता है । भिद्यते काष्ठम्, लकड़ी आपसे फटती है । लुङ् में अपाचि, अभेदि ७८७ । भाव से, भिद्यते काष्ठेन, लकड़ी आप से फटती है ॥ कर्मकर्तृप्रक्रिया समाप्त हुई ।

॥ अथ लकारार्थः ॥

॥ अत्र लकारों के अर्थ की प्रक्रिया का वर्णन किया जाता है ॥

८०५ ॥ अभिज्ञावचने लृट् । ३ । २ । ११३ । स्मृतिवोधिन्युप-

(१) जिस में कर्म ही कर्ता माना जावे । (२) यद्वा क्रिया से क्रिया फल इष्ट । है । (३) यद्वा भी क्रिया फल ही जानना । (४) यद्वा पक जाना क्रियाफल जैसे कर्तृ प्रत्ययान्त में कर्म में थ। वैसे ही कर्मकर्ता का भी है । इसी से कर्मस्थ क्रिया के फल के समान कर्मकर्तस्थ क्रियाफल है ॥

अस्तावि ०८० अस्ताविपाताम् । ०८६ वा अस्तोपाताम् । अ जाना कट् में पर्यते ३२०
 किरी से वह गमन क्रिया गया है । इम् स्मरण करपा । कट् में स्मर्यते ३२० किरी से
 वह स्मरण क्रिया गया है । सिट् में स्मरे ३२३ ॥ ०८६ वे मूष मं उपदग ग्रहण करण से
 ०८६ से विह्वलाव घोर इट् के होने पर लुट् में आरिता वा आर्ता । स्मारिता वा स्मार्ता
 ३३० से न् लोप के होने पर अंस (नीचे मिरगा) का अंस पुष्पा ती कट् में अस्यते । परन्तु
 इदित् (जिस का (३) इत् गया हो) चातु जैसे यदि (आनन्दित होने) से तो न् का लोप
 नहीं होता । कट् में गन्थते । यञ् का इत्यते यहाँ ६०८ से सम्प्रसारण होता है ।

०८८ ॥ त गेतेर्यक् । ६ । ४ । ४४ । आदन्तादेशी वा । तायते ।
 तन्थते ॥

तनु चातु के नकार को अकार विकल्प से होने के तप उस के परे यञ् आने तप ।
 कट् में तायते 'वा' तन्थते उस से वह र्कसाया गया ॥

०८९ ॥ तपोऽनुतापे च । ३ । १ । ६५ । तपश्च्लेशिचश् न स्यात्
 क्षमकार्त्तर्वनुतापे च । अन्वतप्त पापेन । घुमास्येतीत्यम् । दीयते ।
 धीयते । इदे ॥

धर्मकर्तुं में । वा परवात्ताप अर्थ में तप चातु को ङित् को चिष् न होने सुट्
 में । अन्वतप्त पापेन पापी ने परवात्ताप किया । यह अदाहरण अनुताप में है । ६१८ से
 ईत्थ होने पर (दा) दीयते । (धा) का धीयते । सिट् में इदे वह दिया गया ॥

८०० ॥ आतो युक् चिष्कृतोः । ० । ३ । ३३ । आदन्तार्ता युगा
 गमश्चिचि ङिचति क्कति च । दायिता । दाता । दायिषीष्ट । दासीष्ट ।
 अदायि । अदायिषाताम् । मन्थते ॥

आकारान्त चातुर्षो को 'युक्' का आयस होने के चिष् 'वा' भित् वा चित् क्त्
 प्रत्यय परे होने । कट् में दायिता ०८६ वा दाता या सिट् में दायिषीष्ट 'वा' दासीष्ट
 कट् में अदायि ०८३ अदायिषाताम् वे दो द्वियेभ्य । मन्थ तोडगा । कट् में मन्थते यह
 किरी से तोडा जाता है ॥

८०१ ॥ मन्थेरच चिचि । ६ । ४ । ३३ । न लोपो वा । अभञ्जि ।
 अभञ्जि । मन्थते ॥

चिष् परे होते मन्थ चातु के नकार का लोप विकल्प से होने । कट् मं अभञ्जि
 वा' अभञ्जि । कम् का मन्थते ॥

भृत्यादेः निष्कण्टस्य प्रवर्त्तनम् । यजेत । निमन्त्रणं नियोगकरणम् ।
 आवश्यके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्त्तनम् । इह भुञ्जीत । आम-
 न्त्रणं कामचारानुज्ञा । इहासीत । अधीष्टः सत्कारपूर्वकी व्यापारः ।
 पुत्रमध्यापयेद्भवान् । सम्प्रश्नः सम्प्रधारणम् । किं भो वेदमधीयीथ
 उत तर्कम् । प्रार्थनं याच्ञा । भो भोजनं लभेथ । एवं लोट् । इति लका-
 रार्थप्रक्रिया ॥ तिङन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥

कार्यकारण भाव के प्रकार्य कारणे में लिङ् विकल्प करके होते हैं। जैसे कृष्णं
 नमेच्चेत्सुख यायात् (वा) कृष्ण मस्यति चेत् सुख दास्यति, यदि श्री कृष्ण जी को
 प्रणाम करे तो सुख पावे। यह विधि भविष्यत् काल में ही इष्ट है इस से, इन्तीति पलाः
 यते, वह मारता है इस लिये दूसरा भागता है यहाँ नहीं हुआ। (१) ४५३ सूत्र को स्मरण
 कराता है विधि, प्रेरणा जैसे यजेत, वह पूजा करे। निमन्त्रण में जैसे, (२) इह भुञ्जीत,
 वह यहा खावे। आमन्त्रण में जैसे इहासीत, आपकी इच्छा होती यहा बैठें। अधीष्टः
 में जैसे, पुत्र मध्यापयेद्भवान्, आप पुत्र को पढ़ावें। सम्प्रश्न, कि भो वेद मधीपीय
 उत तर्कम्, मैं वेद पढू वा न्याय। प्रार्थना में जैसे, भो भोजन लभेथ, मुझे भोजन मिलेगा।
 इन अर्थों में लोट् का प्रयोग भी इसी प्रकार आता है ॥ लकारार्थप्रक्रिया समाप्त हुई ॥

॥ तिङन्तों की प्रक्रिया समाप्त हुई ॥

॥ अथ कृदन्ताः ॥

अथ कृदन्तों का वर्णन किया जाता है।

८१० ॥ धातोः । ३ । १ । १ । आतृतीयान्तं ये प्रत्ययास्ते धातोः
 परे स्युः । कृदतिङिति कृत्संज्ञा ॥

इस सूत्र से तृतीयाध्याय की समाप्ति पर्यन्त जिन प्रत्ययों का प्रसंग है, वे
 प्रत्यय धातु से परे होंगे। ३२४ से इन प्रत्ययों की कृत् संज्ञा होती है ॥

८११ ॥ वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् । ३ । १ । ६४ । अस्मिन्धात्वधिकारै
 ऽसरूपोऽपवादप्रत्यय उत्सर्गस्य बाधकी वा स्यात् । स्यधिकारोक्तं विना ।

८१० सूत्र के अधिकार में जो किसी प्रत्यय का अस्मिन्धात्वधिकार है, वे
 तो वह ही के अधिकार वालों को छोड़ उत्सर्ग (वाच्य) को विकल्प करके बाध ले ॥

(१) इस सूत्र से भी लिङ् होता है। (२) इनका अर्थ ४५३ सूत्र में लिख दिया है।

पदे भूतामद्यतने धातीर्लृट् । कृष्णोऽपवाद । वस निवासे । स्मरसि कृष्ण
 मोकुले वत्स्याम । एवं 'बुधसे' 'चेतसे' घृत्यादि प्रयोगेपि ॥

अब स्मरच वाचक शब्द घातु को उपपद हो तब धनद्यतन मूल धर्म में घातु से परे
 लृट् होवे । यह लृट् का अपवाद है । वस निवास करणा । स्मरसि कृष्ण मोकुले वत्स्याम;
 कृष्ण तुम को स्मरच से कि हम मोकुल में निवास करते थे । यहाँ "वत्स्याम" को रत्नान
 में "वत्स्यामः" हुआ है । ऐसे बुधसे और चेतसे इत्यादियों को योग में भी धान लेना
 कभीकि इनका भी स्मरच घट है ॥

८ ६ ॥ न यदि । इ । २ । ११४ । यद्योगे उत्तं न । अभिजानासि
 यद्ने अभुञ्जमहि ॥

यद् के साथ स्मरच वाचक शब्द हो तो उसके योग में घातु से परे उत्तं ८ ६ लृट्
 न होवे । अभिजानासि यद्ने अभुञ्जमहि तुम को याद है जो हम न वन में भोजन
 किया था ॥

८ ७ । कृट् स्मे । इ । २ । ११८ । खिटोऽपवाद । यजतिस्म
 युधिष्ठिर ॥

स्म को उपपद होने पर घातु से लृट् होवे । यह खिट् का अपवाद है । यजतिस्म
 युधिष्ठिर राजा युधिष्ठिर ने यज्ञ किया ॥

८ ८ ॥ वत्तमानसामीप्ये वत्तमानवत्ता । इ । इ । १११ । वर्त्तमाने
 ये प्रत्यया उक्तास्ते वत्तमानसामीप्ये भूते भविष्यति च वा स्यु । कदा
 गतोऽसि । अद्यमागच्छामि । आगमं वा । कदा गमिष्यसि । एव गच्छामि ।
 गमिष्यामि वा ॥

वत्तमान चर्त्त में जो प्रत्यय समाप्त किये जाते हैं वे वर्त्तमान को समीप मूल और
 भविष्यत् धर्म में भी जाते हैं । कदागतोसि तू कब आया । (इस का उत्तर यह है कि) अद्यमा
 गच्छामि वा (आगमम्) अभी आया हूँ । कदा गमिष्यसि तू कब जावेगा । (इसका उत्तर
 यह है कि) एव गच्छामि 'वा गमिष्यामि' अभी जाता हूँ ॥

८ ९ ॥ हेतुहेतुमतीर्लिङ् । इ । इ । १५४ । वा स्यात् । कृष्णं
 नमेवचेत्सुखं यायात् । कृष्णं नस्यति चेत्सुखं यास्यति । भविष्यत्येवे
 प्यते । नेह हन्तीति पलायते । विधिनिमन्त्रणेति शिङ् । विधि प्रेरणम् ।

भृत्यादेः निष्कृष्टस्य प्रवर्त्तनम् । यजेत् । निमन्त्रणं नियोगकरणम् ।
 भावशयके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्त्तनम् । इह भुञ्जीत । आम-
 न्त्रणं कामचारानुज्ञा । ब्रूहासीत् । अधीष्टः सत्कारपूर्वकी व्यापारः ।
 पुत्रमध्यापयेद्भवान् । सम्प्रश्नः सम्प्रधारणम् । किं भी वेदमधीयीय
 उत तर्कम् । प्रार्थनं याचना । भी भोजनं लभेय । एवं लोट् । इति लका-
 रार्थप्रक्रिया ॥ तिङन्तप्रक्रिया समाप्ता ॥

कार्यकारण भाव के प्रकार्य करणे में लिङ् विकल्प करके होंगे । जैसे कृष्ण
 नमेच्चेत्सुख यायात् (वा) कृष्ण नस्यति चेत् सुख दास्यति, यदि श्री कृष्ण जी को
 प्रणाम करे तो सुख पावे । यह विधि भविष्यत् काल में ही इष्ट है इस से, इन्तीति पलाः
 यते, वह मारता है इस लिये दूसरा भागता है यहाँ नहीं हुआ । (१) ४५३ सूत्र को स्मरण
 कराता है विधि, प्रेरणा जैसे यजेत्, वह पूजा करे । निमन्त्रण में जैसे, (२) इह भुञ्जीत,
 वह यहाँ खावे । आमन्त्रण में जैसे ब्रूहासीत्, आपकी इच्छा होती यहा बंटें । अधीष्टः
 में जैसे, पुत्र मध्यापयेद्भवान्, आप पुत्र को पढ़ावें । सम्प्रश्न, किं भी वेद मधीपीय
 उत तर्कम्, मैं वेद पढ़ू वा न्याय । प्रार्थना में जैसे, भी भोजन लभेय, मुझे भोजन मिलेगा ।
 इन अर्थों में लोट् का प्रयोग भी इसी प्रकार आता है ॥ लकारार्थप्रक्रिया समाप्त हुई ॥

॥ तिङन्तों की प्रक्रिया समाप्त हुई ॥

॥ अथ कृदन्ताः ॥

अब कृदन्तों का वर्णन किया जाता है ।

८१० ॥ धातोः । ३ । १ । १ । आतृतीयान्तं ये प्रत्ययास्ते धातोः
 परे स्युः । कृदतिङिति कृतसंज्ञा ॥

इस सूत्र से तृतीयाध्याय की समाप्ति पर्यन्त जिन प्रत्ययों का प्रसंग है, वे
 प्रत्यय धातु से परे होंगे । ३२४ से इन प्रत्ययों की कृत् संज्ञा होती है ॥

८११ ॥ वाऽस्रूपोऽस्त्रियाम् । ३ । १ । ६४ । अस्मिन्धात्वधिकारे
 ऽस्रूपोऽपवाद्प्रत्यय उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात् । स्व्यधिकारीकं विना ।

८१० सूत्र के अधिकार में जो किसी प्रत्यय का असदृश कोई प्रत्यय अपवाद हो
 तो वह जो के अधिकार वालों को छोड़ उत्सर्ग (वाध्य) को विकल्प करके बाध ले ॥

(१) इस सूत्र से भी लिङ् होता है । (२) इनका अर्थ ४५३ सूत्र में लिख दिया है ।

८१२ ॥ कृत्या । ३ । १ । ८५ । एवमुक्तुचावित्यतः प्राक् कृत्य
सन्ना स्युः ॥

इस मूत्र से लेकर ८१८ सूत्र तक विन प्रत्ययों का प्रथम से, वे कृत्य संज्ञक होंगे।

८१३ ॥ कृत्तरि कृत । ३ । ४ । ६० । धृति प्राप्ते ॥

कृत् ३२४ अक्षक प्रत्यय कर्ता अर्थ में होंगे। ऐसा पा (या) या ॥

८१४ ॥ तयोरेव कृत्यस्यस्यार्था । ३ । ४ । ७० । एते भावकर्मणो
रेव स्युः ॥

'कृत्य ८१२ ॥ ८११ और 'अस्य' में होने वाले जो प्रत्यय ८१० से भाव
और काम ही अर्थ में हों ॥

८१५ ॥ तथ्यस्यव्यानीयरः । ३ । १ । ८६ । धातोरेते स्युः ।
एधितव्यम् । एधनीयं त्वया । भावे औत्सर्गिकमेकवचनं स्त्रीवत्त्वं च ।
चेतव्यश्चयनीयो 'वा' धर्मस्त्वया ॥

धातु से 'तव्यत्' 'तव्य' और 'अनीयत्' ये प्रत्यय होते हैं। एधितव्यम् ३१
४२० 'वा' एधनीयं त्वया—तुम्हें बदना कथित है। यह भाव में उदाहरण है। इसी किये
इवाभाषिक एकवचन और अपुंसक विन हुए हैं क्योंकि भाव में इन दोनों का ही सम्भव
है। कर्म में 'चेतव्य' वा 'चयनीय' ४२४ धर्मस्त्वया। तुम्हें से 'अम एकव (इच्छा)
करना चाहिये ॥

८१६ ॥ केक्षिमर उपसंख्यानम् । पक्षेक्षिमा माघाः । पक्षव्या
धृत्यर्थः । भिदेक्षिमा सरखा । भेत्तव्या । कर्मणि प्रत्यय ॥

८१६ में-केक्षिमर प्रत्यय का भी उपसंख्यान (अचना) कर लेना। पक्षेक्षिमा भाषा
(पक्षाने योग्य माय)। भिदेक्षिमा' सरखा—छाटने से योग्य "दियार" से उच्च। यह
कर्म में प्रत्यय है ॥

८१७ ॥ कृत्यस्युटो बहुलम् । ३ । ३ । ११३ । क्वचित्प्रवृत्तिः
क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिदिभाषा क्वचिदन्वदेव ॥ विधेर्विधानं बहुधा
समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुल्यकं वदन्ति ॥ १ ॥ स्नात्यनेन स्नानीयं चूषम् ॥
दोवतेऽस्मै दानीयो विप्रः ॥

कृत्य ८१२ और ल्युट् प्रत्यय अनेक प्रकार से होते हैं। कहीं इन की विधि सूत्र से बिना प्रवृत्ति, और कहीं सूत्र से विधान के होने पर भी न लगना। और कहीं विकल्प से प्रवृत्ति। और कहीं इन प्रकारों से भिन्न प्रकार से व्यवहार होना। इस से-विधि के विधान को बहुत प्रकार का देख इन के चार भेद कहते हैं। जैसे (१) स्नानीयम् जिस से स्नान किया जावे = बटना आदिक। (२) दानीयः = जिस के ताँड़ दिया जावे = ब्राह्मण ॥

८१८ ॥ अचो यत् । ३ । १ । २७ । चेषम् ॥

अजन्त धातु से परे यत् प्रत्यय होवे। (१) चेषम् = इकट्ठा करने के योग्य ॥

८१९ ॥ ईद्व्यति । ६ । ४ । ६५ । यति परे आत ईत् स्यात् ।

देयम् । ग्लेयम् ॥

यत् ८१८ प्रत्यय परे होते आकार को ईकार होवे। देयम् ४१४ (दातुं योग्यम्) । ग्लेयम् = ग्लानि के योग्य ॥

८२० ॥ पौरदुपधात् । ३ । १ । ९८ । पवर्गान्ताद्दुपधाद्यत् ।

एयतोऽपवादः । शप्यम् । लभ्यम् ॥

जिस पवर्गान्त धातु की षा अकार ही उसे यत् ही। यह ८२५ का अपवाद है ॥ शप्यम् = शप्तुं योग्यम् । (४) लभ्यम् = पाने योग्य ॥

८२१ ॥ एतिस्तुशास्वद्वजुषः क्यप् । ३ । १ । १०६ । एभ्यः क्यप् ।

इण् = गति। छट्। शास् = शासन करणा। वृ = स्वीकार। द्व = आदर करणा। जुष् = प्रीति। इन धातुओं से क्यप् प्रत्यय होवे ॥

८२२ ॥ ऋस्वस्य पिति क्वति तुक् । ६ । १ । ७१ । इत्यः । स्तुत्यः ।

शासु अनुशिष्टौ ॥

पित् कृत् प्रत्यय परे होते ऋस्व को तुक् का आगम होवे। (५) इत्यः = जाने योग्य। स्तुत्यः = स्तुतुं योग्य। शास् = शासन करणा ॥

८२३ ॥ शास इदङ्हलोः । ६ । ४ । ३४ । शास उपधाया इत्स्यादङ् हलादौ क्वडिति च । शिष्यः । वृत्यः । आदृत्यः । जुष्यः ।

शास् की उपधा को इत् होवे जब अङ् परे ही वा हलादि कित् वा डित् प्रत्यय

(१) यहा स्ना धातु से अनीयर् प्रत्यय करण अर्थ में आया है। (२) यहा बुदाष् (दा) धातु से अनीयर् प्रत्यय सम्प्रदान में है। (३) वेतु योग्यम्। (४) लब्धु योग्यम्। (५) यहाँ क्यप् कित् है इमी लिये गुण नहीं हुआ।

परे हो। म्रिय्य ३८३ सिद्धहाने के योग्य। इत्य' ८२२—स्वीकार के योग्य। पाइत्य'—
पादर के योग्य। कुप्य'—सेवा के योग्य ॥

८२४ ॥ मृजेर्विभाया । ३ । १ । ११३ । मृजे वषड्भा । मृज्य ॥

मृज्—(मुञ्ज करवा) धातु से परे विकल्प करके मृजप् होते। मृज्य—मुञ्ज
करके योग्य ॥

८२५ ॥ ऋज्वीर्यत् । ३ । १ । १२४ । ऋवर्जान्ताहसन्ताचष

पयत् । कार्यम् । हार्यम् । धार्यम् ॥

ऋवर्जान्त 'वा' इलन्ता धातु से पयत् प्रत्यय होते। ऋ+पयत्—कार्यम् १८६
कर्तुं योग्यम्। करके योग्य। ऋ+पयत् हार्यम् करके के योग्य। धार्यम्—धारण के योग्य ॥

८२६ ॥ चषो कुचिस्त्राती ० । ३ । ५२ । चषोः कुत्वं स्याद्विति

चयति च ॥

चू पीर कु जो कवर्ग होते क्व (१) चित् वा चयत् प्रत्यय परे हो तब ॥

८२७ ॥ मृजेर्वृषिः ० । २ । ११४ मृजेरिषोवृषि सार्वधातुकार्ध

धातुकयो । मार्ग्यः ।

कव सावधातुक वा सार्वधातुक प्रत्यय परे हो तब मृज् धातु के रक् षो वृषि
होते। मार्ग्यः २३, ८१६—मुञ्ज करके के योग्य ॥

८२८ ॥ भोज्यं भक्ष्ये ० । ३ । ६६ भोज्यमभ्यत् । कृति कृत्य प्रक्रिया ॥

खाने के योग्य रस पच में मुञ्ज धातु का 'भोज्यम्' ऐसा पाता है पीर चस्य पर्व
में भोज्यम् ऐसा पाता है ॥ कृत्यप्रक्रिया समाप्त हुई ॥

८२९ ॥ एवुत्तुचौ ३ । १ । १३३ धातीरेतौ स्तः कर्तरि कृदिति कश्चरे ॥

धातु से परे एवुत् पीर तुच् प्रत्यय होते। ८२३ के अनुसार यह प्रत्यय
कर्ता पर्व में होते हैं ॥

८३ ॥ युवीरनाकौ ० । १ । १ । युवपतयोरनाकौ स्तः । कारकः । कर्ता ।

'यु' पीर 'यु' के स्थान में 'यन' पीर 'यक' पादेय क्रम से होते। कारकः—क+८८
एवुत् १८६—करक कावा। कर्ता (क+तुच्) ३१३—करके पाता ॥

८३१ ॥ मन्दिषद्विपचादिभ्यो वयुषिण्यच ३ । १ । १३४ मन्द्या

देल्युर्ग्रन्थादेर्णिनिः पचादेरच् । नन्दयतीति नन्दनः । जनार्दनः ।
लवणः । ग्राही । स्थायी । मन्त्री । पचादिराकृतिगणोऽयम् ॥

नन्द् आदि धातुओं में ल्यु प्रत्यय होवे और ग्रह् आदि धातुओं में णिनि होवे ।
और पच् आदि धातुओं से अच् प्रत्यय होवे । नन्दनः (नन्द + ल्यु) ८३० = आनन्द करने
वाला । (१) जनार्दनः (जन, उपपद, अर्द = पीड़ा देनी + ल्यु) = विष्णु । (२) लवणः (लू +
ल्यु) = लूण।ग्रह् + णिनिः = (३) ग्राही (गृह्णातीति) ४८३ = लेने वाला । स्थायी (ष्ठा + णिनिः)
८०० = ठहरने वाला । मन्त्री (मन्त्रि + णिनिः) = मन्त्री । पचादि (४) आकृतिगण है ॥

८३२ इगुपधञ्जाप्रौक्तिरः कः ३ । १ । १३५ एभ्यः कः । बुधः । कृशः
ज्ञः । प्रियः । किरः ।

जिन धातुओं की उपधा में इक् (इ, उ, ऋ, लृ) हो उन में और ञा, प्री, कृ, इन
धातुओं में क प्रत्यय होवे । बुधः १४८ = परिडित । कृशः = दुबला । ज्ञः (ञा + कः) १४८,
५१८ = जानने वाला । प्रियः = मित्र । किरः (कृ + कः) १४८, ७०० = फेंकने वाला ॥

८३३ ॥ आतप्रचोपसर्गे ३ । १ । १३६ प्रज्ञः । सुग्लः ॥

उपसर्ग उपपद रहे तब आकारान्त धातु में 'क' प्रत्यय होवे । प्रज्ञः = परिडित ।
(५) सुग्लः = बड़ी ग्लानि करने वाला ॥

८३४ ॥ गेहे कः ३ । १ । १४४ गेहे कर्त्तारि ग्रहे कः स्यात् । गृहम् ॥

जब गृह कर्त्ता हो तब ग्रह धातु में 'क' प्रत्यय हो । गृहम् ६६८ (गृह्णाति
धान्यादिकमिति) = घर ॥

८३५ ॥ कर्मण्यण् ३ । २ । १ कर्मण्युपपदे धातीरण् । कुम्भं-
करोति कुम्भकारः ।

जब किसी धातु का उपपद १०१५ कर्म हो तब उस धातु में अण् प्रत्यय होवे ।
कुम्भकार १०१६, ७६२, १८६ = कुम्हा(म्भार) ॥

८३६ ॥ आतोऽनुपसर्गे कः ३ । २ । ३ अणोऽपवाद् । गोद्दः । धनद्दः
कम्बलद्दः । अनुपसर्गे किम् । गोसम्प्रदायः ।

(१) यहा "जनान् अर्दयति" ऐसे विग्रह में १०१६ से समास और ७६२ से विभक्ति का लोप
कर लेना । (२) यहाँ णकार निपात से है । (३) यहाँ याहिन् शब्द से प्रथमा के एक वचन
में १८१, १८३, १८४ इन सूत्रों से ग्राही, की चिह्न कर लेनी । (४) इनकी स्वरूप से गणना
है, सख्या से नहीं । (५) यहा ग्लौ को आकार ५१८ से कर लेना पुनः 'कः' प्रत्यय ॥

जब कोई उपसर्ग उपपद न रहे और अन्त उपपद रहे तब धात्वारागत धातु से 'क' प्रत्यय होवे। अथ ८३३ का उपपाद है। गोद' (गां ददाति) ३१८। घनद' = घन देने वाला। अन्वसद' ३१८ (अन्वसं ददाति) इस सुभ में अनुपसर्ग यह क्यों कहा? उत्तर देता है यदि न कहते तो 'गोपसप्रदाय' इस उदाहरण में भी 'क' ही जाता अथ न होता।

८३० ॥ मूलविभुजादिभ्य क । मूलानि विभुषति मूलविभुषी
रय । आकृतिगबोऽयम् । महीप्रः । कुप्र ।

मूलविभुजादियों से 'क' प्रत्यय होता है। इहाँ भी अइ भी ठेका करके वाला 'मूलविभुज' = रय। मूलविभुजादि आकृतिगब है। महीप्र' महीं भरति। (१) कुप्र' = पर्वत ॥

८३८ ॥ चरेष्ट- ३ । २ । १६ । अधिकारणे उपपदे । कुरुचर ॥
जब अधिकारण उपपद हो तब 'चर' धातु से 'ट' प्रत्यय हो। कुरुचर' (कुरुषु चरति) १ १६ ०६२ कुरु देश में जाने वाला। रची को 'कुरुचरो' कहते हैं ॥

८३९ ॥ मिचासेनादायेषु चर ३ । २ । १७ मिचाचर । सेनाचर
अदायेति स्वयन्तम् । आदायचर ॥

'मिचा' वा 'सेना' वा 'आदाय' उपपद हो तो चर धातु से 'ट' प्रत्यय होवे। मिचाचर' १ १६ ०६२ = मिचारी। सेनाचर' = जो सेना को जाये। 'आदाय' इस से अन्त में ८३९ से क्यम् होता है। आदायचरः = लेकर जाने वाला ॥

८४० ॥ कृञो हेतुताच्छीर्यानुलोम्येषु ३ । २ । २० एषु द्योत्येषु
क्षरीतेष्टः ॥

हेतु (कारण) वा 'ताच्छीर्य' वा 'अनुकूलता' प्रथम करनी हो तो 'कृ' धातु से 'ट' प्रत्यय होवे ॥

८४१ ॥ अतः कृकमिर्षसकुम्भपात्रकुशाक्षरिष्वनव्ययस्य ८ । ३
४६ । अदुत्तरस्यानव्ययस्य विसर्गस्य समासे नित्यं सादेशः कर्तोत्या
दिषु परेषु । यशस्करौ विद्या । आह्वयः । वचनकारः ॥

कृ' कर्म अंत कुम्भ पात्र कुशा अक्षरि इत म से यदि कोई व्यंज परे हो तब

(१) यहाँ कु उपपद कृ धातु से क प्रत्यय और १८ में क्यम् हुआ।

अकार के उत्तर (१) अव्यय की विसर्ग को स् आदेश नित्य होवे समास में। यशस्करी ८४०, १०१६, ७६२, १३३० यश देने वाली (विद्या)। आशकरः = जिस का स्वभाव आश करने का है। वचनकारः = आशकारी ॥

८४२ ॥ एजे खश् । ३ । २ । २८ । ग्यन्तादेजेः खश् ॥

ग्यन्त ७४२ एज (काम्पना) धातु से 'खश्' प्रत्यय होवे ॥

८४३ ॥ अरुर्हिपदजन्तस्य मुम् । ६ । ३ । ६७ । अरुषोद्विषतीऽजन्तस्य च मुमागमः खिदन्ते परे नत्वव्ययस्य । शित्वाच्छ्वादि । जनमेजयति । जनमेजयः ॥

खिदन्त (२) परे ही तो अरुष् (मर्म), द्विषत् (शत्रु), और अजन्त, इन को मुम् का आगम होवे परन्तु यदि अव्यय उपपद हो तो नहीं होता। खश् शित् है इस लिये शप् ४१३ आदिक होते हैं। जनमेजयः (३) १०१६, ७६२ = मनुष्य को कम्पाने वाला ॥

८४४ ॥ प्रियवशेः वदः खच् । ३ । २ । ३८ । प्रियंवदः वशंवदः ।

'प्रिय' वा 'वश' उपपद हो तो 'वद' धातु से 'खच्' प्रत्यय होवे। प्रियवदः प्रिय वदति ८४३ मीठा बोलने वाला। वशवदः = अधीनता को मानने वाला ॥

८४५ ॥ आत्ममाने खश्च । ३ । २ । ८३ । स्वकर्मके मनने वर्तमानान्मन्यते सुपि खश् स्याच्चास्मिनिः । परिडतमात्मानं मन्यते परिडतमन्यः । परिडतमानी ॥

सुवन्त के उपपद होते, 'स्वकर्मके मानने अर्थ में वर्तमान' जो 'मन्' धातु उस से 'खश्' प्रत्यय होवे। सूत्रस्थ चकार से णिनिः प्रत्यय भी इसी अर्थ में ही। परिडत मन्यः ८४३, ६६३ वा परिडतमानी = अपने को परिडत मानने वाला ॥

८४६ ॥ अन्येभ्योपि दृश्यन्ते । ३ । २ । ७५ । मनिन् क्वनिप् वनिप् विच् एते प्रत्यया धातोः स्युः ॥

मनिन्, क्वनिप्, वनिप्, और विच्, ये प्रत्यय और (४) धातुओं से भी दीख पड़ते हैं।

८४७ ॥ नेड्वशि क्कति । ७ । २ । ८ । वशादेः क्तत इट् न श्च हिंसायाम् । सुशर्मा । प्रतरित्वा ॥

(१) यदि वह विसर्ग किसी अव्यय का अव्यय न हो, इस विशेषण के देने से 'स्व' करोति' में "स्" न हुआ। (२) खित् (ख जिस का इत् ही) प्रत्यय जिस के अन्त में ही। (३) किसी राजा का नाम है। (४) आकारान्त को छोड़।

(१) यथादि क्त् प्रत्यय ओ इट् ४२० आगम न हो । मृ (भारता) । सुम् + मनिम् (सुमर्मा) — पञ्चो रीति से पाप का नाशक । प्रातरित्वा (प्रातर् + इप् = आना + कृमिप्) ८२१ प्रातःकाल में जाने वाला ॥

८४८ ॥ विह्वनोरनुमासिकास्यात् । ६ । ४ । ४१ । अनुमासिक
स्यात्स्यात् । विजायते कृति विजावा । धीष् चपमयने । चवावा । विष्
कृप् रिप् हिंसायाम् । रोट् । रेट् । सुगष् ॥

कत्र चिट् 'वा' वन् ८४६ प्रत्यय परे रहे तत्र अनुमासिक के स्थान में आहार
होवे । (वि-अन् + वन्) = विजावन् १८१ । १८२ । १८४ = विजावा) ओ विशेष से उत्पन्न
हो । चवावा (धीष् = दूर करवा + वन्) = चवावन् १८३ । १८१ । १८४ = चवावा = चर का
नाम न करने वाली ब्राह्मणी । कृप् रिप् (हिंसा करनी) इन से विष् प्रत्यय आता तो ।
कृप् + विष् (रोट् ४०८, ०८, १५८) हिंसा करने वाला । ऐसे रेट् । सुगष् (सुष्णु मचवति)
पञ्चो रीति से मियने वाला ॥

८४९ ॥ विवप् च । ३ । २ । ०६ । अयमपि ह्रयते । उष्वाप्तत् ।
पर्षष्वात् । वाङ्मट् ॥

वातु से परे विष् प्रत्यय टीका प्रकृता है । उष्वाप्तत् (उष्वा-अप् + विष्) ११०, १
१४८, ३१ ३२३, ३८२ उष्वाप्तत् = उष्वा से मिरने वाला । पर्षष्वात् (पर्षेभ्यो ष्वंभते) ११०,
३८२, वाङ्मट् (वाङ्-अप् + विष्) ११०, ३२८ । घोड़े से मिरने वाला ॥

८५० ॥ सुप्प्रजाती षिनिस्ताण्ठीष्ये । ३ । २ । ०८ । अजात्यर्षे
सुपि धातोर्षिनिस्ताण्ठीष्ये ङीष्ये । उठ्यभीषी ॥

शील (स्वभाव) प्रकार करने षर्ष में अजात्यर्षे सुपन्त से उठपट् होते वातु से
'षिनि' प्रत्यय होवे । उठ्यभीषी = गरम भीजन करना है स्वभाव निष्ठ का ॥

८५१ ॥ मम । ७ । २ । ८२ । सुपि मम्यतेषिनि स्यात् । दर्श-
नीयमानी ॥

सुपन्त 'के उठपट् रहते 'मम्' वातु से 'षिनि' प्रत्यय हो । दर्शनीयमानी
दर्शनीयमात्मान मम्यते ॥

८५२ ॥ चित्त्वमव्ययस्व । ६ । ३ । ६६ । पूर्वपदस्य अस्वः ।
कास्मिन्मया ॥

(१) वम् प्रत्ययार्पणतत्त शोर्षे वर्ण है आदि में मिल के ॥

खित् प्रत्यय परे ही तो घातु के पूर्वपद (उपपद) को ङ्स्व होय परन्तु यदि यह अव्यय न हो तब । कालिमन्या ८४५, ८४३ जो अपने को काली मानती है ॥

८५३ ॥ करणे यज् । ३ । २ । ८५ । करणे उपपदे भूतार्थयजे-
णिनिः कर्त्तरि । सोमेनेष्टवान् सोमयाजी । अग्निष्टोमयाजी ॥

करण (तृतीयान्त) के उपपद रहते भूत काल में यज् घातु से कर्त्ता अर्थ में णिनि प्रत्यय ही । सोमयाजी ४८३, १८१, १८३, १८४ = जिस ने सोम करके यज्ञ किया । अग्निष्टोमयाजी = जिस ने अग्निष्टोम करके अपने इष्ट की पूजा (भावना) की ।

८५४ ॥ दृशे क्वनिप् । ३ । २ । ८४ । कर्मणि भूते । पारं दृष्टवान् पारदृशवा ॥

कर्म के उपपद होते भूत अर्थ में दृश् घातु से क्वनिप् प्रत्यय हीवे । पारदृशवा १८१, १८३, १८४ पार देखने वाला ॥

८५५ ॥ राजनि युधि क्वजः । ३ । २ । ८५ । क्वनिप् । युधिरन्त-
र्भावित्तर्यः । राजानं योधितवान् । राजयुध्वा । राजक्वत्वा ॥

राजन् शब्द उपपद रहे तो युध्, और क्व घातु से परे 'क्वनिप्' प्रत्यय हीवे । यहां युध् में णिजर्थ (प्रेरणा) अन्तर्भूत है । राजयुध्वा = राजा को लडवाने वाला । राजक्वत्वा = राजा को करने वाला ॥

८५६ ॥ सहे च । ३ । २ । ८६ । सह योधितवान् सहयुध्वा । सहक्वत्वा ।

जब 'सह' (साथ) उपपद ही तब भी युध् और क्व घातु से परे 'क्वनिप्' प्रत्यय हीवे । सहयुध्वा । सहक्वत्वा ८२२ = सहायता करने वाला ॥

८५७ । सप्तम्यां जनेड् । ३ । २ । ८७ ॥

सप्तम्यन्त उपपद ही तो जन् घातु से परे 'ड' प्रत्यय ही ॥

८५८ ॥ तत्पुरुषे क्वति बहुलम् । ६ । ३ । १४ । डेरलुक् ।
सरसिजम् । सरोजम् ॥

तत्पुरुष समास में क्वत् प्रत्ययान्त उत्तरपद रहे तो सप्तमी का लुक् न हीवे । ८१७, सरसिजम् २६२ 'वा' सरोजम् = कमल । ॥

८५९ ॥ उपसर्गे च सज्ञायाम् । ३ । २ । ८९ । प्रजा स्यात्सन्तती जने ॥

उपसर्ग के उपपद होते भी जन् घातु से परे 'ड' प्रत्यय हीवे । परन्तु यदि ड प्रत्ययान्त किसी की मंज्रा हो तब । प्रजा, १३३५ = सन्तान या प्रजा क्षीण ॥

८६० ॥ क्त्वत् निष्ठा । १ । १ । २६ । एतौ निष्ठा संघ्नौ स्त ॥
 'ख' और 'व' इन दो प्रत्ययों की निष्ठा संघ्ना होवे ॥

८६१ ॥ निष्ठा । १ । २ । १०२ । भूतार्यहृत्तेर्वातीनिष्ठा । तत्र
 तयोरेवेति भावकर्मणोः क्त । क्त्वरि क्त्वरि क्त्वरि क्त्वरि । स्नात् नखा
 स्तुतस्त्वया विष्णु । विश्व कृतयान् विष्णु ॥

भूत प्रथम घातु से परे निष्ठा संघ्न प्रत्यय होवे । तिन में से छ ८१४ के
 अनुसार भाव और कर्म क्त में घाता है और क्वत् ८२१ के अनुसार क्त्वा प्रथम में ही
 जाता है । 'स्नात् नखा' से स्नात् किया । 'स्तुतस्त्वया विष्णु' तुम से विष्णु स्तुति
 किया गया । "क्त्वरि कृतयान् विष्णु" परमेस्वर ने संसार को रचा ॥

८६२ ॥ रदाभ्यां निष्ठाती मः पृथस्य च दः । ८ । २ । ४२ ।
 रदाभ्यां परस्य निष्ठातस्य नीनिष्ठापेक्षया पूर्वस्य घातोर्दस्त्व च ।
 शु हिंसायाम् । शीर्षः । भिन्न । छिन्नः ॥

'इ' और 'इ' इन से परे की निष्ठा ८६१ के 'त्' की और निष्ठा से पूर्व की
 घातु तिस के 'इ' की भी 'त्' होवे । शु (मारणा) शीर्ष ० । ४४१ - मारा गया । भिन्न
 (भिद् + क्त) फसेदि । छिन्न (छिद् + क्त) - को छाटा गया ॥

८६३ ॥ संयोगादेरातो धातोश्च वतः । ८ । २ । ४३ । निष्ठात
 स्य ग स्यात् । द्राघ । ग्लानः ॥

संयोगादि (सयोग है चादि जिस के) और चाकाएकत की घातु यन् वाता हो तो
 उस से परे निष्ठा ८६१ के 'त्' की 'त्' होवे । द्राघ (द्रै + क्त) ४२२ ८६३ जिस में कुट्टित
 गति की । ग्लान (ग्ले + क्त) ४२२ जिस में ग्लानि की ॥

८६४ ॥ एवादिभ्यः । ८ । २ । ४४ । एकविंगतेषु आदिभ्यः प्राग्बत्
 एतः । क्त्वा घातुः । यद्विच्येति सम्प्रसारणम् ॥

'क्' चादि इतीम २१ घातु ०१ 'क्' से परे निष्ठा की ८६२ की विधि हो । 'क्त्वा'
 (को छाटा गया) । एवा (बुदा होना) यहाँ ६६८ के सम्प्रसारण कर लेना ॥

८६५ ॥ एत । ६ । ४ । २ । अद्यापययात्तलः पर यत्सम्प्रसारणं
 राद्ग्रास्य दीर्घः । लौग ।

यत् का यवयव की क्त्वा तिन से परे की सम्प्रसारण २०५ लङ्गत की दीर्घ की ।
 लौग (ल्ये + क्त) ८६४ - बुदा हो गया ॥

८६६ ॥ ओदितश्च । ८ । २ । ४५ । भुजो, भुग्नः । टुओशिव उच्चूनः-

जिस धातु का श्रोकार इत् ही उस से परे निष्ठा के "त्" को "न्" ही । भुजो (टेढा होना)-न-क्तः । भुग्न = टेढा किया गया । टुओशिव (गति 'वा' बढना) उत्-न-शिव-न-क्तः (उच्चूनः) ८६० फूला ॥

८६७ ॥ शुपः कः । ८ । २ । ५१ । निष्ठातस्य । शुष्कः ॥

शुष् धातु से निष्ठा के त् को क् हीवे । शुष्कः = सूखा ॥

८६८ ॥ पवीव । ८ । २ । ५२ । पक्व । चै हर्षक्षये ॥

पक् धातु से निष्ठा के 'त्' को 'व्' हीवे । पक्वः = पका । चै = हर्ष का क्षय होना ।

८६९ ॥ क्षायीमः । ८ । २ । ५३ । क्षामः ॥

क्षै धातु से परे निष्ठा के 'त्' को 'म्' हीवे । क्षाम. ५२२ = क्षय ॥

८७० ॥ निष्ठायां सेटि । ६ । ४ । ५२ । भावितः ।

भावितवान् । इह हिंसायाम् ॥

जब सेट् (१) निष्ठा परे ही तो णि का लोप हीवे । भावितः = होने को प्रेरणा किया गया । (२) भावितवान् । इह हिंसा करणी ॥

८७१ ॥ इट् । स्थूलवल्लयो । ७ । २ । २० । स्थूले वलवति च निपात्यते ॥

इट् धातु का निष्ठा में स्थूल और बलवाला अर्थ में "इट्" ऐसा निपात से रूप होता है ।

८७२ ॥ दधातेर्हिः । ७ । ४ । ४२ । तादौ किति । हितम् ।

त् है आदि में जिस के ऐसे कित् प्रत्यय के परे होते धा (धारण करना) धातु की हि आदेश होता है । हितम् (डुधान्-न-क्त) धारण किया गया ॥

८७३ ॥ दोदद्घो । ७ । ४ । ४६ । घुसंज्ञकस्य दा द्यत्स्य द्यत् तादौ किति । चत्त्वम् । दत्तः ॥

तादि कित् प्रत्यय परे ही तो घु ६५६ सन्ना वाले दा को द्य् आदेश हीवे ८७ से य् को त् किया तो, दत्त = दिया गया ॥

८७४ ॥ लिटः कानज्वा । ३ । २ । १०६ ।

८७५ ॥ क्वसुश्च ३ । २ । १०७ । लिट. कानक्वसू वा स्त. ।

खडानावात्मनेपदम् । चक्रागा. ॥

(१) इट् सहित । (२) भू-न णि-न-क्तवतु (भावितवत्) पुनः ३३६, ३११, २३ लगाने ।

खिट् के स्थान में 'आनप्' और 'असु' विकल्प करने होते हैं। ४ १ में आनप् की आत्मनेपद संज्ञा है। इस से आत्मनेपदी धातुओं से ही हीगा। अथाच ४२ ३०२, ४२२, ४८२ १८ १४१ - विस ने किया वा ॥

८०६ ॥ म्बोश्च । ८ । २ । ६५ । मान्तस्व धातोर्नार्वं म्बोः परत । जगन्धाम् ॥

म् 'वा' के परे हो तो मान्त धातु को ग् जोवे। (गम् + असु) - जनन्वत् (१) पुन १६६, ३११ २३ - जगन्धाम् (जापुका) ॥

८०७ ॥ छटः शतृशान्वावप्रथमासमानाधिकरश्चे । १ । २ । १२४ । अप्रथमान्तेन समानाधिकरश्चे छट एतौ वा स्तः । यथादिः । पचन्तं चैवं पश्य ॥

जब अप्रथमान्त के छह शब्द का समानाधिकरण (एक शब्द) हो तब शब्द के स्थान में 'शतृ' और 'शानप्' प्रात्यय विकल्प से होते हैं। ये ही भी शिट् हैं। इस हेतु से अप् ४१२ आदि प्रत्यय होते हैं। (२) पचन्तं चैवं पश्य (दूसरे के लिये पकाते चैवं को देख) ॥

८०८ ॥ आने मुक् । ० । २ । ८२ ॥ अदन्ताहस्य । पचमानं चैवं पश्य । अहित्यनुवत्तमाने पुनश्चह्यङ्कारप्रथमासमानाधिकरश्चेऽपि पवधित् । सन् द्विव ॥

आन के परे होते पचन्त शब्द को मुक् का आगम होते हैं। पचमानं चैवं पश्य - अपने लिये पकाते चैवं को देखो। ८०७ में ४ से शब्द को अनुवृत्ति हो सकती थी पुन यहाँ ८०७ में छट के पश्च से यह सिद्ध हुआ कि कभी २ प्रथमासमानाधिकरण में भी शब्द के स्थान में शतृ शानप् हों। जैसे सन् ६ ३, १११ २३ द्विव - विद्यमान ब्राह्मण ॥

८०९ ॥ विदेः शतुवसुः । ० । १ । १६ । वेतेः परस्य शतुर्वसुरा देवो वा । विदन् । विद्वान् ॥

विद् धातु से परे शतृ को वसु प्रादेन विकल्प करने होते हैं। विदन् (विद् + शतृ) १११ । २३ (वा) विद्वान् (विद् + वसु) १११ । २३ परिष्कृत ॥

८१० ॥ तौ सत् । १ । २ । १२० । तौ शतृशान्पो सत्संज्ञौ स्त । शतृ और शानप् की सत् संज्ञा होते हैं ॥

(१) यहाँ भी हित्वादि कर लने। (२) यहाँ शब्द अर्था में है और वच का वाचक द्वितीयान्त है ॥

८८१ ॥ लृट्: सहा । ३ । ३ । १४ । करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य ॥

लृट् के स्थान में सत् सन्नक प्रत्यय विकल्प से होंगे। करिष्यन्त करिष्यमाण
४२६ पश्य = उस को देखो जो करने को है ॥

८८२ ॥ आववेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु । ३ । २ । १३४ ।

क्विवपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणास्तच्छीलादिषु कर्तृषु बोध्याः ॥

इस सूत्र से लेकर ८८७ तक जितने प्रत्यय उच्चारित होंगे वे उन कर्ताओं से हों, जिन में किसी प्रकार का स्वभाव 'वा' वैसा धर्म 'वा' किसी क्रिया की सुन्दरता प्रकाश करनी हो तो ॥

८८३ ॥ तृन् । ३ । २ । १३५ । कर्ता कटान् ।

तच्छीलादि अर्थों में धातु से परे 'तृन्' प्रत्यय होंगे। 'कर्ता (१) कटान्' ॥

८८४ ॥ जल्पभिच्चकुट्लुण्ठवृडः षाकन् । ३ । २ । १५५ ॥

जल्प = बड़ २ करना। भिच् = मागना। कुट् = कूटना। लुण्ठ = लूटना। वृड् = सेवना। इन धातुओं से तच्छीलादि अर्थों में 'षाकन्' प्रत्यय होंगे ॥

८८५ ॥ ष. प्रत्ययस्य । १ । ३ । ६ । प्रत्ययस्यादि. ष इत्सञ्च. स्यात् ॥

प्रत्यय के आदि का ष इत् सञ्जा वाला होंगे। जल्पाकः = नकवासी। षराकः = विचारा, कगाल ॥

८८६ ॥ सनाशंसभिच्च उ. । ३ । २ । १६८ । चिकीर्षु । आशंसुः । भिच्चुः ।

सन्धन्त ७४६ से और आङ्पूर्वक शस् धातु से और भिच् धातु से परे तच्छील आदि अर्थों में "उ" प्रत्यय होंगे। (२) चिकीर्षु = करने की इच्छा के स्वभाव वाला। आशंसुः = स्तुति करने वाला। भिच्चुः = भीख मांगने के स्वभाव वाला।

८८७ ॥ भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपृजुयावस्तुव. विवप् । ३ । २ । १७७ ।

विभाट् । भाः ॥

भ्राज्, भास्, (३) ष्व, झत्, ञ्ज, पू, जु, और यावन् पूर्वक ष्टु धातु इन से परे तच्छीलादि अर्थों में विवप् प्रत्यय होंगे। विभाट् ३२६ प्रकाशने वाला। भा. = दीप्ति।

८८८ ॥ राडलोपः । ६ । ४ । २१ । रेफाच्छ्वोर्लोप. क्वी भ्रुलादी

(१) जिस का चटार्द्र बनाने का स्वभाव हो। (२) ७५० को देखो (३) दिसा करनी।

क्ङिति च ॥ घूः । विद्युत् । जर्क । पू । हृद्यिग्रहवस्थापकर्पाञ्जवते
दीर्घ । झू । यावस्तुत् ।

रेख से परे ली ख् वा) व् तिष्ठ का लीप होवे परन्तु जब कि प्रत्यय हो
(वा) भ्र्वादि क्तिन् (वा) क्तिन् प्रत्यय परे हो । अर्ध का रूप घू ६४५ - मार । विद्युत् -
विद्युती । झू - यज्ञ वाक् । पू - मारते । ८४५ में से 'हृद्यन्ते' इस पद से अनुबर्धय से
'तु' धातु को लीप (१) होता है । झू - वेगवान् । भावस्तुत् (२) ॥

८८६ ॥ विवस्व वधिप्रच्छन्नायतस्तुकटप्रजुश्रीषां दीर्घोऽसंप्रसारणं
च । वक्षोति वाक् ॥

वस् प्रच्छन्नायत-पृषव 'ट्टु' धातु धीर कटमु, वु वि इल धातुधी से परे विपु
प्रत्यय होय धीर इल को लीप डाले । धीर सम्प्रसारण ६६८, ६०८ न होवे । वाक् - वाणी ।

८८६ ॥ वक्षो शूङ्गनुनासिके च । ६ । ४ । १६ । सतुबस्व क्स्व
षस्व च क्रमात् शू कट् एतावादेशौ स्त वधावनुनासिकादौ भ्र्वादी
क्ङिति च । पृच्छतीति प्राट् । आयत् स्तीति आयतस्तू । कटं प्रवते
कटप्रः । क्स्व । अस्ति हरि श्रीः ॥

तुक् से ललित ख् वा धीर व् को क्रम से शू धीर कट् आदेश ही कि (वा) घटु
नासिकादि प्रत्यय (वा) भ्र्वादि क्तिन् क्तिन् प्रत्यय जब पर रहेतब । प्राट् (पृच्छति) ११८
पूङ्गे वाक् । आयतस्तू - सम्भी स्तुति करने वाक् । कटप्र - कीटा । वू ८८८ में कट
दिवा है । श्री - लक्ष्मी ॥

८८१ ॥ दास्नीशसयुक्त्वस्तुत्तुदसिसिचमिहपतद्गमश्च करणे ।
६ । २ । १८२ । दावादेः ट्टुन् स्मात्करणेऽर्धे । दात्यनेन दाधम् ॥

दाप् काटना । धीन् । श्व् मारणा । यु । युक् । ट्ट । तुद् । विष् । शान्धना ।
विधु - विह्वलना । मिह मूतना । पत् गिरणा । ट्टम् शान्तो से काटना । धीर वद्
शान्धना इल धातुधी से पर करण भव में ट्टुन् प्रत्यय प्रत्यय होवे । दाधम् ८८१ विष्
से काटे लक्षी ॥

८८२ ॥ तितुभतयसिसुसरक्सेपु च । ७ । २ । ६ । एपां द्गामा

(१) यह दीर्घ महामाध्य के मत से है । (२) यहाँ ८२२ सं तुक् कर लेना । वस्वर की
वृत्ति करने वाला ।

सिद्ध न । शस्त्रम् । योत्रम् । योक्तृम् । स्तोत्रम् । तोत्रम् । सेत्रम् ।
सेक्तृम् । मेदृम् । पत्रम् । दंष्ट्रा । नद्दी ॥

ति (क्तिन्, क्तिच्) तुन्, ष्ट्रन्, तन्, वधन्, विस, सुच्, सरन्, कन्, और स इन
दश १० प्रत्ययों को ष्ट्र न होवे । शस्त्रम् ८६१, ८८५ योत्रम् यु-1-ष्ट्रन् =जूले की रस्सी ।
योक्तृम् (जूला) स्तोत्रम् (ष्ट्र-1 ष्ट्रन्) तोत्रम्, कोटला । सेत्रम् (बन्धन), सेक्तृम् = मिच्-1 ष्ट्रन्
छिनकाव का पात्र । मेदृम् । (लिङ्ग) (मिद्) ष्ट्रन्) पत्रम् (वाहन) दंष्ट्रा (दाढ) नद्दी (नद्-1-
ष्ट्रन्) ३८३, ५८०, १३, ४२ चाम की रस्सी ।

८६३ ॥ अति लूधूसखनसहचर इवः । ३ । २ । १८४ । अरित्रम् ।

लवित्रम् । धवित्रम् । सवित्रम् । खनित्रम् । सहित्रम् । चरित्रम् ॥

ऋ, लृ, धू, सू, खन्, पद्, सहना और चर् इन धातुओं से परे (१) "इव" प्रत्यय होवे
अरित्रम् ४१४ = लवित्रम् ४३०, ४१४ दात्री । धवित्रम्, पखा । सवित्रम्, उत्पति हेतु ।
खनित्रम् = कही । सहित्रम्, धोरज । चरित्रम्, चरित्र ।

८६४ ॥ पुवः संज्ञायाम् । ३ । २ । १८५ । पवित्रम् ॥

संज्ञा अर्थ में 'पूज्' धातु से 'इव' प्रत्यय ही पवित्रम् ४१४, २६ ॥

॥ अथोणादयः ॥

अव उणादियों का वर्णन ।

८६५ ॥ क्वापाजिमिस्वदिमाध्यशूभ्र उण् ॥ करोतीति कारुः ।
वायुः । पायुर्गुदम् । जायुरीषधम् । मायुः पित्तम् । स्वाद्दुः । साध्नोति
परकार्यमिति साधुः । आशु शीघ्रम् ॥

क्व, वा, पा, जि, मि = फौकना । स्वद्, स्वादलेना । साध्, और अशू, व्याप्त होना ।
इन धातुओं से परे 'उण्' प्रत्यय होवे । कारु १६६ शिल्पी । वायुः (वातीति) ८०० । पायुः
पिबति तैलादिक्र मनेनेति) ८०० = गुदास्थान । जायुः (जयति रोगान्) ८०० शीघ्र ।
मायुः (मिनोति देहे उष्माणमिति) पित्त । स्वाद्दु (स्वदते) मीठा । साधु भला मनुष्य (वा)
जीव । आशु ४८३ (अरनुते) शीघ्र यह अव्यय है ।

८६६ ॥ उणादयो बहुलम् । ३ । ३ । १ । एते वर्त्तमाने संज्ञायां च

(१) इत्र म इकार इसलिये पडा है कि अरित्र आदिकों में इकार का श्रवण हो ।
नही तो जो ४२० से इट् पाया उस का ८६२ से निषेध ही जाता है ।

यदुक्तं स्युः । केचिद्विहिता अप्युच्चा ॥ संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च
तत परे ॥ कार्यद्विद्यादनुबन्धमेतच्छास्त्रमुच्चादियु ॥ १ ॥

वर्तमान काल में और संज्ञा पूर्व में इन 'उच्चादि' प्रत्ययों का प्रयोग प्रकार से व्यवहार होता है । कई एक किसी उच्चादि रूप से परिवर्धित भी प्रत्यय जानकरने । उच्चादियों में यह (१) विधि है कि शास्त्र में जो किसी को संज्ञाएँ (वाच्य शब्द) हैं उन में धातु और प्रत्यय ऐसे तब करने को उन में जो सके । और गुणादि कार्यों से उन प्रत्ययों को अनुबन्ध कल्पना करने ।

८६० ॥ तुमुन्प्रवृत्तौ क्रियायां क्रियार्यायाम् । इ । इ । १० क्रिया
यायां क्रियायामुपपद्ये भविष्यदर्थे धातोरेतौ स्तः । मान्तात्वाद्दृश्यत्वम् ।
कृष्ण द्रष्टु याति । कृष्णं दृशको याति ।

क्रियार्थी (क्रिया है प्रयोजन किस का) क्रिया उपपद्ये तब भविष्यत् पूर्व में धातु से परे तुमुन् और एवमु प्रत्यय होते । मान्त होने से १६१ के अनुसार तुमुन्प्रवृत्तौ प्रथम संज्ञा है । कृष्णं द्रष्टुं (इम्+तुमुन्) याति वा कृष्णं दृशको दृष्टु याति वह कृष्ण के देखन को जाता है ।

८६८ ॥ काकसमयवेक्षासु तुमुन् । ट । इ । १६० । काकः समयी
वेक्षा वा भीक्षुम् ।

काकशावक शब्दी में से कोई उपपद्य ही ती धातु से परे 'तमन्' प्रत्यय होते । काकोभीक्षुम् इ । इ । १६०, १६८ मोजन करने का काक 'घनेहामीक्षुम्' इत्यादि भी जान लेने ।

८६९ ॥ भावे इ । इ । १८ सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये धातो
र्घञ् । पाकः ।

धातु का प्रथम जब सिद्धावस्था को प्राप्त हो तब उस धातु से घञ् प्रत्यय होते । पाक ४८२ ८२६ ।

९० ॥ अकतरि च कारके संज्ञायाम् इ । इ । १९ कर्तृभिन्ने कारके घञ् ।
संज्ञा में कर्ता से भिन्न कारक में धातु से परे घञ् होते ।

(१) यह विधि उन में है जो किसी प्रकार से लक्षणे जाते होते । "स्युः" शिष्टी को संज्ञा है और बिना उच्चादियों के धाता नहीं जाता । ती इस में "स्युः" धातु से परे "स्युः" प्रत्यय कल्पना किना और मुचामाकार प्रत्यय का कित् माना ०

६०१ ॥ घञि च भावकरणयोः ६ । ४ । २७ रञ्जेर्नलोपः स्यात् ।

राग. अनयो. किम् । रज्यत्यस्मिन्निति रङ्ग ।

जव रञ्ज्, धातु से परे भाव (वा) करण अर्थ मे घञ् हो तो इस के न का लोप हो । राग. ४८३, ८२६ = रङ्गने का साधन आदि । इस सूत्र में "भावकरणयो." यह क्यों कहा ? उत्तर देता है । रङ्गः (नाट्यशाला) इस मे न् का लोप न ही जावे ।

६०२ ॥ निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः ३ । ३ । ४१ एषु चिनोतेर्घञ् आदेश्च कः । उपसमाधान राशीकरणम् । निकायः । कायः । गोमयनिकायः ।

निवास, चिति, शरीर और उपसमाधान (राशीकरना) इन अर्थों में चि धातु से परे घञ् प्रत्यय होवे और आदि के च् को क् होवे । निकायः, निवास । कायः, १६६, २६ शरीर । गोमयनिकायः, गोबर की ढेरी ॥

६०३ ॥ एरच् ३ । ३ । ५६ इवर्णान्तात् । चयः । जयः ।

इवर्णान्त धातु से परे अच् प्रत्यय हो । चयः, समूह । जय ४१४ । २६ जय

६०४ ॥ ऋदोरप् ३ । ३ । ५७ । ऋवर्णान्तादुवर्णान्ताच्चाप् । करः

गरः । यव । स्तवः । लवः । पवः ।

ऋकारान्त (वा) उकारान्त धातु से परे 'अप्' प्रत्यय होवे । कर (कृ-अप्) छिडकना । गर. (गृ-अप्) विष । यव. (यु-अप्) ४१४ २६ जोडना । स्तव. = स्तुति । लव. (लृ-अप्) ४१४ । २६ काटना । पव (पू-अप्) पवित्र करना ॥

६०५ ॥ घञर्थे कविधानम् । प्रस्थः । विघ्नः ।

घञ् के अर्थ मे 'क' प्रत्यय भी होवे । प्रस्थः ५१८ मापविशेष । विघ्न ५३४, ३०६ विघ्न

६०६ ॥ ड्वित क्ति ३ । ३ । ८८ ।

जिस धातु का डु इत् हो उस से परे "क्ति" प्रत्यय होवे ॥

६०७ ॥ क्तिर्मस्मित्यम् । क्तिप्रत्ययान्तात् मस्मिर्नवृत्तेऽर्थे । पाक्षेन निर्वृत्तं पक्त्रिमम् । डुवप् । उप्त्रिमम् ।

क्ति प्रत्ययान्त से परे निर्वृत्त (सिद्ध) अर्थ में मप् प्रत्यय होवे । पक्त्रिमम् = पाक से सिद्ध हुआ । डुवप् (बोना) उप्त्रिमम् = ५७८ बोने से जो सिद्ध हुआ ॥

६०८ ॥ ट्वितोऽधुच् ३ । ३ । ८९ । टुवेपृ कम्पने । वेपथु ॥

त्रिसंघातुका (टु) इत् गता हो तिसंघातु से परे 'यत्' प्रत्यय होवे। दुवेषु (काम्यना) सेपसु कर्म्य ॥

८०८ ॥ यजयाचयतविष्णुप्रच्छरक्षी नङ् ३ । ३ । ८०९ यज्ञः । याच्ञा । यत्नः । विज्ञः । प्रज्ञः । रक्ष्य ॥

यञ्-देवपूजा याच्-मानना यत्-यत्न करवा विष्-गति प्रच्छ-पूछना भीरु रक्ष-रक्षाकरना इन षातुषी से परे 'नङ्' प्रत्यय होवे। यज्ञ-०१ यज्ञ। याच्ञा-मानना। यत्न-उद्यम। विज्ञ-८८ ०४ प्रताप। प्रज्ञ-८८ ०४ प्रज्ञ। रक्ष-०१ रक्षा।

८१० ॥ स्वप्नो नन् ३ । ३ । ८१ स्वप्नः ।

स्वप् (विश्वप) षातु से परे नन् प्रत्यय होवे। स्वप्न-निद्रा।

८११ ॥ उपसर्गो धोः क्ति ३ । ३ । ८२ प्रधिः । उपधिः ।

उपसर्ग पूजक सु ३१३ संप्रक षातु से परे 'क्ति' प्रत्यय होवे। प्रधि (प्रधा+क्ति ३१८)-चक्र की चारा। उपधि ३१८-उत्त ॥

८१२ ॥ क्षियां क्षिन् ३ । ३ । ८४ क्षीक्षि भ्राये क्षिन् । वञ्चो

ऽपवादः । क्षति स्तुतिः ॥

क्षीक्षि में भाव को प्रकाश करना हो तो षातु से 'क्षिन्' प्रत्यय होवे। यह ८८८ का अपवाद है। क्षति । स्तुति ॥

८१३ ॥ ष्टुस्वादिभ्यः क्षिन्निष्ठावशाच्चः । तेन नत्वम् । कौर्क्षिः क्षुनि । धूनि । पूनिः ॥

षट्कारान्त षातुषी से परे भीरु नू आदि ०१ षातुषी से परे क्षिन् का निष्ठा ८६ से समान व्यवहार जानना। कौर्क्षि (कू क्षिन्) ० । ३४३। ८२। क्षुनि ८६४। धूनि ८६४ पूनि ८६४-पवित्रता ॥

८१४ ॥ सम्पदादिभ्यः विपत् । सम्पत् । विपत् । आपत् । क्षिन्नपौष्पते । सम्पत्ति । विपत्ति । आपत्तिः ॥

सम्पद् आदि से 'विपत्' प्रत्यय होवे। सम्पद् (सम् पद्+विपत्) सम्पत्-धन विपत्-विपदा। आपत्-हु'ए की रणा। इन से क्षिन् प्रत्यय भी होता है। सम्पत्ति (सम्-पद्+क्ति)-सम्पदा। विपत्ति। आपत्ति ॥

८१५ ॥ क्षतियुतिक्षुतिसातितेति कौत्त यश्च । ३ । ३ । ८० । एते निपात्यन्ते ॥

जतिः = रक्षा । यूतिः = जोडना । जूतिः = वेग । सातिः = नाश । हेतिः = शत्रु ।
कीर्तिः = यश । ये (१) निपात से सिद्ध होते हैं ॥

६१६ ॥ ज्वरत्वरस्त्रिव्यविसवामुपधायाश्च । ६ । ४ । २० । एषा-
मुपधावकारयोः कृत् अनुनासिके क्वी भलादौ क्ङिति च । जतिः ।
क्विप् । जू । तू । सू । जः । मू ॥

ज्वर = सन्ताप । त्वर = शीघ्रता करनी । स्त्रिव् = गति । अक् = रक्षा । और, मक् =
वान्धना । इन की उपधा और व् को कृत् ही जब अनुनासिकादि 'वा' क्विप् 'वा' भलादि
क्विप् 'वा' ङित् प्रत्यय परे ही तब । जतिः (अक्-ङिति) । क्विप् के आने से (२) जू =
ज्वर वाला । तू = शीघ्रता करने वाला । सू = सुवा । जः = रक्षक । मू = वान्धने वाला ॥

६१७ ॥ इच्छा । ३ । ३ । १०१ । इषेर्निपातोऽयम् ॥

इष् धातु का (३) इच्छा यह रूप निपात से होता है ॥

६१८ ॥ अ प्रत्ययात् । ३ । ३ । १०१ । प्रत्ययान्तेभ्यः स्त्रियामकारः
प्रत्यय. स्यात् । चिकीर्षा । पुत्रकाम्या ॥

प्रत्ययान्त धातु से लीलिङ्ग में अकार प्रत्यय होवे । चिकीर्षा ७५० में चिकीर्ष
वन चुका है उस से अकार प्रत्यय किया पुनः ४६६, १३३५ = कर्तुमिच्छा = करने की
इच्छा । ऐसे पुत्रकाम्या ७६६ = पुत्र की कामना ॥

६१९ ॥ गुरोश्च हल । ३ । ३ । १०३ । गुरुमतो हलन्तात्
स्त्रियामप्रत्यय. । ईहा ॥

गुरु वाला और हलन्त जो धातु उस से 'अ' प्रत्यय हो लीलिङ्ग में । ईहा = ६१८
चेष्टा करणी ॥

६२० ॥ गयासश्नयो युच् । ३ । ३ । १०७ । अकारस्यापवाद. ।
कारणा । हारणा ॥

'यन्त' धातुओं से और 'आस्' और 'अन्य' इन धातुओं से परे 'यच्' प्रत्यय

(१) जति में अन्तोदात्तस्वर निपातन है यूति, और जूति, यहां दीर्घ निपातन है ।
साति, में षो धातु के आकार को अतिस्थिति० इत्यादि से इकार नहीं हुआ यही निपा-
तन है । हेति में हन् के न् को इकार निपातन है । कीर्ति में ६२० नहीं लगायही निपातन
है । (२) यहा से मू प्रयोग पर्यन्त के धातु ६१६ सूत्र से निर्दिष्ट हैं । (३) यहा इष् धातु
से परे भाव अर्थ में श प्रत्यय और यक् का अभाव यह निपातन है ।

होवे । यह ८१८ और ८१९ का अपवाद है । कारका (क+चिच्+युच्) ८२ = कारका ।
कारका (कारि+युच्) इत्यागा ॥

८२१ ॥ नपुसके भावे क् । इ । इ । ११४ ॥

जब सिद्ध शब्द नपुसक में हो तब भाव के प्रकाश करने में 'क्त' प्रत्यय होवे ।

८२२ ॥ क्युट् च । इ । इ । ११५ । क्सितम् । क्सनम् ॥

जब सूत्र के विषय में क्युट् प्रत्यय भी होवे । क्सितम् । क्सनम् ८२ वाच ॥

८२३ ॥ पुसि संज्ञायां घ प्रायेण । इ । इ । ११८ ॥

जब बननेवाला शब्द संज्ञा और पुसि हो तब प्रायः 'घातु' से परे 'च' प्रत्यय होवे ।

८२४ ॥ अक्षादेशेऽङ्गुपसर्गस्य । इ । इ । ८६ । द्विप्रभृत्युपसर्ग

हीनस्य अक्षादेशेऽङ्गु घे । दन्तश्चदः । आकुर्वन्त्यस्मिन्निति आकारः ॥

ही आदि उपसर्ग से रहित जो शब्द 'घातु' तथा जो 'च' प्रत्यय के परे होते हैं स्व
होवे । दन्तश्चदः = घोष्ठ । आकार = आग ॥

८२५ ॥ अवेतस्त्रोर्घञ् । इ । इ । १२ अवेतारः । अवेतारो अवनिका ॥

जब अवेतर्न व अषपद होते 'तु' और 'तु' 'घातु' जो 'घञ्' प्रत्यय होवे । अवेतार'

१२६ = अक्षय में उतरने का अपवाद । अवेतार १२६ = अनात ।

८२६ ॥ क्लृप्त्वा । इ । इ । १२१ । क्लृप्ताङ्गु । घाऽपवाद । रमन्ते

योगिनो अस्मिन्निति रामः । अपमृत्त्यतेऽनेम व्याख्यादिरित्यपामाग ।

क्लृप्ताङ्गु 'घातु' से परे 'क्लृ' प्रत्यय होने । यह ८२१ का अपवाद है । राम' ८८२ जिस
में योगी रामे रहते हैं (मगवान्) । अपामार्ग ८२६ ८२० = जिस से व्याधि दूर हो पुष्टकरका ॥

८२० ॥ क्लृप्त्वाङ्गु क्लृप्त्वाङ्गु क्लृप्त्वाङ्गु क्लृप्त्वाङ्गु । इ । इ । १२६ । यपु

दु क्लृप्त्वाङ्गु क्लृप्त्वाङ्गु क्लृप्त्वाङ्गु क्लृप्त्वाङ्गु । तयोरेवेति भावे कस्मश्चि च । क्लृप्त्वा ।

दुष्कारः कटो भवता । क्लृप्त्वाङ्गु । क्लृप्त्वाङ्गु । सुकारः ॥

जब (१) दुष्क और मुख अथ में अषपद दुष् (वा) मु अषपद रहे तब 'घातु' से
पर 'क्लृ' प्रत्यय होवे ८२६ से यह क्लृ भाव वा कर्म में हो जाता है । दुष्क अथ में

दुष्कारः (२) कटो भवता । मुख अथ में क्लृप्त्वाङ्गु मुख ८२६ ॥

(१) योग्यता से (दुष्क) क्लृप्त्वाङ्गु अथ में और मु अषपद मुख में आते हैं । (२) आप सं अठारह का
बनाया कठिन है ।

६२८ ॥ आतो युच् ३। ३। १२८ खलोऽपवादः । ईषत्पानः

सोमोभवता । दुष्पानः । सुपानः ॥

आकारान्त, धातु से 'युच्' प्रत्यय होवे। यह सूत्र ६२७ खल् का अपवाद है।
ईषत्पानः ८३० सोमो भवता = तुम से सोमलता का रस अनायास से पिया जा सकता है।
दुष्पानः । सुपानः ।

६२९ ॥ अलं खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां ऋवा ३। ४। १८ प्रति-
षेधार्थयोरलंखल्वोरुपपदयोः ऋवा । दी दद्घो । अलं दत्वा । घुमा-
स्येतीत्वं । पीत्वा खलु । अलं खल्वोः किम् । माकार्षीत् । प्रतिषेधयोः
किम् अलंकारः ॥

“निषेधार्थक, अल और खलु” उपपद रहें तो प्राचीनी के मत में धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय होता है। ८७३ से 'दा' के स्थान में दध् हुआ। अल दत्वा ८७ = मत दी। ६१६ से 'पा' को 'पी' तब। पीत्वा खलु = मत पियो। ६२९ इस सूत्र में “अलखल्वो.” यह क्यों कहा ? उत्तर देता है, न कहोगे तो 'माकार्षीत्' में 'मा' के योग में भी क्त्वा ही जावेगा। पुनः यद्वा “प्रतिषेधयो” क्यों कहा ? उत्तर देता है, न कहोगे तो 'अलकार.' में अल के योग में क्त्वा ही जावेगा ॥

६३० ॥ समानकर्तृकयोः पूर्वकाले ३। ४। २१ समानकर्तृकयो-
र्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्धातो. ऋवा । स्नात्वा ब्रजति । द्वित्व-
मतन्त्रम् । भुक्त्वा पीत्वा ब्रजति ॥

जिन धातुओं का कर्त्ता एक हो उन में से पूर्व काल अर्थ में जो धातु तिस से 'क्त्वा' प्रत्यय हो। स्नात्वा ब्रजति = स्नान करके जाता है। यद्वा द्वित्व (१) अविवक्षित है, इस से, भुक्त्वा पीत्वा ब्रजति (खाकर पीकर जाता है) यद्वा दोनों से परे क्त्वा हुआ ॥

६३१ ॥ न ऋवा सेट् १। २। १८ सेट् ऋवा किन्न स्यात् । शयित्वा ।
सेट् किम् । क्तत्वा ॥

सेट् क्त्वा कित् न माना जावे। शयित्वा = सोकर। “सेट्” क्यों कहा ? उत्तर देता है 'क्तत्वा' में गुण न हो ॥

(१) ६३० सूत्र में (दोनों में से पूर्वकालार्थक धातु से क्त्वा ही) यह कोई नियम नहीं अनेकों के होने से जितने पूर्व काल में हो उन सब से क्त्वा ही। यह विवक्षा है।

६३२ ॥ रक्षी व्युपधात्सलादे संश्च १ । २ । २६ इवर्षोवर्षोपधा
सलादे रक्षन्तात् परौ ज्वांसनौ सेटी वा कितौ स्त । द्युतित्वा ।
द्योतित्वा । क्षिष्टित्वा । क्षेष्टित्वा । व्युपधात् किम् । वसित्वा । रक्ष
किम् । सेवित्वा । इलादे चिम् । एषित्वा । सेट् किम् । भुज्वा ॥

बिच घातु की उपधा में इवच 'वा' उपच हो और इच् आदि में हो और रन् अन्त
में ही तिस से परे सेट् की 'क्षा' और 'सन्' के विकल्प से कित् हैं । द्युतित्वा द्योतित्वा
४०८ = चमक कर । क्षिष्टित्वा क्षेष्टित्वा ४०८ = लिख कर । इस सूत्र में 'व्युपधात्' क्यों
कहा ? उत्तर देता है 'वर्षित्वा' में विकल्प न हो । पुन "रक्ष" क्यों कहा ? उत्तर देता
है 'सेवित्वा' में गुच विकल्प से न हो जावे । पुन "इलादे" क्यों कहा ? उत्तर देता है
'एषित्वा' में यषान्तर में गुच रक्षित न हो जावे । पुन "सेट्" क्यों कहा ? उत्तर देता
है 'भुज्वा' यहाँ दूसरे पक्ष में गुच न हो जावे ॥

६३३ ॥ उद्विती वा ० । २ । ५६ उद्वितः परस्य ज्व इत्वा ।
शमित्वा । शान्तत्वा । देवित्वा । द्यूत्वा । दधातेर्ङि । हित्वा ॥

बिच घातु का उ इत् हो तिस से परे छा की इद् विकल्प से हो । शमित्वा वा
शान्तत्वा (शमु+क्षा) ०५६ = शान्त हो कर । देवित्वा (वा) द्यूत्वा (दिवु+क्षा) ८८ =
खेल कर । ८०२ ये धा के स्थान में हि होता है । तब हित्वा = धार कर ॥

६३४ ॥ जहातेरश्च ० । ४ । ४३ हित्वा । जहास्तु । हात्वा ॥
क्षा प्रत्यय परे हो तो 'हा' (त्यागना) घातु की 'हि' होता है । हित्वा (हीङ्कार) ।
परन्तु हा (गमन) का तो हात्वा बनता है ॥

६३५ ॥ समासेऽनञ्पूर्वे ज्वो स्यप् ० । १ । ३० । अच्ययपूर्वपदे
ऽनञ्समामे ज्वो स्यवादेशः । तुक् । प्रकृत्य । अनञ् किम् । अकृत्वा ।
अच्ययपूर्वपदे किम् । परमकृत्वा ॥

ज्व समास में नञ् भिन्न अच्यय पूर्वपद रहे तब 'ज्वा' की स्यप् आदेश होवे
८२९ से तुक होता है । प्रकृत्य । इस सूत्र में 'अनञ्' क्यों कहा ? उत्तर देता है 'अकृत्वा'
यहाँ स्यप् न होजावे । यहाँ नञ् अद्युदात्त (नञ् भिन्न नञ् के समान घयात् अच्यय) यहाँ
माता ? उत्तर देता है 'परमकृत्वा' यहाँ स्यप् न होजावे ।

६३६ ॥ अभीक्ष्यये षमुल् च १ । ४ । २२ अभीक्ष्यये द्योत्ये पठ्न
विपये षमुल् नवा च ।

जब आभीक्ष्ण्य (वार २ करना) प्रकाश करना हो तब ६३५ सूत्र के विषय में ऋवा और 'णमुल्' प्रत्यय होंगे।

६३७॥ नित्यवीप्सयोः ८।१।४ अभीक्ष्ण्ये वीप्सायाञ्च द्योत्ये पदस्य द्वित्वं स्यात्। आभीक्ष्ण्यन्तिडन्ते ष्वव्ययसंज्ञककृदन्तेषु च। स्मारंस्मारन्नमति शिवम्। स्मृत्वा स्मृत्वा। पायम्पायम्। भोजम्भोजम्। श्रावं श्रावम्

आभीक्ष्ण्य वा वीप्सा प्रकाश करनी हो तब पद को द्वित्व होंगे आभीक्ष्ण्य तिडन्तों में और अव्यय सञ्ज्ञक कृदन्तों में होता है। स्मार स्मार १६६ नमति शिवम् वार २ स्मरण करके शिव को प्रणाम करता है। पाय पायम् ८०० वार २ पीकर भोज भोजम्, वार २ भोजन कर। श्राव श्रावम् १६६ वार २ सुन कर।

६३८॥ अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ३।४।२७। एषु कृजोगमुल्स्यात् सिद्धोऽप्रयोगो यस्य एवम्भूतश्चेत् कृञ् व्यर्थत्वात्प्रयोगा नर्ह इत्यर्थः। अन्यथा कारं। एवं कारं। कथं कारं। इत्थं कारं भुङ्क्ते। मिहेति किम्। शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते ॥ इति कृदन्तप्रक्रिया ॥

अन्यथा, एव, कथम्, और इत्थम्, इन में से कोई शब्द उपपठ रहे तब 'कृञ्' धातु से परे 'णमुल्, प्रत्यय होंगे, परन्तु यदि कृञ् धातु का अप्रयोग सिद्ध हो अर्थात् कृञ् व्यर्थ हो, इसी लिये उस का प्रयोग करना व्यर्थ हो। जैसे (१) अन्यथा कार भुङ्क्ते, वह अन्य प्रकार से खाता है। एव कार भुङ्क्ते वह इस प्रकार से खाता है। कथं कार भुङ्क्ते वह किस प्रकार खाता है। इत्थं कार भुङ्क्ते, वह इस प्रकार खाता है। यहाँ सिद्ध ऐसा पद क्यों कहा ? उत्तर देता है, यदि न कहो तो, शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते = शिर को फेर कर खाता है, यहा कृ धातु सार्थक है। यहा भी णमुल् हो जावेगा (यही टोष पड़ेगा परन्तु सिद्धपद के होने से यहा णमुल् नहीं हो सकता ॥ कृदन्तों की प्रक्रिया समाप्त हुई

॥ अथ कारकम् ॥

अब कारकों (विभक्तियों के अर्थों) का वर्णन किया जाता है।

६३९॥ प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा २।३।४६ नियतोपस्थितिक प्रातिपदिकार्थः। मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः।

(१) "अन्यथाकार भुङ्क्ते" इत्यादि उदाहरणों में कृञ् का प्रयोग व्यर्थ है, क्यों कि 'अन्यथाकार भुङ्क्ते' का जो अर्थ है, वही अर्थ "अन्यथा भुङ्क्ते का है। इस लिये कृ। से णमुल् किया पुन १६६ से वृद्धि: और ३६३ से णमुलन्त को अव्ययों के कार्य किये तो 'अन्यथा कारम्, यह सिद्ध हुआ ॥

प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्रायाधिक्ये सङ्ख्यामात्रे च प्रथमा स्वात्
 प्रातिपदिकार्थमात्रे । उच्यैः । नीचैः । कृष्णैः । श्रीः । भ्रानम् । लिङ्ग
 मात्रे । तट । तटी । तटम् । परिमात्रमात्रे । द्रोणीत्रीहि । वचनं सङ्ख्या
 एकः । द्वी । वद्व ।

(विष्) प्रातिपदिक के लक्षण से जिस शब्द को नियम से उपस्थिति (प्रतीति) हो वह प्रातिपदिकार्थ (अर्थवार्थ) कहलाता है । सूत्र में जो मात्र शब्द है उस का प्रत्येक के साथ सम्बन्ध है । इन्द्र समास के अन्त में सुनावाने से । केवल प्रातिपदिकार्थ में और लिङ्गमात्र के आधिक्य में और परिमात्र मात्र के आधिक्य में और केवल संख्या वाचक शब्द से परे प्रथमा होवे । प्रातिपदिकार्थ में जैसे उच्यै (वा) नीचै यहाँ विभक्त्यन्त को पद संज्ञा होने पर शब्द और विसर्ग हुए । कृष्ण (वासुदेव) श्री (सरस्वती) भ्रानम् (भ्रान) इस के और भी अक्षर 'वा' नियतलिङ्ग उदाहरण हो सकते हैं । लिङ्गमात्र में जैसे (१) तट तटी तटम् नदीका तीर । ऐसे और भी अनियतलिङ्ग शब्द इस के उदाहरण हो सकते हैं । परिमात्र मात्र में जैसे द्रोणी त्रीहि । द्रोण रूप परिमात्र से गया हुआ अनात्र (द्रोणमर वाचक) सूत्र में जो 'वचन' शब्द है उस का अर्थ (२) संख्या है । उदाहरण जैसे एक ही वद्व एक दो बहुते ।

६४० ॥ सम्बोधने च २ । ३ । ४० प्रथमा । हे राम ।

सम्बोधन पद में प्रथमा होवे । हे राम ।

६४१ ॥ कर्तुरीप्सिततमङ्गस्मि । १ । ४ । ४६ कर्तु क्रिययाप्तुमि

प्लुतमङ्गारकङ्गस्मसञ्ज्ञं स्यात् ।

कर्ता को क्रियाजन्य फल के साथ जिस का सम्बन्ध कराने की अत्यन्त इच्छा हो सो कारक कर्म संज्ञा जाता हो ।

६४२ ॥ कस्मश्चि द्वितीया । २ । ६ । २ । अनुत्वे कस्मश्चि द्वितीया । हरि-
 स्मञ्चति । अभिहिते तु कस्माद्दौ प्रथमा । हरिस्सेठयते । लक्ष्म्या सेवितः ।

(१) यहाँ तीर रूपी प्रातिपदिकार्थ तो नियम के उपस्थित होता है परन्तु तीरान् लिङ्ग नहीं होते इस नियम लिङ्ग मात्र का आधिक्य है । (२) वाच्य वाचक का अभेद मात्र वा प्राचीन के व्यवहार से । यहाँ जो एक का पद है । वही सु का पद है तो "वचनार्थानामप्रयोगः" उदाहरण का प्रयोग नहीं होता । इस नियम से यहाँ एकान्वि शब्दों ने विभक्ति को प्राप्ति नहीं की इस दोष के निवारण के लिये मात्र म संख्या शब्द है ।

अनुक्त (किसी प्रत्यय से न उक्त) कर्म में द्वितीया हीवे । हरि भजति, वह हरि की भजता है । यहां प्रत्यय कर्ता में है इस लिये कर्म अनुक्त है । परन्तु उक्त कर्मादि की मे तो प्रथमा ६३६ से ही जाती है । जैसे हरि' सेव्यते (हरि सेवा किया जाता है) लक्ष्म्या सेवितः (लक्ष्मी से सेवा किया गया) यहा 'सेव्यते' और सेवितः, दोनों कर्म प्रत्ययान्त हैं, तो कर्म उक्त हुआ इसी लिये प्रथमा हुई ।

६४३ ॥ अकथितञ्च १ । ४ । ५१ अपादानादिविशेषैरविवक्षित
कारककर्मसञ्ज्ञं स्यात् ।

अपादान ६५० आदि (अपादान, सम्प्रदान, करण, अधिकरण आदि) जब विवक्षित न हों तब ये भी कारक कर्मसंज्ञक हों ।

६४४ ॥ दुह्याच्पच्दण्डरुधिप्रच्छिचिन्नूशास्तुजिमन्थमुषाम् ।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथास्यान्नीहृक्कष्वहाम् १ गां दोग्धि पयः । वलिं-
याचते वसुधाम् ; तण्डुलानोदनम्पचति । गर्गान् शतन्दण्डयति ।
व्रजमवरुणद्धि गाम् । माणवकम्पन्थानम्पृच्छति । वृक्षमवचिनोति फलानि
माणवकन्धर्मं ब्रूते । शास्ति वा । शतं जयति देवदत्तम् । सुधां क्षीरनि-
धिस्मृणाति । देवदत्तं शतम्मुष्णाति । ग्रामसजान्नयति । हरति कर्षति
वहति वा । अर्थनिबन्धनेयं सञ्ज्ञा । वलिं भिक्षते वसुधाम् । माणव-
कन्धर्मंभाषते । अभिधत्ते । वक्ति । इत्यादि ।

दुह, दोहना । याच्, मांगना । पच्, पकाना । दण्ड, दण्ड देना । रुधिर्, ठकना । प्रच्छ, पूछना । चि, सचय करण । ब्रू, बोलना । शास्, शिक्षा देनी । जि, जीतना । मन्थ् मथना । मुप् चुराना । इन धातुओं के और 'शी, लेजाना । हृ, हरना । कष्व, खँचना । वह् लेजाना, इन धातुओं के मुख्य कर्म के साथ क्रिया सम्बन्धी, जो अपादानादि विशेषों से विवक्षित न हों तो वह कारक कर्मसंज्ञा वाला हो । गा दोग्धि पय (वह गौसे दूध दुहता है । वलि याचते वसुधाम् (वामन बलराजा से धरती मागता है) तण्डुलानोदन पचति (वह तण्डुलों से भात पकता है) गर्गान् शत दण्डयति (वह गर्गों से सौ रुपैये दण्डलेता है) व्रजमवरुणद्धि गाम् (वह व्रज में गौ को घेरता है) माणवकं पन्थान पृच्छति, वह वच्चे से मार्ग पूछता है वृक्षमवचिनोति फलानि (वह वृक्ष से फलों को इकट्ठा करता है) माणवक धर्मं ब्रूते शास्ति वा वह बालक को धर्म कहता है, वा सिखलाता है । शतं जयति देवदत्तम्, वह देवदत्त से सौ मुद्रा जीतता है । सुधां क्षीरनिधि मन्थाति, वह क्षीरसमुद्र से अमृत को मथता है ।

देवदत्तं धर्मं मुद्रयाति देवदत्त से सो मुद्रा चुराता है । धामसभां नयति हरति कर्षति
वहति वा—वह धाम में भवा(बकारी)को लेजाता है (इत्यादि) यह संज्ञा (१) पर्यं निबन्धना
है इस से 'याव' के समागार्थक 'भिष्' पड़च्ये । बलिं भिषते वमुधाम् । यद्वा भी बलिम्
में द्वितीया चुरं । ऐसे भाष्यवर्ष वसे भावते अभिषते वलि इत्यादि भी जाग लेने ।

८४५ ॥ साधकतम करणम् १ । ४ । ४२ क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपका
रकं करणसञ्ज्ञं स्यात् । स्वतन्त्रं इति कर्तृसञ्ज्ञा ।

क्रिया की सिद्धि में जो अत्यन्त उपकारक हो सो कारक करण संज्ञा वाक्ता की
घौर । ०१८ से कर्तृ संज्ञा होती है ॥

८४६ ॥ कर्तृकरणयोस्तृतीया २ । ३ । १८ । अनभिहिते कर्तारि
करणे च तृतीया स्यात् । रामेण वाखेन इतो वाक्ता ।

अनुक्त (जो तिह् यादि प्रत्ययीं से छत्र नहीं) कर्ता घौर करण से परे तृतीया
विभक्ति हो । रामेण वाखेन इतो वाक्ता—राम से वाच करके वाक्ता माध मया । यद्वा राम
कर्ता है घौर वाच करण है 'परन्तु दोनों 'अनुक्त' हैं' क्योंकि प्रत्यय वर्म में है इसी लिये
तृतीयान्त हुए ॥

८४७ ॥ कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् १ । ४ । ३९ दानस्य
कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानसञ्ज्ञं स्यात् ।

कर्ता किस को दान क्रिया के कर्म से साथ संयुक्त करने की इच्छा करे सो कारक
सम्प्रदान संज्ञा वाक्ता होवे ॥

८४८ ॥ चतुर्थी सम्प्रदाने २ । ३ । १३ विप्राय गां ददाति ।
सम्प्रदान कारक में चतुर्थी होवे । विप्राय गां ददाति—विम को गो देता है ॥

८४९ ॥ नमः स्वस्तिस्वाहास्वधालवपह्योगाच्च २ । ३ । १६
एभिर्योगे चतुर्थी । हरये नमः । प्रजाभ्य स्वस्ति । अग्नये स्वाहा । पितृभ्य
स्वधा । अक्षमितिपर्ष्याप्त्यथ यज्ञणम् । तेन दैत्येभ्यो हरिरर्षं प्रभु
समयः शक्य इत्यादि ।

नमम् 'स्वरित' 'स्वाहा' 'स्वधा' 'यज्ञम्' घौर 'वपद्' इन के योग में चतुर्था होवे।

(१) इस संज्ञा को अर्थनिबन्धना मानने से (इन दुह् यादि १३ भातुषी के चर्षं
के समान पद्य वाक्ते घौर भी भातु लिये जायें) क्योंकि "अर्थनिबन्धना" का यह भाव है
कि यद्वा दुह् यादि भातु नहीं किन्तु इन के चर्षं यद्वा कर्म संज्ञा में कारक है ॥

हरये नमः (हरि को नमस्कार) । प्रजाभ्यः स्वस्ति = प्रजा का कल्याण । अग्नये स्वाहा = अग्नि में हवि देना । पितृभ्यः स्वधा = पितरों को देना । यद्वा "अन्नम्" का अर्थ पर्याप्त है, इस लिये पर्याप्त जिन का अर्थ है उन के योग में चतुर्थी होवे, जैसे "दैत्येभ्यो हरि-रत्न, प्रभुः, शक्तः, समर्थः, इत्यादि = दैत्यों (दिति के पुत्रों) के लिये हरि परिपूर्ण है समर्थ है शक्तिमान् है ॥

६५० ॥ ध्रुवमपायेऽपादानम् । १ । ४ । २४ । अपायोविश्लेषस्त-
स्मिन्साध्ये यद्भ्रुवमवधिभूतङ्कारकन्तदपादानसञ्ज्ञं । स्यात् ।

अपाय का अर्थ विभाग है उस के साध्य होने पर जो ध्रुव (अवधि भूत) कारक (जिस अवधि से विभाग हो वह कारक) अपादान सञ्ज्ञा वाला हो ॥

६५१ ॥ अपादाने पञ्चमी । २ । ३ । २८ । ग्रामादायाति । धावती-
ऽश्वात् पतति । इत्यादि ॥

अपादान में पञ्चमी होवे । ग्रामादायाति = वह ग्राम से आता है । धावती ऽश्वात् पतति = वह दौड़ रहे घोड़े से गिरता है । इत्यादि और भी उदाहरण जान लेने ॥

६५२ ॥ षष्ठी शेषे २ । ३ । ५० । कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः
स्वस्वामिभावादि सम्बन्धः शेषस्तत्र षष्ठी । राज्ञः पुरुषः । कर्मादीनाम
पिसम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठेयव । सताङ्गतम् । सर्पिषो जानीते
मातु स्मरति । एधोदकस्थोपस्कुरुते । भजे शम्भोश्चरणयोः ।

कारक और प्रातिपदिकार्थ से भिन्न जो स्वस्वामिभाव (स्वत्व स्वामित्व सम्बन्ध) आदि सम्बन्ध यहा शेष है उस में षष्ठी होवे । "राज्ञः पुरुषः" = राजा का पुरुष । कर्म आदिकों में भी सब सम्बन्ध मात्र की विवक्षा हो तब षष्ठी ही होती है । "सता गतम्" = सज्जनों का गमन । "सर्पिषो जानीते" = वह घृत सम्बन्ध करके ग्रहण होता है । "मातु स्मरति" वह माता का स्मरण करता है । "एधोदकस्थोपस्कुरुते" लकड़ी पानी को नया गुण देतो है । "भजे शम्भोश्चरणयोः" में शिव के चरणों की सेवता हूँ ॥

६५३ ॥ आधारीऽधिकरणम् । १ । ४ । ४५ । कर्तृकर्मद्वारा
तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरणं स्यात् ॥

कर्ता और कर्म के द्वारा कर्ता और कर्म की क्रिया के आधार कारक की अधि-
करण संज्ञा होवे ॥

६५४ ॥ सप्तम्यधिकरणे च । २ । ३ । ३६ । चकाराद्दूरान्तिका-

र्वेभ्यः । शीपरलेपिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा । कटे
 भास्ते । स्थास्थान्पचति । मोक्षे वृक्षास्ति । सर्व्वस्मिन्नात्मास्ति ।
 वनस्य दूरे । अन्तिके वा ॥ ॥ इति विभक्तयस्या ॥

अधिकरण विषये सप्तमी होवे । सूत्रस्य च वा यत्र भाष्य है कि दूर शीर, समीप
 के वाचक यद्दी से भी परे सप्तमी होवे । (१) शीपरलेपिक (२) वैषयिक, शीर (३) अभिव्या
 पक ये आधार के तीन भेद हैं । कटे भास्ते - वह चढ़ाई पर बैठता है । स्थास्थो पचति -
 वह वटखोड़ी में पकाता है । मोक्षे वृक्षास्ति - उसकी वृक्षा का विषय मोक्ष (मुक्ति) है ।
 सर्व्वस्मिन्नात्मास्ति - सम में आत्मा व्याप्त है । वनस्य दूरे अन्तिके वा - वन से दूर वा
 निकट ॥ ॥ विभक्तय (कारण) समाप्त हुए ॥

॥ अथ समास । समास पञ्चधा ॥

। अब समास का वर्णन किया जाता है । समास पान्च प्रकार का है ।

६५५ ॥ तत्र समसर्ग समास । स च विशेषसञ्ज्ञाविनिर्मुक्त केष

समास प्रथम । प्रायेण पूर्वपदार्थप्रधानोऽध्ययीभावो द्वितीय । प्राये
 शीत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषस्तृतीयः । तत्पुरुषभेदः कर्मधारय ।
 कर्मधारयभेदो द्विगु । प्रायेणान्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिरचतुर्थ्य ।
 प्रायेणोभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः पञ्चमः ॥

समसर्ग (यनेक पदी का एक पद होना) समास कहलाता है । जिस की कीर्त
 विशेष संज्ञा (नाम) नहीं वह १म कोषक समास कहलाता है । प्राय जिस में पूर्व पद का
 अब प्रधान हो वह २तीय 'अध्ययीभाव' कहलाता है । प्राय जिस में उत्तर पद का अर्थ
 प्रधान हो वह ३तीय तत्पुरुष कहलाता है । तत्पुरुष का ही भेद कर्मधारय है कर्मधारय
 का एक विशेष भेद द्विगु है । प्राय जिस में (४) अन्यपद का अर्थ ही प्रधान हो वह ४थ
 बहुव्रीहि कहलाता है । प्राय जिस में दोनों पदों का अर्थ प्रधान हो वह ५म द्वन्द्व कहलाता है ॥

६५६ ॥ समर्थ पदविधिः । २ । १ । १ । पदसम्बन्धी यो
 विधिः स समर्थ्याश्रितो बोध्यः ।

जो विधि पद से (या) पदों से सम्बन्ध रखे वह सामर्थ्य (एकार्थीभाव) के आधीन हो ।

(१) जिस की किसी अवयव से संबंध हो वह शीपरलेपिक । (२) जिस से विषय
 का अर्थ हो वह वैषयिक । (३) जिस में प्रायेण पुरुष रूप से व्याप्त हो वह अभिव्यापक ।
 (४) समास के पदों को जोड़ने का अर्थ है । यह सभी उदाहरणों में पढ़ जाते हैं । उदाहरण देखो ।

६५७ ॥ प्राक् कडारात् समासः । २ । १ । ३ । कडाराः कर्म-

धारय इत्यतः प्राक् समास इत्यधिक्रियते ॥

यद्वा से “कडाराः कर्मधारये” इस सूत्र के पूर्व ‘समास’ इस शब्द का अधिकार है ।

६५८ ॥ सह सुपा । २ । १ । ४ । सुप् सुपा सह वा समस्यते ।

समासत्वात् प्रादिपदिकत्वेन सुपोलुक् । परार्थाभिधानं वृत्तिः । कृत-
द्वितसमासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्च वृत्तयः । वृत्त्यर्थावबोधकं
वाक्यं विग्रहः स च लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा । तत्र पूर्वम्भूत
इति लौकिक । पूर्वम्भूत सु इत्यलौकिकः । भूतपूर्वः । भूतपूर्व
चरडिति निर्देशात् पूर्वनिपातः ॥

सुवन्त का सुवन्त के साथ विकल्प करके समास होवे । समास की १३२ से प्राति-
पदिक सज्ञा होने पर ७६२ से सुप् का लुक् होता है । भिन्न २ अवयवी में जो अर्थ रहे
उस से भिन्न (एक रूप से) अर्थ के प्रकाश करने वाली शक्ति की वृत्ति कहते हैं । वृत्ति के
पाञ्च भेद हैं १ कृत, २ तद्वित, ३ समास, ४ एक शेष, और ५ सनाद्यन्त धातु । वृत्ति के
अर्थ के जनाने वाले वाक्य को विग्रह कहते हैं । लौकिक, और अलौकिक, ये दो विग्रह के
भेद हैं । ‘भूतपूर्वः’ इस का लौकिक विग्रह जैसे ‘पूर्व भूतः’ अलौकिक जैसे ‘पूर्व + भू +
भूत + सु । “भूतपूर्वः” इस में भूत शब्द का “भूतपूर्व चरट्” इस सूत्र में ‘भूत’ शब्द के
पूर्वनिपात के निर्देश से पूर्वनिपात होता है ॥

६५९ ॥ इवेन सह समासो विभक्त्यलोपश्च । वागर्थी इव वाग-
र्थाविव । ॥ इति केवलसमासः प्रथमः ॥

इव (सदृश) के साथ सुवन्त का समास होवे और सुप् का ७६२ से लुक् न होवे ।
“वागर्थीविव” वागर्थी + इव (वाणी और अर्थ के सदृश) ॥ प्रथम केवल समास समाप्त हुआ ।

॥ अथाव्ययीभावः ॥

। अब अव्ययीभाव का वर्णन किया जाता है ।

६६० ॥ अव्ययीभावः । २ । १ । ५ । अधिकारोऽयस् । प्राक् तत्पुरुषात् ।

‘अव्ययीभाव’ इस का अधिकार ६७६ सूत्र के पूर्व पर्यन्त होवे ॥

६६१ ॥ अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिवृद्धयर्थाभावात् यथा सम्प्रति-
शब्दप्रादुर्भावपरचादयानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्य सम्प्रतिमाकल्यान्तवच-

नेषु । २ । १ । ६ । विभक्तयर्थादिषु वक्तमानमध्ययं सुबन्तेन सह नित्वं
समस्यते । प्रायेणाविद्यहो नित्वसमासः । प्रायेणास्वपद्विद्यहो वा
विभक्तौ । हरि ङि अधि इति स्थिते ॥

विभक्ति अथ समीप सञ्चि व्युत्ति—वटतो अर्थ (वस्तु) का अभाव अथवा
(अर्थ) असम्पत्ति अर्थ का प्रादुर्भाव (प्रकाश) । परचात् यवा के अर्थ क्रम यौनपथ
साहचर्य सम्पत्ति साकश्य (सम्पूर्वता), अन्त इत अर्थों में वर्तमान अर्थय का सुबन्त के
साथ समास नित्य होते । प्राय विषय रचित नित्य समास होता है । वा प्राय समस्य
मान पदों से भिन्न पदों के साथ विषय वासा होता है । विभक्त्यर्थ में अर्थय का अर्थ
हरि + ङि + (१)अधि' ऐसे रिक्त होने पर ॥

८६२ ॥ प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् १ । २ । ४३ समास
शास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनं स्यात् ।

समास विधायक (करके वाले) शास्त्र में जो प्रथमान्त रूप से निर्दिष्ट ही वह
उपसर्जन संज्ञा वासा होते । ८६१ सूत्र में 'अर्थय' प्रथमान्त है इस से यहाँ वह उपसर्जन है ।

८६३ ॥ उपसर्जनं पूर्वम् २ । २ । ३० समासे उपसर्जनं प्राक्
प्रयोज्यम् । इत्यधे प्राक् प्रयोगः । सुपोलुक् । एकदेशविकृतस्यान्य
त्वात् प्रातिपदिकसञ्ज्ञायां स्वाद्युत्पत्तिः । अव्ययीभावश्चेत्यथ्यत्वात्
सुपोलुक् अधिहरि ।

समास में उपसर्जन ८६२ पूर्व चरा आवे । इस से अधि का पूर्व प्रयोग हुआ । तो
'अधि + हरि + ङि' ऐसा रूप हुआ तो, पुन ०६२ से मुप् का मुक्त होने पर 'अधि + हरि'
ऐसा रूप रहा । जिस का एकदेश (कोई अवयव) विकृत (रूपान्तर को प्राप्त) ही आवे
धी अन्य क सहय नहीं होता । इस कारण से मुप् के लुक् के होने पर भी प्रातिपदिक
होने से पुन' मु आदि प्रत्यय हुए । उन का ३८६ से पुन' मुक्त क्योंकि ३८३ अव्ययीभावश्च
से अव्ययीभाव को अव्यय संज्ञा है । अधिहरि (हरि विधे) सिद्ध हुआ ॥

८६४ ॥ अव्ययीभावश्च २ । ४ । १८ । अयं मर्षसकं स्यात् । गाः
पातीति गोपाः । तस्मिन्नित्यधिगोपम् ।

अव्ययीभाव समास नपुंसकलिङ्ग होते । गोपा — गोपों की रक्षा करके वाला ।
उन में "अधिगोपम्" २६४ ८६५ ॥

(१) यहाँ अधि अव्यय का ङि के अर्थ में व्यवहार हुआ है ॥

६६५ ॥ नाव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः २ । ४ । ८३ अदन्ता-
दव्ययीभावात् सुपो न लुक् तस्य पञ्चमीं विना अमादेशा ।

अदन्त अव्ययीभाव समास से परे जो सुप् तिस का लुक् न होवे। किन्तु पञ्चमी
को छोड़ कर अन्य (और) विभक्तियों को "अम्" आदेश होवे ॥

६६६ ॥ तृतीयासप्तम्योर्वहुलम् २ । ४ । ८४ अदन्तादव्ययीभा-
वात् तृतीयासप्तम्योर्वहुलमम्भावः । उपकृष्णम् । उपकृष्णेन । सद्राणां
समृद्धिः सुमद्रम् । यवनानां व्यृद्धिर्दुर्व्यवनम् । मन्त्रिकाणामभावो निर्म-
च्छिकम् । हिमस्यात्ययोऽतिहिमम् । निद्रा सम्प्रति न युज्यत इत्यति
निद्रम् । हरिशब्दस्य प्रकाश इतिहरि । विष्णोः पश्चादनुविष्णु ।
योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्था । रूपस्य योग्यमनुरूपम्
अर्थमर्थम्प्रति प्रत्यर्थम् । शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति ।

अदन्त अव्ययीभाव से परे जो तृतीया और सप्तमी उसे अम् आदेश अनेक
प्रकार से हो। उपकृष्णम् 'वा' उपकृष्णेन = कृष्ण के समीप। सुमद्रम् ६२५ = मद्र देशियों
की वृद्धि। दुर्व्यवनम् ६६५ = यवनों की घटती। निर्मच्छिकम् ६६५ = मन्त्रिकों का अभाव।
अतिहिमम् = हिम का नाश। अतिनिद्रम् = नींद नहीं आती (लगती)। इतिहरि = हरि
शब्द का (१) प्रकाश। अनुविष्णु = विष्णु के पीछे। योग्यता, वीप्सा, पदार्थानतिवृत्ति
(किसी पदार्थ को न उल्लङ्घन करणा), और सादृश्य, ये ४ चार यथा के अर्थ हैं। इनके क्रम
से उदाहरण देता है। अनुरूपम् (रूप के योग्य), प्रत्यर्थम् = सभ पदार्थों में। यथाशक्ति =
अपनी शक्ति के अनुसार ॥

६६७ । अव्ययीभावे चाकाले ६ । ३ । ८१ सहस्य सः स्यादव्ययी-
भावे न तु काले । हरेः सादृश्यं सहृदि । ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येणेत्यनुज्येष्ठम्
चक्रेण युगपत् सचक्रम् । मद्रशः सख्या ससखि । ज्ञात्राणां सम्प्रति सन्न-
चम् । तृणमप्यपरित्यज्य सतृणमस्ति । अग्निग्रन्थपठ्यन्तमधीते साग्नि

अव्ययीभाव समास में सह को स आदेश होवे, जब उत्तरपद काल वाचक न हो
तव। सहृदि = हरि की तुल्यता। अनुज्येष्ठम् = बड़े के क्रम से। सचक्रम् = चक्र के समान

(१) जैसे वैष्णवों के गृहों में हरि '२' शब्द हुआ करता है ॥

शास्त्र । ससखि = मित्र के सङ्घ । सचचम = सचियों की सम्यक्ति । सतचम् = वह तब तक भी खा जाता है (कुछ भी नहीं छोड़ता) । साग्नि = अग्नि प्रथम पर्यन्त वेद पढ़ता है ॥

८६८ ॥ नदीभिश्च २ । १ । २० नदीभिः सह संख्या वा समस्यते समाहारे चायमिष्यते । पञ्चगङ्गम् । द्वियमुनम् ।

नदी वाचक शब्द के साथ संख्या वाचक शब्द का समास विकल्प करके होवे । यह सूत्र समाहार में ही लगे यह भाष्यकार की इच्छा है । पञ्चगङ्गम् = पञ्च गङ्गाओं का समाहार । द्वियमुनम् = द्वयोर्यमुनयोः समाहार ॥

८६९ ॥ तद्धिताः ४ । १ । ७६ । आपञ्चमसमाप्तेरधिकारीयम् । इस सूत्र से लेकर अष्टाध्यायी के ५ पञ्चम अध्याय की समाप्ति पर्यन्त तद्धित शब्द पद का अधिकार है ॥

८७० ॥ अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः । ५ । ४ । १० । शरद्दिभ्यश्च स्यात् समासान्तोऽव्ययीभावे । शरद् समीपमुपशरदम् । प्रतिविषाद्यम् ॥

अव्ययीभाव समास में शरद् चादि से परे "टच्" प्रत्यय समास का अन्तावयव होवे । उपशरदम् = शरद् क्तु के समीप । प्रतिविषाद्यम् = विषाद्य के पास ॥

८७१ ॥ ऊराया ऊरस् च । उपऊरसम् । इत्यादि । ऊरा शब्द के स्थान में ऊरस् होवे । उपऊरसम् ८७ तदुपस्था के समीप । इत्यादि और भी जान लेना ॥

८७२ ॥ अमश्च । ५ । ४ । १८ । अन्मन्तादव्ययीभावाहच् ॥ द्विष अव्ययीभाव के अन्त में अन् हो ऊर च परे 'टच्' प्रत्यय होवे ।

८७३ ॥ न्स्तद्धिते । ६ । ४ । १४४ । नान्तस्य भस्य टेष्वोपस्तद्धिते । उपराजम् । अध्यात्मम् ॥

जब तद्धित प्रत्यय परे हो तब मसंज्ञक नान्त पद की टि का होप होवे । उपराजम् (राज समीपम्) । अध्यात्मम् पत्साक्षिणे ॥

८७४ ॥ नपुसकादन्यतरस्याम् । ५ । ४ । १०९ । अन्मन्तं यत् स्त्रीवं तदन्तादव्ययीभावाहञ्वा । उपचर्मम् उपचर्मम् ॥

जिस के अन्त में अन् हो वेषा नपुंसक भिन्नी शब्द जिन अव्ययीभाव समास के

अन्त में हो तिस से परे टच् प्रत्यय विकल्प करके होंगे । उपचर्मम् ६७२ (वा) उपचर्म, चामके समीप ।

६७५ ॥ भयः । ५ । ४ । १११ । भयन्ताद्व्ययीभावाद्दृज्वा । उप-
समिधम् । उपसमित् ॥ इत्यव्ययीभावः ॥

जिस अव्ययीभाव के अन्त में भय् प्रत्याहारान्तर्गत वर्ण हो तिस से परे 'टच्' प्रत्यय विकल्प करके होंगे । उपसमिधम् । या । उपसमित् । समिधः समीपम् ॥

॥ अव्ययीभाव समास समाप्त हुआ ॥

॥ अथ तत्पुरुषः ॥

॥ अब तत्पुरुष समास का वर्णन किया जाता है ॥

६७६ ॥ तत्पुरुष. २ । १ । २२ अधिकारोऽयम् । प्राग्बहुव्रीहेः ॥
तत्पुरुष इस का अधिकार १०२८ सूत्र के पूर्व पर्यन्त है ॥

६७७ ॥ द्विगुश्च २ । १ । २३ तत्पुरुषसंज्ञकः ॥

द्विगु समास भी तत्पुरुष संज्ञा वाला हो ॥

६७८ ॥ द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः २ । १ ।

२४ द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकैः सुवन्तैः सह वा समस्यते । कृष्णं
श्रितः । कृष्णश्रितः । इत्यादि ॥

(१) श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त, और आपन्न, इन प्रकृतियों से परे जो 'सुप्' तद्धन्त के साथ द्वितीयान्त का विकल्प करके समास होंगे । कृष्णश्रितः ७६२ = जिस ने कृष्ण का आश्रयण किया । इत्यादि और भी जान लेने । जैसे दुखातीत, आदिक ॥

६७९ ॥ तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन २ । १ । ३० तृतीयान्तं
तृतीयान्तार्थकृतगुणवचनेनार्थेन च सह वा प्राग्बत् । शङ्खुलया खण्डं ।
शङ्खुलाखण्डः । धान्येनार्थः । धान्यार्थः । तत्कृतेति किम् । अक्षणा कारणः ।

तृतीयान्त के अर्थ से सपादन किये गए गुण के वाचक शब्द के साथ और अर्थ

(१) यहाँ से आपन्न पर्यन्त सातों के ये अर्थ हैं । १ श्रित = जिस ने आश्रयण किया । २ अतीत = अतिक्रमण कर आगे गया । ३ पतित = गिर पड़ा । ४ गत = गया । ५ अत्यस्त = उलझ गया । ६ प्राप्त = पहुँच गया । ७ आपन्न = प्राप्त हुआ ॥

शब्द को साथ तृतीयान्त का विकल्प करने समास होवे । बहुसाखण्ड ०६२-बहुसा () के किया गया जो छपरी का टुकड़ा । चान्द्यार्ष - चान्द्य से जो चय भया । इस धूब में 'तत्पुत्र' यह क्यों कहा ? उत्तर देता है 'भरवा भाष' में समास न हो जाने क्योंकि यहाँ साथ भाषत्व की सम्पादन नहीं ॥

६८० ॥ कर्तृकरणे कृता बहुषम् २ । १ । ६२ कर्तरि कारणे च तृतीया कृदन्तेन बहुषं प्राग्वत् । हरिषात् । नखभिम्न । कृद्भूषे गति कारकपूर्वस्यापि बहुषम् । नखनिर्भिम्न ॥

कर्ता 'वा' करण अर्थ में जो तृतीयान्त से बना प्रकार से कृत् प्रत्ययान्त के साथ समस्यमान होवे । हरिषात् (हरिषा जाता) - हरि से रचा किया गया । नखभिम्न (नखेभिम्न) नखों से फाड़ा गया । इस सूत्र में कृत् के पञ्च से गति वा' कारक जिस कृदन्त के पूरे हो उस का भी पञ्च होवे । नखनिर्भिम्न - नखों से सम्पूर्ण फाड़ा गया । यहाँ निर् यह गति संज्ञक है । तत्पूर्वक कृदन्त (निर्भिम्न) के साथ करण वाचक (नखे) का समास हुआ ॥

६८१ ॥ चतुर्थीतदर्थार्थवलिङ्घितसुखरचिते । २ । १ । ६६ चतुर्थ्यन्तार्थाय यत्तद्वाचिना अर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत् । यूपदात् । तदर्थेन प्रकृतियिङ्गतिभाव एवेष्ट । तिनेह न । रन्धनाय स्यात् ।

चतुर्थ्यन्त के लिये जो जो तिस के वाचक शब्द के साथ और, अर्थ वलिङ्घित, सुख और रचित इन शब्दों के साथ चतुर्थ्यन्त विकल्प करने समस्यमान हो । यूपदात् ०६२ - यज्ञ स्तम्भ के लिये लकड़ी । तदर्थ से यहाँ प्रकृति (चतुर्थ्यन्त के लिये जो शब्द उस) का कुछ (१) विकार इष्ट है इस लिये "रन्धनाय स्यात्" यहाँ समास न हुआ ॥

६८२ ॥ अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम् । द्विजायायम् । द्विजार्थः सूत्र । द्विजार्था ववाग् । द्विजार्थे पय । भूतवशिः । गोहितम् । गोसुखम् । गौरचितम् ॥

चतुर्थ्यन्त का अर्थ शब्द के साथ नित्य समास ही और (२) विशेष्य के अनुसार लिङ्ग होवे । द्विजार्थ - ब्राह्मण के लिये दास । द्विजार्था (द्विजायैवम्) यवाम् - लपरी ।

(१) जैसे स्तम्भ के लिये लकड़ी का विङ्गित भाव (स्वरूपान्तर) स्तम्भ ही है । ऐसे रीन्धने के लिये बटखोड़ी का स्वरूपान्तर नहीं होता । (२) जिस का सुख थादि प्रथम किया जावे वह विशेष्य और गण वाचक 'विशेष्य' होते हैं ।

द्विजार्थम् (द्विजायेदम्) पयः = दूध । भूतबलिः (भूतेभ्यो बलि) ८८१, ७६२ । गोहितम् (गवे हितम्) ८८१, ७६२ । ऐसे गोसुखम् = गौ के लिये सुखदायक । गोरक्षितम् (गवेरक्षितम्) ।

८८३ ॥ पञ्चमी भयेन । २ । १ । ३७ । चौराह्वयं । चोरभयम् ॥

पञ्चम्यन्त का भय शब्द के साथ समास होवे । चोरभयम् ७६२ = चोर से भय ॥

८८४ ॥ स्तोकांनिकदूरार्थकृष्णणि क्तेन । २ । १ । ३६ ॥

स्तोक = घोडा, अन्तिक = समीप, दूर इन शब्दों के अर्थ में जो शब्द हीं सो

और कृष्ण शब्द ये यदि पञ्चम्यन्त हीं तो क्लान्त के साथ समस्यमान होवें ॥

८८५ ॥ पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः ६ । ३ । २ अलुगुत्तरपदे । स्तोकांन्

मुक्तः । अन्तिकादागतः । अभ्यासादागतः । दूरादागतः । कृष्णादागतः ।

उत्तर पद परे हो तो स्तोक आदि शब्दों से परे पञ्चमी का लुक् ७६२ न होवे ।

स्तोकांन्मुक्तः ८८४ = घोडे से मुक्त हुआ । अन्तिकादागत' ८८४ । अभ्यासादागतः ८८४ =

निकट से आया । दूरादागत' ८८४ । कृष्णादागतः ८८४ दू.ख से आया ॥

८८६ ॥ षष्ठी । २ । २ । ८ । सुबन्तेन प्राग्वत् । राजपुरुषः ॥

सुबन्त के साथ षष्ठ्यन्त विकल्प से समस्यमान हो । राजपुरुषः (राज्ञः पुरुषः)

७६२, १६४ (राजा का पुरुष) ॥

८८७ ॥ पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे । २ । २ । १ । अवय-

विना सह पूर्वादयः समस्यन्ते एकत्वसंख्याविशिष्टश्चेदवयवी । षष्ठी-

समासापवादः । पूर्वं कायस्थ पूर्वकायः । अपरकायः । एकाधिकरणे किम् ।

पूर्वश्रृङ्गात्राणाम् ॥

पूर्व, अपर, अधर, उत्तर, ये शब्द एकत्वसंख्या विशिष्ट अवयवी के साथ विकल्प

करके समस्यमान हीं । यह सूत्र ८८६ का अपवाद है । पूर्वकायः ७६२, ८६२, ८६३ = शरीर,

का अगिला भाग । अपरकायः = काया का पिछला भाग । इस सूत्र में "एकाधिकरणे" यह

क्यों कहा ? उत्तर देता है न कहते तो "पूर्वश्रृङ्गात्राणाम्" यहाँ भी समास हो जाता

परन्तु यह समास नहीं हुआ क्योंकि 'छात्राणां' यह बहुवचनान्त है ॥

८८८ ॥ अर्धं नपुंसकम् । २ । २ । २ । समांशवाच्यर्धशब्दो नित्यं

क्तीवे प्राग्वत् । अर्धं पिप्पल्या अर्धपिप्पली ॥

अर्ध का वाचक जब अर्ध-शब्द हो तब वह नित्य नपुंसक लिङ्ग होता है उस

का षष्ठ्यन्त के साथ विकल्प करके समास होवे । अर्धपिप्पली = आधी पीपल ॥

६८६ ॥ सप्तमी गौरुहे । २ । १ । ४० । सप्तम्यन्तं गौरुहादिभि
प्राग्वत् । अक्षेषु गौरुह । अक्षगौरुह । इत्यादि । द्वितीयातृतीयेत्यादियो
गविमागादन्यथापि द्वितीयादिविभक्तीनां प्रयोगवशात्समासो ज्ञेयः ॥

गौरुहादि गण पठित गम्भीरे साय सप्तम्यन्त वा विकल्प करके समास होते ।
अक्षगौरुहः ०१२ = पाशो मे चतुर । इत्यादि चौर भी जानने । ६०८, ६०९, ६०९, ६०९
६८६ इन सूत्रों में क्रम से 'द्वितीया तृतीया चतुर्थी पञ्चमी सप्तमी इन पदों के योग
विभाग करने से परिगणित पदों से भिन्न पदों के साथ भी इन का प्रयोग वच से
समास जानना ॥

६९ ॥ द्विक्संख्ये संज्ञायाम् । २ । १ । ५ । संज्ञायामेवेति निय
मार्यं सूत्रम् । पूर्वेषुक्वामगमौ । सप्तपदपय । सप्तर्षयः । तेनेह न । उत्तरा
वृक्षाः । पञ्च ब्राह्मणाः ॥

द्विन वा एकादिकरूप जो उन के साथ संज्ञा चर्च में दिया वाचक 'वा' संख्या
वाचक गम्भीरे का समास होते । 'संज्ञा ही में यह समास हो' इस नियम के लिये यह
सूत्र है । 'पूर्वेषुक्वामगमौ' = पूर का इपुक्वामगमी ग्राम विषये । सप्त पदपय वा सप्तर्षय
= पण्डित भादि सात ऋषि । नियम का यह फल है कि 'उत्तरा वृक्षाः, उत्तर पाके वृक्ष ।
चौर 'पञ्च ब्राह्मणा' इन दोनों में संज्ञा के न होने से समास नहीं हुआ ॥

६९१ ॥ तद्वितार्थोत्तरपदसमाहारे च २ । १ । ५१ तद्वितार्थे विषये
उत्तरपदे च परतः समाहारे च वाच्ये द्विक्संख्ये प्राग्वत् । पूर्वस्यां
शाखायां भव पूर्वाशाखा इति समासे आते । सर्वनाम्नो इतिमात्रे
पुवद्भावः ॥

जब "तद्वितार्थं ही विषयता हो" 'वा' 'उत्तर पद परे हो" 'वा' "समाहार वाच्य
हो" तब दिया वाचक 'वा' संख्या वाचक गम्भीरे विकल्प करके समस्यमान हो । 'पूर्वस्यां
शाखायां भव' ऐसे विषय में 'भव रूप' तद्वितार्थं ही विषयता में समास होने पर ०१२
से "पूर्वाशाखा" ऐसा रूप हुआ । पुनः "सर्वनाम जो इति मात्र में पुवद्भाव हो" इस भाव्य
के बचनार्थ से "पूर्वशाखा" ऐसा रूप हुआ ॥

६९२ ॥ द्विक्पूर्वपदादसंज्ञायां अ । ४ । २ । १० । अस्माद्वा
दार्थे अ स्यादसंज्ञायाम् ॥

समस्त पद किसी की सज्ञा न ही तब उस से परे भव आदि श्रृंखला में 'ज' प्रत्यय होवे, परन्तु पूर्वपद दिशा वाचक ही तब। तब "पूर्वशाला + ज" ऐसा हुआ ॥

६६३ ॥ तद्धितेष्वचामादेः । ७ । २ । ११७ । जिति णिति च तद्धिते परेश्वचामादेरचो वृद्धिः स्यात् । यस्येति च । पौर्वशालः । पञ्च गावो धनं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहि ॥

अर्ची में पहिले अच् को वृद्धि होवे, जब जित् 'वा' णित् तद्धित प्रत्यय परे रहे । इस से वृद्धि के होने पर २५५ से अन्तिम अच् का लोप तब "पौर्वशालः" (पूर्वशाला में होने वाला) सिद्ध हुआ । "पञ्च गावो धन यस्य" इस त्रिपद बहुव्रीहि में ॥

६६४ ॥ इन्द्रतत्पुरुषयोत्तरपदे नित्यसमासवचनम् ॥

उत्तरपद परे रहे तब इन्द्र 'वा' तत्पुरुष समास नित्य होवे ऐसा कहना चाहिये ॥

६६५ ॥ गौरतद्धितलुक् । ५ । ४ । ६२ । गीन्तात्तत्पुरुषाद्बुच् स्यात्

समासान्तो न तु तद्धितलुक् । पञ्चगवधन ॥

जिस तत्पुरुष के अन्त में गी शब्द हो उस से परे 'टच्' प्रत्यय (१)समासान्त हो परन्तु यदि तद्धित का लुक् न हुआ हो तब । पञ्चगवधन. = जिस की पांच गाय धन ही ।

६६६ ॥ तत्पुरुष. समानाधिकरण. कर्मधारयः । १ । २ । ४२ ॥

जो तत्पुरुष समानाधिकरण हो अर्थात् जिस के पद समान अधिकरण वाले हों तिस की कर्मधारय सज्ञा ही ॥

६६७ ॥ संख्यापूर्वी द्विगु । २ । १ । ५२ । तद्धितार्थेत्यचोक्तस्त्रि-

विध संख्यापूर्वी द्विगुसंज्ञ स्यात् ।

जिस समास का पूर्वपद संख्या वाचक हो और वह ६६१ में निर्दिष्ट तीनों में से कोई एक हो तो द्विगु सज्ञा वाला ही ॥

६६८ ॥ द्विगुरेकवचनन् २ । ४ । १ द्विगुर्थ. समाहार एकवत् स्यात् ।

जो समाहार द्विगु से प्रकाश किया जावे तो एकवचन ही ।

६६९ ॥ स नपुंसकम् २ । ४ । १७ समाहारै द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसकं स्यात् । पञ्चानां गवां समाहारः । पञ्चगवम् ।

समाहार में द्विगु "वा" इन्द्र नपुंसकलिङ्ग होवे । (पञ्चगवम् ६६५ पञ्चानां गवां समाहार) ।

१००० ॥ विशेषश्च विशेष्येण बहुषाम् । २ । १ । ५७ । भेदश्च भेदेन
समानाधिकरणेन बहुषु प्राग्वत् । नीलमूर्त्पक्ष नीलोत्पक्षम् । बहुषुष्यश्च
आत्वयचिन्मिन्त्यम् । कृष्णसर्प । ववचिन्न । रामो जामदग्न्य ।

समानाधिकरण वासे विशेष्य के साथ विशेष्य का ज्ञाना प्रकार से ८१७ समास
होवे । नीलोत्पक्ष (नीलबमल) बहुषु पक्ष से कहीं नित्य होवे जैसे कृष्णसर्प (कृष्ण
रक्षासी सर्प) कक्षा सर्प । कहीं नहीं होता जैसे "रामो जामदग्न्य" राम जो जामदग्न
का पुत्र (परशुराम) ॥

१० १ ॥ उपमानानि सामान्यवचनैः । २ । १ । ५५ । घनश्याम ।

(१) सामान्यवचन के वाचक शब्द के साथ उपमान वाचक शब्द का समास होवे ।
घनश्याम (घन श्व श्याम) मेघ के तुल्य वाक्ता ।

१००२ ॥ शाकपार्थिवाद्दीनामुत्तरपदस्त्रीपो वक्तव्य । शाकप्रियः
पाथिव । शाकपाथिव । देवब्राह्मण ॥

शाकपार्थिवादिर्षी की सिद्धि के लिये उत्तरपद का लोप कहना चाहिये । शाकपा
थिव जिस राजा की शान प्रिय थी । वहाँ प्रिय शब्द का लोप हुआ है । देवब्राह्मण (देव
पूजको ब्राह्मण) की ब्राह्मण देवी के पूजने वाला है । यहाँ पूजक शब्द का लोप हुआ है ।

१ ०३ ॥ गञ् २ । २ । ६ नञ् सुपा प्राग्वत् ।

सुबन्त के साथ गञ् का विकल्प करने पर समास हो ।

१ ०४ ॥ नस्त्रीपो नञः । ६ । ३ । ७३ । गञो नस्य लोप उत्तर
पदे । ब्राह्मण ॥

उत्तर पद के परे होते गञ् के 'न्' का लोप होवे । ब्राह्मण (को ब्राह्मण नहीं) ।

१ ०५ ॥ तस्मान्मुट्चि । ६ । ३ । ७४ । सुप्तानकाराम्मञ् उत्तर
पदस्यात्त्वेमुट् । अनश्व । मैकधेत्यादौ तु नशब्देन सङ्ग सुप्तुपेति
समासः ॥

(१) जो वचन उपमान (जिस की उपमा दी जाती है) में शेर उपमेय (जिस की
उपमा ली जाती है) में सामान्य रूप से रहे वह सामान्यवचन कहलाता है । जैसे "घन
श्याम कृष्ण" इस उदाहरण में घन उपमान है । कृष्ण उपमेय है दागी का सामान्य
वचन श्यामत्व है ।

जिस नञ् के नकार का १००४ से लीप हुआ ही उस से परे अजादि पद को नुट् का आगम होवे। अनश्वः, जो घीडा नहीं। नैकधा (जो एक प्रकार से नहीं) इत्यादियों में "न" शब्द के साथ ८५८ से सुबन्त का समास है नञ् अव्यय का नहीं इसी लिये इस में १००५ की प्राप्ति नहीं।

१००६ ॥ कुगतिप्रादयः । २ । २ । १८ । एते समर्थेन नित्यं सम-

स्यन्ते। कुत्सितः पुरुषः कुपुरुषः ।

कुशब्द, और गति संज्ञक शब्द २१६, १००७ और प्रादि शब्द ४५ समर्थ के साथ नित्य समस्यमान होवें। कुपुरुषः (कुत्सितः पुरुषः) बुरा मनुष्य।

१००७ ॥ जर्यादिच्चिवाचश्च १।४।६१ जर्याद्यश्च्यन्ताडाजन्ताश्च क्रियायोगे गतिसंज्ञास्युः। ऊरीकृत्य। शुक्लीकृत्य। पटपटाकृत्य। सुपुरुषः

जर्यादि, और च्यन्त, और डाजन्त क्रिया को योग में गति संज्ञा वाले होवें। ऊरीकृत्य, अहीकार करके। चि्व प्रत्ययान्त जैसे शुक्लीकृत्य (श्वेतकारके) डाच् प्रत्ययान्त जैसे पटपटाकृत्य, पटत् २ ऐसा शब्द करके। सुपुरुषः १००६, ४५ (भला मनुष्य)।

१००८ ॥ प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया । प्रगत आचार्यः प्राचार्यः ।

प्रादिक उपसर्ग जब गतः शब्द के अर्थ में ही वा गत के तुल्य शब्दों के अर्थ में ही तब इन का प्रथमान्त के साथ समास होवे। प्राचार्यः (कुलपरम्परा प्राप्त आचार्य)।

१००९ ॥ अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया । अतिक्रान्ती मालामिति विग्रहे ॥

क्रान्त (उलझ जाना) आदि शब्दों के अर्थ में जब अति वा अति के सदृश कोई उपसर्ग रहे तब उन का द्वितीयान्त के साथ समास होवे "अतिक्रान्ती मालाम्" ऐसे विग्रह करने पर।

१०१० ॥ एकविभक्ति चापूर्वनिपाते । १ । २ । ४४ । विग्रहे यन्नि-यतविभक्तिकं तदुपसर्जनं न तु तस्य पूर्वनिपातः ॥

विग्रह में जिस की विभक्ति नियत हो उस की उपसर्जन संज्ञा होवे, परन्तु उस का पूर्व निपात न होवे।

१०११ ॥ गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य । १ । २ । ४८ । उपसर्जनं यो गोशब्दः स्त्रीप्रत्ययान्तं च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य क्त्वः । अतिमाल् ।

जिस प्रातिपदिक का अन्त अवयव उपसर्जन १०१० संज्ञक गो शब्द ही वा स्त्री

प्रत्ययान्त ही उस को उरुव होवे । अतिमास (को सुन्दरता से माया को अतिप्रम कर
नया है ।

१०१२ ॥ अवाद्यः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया । अवक्रुष्टः क्रीकिलया ।
अवक्रोक्लिष ।

क्रुष्ट आदि धर्म में अव आदिकों का तृतीयान्त के साथ समास होवे । अवक्रोक्लिष
७६१ १ ११ को क्रीकिला से अवक्रुष्ट (घात) हुआ ।

१०१३ ॥ पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या । परिग्लानोऽध्ययनाय
पर्यध्ययम् ।

ग्लान आदिकों के धर्म में परि आदिकों का चतुर्थ्यन्त के साथ समास होवे
पर्यध्ययम् पदने के लिये ग्लानियुक्त ।

१ १४ निराद्य क्राभ्ताद्यर्थे पञ्चम्या । निज्क्रान्त कौशाम्ब्याः
मिठकौशाम्बि ॥

क्रान्त (नया) आदिकों के धर्म में परि आदिकों का पञ्चम्यन्त के साथ समास
होवे । निज्कौशाम्बि १ ११ को कौशाम्बी नगरी से निकल गया है ।

१०१५ ॥ तथोपपदं सप्तमीस्यम् १ । १ । ६२ सप्तम्यन्ते पदे कम
थीत्यादी वाच्यत्वेन स्थितयत्कुम्भादि तद्वाचकं पदमुपपदसंज्ञं स्यात् ।

सप्तम्यन्त को कर्मणि ८१३ इत्यादि पद उन में वाच्यत्व (बोध्यता) करने रिक्त
को कुम्भादि धर्म तिग के वाचक शब्द उपपद कहलावे ।

१०१६ ॥ उपपदमतिङ् । २ । २ । १६ । उपपदं समर्थेन मित्यं
समस्यतेऽतिङन्तश्च समास । कुम्भं करोतीति कुम्भकारः । अतिङ्
क्लिम् । माभवान् भूत् । माङि लुङिति सप्तमीनिर्देशान्माङुपपदम् ।
गतिकारकोपपदानां कृत्ति सङ् समासवचनं प्राप् सुभ्रुत्पत्ते । व्याघ्री
अश्वत्रीसौ कष्टपीत्यादि ॥

उपपद का १ १६ समस (एकार्थी भाव के योग्य) के साथ नित्य समास होवे ।
धीर यङ् समास तिङन्त के साथ न होवे । (१) कुम्भकारः इस मूल में "अतिङ्" ऐसा
कही कहा ? उत्तर देता है "माभवान् भूत्" इस उदाहरण में ७६१ मूल में 'माङि' के

उन्तम्यन्त के निर्देश से १०१५ से माङ् उपपद तो है, परन्तु यदि यहाँ अतिङ् न ग्रहण करते तो समास होजाता । क्कदन्त से परे सुप् की उत्पत्ति के पहिले गति, कारक और उपपद इन तीनों का क्कदन्त के साथ समास होवे । व्याघ्री ८३३, ५१८, १३६७ (विशेषेण आसमन्ताज्जिघ्रति) वाचिन । अश्वक्रीती (अश्वेन क्रीता) १३६२ घोडा देकर जो मोल ली गई है । (१) कक्कपी (कक्कई) इत्यादि और भी जानने ।

१०१७ ॥ तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः । ५ । ४ । ८६ । संख्या-
व्ययादेरङ्गुल्यन्तस्य तत्पुरुषस्य समासान्तोऽच् स्यात् । द्वे अङ्गुली
प्रमाणस्य द्व्यङ्गुलम् । निर्गतमङ्गुलिभ्यो निरङ्गुलम् ॥

सख्यावाचक शब्द (वा) अव्यय है आदि में जिसके और अङ्गुलि शब्द है अन्त में जिस के ऐसे तत्पुरुष समास का अन्तका अवयव अच् प्रत्यय होता है । द्व्यङ्गुलम् २५५ दो अङ्गुल प्रमाण का । निरङ्गुलम् २५५ अङ्गुलिओं से निकस गया ।

१०१८ ॥ अहः सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रिः । ५ । ४ । ८७ ।
एभ्यो रात्रेरच् स्याच्चात्संख्याव्ययादेः । अहर्यहणं द्वन्द्वार्थम् ॥

अहन्, सर्व, एकदेश (अवयव) संख्यात और पुण्य इन शब्दों से परे जब रात्रि शब्द आवे तब उस से परे 'अच्' प्रत्यय होवे । इस सूत्र में जो 'च' शब्द है, उस का फल यह है कि संख्यावाचक शब्द वा अव्यय जिस रात्रि शब्द के आदि में हों उस से भी अच् हो । अहन् का ग्रहण यहा द्वन्द्व समास के लिये है, क्योंकि "अहन् और रात्रि" इन दोनों में तत्पुरुष का सम्भव ही नहीं ।

१०१९ ॥ रात्राह्नाहाः पुंसि । २ । ४ । २६ । एतदन्तौ द्वन्द्व
तत्पुरुषौ पुरुषेव । अहश्च रात्रिश्चाहोरात्रः । सर्वरात्रः । संख्यातरात्र ॥

जिस द्वन्द्व वा तत्पुरुष के अन्त में रात्र १०१८ वा, अङ्ग 'वा' अह १०२१ ही वह पुलिङ्ग ही होवे । अहोरात्र १०१८, ३८८, १२१ (दिन और रात) सर्वरात्रः १०१८ सभरात संख्यातरात्र १०१८ (गिनीरात) ॥

१०२० ॥ संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम् । द्विरात्रम् । त्रिरात्रम् ॥
जिस रात्र १०१८ के पूर्व संख्यावाचक शब्द ही सो नपुंसक लिङ्ग हीवे । द्विरात्रम् (द्वयोरात्र्यो समाहार) । त्रिरात्रम् (तिसृणां रात्रीणा समाहार) । १०१८तीन रात का समूह ।

(१) कक्कपी, में सुपि स्थ ७ । २ । ४ इस सूत्र के 'सुपि' इस के योग विभाग करने से 'क' प्रत्यय और ५१८ से पा के आकार का लोप और १३६७ से ङीष् होते हैं ।

१०२१ ॥ राक्षाह सखिभ्यष्टच् । ५ । ४ । ८१ । एतद्भ्यात्

तत्पुरुषाङ्गच् । परमराज ॥

राजन् अहन् सखि ये शब्द विद्य तत्पुरुष के अन्त में होवे तिस का अन्तापयण "ङ्" होवे । परमराज ८०१ प्रधान राजा ॥

१०२२ ॥ आम्नहतः समानाधिकरबवातीवयो । ६ । १ । ४६ ।

महाराजः । प्रकारवचने आतीवर् । महाप्रकारो महावातीवः ॥

'महत' इस शब्द को आकार होवे जब समानाधिकरब वाता या आतीवर् परे हो तब । महाराज १ २१ ८०३ । प्रकार अर्थ में 'आतीवर्' होता है महाजातीव - बड़े प्रकार वाता ॥

१०२३ ॥ इष्यष्टन संख्यायामवहुव्रीह्यीत्सोः । ६ । १ । ४७ ।

भात् स्यात् । द्वादश । अष्टाविंशतिः ॥

संख्या वाचक शब्द उत्तरपद हो तो 'वि' और 'अष्टन्' शब्द को आकार होवे परन्तु यदि बहुव्रीहि समास और असीति शब्द परे हो तो नहीं । द्वादश - बारह । अष्टाविंशति - अठारह ॥

१०२४ । परवशिखञ् हन्तत्पुरुषयो । २ । ४ । २६ । कुञ्जुटम

यूर्याविने । मयूरीकुञ्जुटाविमौ । अर्धपिप्पली ॥

हन्त और तत्पुरुष समास में उत्तरपद के शिञ् के समान शिञ् होवे । कुञ्जुटम-यूरी (कुञ्जुटरच मयूरी च ते) मयूरीकुञ्जुटाविमौ (मयूरी च कुञ्जुटरच तो) अर्धपिप्पली (पिप्पल्या अर्ध) पीपर का भाग ॥

१०२५ ॥ द्विगुप्राप्तापन्नाखम्पूर्वगतिसमासेषु न । पञ्चकपालः ।

पुरोडाश । प्राप्तो जीविका प्राप्तजीविकः । आपन्नजीविकः । अर्धकुमार्यै । अर्धकुमारिः । अत एव आपकात् समास । निष्क्रीयान्मिः ॥

"द्विगु ८८० समास में" और 'द्विस समास का पूर्वपद प्राप्त 'वा' आपन्न 'वा' अतम् जो तिस में" और गति १ ६ समास में उत्तर पद के सङ्ग शिञ् न हो । (१) पञ्चकपाल ८८१ 'पञ्चमु कपालेषु संज्ञत' (पुरोडाश) प्राप्तजीविक' (वा) आपन्न

(१) यहाँ ११२१ से जो प्रत्यय आया वा अच् का 'द्विगुनगणने' । ४ । १ । ८८ ।

एन करके कुञ्जुटा - यत्र भाग ॥

जीविकः = जीविका पाने वासा । अलकुमारिः १०११ = जी कुमारी के लिये समर्थ है । इस उदाहरण में "अलम् पूर्वक समास में उत्तरपद के अनुसार लिङ्ग के निषेध विधान सामर्थ्य से" समास होता है । निष्कौशम्बिः १०१४ ॥

१०२६ ॥ अर्धर्चः पुंसि च । २ । ४ । ३१ । अर्धर्चादयः पुंसि क्लीबे च स्युः । अर्धर्चः । अर्धर्चम् । एवं ध्वजतीर्थशरीरमण्डपयूप-
देहाचकुशकलशपात्रसूत्रादयः ॥

अर्धर्च आदि शब्द पुलिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग होंगे । अर्धर्चः 'वा' अर्धर्चम् = १०५७ ऋचा का आधा । इसी प्रकार, ध्वज, तीर्थ, शरीर, मण्डप, यूप, देह, अङ्गुश, कलश, पात्र और सूत्र, आदि भी जान लेने ॥

१०२७ ॥ सामान्ये नपुंसकम् । मृदु पचति । प्रातः कमनीयम् ॥
॥ इति तत्पुरुषः ॥

सामान्य अर्थ की विवक्षा (कहने की इच्छा) में नपुंसक लिङ्ग होंगे । (१) मृदु पचति । प्रातः कमनीयम् = प्रभात काल रमणीय है ॥ तत्पुरुष समास समाप्त हुआ ॥

॥ अथ बहुव्रीहिः ॥

॥ अब बहुव्रीहि समास का वर्णन किया जाता है ॥

१०२८ ॥ शेषो बहुव्रीहिः २ । २ । २३ अधिकारोऽयम् प्राग्बन्धात् ॥
यद्वा से बन्ध के पूर्व २ इस सूत्र का अधिकार है ॥

१०२९ ॥ अनेकमन्यपदार्थे । २ । २ । २४ । अनेकप्रथमान्तम-
न्यस्य पदस्यार्थे वर्तमानं वा समस्यते स बहुव्रीहिः ॥

अनेक प्रथमान्त शब्द अन्य (द्वितीयान्तादि) पद के अर्थ में वर्तमान हों तो वे विकल्प करके समस्यमान होंगे और वह समास बहुव्रीहि सन्ना वाला होंगे ॥

१०३० ॥ सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ । २ । २ । ३५ । सप्तम्यन्तं
विशेषणञ्च बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् । कण्ठेकाल । अत एव ज्ञापकाद्य-
धिकरणपदो बहुव्रीहिः ॥

(१) यद्वा मृदु शब्द किसी विशेष लिङ्ग वाले शब्द का विशेषण नहीं सामान्य है, इसी कारण नपुंसक हुआ है ॥

बहुव्रीहि समास में सप्तम्यन्त और विशेष्य पूर्व चरे जावे। कण्ठेकात् १०११ (कण्ठे कासी यस्य सः) शिव । इस घूष में सप्तम्यन्त को पूर्व निपात क्लृप्त से यह ज्ञात होता है कि कर्षी२ प्रथमान्त से भिन्न२ विभक्त्यन्त पदीकामी बहुव्रीहि समास होता है।

१०११ ॥ इच्छदन्तात् सप्तम्या संज्ञायाम् । ६ । १ । ८ । इच्छन्ताद्दन्ताच्च सप्तम्या अक्षुक् । त्वचिसार । प्राप्तमुदकं यम्प्राप्ती दको याम् । ऊठरयोऽनङ्त्वान् । उपहृतपशू रुद्र । उहृतीदना स्यासी । पीताम्बरो हरि । वीरपुरुषको याम् ॥

जिस को अन्त में इच् वा' अकार हो उस से परे संज्ञा अर्थ में सप्तमी का लुक् न होवे। त्वचिसारः (त्वचि सारो यस्य) वांस । प्राप्तोदकं = ०५२ घाम । ऊठरव' (ऊठरीरयो येन) बैब । उपहृतपशु' (उपहृतपशुर्यस्मै) = बद्र । उहृतीदना (उहृता पीदना यस्या) = वदलोहो । पीताम्बर' (पीताम्बराच्च यस्य) = विन्धु । वीरपुरुषक' (वीरा पुरुषा यश्च) = गहर ॥

१०१२ ॥ प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदक्षीप । प्रपति तपर्थ । प्रपर्थ ॥

प्र ४५ प्रादि से परे जो धातुज (धातु से उत्पन्न भया जो पद) हो उसका विकल्प करके समास होवे और समास में विकल्प करके उत्तर पद का क्षीप होवे ऐसा कहना चाहिये । प्रपतितपर्थ - (१) प्रपर्थ = जिस को सभी पत्ते तिर पड़े हैं ॥

१ १३ ॥ नञोऽस्त्वर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदक्षीपः । अविद्यमानपुत्रोऽपुत्रः ॥

नञ् से परे अस्त्वर्थ (विद्यमानता वाच्य)की वा विकल्प करके समास होवे और समास पद में विकल्प करके उत्तरपद का क्षीप हीने । अविद्यमानपुत्रो (१) अपुत्र' = जिस को (मूढ़ में) पुत्र नहीं है ॥

१ १४ ॥ स्थियाः पुंस्यद्वापितपुस्काद्नञ् समानाधिकारणे स्थियामपूरणौप्रिवादिषु । ६ । १ । १४ । उत्पुस्काद्नञ् ऊठोऽभावो यश्च

(१) यहाँ पतित शब्द का क्षीप हुआ है । इस समास का यह फल है कि 'पतित शब्द भी उत्तर पद कहलाया नहीं तो इस का क्षीप न होता ॥

(२) यहाँ "विद्यमान" शब्द का क्षीप हुआ है ॥

तथाभूतस्य स्त्रीवाचकशब्दस्य पुंवाचकस्यैव रूपं समानाधिकरणे न तु पूरण्यां प्रियादौ च । गोस्त्रियोरिति ऋस्वः । चित्रगुः । रूपवद्भाष्यः । अनूङ्किम् । वामोरुभाष्यः ॥

जिस शब्द का भाषित (१) पुंस्क प्रवृत्ति निमित्त है यदि उस शब्द से परे ऊङ् १३७० प्रत्यय न रहे तब वह शब्द स्त्री वाचक ही तो उस का पुवाचक के तुल्य रूप ही जाये जब समान अधिकरण वाला स्त्रीलिङ्ग उत्तर पद रहे तब । परन्तु पूरणार्थ प्रत्ययान्त स्त्री वाचक 'वा' प्रियादि गण पठित शब्दों में से कोई एक परे रहे तो नहीं होता । १०११ से गो शब्द को ऋस्व किया तो । (२) चित्रगु' (चित्रा गौर्यस्य स) = जिस की गो चित्र वर्ण की है" सिद्ध हुआ । रूपवद्भाष्य. (रूपवती भार्या यस्य सः) १०३४, १०११ जिस की स्त्री सुन्दरी है । इस सूत्र में "अनूङ्" यह क्यों कहा ? उत्तर देता है "वामोरुभाष्यः" यहाँ १३७४ से ऊङ् आया है तो यहा पुंवद्भाव न हो जावे ॥

१०३५ ॥ अप् पूरणीप्रमाणयोः ५ । ४ । ११६ पूरणार्थप्रत्ययान्तं यत् स्त्रीलिङ्गन्तदन्तात् प्रमाणयन्ताच्च बहुव्रीहेरप् स्यात् । कल्याणी पञ्चमी यास्तां रात्रीणां ता. कल्याणीपञ्चमा रात्रयः । स्त्रीप्रमाणी यस्य स्त्रीप्रमाणः । अप्रियादिषु किम् । कल्याणीप्रियः । इत्यादि ॥

जिस बहुव्रीहि का उत्तरपद पूरणार्थ प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग हो 'वा' प्रमाणी शब्द ही उस का अन्तावयव 'अप्' प्रत्यय होवे । (३) कल्याणी पञ्चमाः- जिन रातों की पाचमी रात सङ्गल देने वाली है । स्त्री प्रमाणः ३५५ जिसे स्त्री प्रमाण है । १०३४ में "अप्रियादिषु" यह क्यों कहा ? उत्तर देता है "कल्याणी प्रियः" ("कल्याणी प्रिया यस्य सः) । इस में "कल्याणी" शब्द की पुंवद्भाव न होजावे । इत्यादि और भी जानो ॥

१०३६ ॥ बहुव्रीहौ सक्थयक्षणीः स्वाङ्गात् षच् । ५ । ४ । ११३ । स्वाङ्गवाचिसक्थयक्षयन्ताद्बहुव्रीहे. षच् । दीर्घसक्थ । जलजाक्षी । स्वा-

(१) शब्द के जिस प्रवृत्ति निमित्त के रहते कभी २ पुलिङ्ग विशिष्ट भी अर्थ कहा जावे सो निमित्त ॥

(२) यहाँ चित्रा को १०३४ से पुंवद्भाव कर लेना ॥

(३) यहा पञ्चमी शब्द १२५२ से पूरणार्थ प्रत्ययान्त है उसके उत्तरपद होने से 'कल्याणी' में १०३४ की प्राप्ति नहीं और अप् के आने पर २५५, और १३३५ भी लगा लेने ।

ज्ञात् किम् । दीर्घसक्विण् शकटम् । स्तूलाद्या वैचुयष्टिः अहसोऽदर्श
नादिति वक्ष्यमासोऽच् ॥

स्वाङ्ग १२६२ पाचक जो सक्विण् वा "अचि" शब्द जिस बहुव्रीहि के अन्त में हो उस से परे अच् प्रत्यय (समासान्त) ही। दीर्घसक्विण् — जिसकी टांग सक्वी ही। अहसासी २६१, २६२ जिस की की पाँचों कमली के तुल्य ही। इस सूत्र में 'स्वाज्ञात् यह क्यों कहा ? उत्तर देता है। दीर्घसक्विण् (शकटम् मासी) और स्तूलाद्या (वैचुयष्टि) भीही 'माँठ वाली बांस की छाठी। यहाँ अच् न ही क्योंकि ये स्वाङ्ग नहीं 'स्तूलाद्या' में १ १८ से अच् प्रत्यय आएंगे ॥

१०३० ॥ द्विचिभ्यां ष मूर्ध्निः । ५ । ४ । ११५ । विमूर्धः । भिमूर्ध ।

द्वि 'वा' चि से परे जो "मूर्धन्" शब्द यह जिस बहुव्रीहि के अन्त में हो उसका अन्त का अक्षर 'य' ही। विमूर्ध (जो मूर्धानी यस्य च) ८०१। भिमूर्ध (बसो मूर्धानी यस्य च) ८०२ = जिस के तीन गिर होंगे ॥

१०३८ ॥ अन्तर्वचिभ्याञ्च लोम्नः । ५ । ४ । ११० । अप् स्यात्
अन्तर्लोमिः । वद्विर्लोमिः ॥

अन्तर् 'वा' वद्विस् से परे जो लोमन् शब्द यह जिस बहुव्रीहि में हो उसका अन्त-अक्षर 'अप्' प्रत्यय होंगे। अन्तर्लोमि ८०१। वद्विर्लोमिः ८०२ जिसके पाँचि लोम हों ॥

१०३८ ॥ पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः । ५ । ४ । ११८ । अहस्त्या-

दिवर्जिताद्युपमानात् परस्य पादस्य लोप । व्याघ्रस्येव पादावस्व
व्याघ्रपात् । अहस्त्यादिभ्यः किम् । अस्तिपाद् । कुमुलपादः ॥

अस्ति पादि मन् में लक्षरित मन्दीं जो लोप उपमानसे परे जो 'पाद' शब्द उसके अन्त का लोप (१) होंगे। व्याघ्रपात् जिसके पाँच व्याघ्र के पाँच समान ही इसी सूत्र में "अहस्त्यादिभ्यः" यह क्यों कहा ? उत्तर देता है 'अस्तिपाद' (अस्तिम पादाविय पादो यस्य च) और 'कुमुलपाद' (कुमुलस्येव (२) पादो यस्य च) इन में लोप न हो जावे ॥

१ ४० ॥ संस्यासुपूर्वस्य । ५ । ४ । १४० । लोपः स्यात् । द्वि

पात् । सुपात् ॥

(१) यह लोप भी समासान्त है इस लिये १ १८ १ ४ १ ४१ १ ४२, इन के विषय में १ ३० में अप् नहीं होता ।

(२) अन्त के व्याघ्र के लिये जो ही (महोरहा) ॥

जिस पाठ शब्द के पूर्व सख्या वाचक शब्द 'वा' 'सु' शब्द ही तो उस के अन्त का लोप होवे । द्विपात् (हो पादावस्य) दुपाया । सुपात् शोभनी पादावस्य अच्छे पांड वाला ॥

१०४१ ॥ उद्दिभ्याङ्गाकुदस्य ५ । ४ । १४८ लोपः स्यात् । उत्काकुत् । विकाकुत् ॥

उत् (वा) वि जिस काकुद शब्द के पूर्व ही उसके अन्त का लोप होवे । उत्काकुत् ऊचे तालु वाला । विकाकुत् (विगत काकुद यस्य) ॥

१०४२ ॥ पूर्णा द्विभाषा । ५ । ४ । १४९ । पूर्णकाकुत् । पूर्णकाकुदः
पूर्ण शब्द से परे काकुद के अन्त का विकल्प से लोप होवे = पूर्णकाकुत् 'वा'
पूर्णकाकुदः = जिस का तालु पूर्ण हो ॥

१०४३ ॥ सुहृद्दुहृदौ मित्रामित्रयोः । ५ । ४ । १५० । सुहृन्मित्रम् । दुहृदमित्रः ॥

'सुहृद्' और 'दुहृद्' ये दोनों यदि क्रम से 'मित्र' और 'शत्रु' के वाचक (१) हों तो 'सु' और 'दु' के परे हृदय को 'हृद्' आदेश निपात से हो । सुहृद् (मित्र) । दुहृद् (शत्रु) ।

१०४४ ॥ उरः प्रभृतिभ्यः कप् । ५ । ४ । १५१ ॥

उरस् (२) प्रभृति गण का कोई शब्द समास के अन्त में ही तो उस से परे 'कप्' प्रत्यय होवे ॥

१०४५ ॥ कस्कादिषु च । ८ । ३ । ४८ एष्विण उत्तरस्य विसर्गस्य षोऽन्यस्य तु सः इति । सः । व्यूढोरस्कः । प्रियसर्पिष्कः ॥

कस्कादि गण में इण् प्रत्याहार से परे जो विसर्ग उसको ष् आदेश होवे (३) अन्य विसर्ग को तो स् होवे । इस सूत्र से विसर्ग को स् हुआ । व्यूढोरस्कः (व्यूढ = विशाल उरो-यस्य सः) = जिसकी छाती चौड़ी हो । प्रिय सर्पिष्कः = जिस की सर्पिस् (वी) प्रिय ही ॥

१०४६ ॥ निष्ठा । २ । २ । ३६ । निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात् युक्तयोगः ॥

(१) मित्र और शत्रु के जहां वाचक नहीं वहां, 'सुहृदयः' और 'दुहृदयः' ऐसे रूप आते हैं ॥

(२) "उरस्, सर्पिस् उपानह, पुमान्, अमड्वान्, पयः, नौः, सद्धमी, दधि, मधु, शालि, अर्यान्नज " इत्युर' प्रभृतय' ॥

(३) जो इण् से परे नहीं ॥

‘असि शब्द के अन्त में निष्ठा प्र. जो” वह बहुव्रीहि समास में पूर्य रूप लावे। युक्तबोध। जो योग में लगा हो ॥

१०४० ॥ शेषादिभाषा । ५ । ४ । १५४। अमुक्तसमासान्ताहुत्रौहि-
कात्वा । महायशस्तः । महायशा ॥ ॥ इति बहुव्रीहि ॥

जिस से परे कीर्ति समासान्त विधान न किया हो ऐसे शेषादिभाषा (१२८) बहुव्रीहि समास में परे रूप प्रत्यय विकल्प करके होते। महायशस्तः (वा) महायशा (महायशोयस्य स) १०२२-असि की कीर्ति बड़ी हो ॥

। बहुव्रीहि समास समाप्त हुआ ।

॥ अथ इन्द्र ॥

॥ अथ इन्द्र समास का अर्थ दिया जाता है ॥

१०४८ ॥ चौर्ये इन्द्र । २ । २ । २८ । अनेक सुवन्तञ्चार्ये वर्तमान वा समस्यते स इन्द्रः । समुच्चयीन्वाचयेत्तरेतरयोगसमाहार-
ञ्चार्या । तत्रेद्वर गुप्तञ्च मजस्वेति परस्परनिरपेक्षत्वानेकस्यै कस्मि
मन्वय समुच्चयः । मिथामटगाञ्चानयेत्यन्वयतरस्यानुपङ्गिकात्वेना
न्वयीन्वाचयः । अमयोरसामर्थ्यात् समासो न । धवखदिरौ द्विधीति
मिक्षितानामन्वय इतरेतरयोग । संज्ञापरिभाषामिति समूह समाहारः ॥

‘च’ के अर्थ में वर्तमान जो अनेक सुवन्त उल्ला समास हो उस समास की इन्द्र संज्ञा हो। समुच्चय अन्वाचय इतरेतरयोग और समाहार, ये चार ‘च’ के अर्थ हैं। “परस्परनिरपेक्ष जो अनेक पदार्थ उल्ला एक पदार्थ में जो सम्मन्वय उल्ला समुच्चय कहते हैं। जैसे “इद्वरं च गुप्तं च मजस्व” (इद्वर की और गुप्त को मज्जी) यहाँ इद्वर और गुप्त दोनों परस्पर निराकाङ्क्ष हैं उल्ला मज्ज किया में सम्मन्वय है। “एक का मुख्य रूप से और दूसरे का अमुचय (गौच) रूप से जो किसी दूसरे में अन्वय हो तो” उस को अन्वाचय कहते हैं जैसे ‘मिक्षा मट गां चानय’ (मिक्षा को लावे और गौ को लावे) यहाँ प्रधान कार्य मिक्षा का तो मुख्य रूप से अन्वय है और गौ का अमुचय (१) रूप से। इन दोनों में सामर्थ्य २१९ के न होने से समास नहीं होता। धवखदिरौ (धवखदिराख ती) द्विधी - धव इत्ये की और खे के अर्थ को पाय ही काट” इसमें “मिक्षिती का ही अर्थ में अन्वय है यही”

(१) यदि मात्र में नहीं गौ मिक्षी तो से पायी नहीं ती नहीं गुप्त को का यह आशय है। इमी हेतु से हम का अमुचय रूप से सम्मन्वय है ॥

“इतरेतरयोग” है। ‘समूह’ को ‘समाहार’ कहते हैं, जैसे, “सञ्ज्ञापरिभाषम्” संज्ञा और परिभाषाओं का समूह ॥

१०४६ ॥ राजदन्तादिषु परम् । २ । २ । ३१ । एषु पूर्वप्रयोगार्ह-
म्परं स्यात् । दन्तानां राजा राजदन्तः ॥

राजदन्तादि (“राजदन्त” शब्द है आदि में जिस के उस) गण में पूर्वप्रयोग (पूर्व निपात) ६६३ के योग्य शब्द का पर निपात हो। अर्थात् राजदन्तादि गण में जिस को ६६३ से पूर्व रखना चाहिये उस को पीछे रखना। राजदन्तः ६६६ = दान्तों का राजा ॥

१०५० ॥ धर्मादिष्वनियमः । अर्थधर्मौ । धर्मार्थौ । इत्यादि ॥

धर्मादि गण में १०४६ सूत्र के लगने का कोई नियम नहीं। अर्थधर्मौ ‘वा’ धर्मार्थौ = अर्थ और धर्म। इत्यादि और भी जान लेने ॥

१०५१ ॥ हन्वे घि । २ । २ । ३२ । पूर्वं स्यात् । हरिहरौ ॥

हन्व समास १०४८ में घि १८४ सञ्ज्ञा वाले शब्द का पूर्व प्रयोग हो। हरिहरौ = विष्णु और शिव ॥

१०५२ ॥ अजाद्यदन्तम् । २ । २ । ३३ । ईशक्तष्णौ ॥

हन्व समास में अजादि (अच् (स्वर) है आदि में जिस के) और अदन्त (अकार है अन्त में जिस के) जो शब्द उस का पूर्व प्रयोग हो। ईशक्तष्णौ = शिव और वासुदेव ॥

१०५३ ॥ अल्पात्तरम् । २ । २ । ३४ । शिवकेशवौ ॥

जिस शब्द में अल्प (थोड़े) अच् ही वह भी हन्व समास में पूर्व धरा जावे। शिव केशवौ = शिव और विष्णु ॥

१०५४ ॥ पिता मात्रा । १ । २ । ७० । मात्रा सहोक्तौ पिता वा
शिष्यते । पितरौ । मातापितरौ ॥

मातृ शब्द के साथ पितृ शब्द का हन्व समास हो तो पितृ शब्द विकल्प करके षेप रह जाता है। पितरौ (माता च पिता च) वा (१) मातापितरौ, माता और पिता ॥

१०५५ ॥ हन्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् । २ । ४ । २ एषां हन्व
एकवत् । प्राणिपादम् । माह्निकपाणविकम् । रथिकाश्वारोहम् ॥

प्राणी (शरीर वाला चेतन), तूर्य (बाजा), और सेना इन के अङ्गों का हन्वसमास

(१) यद्यपि पितृ शब्द के परे होते मातृ शब्द को। आनङ् ऋतो हन्वे ६ । ३ । २५ से आनङ् होता है ॥

“विष शब्द के अन्त में लिखा ‘व’ जो” वह बहुव्रीहि समास में पूर्व बरा आवे। युक्तयोम। जो योम में समा जो ॥

१०४० ॥ शेषादिभाषा। ५। ४। १५४। अनुक्तसमासात्तादुव्रीहि-
कृत्वा। महायशस्कः। महायशा ॥ ॥ इति बहुव्रीहि ॥

विष से परे शीर्ष समासोन्त विधान न किया जो ऐसे शेषाधिकारस्य (१२८) बहुव्रीहि समास से परे कप् प्रत्यय विवक्ष्य करके होवे। महायशस्क (वा) महायशा (महायशोपस्य क) १ २२—विष की कृति। बही जो ॥

। बहुव्रीहि समास समाप्त हुआ।

॥ अथ इन्द्र ॥

॥ अथ इन्द्र समास का वर्णन किया जाता है ॥

१०४८ ॥ शीर्षे इन्द्रः। २। २। २८। अनेक सुवन्तञ्चार्थे वत्त
सामं वा समस्यते स इन्द्रः। समुच्चयीन्वाचयेतरेतरयोगसमाहार-
श्चार्था। तपेश्वरं गुरुञ्च भजस्वेति परस्परनिश्चेषस्यानेकस्यै कस्मि
न्मन्वयः समुच्चय। भिन्नामटगाञ्चानयेत्यन्वतरस्यानुपक्रियत्वेना
न्वयोऽन्वाचयः। अमयीरसामठ्यात् समासो न। घवक्षदिरौ द्विन्धीति
मिथितानामन्वय इतरेतरयोग। संचापरिभाषमिति समूह समाहार ॥

‘व’ के अर्थ में वर्तमान जो अनेक सुवन्त उल्ला समास ही उस समास की इन्द्र संज्ञा हो। समुच्चय अन्वाचय इतरेतर योग, और समाहार ये चार ‘व’ के अर्थ हैं। “पर स्वर निरपेक्ष जो अनेक पदार्थ एक पदार्थ में जो सम्बन्ध उसको समुच्चय कहते हैं। जैसे “ईश्वरं च गुरुं च भजस्व” (ईश्वर की और गुरु को भजो) यहाँ ईश्वर और गुरु दोनों परस्पर निरापेक्ष हैं एकका भजन किया में सम्बन्ध है। ‘एक का मुख्य रूप से और दूसरे का अमुख्य (गौण) रूप से जो किसी दूसरे में अन्वय ही तो” उस को अन्वाचय कहते हैं जैसे “भिन्ना मट्तां चानय” (भिन्ना को जाओ और मौ को बाँटो) यहाँ प्रधान कार्य भिन्ना का तो मुख्य रूप से अन्वय है और मौ का अमुख्य (१) रूप से। इन दोनों में सामान्य ८३५ के न होने से समास नहीं होता। घवक्षदिरौ (घवक्षदिरक्ष तौ) द्विन्धी - अथ इन्द्र को और और की इन्द्र को धाव जो काट” इसमें ‘मिथिति का ही अर्थ में अन्वय है यही”

(१) यदि मार्ग में नहीं गी मिथी तो से धानी नहीं तो नहीं गुह जो का यह भाव्य है। इन्हीं हेतु से इस का अमुख्य रूप से सम्बन्ध है ॥

१०५८ ॥ अक्षयोऽदर्शनात् । ५ । ४ । ७६ । अचक्षुःपर्यायाद्-
क्षयोऽच् स्यात् । गवामक्षीव गवाक्षः ॥

जो आख का वाचक अक्षि शब्द न हो उस से परे समास में 'अच्' प्रत्यय ही ।
गवाक्षः = गौ की आंख के समान (भरोखा) ॥

१०५९ ॥ उपसर्गादध्वनः ५ । ४ । ८५ प्रगतोऽध्वानं प्राध्वो रथः ।

उपसर्ग से परे जो अध्वन् शब्द उस से परे समास में 'अच्' प्रत्यय हीवे । प्राध्वः
८७७ (रथ जो मार्ग पर पहुच गया ही) ॥

१०६० ॥ न पूजनात् ५ । ४ । ६९ पूजनार्थात् परेभ्यः समासा-
न्ता न स्युः । सुराजा । अतिराजा ॥ इति समासान्ता ॥

पूजन अर्थ वाली से परे समासान्त प्रत्यय न हीवे । (१) सुराजा (अच्छा राजा),
अतिराजा (सब से उत्तम राजा) ॥ ॥ समासान्त प्रकरण समाप्त हुआ ॥

॥ अथ तद्धिताः ॥

॥ अथ तद्धितों का वर्णन किया जाता है ॥

१०६१ ॥ समर्थानां प्रथमाद्वा ४ । १ । ८२ इदमधिक्रियते प्राग्दिश
इति यावत् ॥

इस सूत्र के तीनों पदों (समर्थानाम्—प्रथमात्—वा अ०) का १२७८ सूत्र के
पूर्व पर्यन्त अधिकार है । इस का अर्थ १०७१ आदि सूत्रों में स्पष्ट ही जावेगा ॥

१०६२ ॥ अश्वपत्यादिभ्यश्च । ४ । १ । ८४ । एभ्योऽण् स्यात्
प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ॥

अश्वपत्यादि गण से परे प्राग्दीव्यतीय (११९७ सूत्र के पूर्व के प्रत्ययों के अर्थ) में
'अण्' प्रत्यय हीवे ॥

१०६३ ॥ तद्धितेष्वचामादेः ७ । २ । ११७ त्रिति णिति च तद्धिते
परेऽचामादेरचौ वृद्धिः स्यात् । अश्वपतेरपत्यादि । आश्वपतम् ।
शाणपतम् ॥

(१) यच्चा १०२१ से 'टच्' समासान्त पाया था उस का १०६० से निषेध हुआ,
ऐसे ही "अतिराजा" में जानना । परन्तु यहाँ सु 'वा' अति ये दोनों ही लिये हैं इस से
'परमराज.' में पूजनार्थ के पूर्व होने पर भी टच् प्रत्यय ही ही जाता है ॥

पञ्चमसमास को तुल्य हो। पाणिपादम् ८८८ हाथ धीर वैर। भाद्रहृत्पाण्डिपम् =
 दृढ बगाने वाले धीर ठीस मजाने वाले। रविभारवारोहम् = रथों पर धीर घोड़ों पर
 चढ़ने वाले ॥

१०५६ ॥ इन्द्राक्षुदपद्मान्तात् समाहारे। ५। ४। १०६। चय-
 र्गान्ताह्वयद्मान्ताच्च इन्द्राक्षुः स्यात् समाहारे। वाक्त्वचम्। त्वक्-
 स्रजम्। शमोह्वयदम्। वाक्त्वचम्। छत्रोपानहम्। समाहारे किम्।
 प्राहट्शरदौ ॥ ॥ इति इन्द्र ॥

चु (चयम) 'वा' द् 'वा' प् 'वा' इ विभ इन्द्र समास को अन्त में हो उस से परे
 "द्व" प्रत्यय हो समूह में। वाक्त्वचम् = वाची (वामिन्द्रिय) धीर त्वचा (त्वमिन्द्रिय)
 का समूह। त्वक्स्रजम् = द्विजने धीर माया का समूह। शमोह्वयदम् = जपही धीर फल
 का समुदाय। वाक्त्वचम् = वाची धीर प्रज्ञा का समुदाय। छत्रोपानहम् = छतरी धीर
 लूती का समुदाय। इस सूत्र में समाहारे" यह पद नहीं कहा। उत्तर देता है 'प्राहट्
 शरदौ' (वर्षा ऋतु धीर शरद ऋतु) यहाँ टच् न हो आवे ॥

। इन्द्र समास समाप्त हुआ।

॥ अथ समासान्ता ॥

अथ समासान्ती का वर्णन किया जाता है ॥

१०५७ ॥ अक्षधूरधू मयामान्ते। ५। ४। ७४। अगाद्यन्तस्य
 समासस्य अप्रत्यययोऽन्तावयवः। अथे या ध्रुस्तदन्तस्य न। अर्धर्ध
 विष्णुपुरम्। विमलापं सर। राजपुरा। अथे तु। अक्षधू इठधूरधः।
 सखिपयः। रम्यपयोदेश ॥

अक्षधूर अथ धूर धीर पविन् इन अर्थों में से कोई शब्द है अन्त में जिस को
 उस समास का अन्तावयव 'अ' प्रत्यय हो (उस से परे 'अ' प्रत्यय हो) परन्तु पहिले की
 धुरी का वाचक धूर शब्द हो तो नहीं। अर्धर्ध (अर्धोऽधम्) १ २६। विष्णुपुरम् (विष्णो
 पू) विष्णु की पुरी। विमलापम् (विमला पापो धस्य तत्) सरोवर जिस का अक्ष निर्मल
 हो। राजपुरा (राज्ञो पू) १ ३०, १३२३ = राजा का भास। अथ म तो "अक्षधू = पहिले
 की धुरी। 'इठधू' (इठा धूस्य) पहिले जिस की धुरा इठ हो। यहाँ 'अ' प्रत्यय नहीं
 हुआ। सखिपय (सखापेवायन) रम्यपय (रम्यपंवायन) जिस देश का मार्ग रम्य हो।

१०५८ ॥ अक्षणीऽदर्शनात् । ५ । ४ । ७६ । अचक्षुःपथ्यायाद-

क्षणीऽच् स्यात् । गवामक्षीव गवाक्ष् ॥

जो आख का वाचक अक्षि शब्द न हो उस से परे समास में 'अच्' प्रत्यय ही ।
गवाक्ष् = गौ की आंख के समान (भरोखा) ॥

१०५९ ॥ उपसर्गादध्वनः ५ । ४ । ८५ प्रगतीऽध्वानं प्राध्वी रथः ।

उपसर्ग से परे जो अध्वन् शब्द उस से परे समास में 'अच्' प्रत्यय हीवे । प्राध्वः
६७३ (रथ जो मार्ग पर पहुँच गया ही) ॥

१०६० ॥ न पूजनात् ५ । ४ । ६९ पूजनार्थात् परेश्व- समासा-

न्ता न स्यु । सुराजा । अतिराजा ॥ इति समासान्ता ॥

पूजन अर्थ वालों से परे समासान्त प्रत्यय न हीवें । (१) सुराजा (अच्छा राजा),
अतिराजा (सब से उत्तम राजा) ॥ ॥ समासान्त प्रकरण समाप्त हुआ ॥

॥ अथ तद्धिताः ॥

॥ अथ तद्धितों का वर्णन किया जाता है ॥

१०६१ ॥ समर्थानां प्रथमाद्वा ४ । १ । ८२ इदमधिक्रियते प्राग्दिश
इति यावत् ॥

इस सूत्र के तीनों पदों (समर्थानाम्—प्रथमात्—वा अ०) का १२७८ सूत्र के
पूर्व पर्यन्त अधिकार है । इस का अर्थ १०७१ आदि सूत्रों में स्पष्ट हो जावेगा ॥

१०६२ ॥ अश्वपत्यादिभ्यश्च । ४ । १ । ८४ । एभ्योऽण् स्यात्
प्राग्दीव्यतीयेष्वर्थेषु ॥

अश्वपत्यादि गण से परे प्राग्दीव्यतीय (११६७ सूत्र के पूर्व के प्रत्ययों के अर्थ) में
'अण्' प्रत्यय हीवे ॥

१०६३ ॥ तद्धितेष्वचामादे. ७ । २ । ११७ जिति णिति च तद्धिते
परेऽचामादेरचो वृद्धि. स्यात् । अश्वपतेरपत्यादि । आश्वपतम् ।
गाणपतम् ॥

(१) यद्वा १०२१ से 'टच्' समासान्त पाया था उस का १०६० से निषेध हुआ,
ऐसे ही "अतिराजा" में जानना । परन्तु यद्वा सु 'वा' अति ये दोनों ही लिये हैं इस से
'परमराज.' में पूजनार्थ के पूर्व होने पर भी टच् प्रत्यय ही ही जाता है ॥

८८० में इस सूत्र का अर्थ लिख दिया है। आरवपतम् १ ६२ १ ६३ २३३ आरव-
पति राजा का सम्मान आदि। गणपतम् (गणपतेरपत्यादि) = गणेश की सम्मान आदि ॥

१०६४। दित्स्वदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ययः ४। १। ८५ प्राग्दी-
व्यतीयेष्वर्थेषु। दित्तेरपत्य दैत्य। आदितेरादित्यस्य वा आदित्यः
प्राजापत्य ॥

दिति अदिति आदित्य और पत्युत्तरपद (पति शब्द है उत्तरपद जिस का) इन
से परे 'पत्य' प्रत्यय ११८० सूत्र से पूर्व पर्यन्त आने वाले प्रत्ययों को अर्थों में जोवे। दैत्य
१ ६३ २३३ = दिति की सम्मान आदि (असुर)। (१) आदित्य' अदिति की सम्मान
आदि (देवता)। प्राजापत्य' २३३ (प्राजापतेरपत्यम्) ॥

१ ६५ ॥ देवाद्याञ्जौ। दैव्यम्। दैवम् ॥

देव शब्द से परे यञ् वा ञ् प्रत्यय जोवे। दैव्यम् (देव + यञ्) २३३ वा दैवम्
(देव + ञ्) २३३ = देव से जो उत्पन्न भया ॥

१०६६ ॥ बहिषष्टिषोपी यञ् च। बाह्यः ॥ बृकक् च ॥

बहिष् शब्द की टि ४८ का लोप और यञ् प्रत्यय जोवे बाह्य (बहिर्भव) को
बाहर जो। (२) बहिष् शब्द की टि का लोप और बृकक् प्रत्यय भी जोवे।

१०६७ ॥ किति च ०। २। ११८ अचामादेरधी ङि स्वात्।

बाह्यौक् ॥

अचों में आदि अच् को ङि जोवे जब किन्तु तदित प्रत्यय परे जो। बाह्यौक् = जो
बाहर जो।

१ ६८ ॥ गोरवादिप्रसङ्गे यत्। गोरपत्यादि। गव्यम् ॥

जो शब्द से परे अजादि प्रत्यय प्राप्त हों तो इनको बाह्य 'यत्' प्रत्यय जोवे।
गव्यम् १८ = गौ की सम्मान आदि ॥

१ ६९ ॥ उत्सादिभ्योऽञ् ४। १। ८६ शीत्स्व ॥

॥ इत्स्यपत्यादिविकाराभ्यार्याः प्रत्ययाः ॥

(१) यहाँ 'अदिति' और 'आदित्य' दोनों शब्दों से परे 'पत्य' प्रत्यय के आने से
आदित्य' ऐसा ही रूप बनता है। परन्तु अदिति शब्द का हकार का २३३ से लोप। और
आदित्य शब्द से 'पत्य' बनने पर २३३ से अकार का लोप और इलोपमां वमि लोप ८ ४
६३। से यकार लोप कर लेना। (२) 'ईकक् च' यह भी एक भिन्न ही शक्ति है ॥

उत्स आदि से परे 'अष्' प्रत्यय होंगे । औत्सः (१०६३) २५५ (उत्सस्यापत्यादि) ।

प्रत्ययाः अपत्य १०७१ (सन्तान) से आरम्भ कर विकार ११८६ पर्यन्त अर्थों वाले प्रत्यय समाप्त हुए ॥

१०७० ॥ स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात् ४ । १ । ८७ धान्यानां-

भवन इत्यतः प्रागर्थेष्वाम्भ्यामेतौ स्तः । स्त्रैणः । पौंसः ॥

इस सूत्र से लेकर १२४३ सूत्र पर्यन्त जोनसे अर्थ गिने गए उन अर्थों में स्त्री और पुस् शब्द से परे क्रम से 'नञ्' और 'स्नञ्' प्रत्यय होंगे । स्त्रैणः, १०६३, १११ (स्त्रीषु-भवः) पौंसः १०६३, २३ (पुसु भवः) पुरुषों में जो होंगे ॥

१०७१ ॥ तस्यापत्यम् ४ । १ । ६२ षष्ठ्यन्तात् कृतसन्धेः सम-

र्यादपत्येऽर्थे उक्ता वक्ष्यमाणाश्चप्रत्यया वा स्युः ॥

(१) करदी है सन्धि जिस में ऐसे समर्थ (तद्धित प्रत्यय के साथ एकार्थीभावरूप से मिलने वाले) षष्ठ्यन्त से परे अपत्य सन्ताम अर्थ में उक्ता (जो कहे गए हैं) और वक्ष्यमाण (जो कहे जावेंगे) प्रत्यय विकल्प से होंगे ॥

१०७२ ॥ ओर्गुण ६ । ४ । १४६ उवर्णान्तस्य भस्य गुणस्तद्धिते ।

उपगौरपत्यमौपगवः । आश्रवपतः । दैत्यः । औत्सः । स्त्रैणः । पौंसः ॥

तद्धित प्रत्यय के परे होते उवर्णान्त 'भ' सन्ना वाले को गुण होंगे । औपगवः, १०६३ २६ उपगु का सन्तान । आश्रवपतः २५५ (अश्रवपतेरपत्यम्) दैत्यः २५५ "दितेरपत्यम्" औत्सः २५५ (२) (उत्सस्यापत्यम्) स्त्रैणः । पौंसः = पुरुष का सन्तान ।

१०७३ ॥ अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् ४ । १ । १६२ । अपत्यत्वेन

विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसंज्ञं स्यात् ॥

सन्तानत्व रूप करके वक्ता को द्रष्टृ जो पौत्र (पुत्र का पुत्र) आदि सो गोत्र सन्नावाला होंगे,

(१) यहा १०६१ सूत्र की अनुवृत्ति करने से यह अर्थ हुआ है क्योंकि १०७१ सूत्र में प्रथम (पहिला) पद तस्य जो है वह षष्ठ्यन्त मात्र का उपलक्षण है और आध्याहार से पञ्चमी का अर्थ मिला है। इस लिये षष्ठ्यन्तात् यह वृत्ति में लिखा है। कोई कहे कि यहाँ कृतसन्धेः, क्यों कहा तो इस का यह उत्तर है कि सु + उत्थित यहा सन्धि करके सूत्थित शब्द से १०८१ लगे नही तो प्रत्यय के पीछे सन्धि करने पर सावुत्थिति । ऐसा अनिष्ट रूप ही जावेगा । (२) उत्स (जल का भरना) इस का सन्तान के साथ योग "गाङ्गेयो भीष्मः" इस को समान है ।

१००४ ॥ एको गोषे ष । १ । ६३ प्रत्यय स्यात् । उमगोर्गोषा
पत्यमौपगव ॥

जव गोष १ ०१ संज्ञावासे प्रत्यय की विवक्षा हो तब एक ही प्रत्यय हो । औप-
गव = उमगु का गोष वा प्रपौष आदि सन्तान ॥

१ ०५ ॥ गर्गादिभ्यो यञ् ४ । १ । १ ५ । गोत्रापत्ये । गगस्य
गोत्रापत्यंगायः । घात्स्य ।

गोत्र १ ०१ रूप अपत्य (सन्तान) धर्म में गर्गादियों से परे "यञ्" प्रत्यय होवे ।
गायः १ ६१ २५१ (गगस्य गोत्रापत्यम्) घात्स्य १ ६१ २५१ पत्य का गोष वा
प्रपौष आदि सन्तान ।

१००६ ॥ यञ्जोश्च २ । ४ । ६४ गोषे यद्यञ्जन्तमञ्जन्तञ्च तद्
वयवयोरेतयोर्लुक् तत्कृते बहुत्वे न तु स्थियाम् । गर्गाः वत्सा ॥

गोष १ ०१ में जो यञ् प्रत्ययान्त और ञ् प्रत्ययान्त शब्द तिन के अवयव यञ्
और ञ् का लुक् होवे यञ् वा ञ् प्रत्यय निमित्त बहुवचन में परन्तु गोष प्रत्ययान्त
कोष्ठिह हो तो नहीं । गर्गाः = गर्ग के गोष वा प्रपौष आदि सन्तान । वत्सा = वत्स के गोष
वा प्रपौष आदि सन्तान ॥

१ ०० ॥ जीवति तु वंश्ये युवा ४ । १ । १६३ वंश्ये पित्रादौ जीवति
पित्रादेर्म्यं प्रत्यञ्चतुर्यादि तद्युवसंज्ञमेव स्यात् ॥

पिता पितामह प्रपितामह रूप में जोई जीता हो तो चतुस पीठी से लेकर जो
अपत्य (सन्तान) वह केवल 'युवन्' संज्ञा वाहा होवे ॥

१००८ ॥ गोत्राद्युभ्यस्थियाम् । ४ । १ । ६४ युभ्यपत्ये गोत्रप्र
त्ययान्सादेव प्रत्ययः स्यात् । स्थियान्तु न युवसंज्ञा ॥

युवन् १ ०० संज्ञक सन्तान धर्म में जो प्रत्यय करवा हो वह पश्चिमे गोष १ ०१
संज्ञक प्रत्यय हो चुका है जिस से उस से परे युवरूप सन्तान धर्म में होवे की स्थि
में युवन् संज्ञा नहीं होती ॥

१००९ ॥ यञ्जोश्च ४ । १ । १ गोषे यी यञ्जो तदन्तात् फक् ।

गोष १००१ रूप सन्तान धर्म में जो यञ् वा ञ् तदन्त से परे युव रूप सन्तान
धर्म में 'फक्' प्रत्यय होवे ।

१०८ आयनेवीमोभियः फठ्फञ्छर्षा प्रत्ययादीनाम् । ७ । १ । १२

प्रत्ययादेः फस्य आयन् ठस्यैय् खस्य ईन् छस्य ईय् घस्य ड्य् एते
स्युः । गर्गस्य युवाप्रत्यङ्गाग्यायणः । दाक्षायणः ॥

प्रत्यय के आदि में जो फ, ठ, ख, छ, और घ इन को क्रम से आयन्, एय्, ईन्,
ईय् और ड्य् होंगे । गाग्यायणः १०७५, १०७६, २५५ गर्ग का प्रपौत्र आदि सन्तान ।
दाक्षायणः = दक्षका प्रपौत्र आदि सन्तान ॥

१०८१ ॥ अत इञ् । ४ । १ । ६५ । अपत्येऽर्थे । दाक्षिः ॥

अप्रत्य (सन्तान) अर्थ में अकारान्त से परे इञ् प्रत्यय होंगे । दाक्षिः २५५ (दक्ष-
स्याप्रत्यम्) दक्ष का सन्तान ।

१०८२ ॥ बाह्वादिभ्यश्च । ४ । १ । ६६ । बाह्विः । औडुलोमिः
आकृतिगणोयम् ॥

बाहु आदि गण से परे इञ् प्रत्यय होंगे । बाह्विः १०७२, २६ (बाहोरप्रत्यम्)
बाहु का सन्तान । औडुलोमि १०६३, ६७३ उडुलोमन् का सन्तान । यह बाह्वादि गण
आकृतिगण हैं ॥

१०८३ ॥ अनृष्यानन्तर्थे विदादिभ्योऽञ् । ४ । १ । १०४ । ये
त्वचानृष्यस्तेभ्योऽप्रत्येऽन्यत्र तु गोत्रे । विदस्य गोत्रं वैदः । वैदौ ।
विदा । पुत्रस्याप्रत्यंपौत्रः । पौत्रौ । पौत्राः । एवं दौहित्रादयः ॥

जो शब्द ऋषि वाचक नहीं और उन का विदादि गण में पाठ हो तो उन से
अन्यवहित रूप सन्तान अर्थ में अञ् प्रत्यय होंगे । और यदि वे शब्द ऋषिवाचक हों तो
उन से परे गोत्र १०७३ रूप सन्तान अर्थ में अञ् प्रत्यय होंगे । वैदः २५५ विद ऋषिका
गोत्र रूप सन्तान इस का द्वि० में वैदौ, और बहु० में विदाः १०७६ पौत्रः १०६३, २५५ पौत्रा
(पौत्रा) द्वि० में पौत्रौ बहु० में पौत्राः ऐसे ही दौहित्रः (दुहितुरप्रत्यम्) १०६३, १८
(दौहितरा) इत्यादि जानना ।

१०८४ ॥ शिवादिभ्योऽण् । ४ । १ । ११२ । अपत्ये । शैव । गाङ्ग ।

शिवादिगण से परे अप्रत्य अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होंगे । शैवः (शिवस्याप्रत्यम्)
१०६३, २५५ गाङ्गः १०६३, २५५ गङ्गा का पुत्र ॥

१०८५ ॥ ऋष्यन्धकवृष्णकुसुभ्यश्च ॥ ४ । १ । ११४ । ऋषिभ्यः
वासिष्ठः । वैश्वामित्रः । अन्धकोभ्यः । शत्रुफल्कः । वृष्णाभ्यः । वासुदेवः
कुसुभ्यः । नाकुलः साहदेवः ॥

अपिरीं के और 'अन्धका वंश सम्बन्धी और इन्द्रिय वंश सम्बन्धी और कुर्वण सम्बन्धी ऋत्विगों के" नाम से परे सन्तान चर्च में अच् प्रत्यय होते। अपिरीं के नाम से जैसे वासिष्ठ १ ६३ २५३ (वासिष्ठस्वापत्यम्) — वासिष्ठ का सन्तान। वैश्वामिच १ ६३ २५३ विश्वामिच की सन्तान। अन्धकों से जैसे श्वाफल्का १ ६३ २५३ श्वफल्का स्यापत्यम्) — श्वफल्का की सन्तान। इन्द्रियों से जैसे वासुदेव १ ६३ २५३ (वासुदेव स्यापत्यम्) — वासुदेव की सन्तान। कुर्वणों से जैसे नाकुष्ठ १ ६३ २५३ (नाकुष्ठस्यापत्यम्) साहदेव १ ६३ २५३ (साहदेवस्यापत्यम्) साहदेव की सन्तान ॥

१०८६ ॥ मातृकत् संख्यासम्भद्रपूर्वाया १४ । १ । ११५ । संख्यादिपूर्वस्य मातृशब्दस्य उदादेशः स्याद् अच् प्रत्ययश्च। वैमातुरः । पारमातुरः । साम्मातुरः । भाद्रमातुरः ॥

संख्या वाचक शब्द 'वा सम्' वा भद्र इन में से। कोई एक है पूरा जिस के ऐसे मातृ शब्द की उच्चारण आदेश और अच् प्रत्यय सन्तान चर्च में होते। वैमातुरः १४ ॥ १-६३ (शबेय)। पापमातुरः ३४ । १ ६३ स्वामिष्कार्तिक। सामातुरः — भली माता वाक्ता। भाद्रमातुरः ३४ । १ ६३ जिस की कल्याण करने वाली माता हो ॥

१०८७ ॥ स्त्रीभ्यो ङक् । ४ । १ । १०० स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ङक् । वैमतेय ॥

स्त्री प्रत्यय १३३३ हैं अन्त में जिन के उन के परे सन्तान चर्च में 'ङक्' प्रत्यय होते। वैमतेय (विनताया अपत्यम्) १ ६० । १ ८ । २५३ — गङ्गा ॥

१०८८ ॥ कन्याया क्लीबे च ङ । १ । १२६ चाद् अच् । क्लीबो ङ्यास कर्षश्च ॥

'कन्या' शब्द की 'क्लीबे' आदेश होते अकार से 'अच्' प्रत्यय भी होते। क्लीबे १ ६३ । २५३ (कन्याया अपत्यम्) — कुंवारी का पुत्र (ग्यास 'वा' कर्ष) ॥

१ ८८ ॥ राजश्वशुराद्यत् ४ । १ । १२० ।

राजन् वा श्वशुर शब्द से परे अपत्य चर्च में 'यत्' प्रत्यय होते ॥

१ ८९ ॥ राज्ञो आतावेव ॥

जाति की ही प्रतीति हो तो राजन् शब्द से "यत्" प्रत्यय होते ॥

१०८९ ये चाभावकर्मणोः । ६ । ४ । १६८ । यादौ रहितेऽन् प्रकृत्या स्यान्न तु भावकर्मणोः । राज्ञ्य । आतावेवेति किम् ॥

यु है आदि में जिस के ऐसा तद्धित परे रहे तो (१) अन् जैसे का वैसा ही रहे । परन्तु भाव 'वा' कर्म अर्थ में प्रकृतिभाव नहीं होता । राजन्यः १०८८ (क्षत्रिय) । १०८० में "जातावेव" यह क्यों कहा ? इस का उत्तर अगले १०८२ सूत्र के उदाहरण में विदित होगा । अर्थात् "राजन." से यत् न ही जावे ॥

१०८२ ॥ अन् । ६ । ४ । १६७ । अन्प्रकृत्याणि परे । राजनः । श्वशुर्यः ॥

अण् प्रत्यय के परे रहते अन् प्रकृतिभाव की प्राप्त हो । राजनः (राज्ञोऽपत्यम्) राणा का पुत्र जो विवाही हुई क्षत्रिया से उत्पन्न नहीं हुआ । श्वशुर्यः (श्वशुरस्यापत्यम्) १०८८, २५५ = साला ॥

१०८३ ॥ क्षत्राद् घः । ४ । १ । १३८ । क्षत्रियः । जातावित्येव । क्षत्रिरन्यः ॥

क्षत्र शब्द से सन्तान अर्थ से "घ" प्रत्यय होते । क्षत्रिय १०८० । २५५ । क्षत्रिय जाति का जो हो । जाति से ही ऐसा रूप आता है । और में (२) 'क्षत्रिः' १०८१, १०६९, २५५ (क्षत्रिय का पुत्र) ॥

१०८४ ॥ रेवत्यादिभ्य ष्ठक् । १ । १ । १४६ ॥

रेवती आदि गण से परे सन्तान अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय होते ॥

१०८५ ॥ ठस्येकः । ७ । ३ । ५० । अङ्गात्परस्य ठस्येकादेशः । रैवतिक ॥

अङ्ग से परे जो (ठ) उसे (इक्) आदेश होते । रैवतिक' १०६० । २५५ (रेवत्या अपत्यम्) रेवती का सन्तान ॥

१०८६ ॥ जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ् । ४ । १ । १६८ । जनपद-क्षत्रियाचकाच्छब्दादञ्पत्ये । पाञ्चालः ॥

जो जनपद (देश) वाचक शब्द क्षत्रिय वाचक ही उस से परे सन्तान अर्थ में "अप्" प्रत्यय होते । पाञ्चालः = पाञ्चालदेश के क्षत्रियों का सन्तान ।

१०८७ ॥ क्षत्रियसमानशब्दात्जनपदात् तस्यराजन्यपत्यवत् । पञ्चालानां राजा पाञ्चालः ॥

देशवाचक शब्द जो, क्षत्रियसमान (क्षत्रिय वाचक) ही उस से परे "उसदेश का राजा" इस अर्थ में (३) अपत्यवत् प्रत्यय होते । पाञ्चालः १०६३ । २५५ = पाञ्चाल का राजा ।

(१) यह अन् शब्द का अन्तावयव ही तो, इस का ८७३ से लोप पाया था १०८१ से इस को प्रकृतिभाव हुआ ॥ (२) इस का पिता क्षत्रिय ही चाहे माता किसी ही जाति की हो । (३) अपत्य अर्थ में १०८६ जैसे प्रत्यय होता है वैसे यहाँ भी होते ।

१०८८ ॥ पूरोरब् । पूरव ॥

पूर मध्य से परे पूर्वोच्च १ ८५ १ ८७ चर्चों में "पू" प्रत्यय हो। पूरव १ ५१ १ ०२ पूर देय का राजा वा पूर का सन्तान।

१०८९ ॥ पाण्डोर्छब् । पाण्डवः ।

सन्तान वा राजा चर्चों में पाण्डु मध्य से परे छब् प्रत्यय होवे। पाण्डव २५२ = पाण्डु देय का राजा।

११० ॥ कुसुनादिभ्यो ष्य ४ । १ । १०२ । कौरव्यः । नैषध्यः ॥

"कु" मध्य और (१) नादि मध्यों से परे सन्तान "वा" राजा चर्च में "व्य" प्रत्यय होवे। कौरव्य १ ५१ १ ०२ कुस का सन्तान वा राजा। नैषध्य १ ५१ २५५ निषध देय का राजा चादि ॥

११ १ ॥ तैतद्राजा ४ । १ । १०४ अन्नाद्यस्तद्राजसंज्ञाः स्तुः ५

पञ् १ ८५ चादि प्रत्ययों की "तद्राज संज्ञा होवे ॥

११०२ ॥ तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम् २ । ४ । ६२ बहुषुष्येषु

तद्राजस्य कुक् तत्कृते बहुत्वे न तु स्त्रियाम् । पञ्चाक्षा । कृत्वादि ॥

जन् मध्य बहुषुष्यनात् हो तो तद्राज ११ १ संज्ञापाठे प्रत्यय का कुक् हो। श्री सिङ्ग में न हो। पञ्चाक्षा १०८० पञ्चाक्ष के राजे 'वा' पञ्चाक्ष के चर्चियों की सन्तान। चर्ची प्रकार और भी जान लो ॥

११ ३ ॥ कम्बोजाश्चकुक् । ४ । १ । १०५ अस्मात् तद्राजस्यकुक् ।

कम्बोजः । कम्बोजौ ॥

कम्बोज मध्य से परे जो तद्राज संज्ञा वाचा प्रत्यय छस का कुक् होवे। कम्बोज = कम्बोज देय के राजा वा सन्तान वा कम्बोज देय का राजा। त्रिवचन में कम्बोजौ ॥

११०४ ॥ कम्बोजादिभ्य कृति वक्तव्यम् । चीसः । शक । केरसः

यवनः ॥ ॥ कृत्यपत्याधिकारः ॥

"कम्बोजादियों से परे तद्राज ११ १ प्रत्यय का कुक् होवे" ऐसा कहना चाहिये। चीस = चीस के चर्चियों का सन्तान वा चीसदेय का राजा। शक, केरस, यवन इन के पय भी (चीस) के समान हैं वहीं कि शक केरस यवन पय भी देय हैं।

॥ पयत्य (सन्तान) का अधिकार समाप्त हुआ ॥

(१) नकार के चादि में भिन्न से।

११०५ ॥ तेन रक्तं रागात् । ४ । २ । १ । अण् स्यात् ।

कषायेण रक्तं वस्त्रङ्काषायम् ॥

“रङ्गा गया” इस अर्थ में तृतीयान्त रङ्ग वाचक शब्द से परे “अण्” प्रत्यय हीवे कषायम् १०६३, २५५ (गेरी करके रङ्गा हुआ कपड़ा) ॥

११०६ ॥ नक्षत्रेण युक्तः कालः । ४ । २ । ३ । अण् स्यात् ॥

युक्त अर्थ में तृतीयान्त नक्षत्र वाचक शब्द से परे “अण्” प्रत्यय हीवे यदि युक्त पदार्थ कालवाचक हो तब ॥

११०७ ॥ तिष्ठ्यपुष्ययोर्नक्षत्राणि यलोप इति वाच्यम् । पुष्येण युक्तं पौषमहः ॥

“नक्षत्र वाचक तिष्ठ्य वा पुष्य से परे जब ११०६ से अण् प्रत्यय ही तब इन के ‘यु’ का लोप हीवे” ऐसा कहना चाहिये । पौषम् (पुष्य + अण्) ११०६, १०६३, २५५ जिस दिन पुष्य नक्षत्र हो ॥

११०८ ॥ लुबविशेषे । ४ । २ । ४ । पूर्वेण विहितस्य लुप्प्रष्टि-
दण्डात्मकस्य कालस्यावान्तरविशेषश्चेन्न गम्यते । अद्य पुष्यः ॥

जब साठ घड़ी के (१) अवान्तर कोई विशेष विदित न हो तब ११०६ से हुए अण् प्रत्यय का लुप् हीवे । अद्य पुष्यः (२) (आज पुष्य है) ॥

११०९ ॥ दृष्टं साम ४ । २ । ७ । तेनेत्येव । वसिष्ठेन दृष्टं वा-
सिष्ठं साम ॥

“देखा गया” इस अर्थ में तृतीयान्त से परे “अण्” प्रत्यय हीवे, परन्तु (यदि) जो देखा गया वह साम वेद ही तब, वसिष्ठम् १०६३ । २५५ (सामवेद जो वसिष्ठ मुनि से देखा गया हो) ॥

१११० ॥ वामदेवाङ्गयङ्गौ ४ । २ । ९ । वामदेवेन दृष्टं साम
वामदेव्यम् ॥

तृतीयान्त वामदेव शब्द से साम “देखा गया” इस अर्थ में उद्यत् वा “ङ्” प्रत्यय ही, वामदेव्यम् = जो सामवेद वामदेव मुनि करके देखा गया हो ॥

(१) आठ पहिर से घोड़ा (२) यहां आज के कहने से दिन विशेष वा रात्रि विशेष का बोध नहीं होता ॥

११११ ॥ परिवृत्तो रयः ४ । २ । १० अस्मिन्मर्येऽष् प्रत्ययो भवति

वरुषेण परिवृत्तो वारुषोरयः ॥

“दद्या गवा” इस अर्थ में तृतीयान्त से परे षष् प्रत्यय जो; परंतु जो दद्या गवा वरु रय जो तब । वारुष १ ६१ २५५ = वरुषे से दद्या वृथा रय ॥

१११२ ॥ तथीतुसममेभ्य ४ । २ । १४ शरावे उवृतः शाराव षोदन ॥

इस में शरामया इष अर्थ में पाष वाचक सप्तम्यन्त से परे “षष्” प्रत्यय जोवे । शाराव १ ६१ २५५ वाचक (भात) जो पियास में शरामया ॥

१११३ ॥ संस्कारं भक्षाः ४ । २ । १५ सप्तम्यन्ताद्ष् स्यात् संस्कारे
ऽर्ये यत् संस्कारं भक्षाश्चेत् ते स्युः । भाण्टेषु संस्कारा भाण्टा भक्षा ॥

जिस का संस्कार किया गया वरु यदि खाने के योग्य हो तो “संस्कार किया गया” इस अर्थ में सप्तम्यन्त से परे षष् प्रत्यय जोवे । भाण्टा १ ६१ २५५ यव (जी) जो मूत्र (भाठ) में मूला गया ॥

१११४ ॥ साऽस्य देवता ४ । २ । २४ इन्द्रोदेवताऽस्येति ऐन्द्रं
इविः । पाशुपतम् । वाहस्पत्यम् ॥

“वह इष का देवता है” इस अर्थ में देवता वाचक प्रथमान्तपद से ‘षष्’ प्रत्यय जोता है । ऐन्द्रम् १ ६१ २५५ इन्द्र जिस का देवता ऐसी इवि । पाशुपतम् = शिव देवता की इवि । वाहस्पत्यम् (वाहस्पतिदेवताऽस्य) १ ६१ २५५ ॥

१११५ ॥ शुक्राद् घन् ४ । २ । २६ शुक्रियम् ॥

१११६ ॥ सूष के अर्थ में प्रथमान्त शुक्र शब्द से परे ‘घ’ प्रत्यय जोवे । शुक्रियम् (शुक्रो देवताऽस्य) १ ८ २५५ शुक्र जिस का देवता ऐसी इवि ॥

१११७ ॥ सीमाद्वयम् ४ । २ । ३ सीम्यम् ॥

प्रथमान्त सीम शब्द से परे ‘वह इष का देवता है’ इस अर्थ में ‘द्वयष्’ प्रत्यय जोवे सीम्यम् १ ६१ २५५ (सीमी देवता ऽस्य) = वन्द्यमा जिसका देवता ऐसी इवि ॥

१११८ ॥ वायुतुपिचुयसोयत् ४ । २ । ३१ वायव्यम् । षट्ठवम् ॥

वायु षट्ठ पितृ चौर षष् इण शब्दी से परे १११८ सूष के अर्थ में “यत्” प्रत्यय जोवे । वायव्यम् (वायुदेवताऽस्य) (वायु + यत्) १००२, २६ = वायु देवता की इवि । षट्ठव्यम् १००२, २६ षट्ठदेवताऽस्य ॥

१११८ ॥ रीङ् ऋतः ७।४। २७ अकृत्यकारिऽसार्वाधातुके यकारे
चञौ च परे ऋतोरीडादेशः। यस्वेति चापिच्यम्। उपस्यम्।

“कृत से भिन्न यकार वा सार्वाधातुक से रिन्न यकार वा “च्चि” परे रहे तो ऋ को रीङ् आदेश होवे। २५५से ईकार का लोप किया तो। पिच्यम् १११७ = पितृदेयता की हविः उपस्यम् १११७ उपः (प्रातः काल) रूप जिस का देयता ऐसी हविः ॥

१११९ ॥ पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः। ४। २। ३६। एते
निपात्यन्ते। पितुर्भाता पितृव्यः। मातुर्भाता मातुलः। मातुः पिता
मातामहः। पितुः पिता पितामहः ॥

पितृव्य, मातुल, मातामह और पितामह ये ४ शब्द निपात से सिद्ध होते हैं। पितृव्यः पिता का भाई (चाचा) यहाँ पितृ शब्द से परे “पितुर्भातरि व्यत्” इस वार्तिक से “व्यत्” प्रत्यय हुआ है। मातुलः = माता का भाई (मामा) यहाँ मातृ शब्द से परे “मातुर्भुवत्” इस वार्तिक से “भुवत्” प्रत्यय होता है। (१) मातामहः = माता का पिता (नाना) यहाँ मातृ शब्द से परे और पितामहः पिता का बाप (दादा) यहाँ पितृ शब्द परे “मातृपितृभ्यां पितरि डामहच्” इस वार्तिक से “डामहच्” प्रत्यय होता है ॥

११२० ॥ तस्य समूहः ४। २। ३७ काकानां समूहः काकम् ॥
पठन्त से परे समूह अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होवें। काकम् १०६३ २५५ (कीर्णों का समूह) ॥

११२१ ॥ भिक्षादिभ्योऽण्। ४। २। ३८। भैक्षम्। गर्भिणीनां
समूहो गर्भिणम्। ब्रह्म भस्याढे तद्धित इति पुंवद्भावे कृते ॥

पठन्त भिक्षा आदि औ से परे “समूह” अर्थ में अण् प्रत्यय होवे। भैक्षम् १०६३, २५५ (भिक्षार्थी समूहः) भोखों का समूह। गर्भिणम् (गर्भवाली स्त्रियों का समूह) यहाँ (२) “भस्याढे तद्धिते” इस से गर्भिणी, शब्द को पुवद्भाव (गर्भिन्) करने पर।

११२२ ॥ इनगयनपत्ये ६॥४। १६४ अनपत्यार्थोऽणि इन् प्रकृत्या।
तेन नस्तद्धित इति टिलोपो न। युवतीनां समूहो यौवतम् ॥

(१) भाष्यकार के मत से यहाँ और पितामहः, में “आनङ्” आदेश और ‘महश्’ प्रत्यय निपातित हैं। (२) इस का “ढ से भिन्न तद्धित के परे होते भ सभ्रा वाले की टि का लोप होवे” यह अर्थ है ॥

सन्तान से भिन्न धर्म में जाने वाले पश् के परे होते इन् का प्रकृतिभावही। इस से "गार्भिषम्" में ८०१ से गर्भिण् की टि का लोप न हुआ। क्योंकि "भीसे का बीसा रहना" ही प्रकृतिभाव का भाग्य है। यौवतम् ११२१ १ ६१ २३५ युवतिषी का समूह ॥

११२३ ॥ घामज्जमबन्धुभ्यस्तष् ४ । २ । ४३ तल्लन्तं स्थियाम् ।
घामता । जनता । बन्धुता ॥

घाम जन और बन्धु इन शब्दों से परे समूह धर्म में "तष्" प्रत्यय होने। तल्लन्त (तष् प्रत्यय किस से अन्त में हो) स्त्रीलिङ्ग होता है। घामता ११२३ घामी का समूह। जनता (जनानां समूह)। बन्धुता (बन्धूनां समूह) ॥

११२४ ॥ गवसहायान्यां जैति यत्तव्यम् । गवता । सहायता ।

गव और सहाय इन दो शब्दों से भी समूह धर्म में तष् प्रत्यय होने। गवता (गवानां समूह) हाबिरी का समूह। सहायता (सहायानां समूह) सहायकी का समूह।

११२५ ॥ पङ्गः ष ज्ञतौ । पङ्गिनः ॥

जब यत्र पाठ्य हो तब समूह। धर्म में पठ्यन्त पङ्गु शब्द से परे 'ङ' प्रत्यय होने पङ्गिन १ ८० ८०१ - पङ्गेषु दिगो करके पाठ्य (पङ्ग) ॥

११२६ ॥ पश्चित्तवस्तिषेनोष्ठक् ४ । २ । ४० ॥

पश्चित्त (पश्चेतन) वस्तिण् और वेनु इन शब्दों से परे समूह धर्म में "ठक्" प्रत्यय होने ११२० ॥ वसुसुक्ताम्नात् क ० । ३ । ५१ । वसुसुक्ताम्नात् परस्य ठस्य कः । साक्षुक्ताम् । वास्तिकम् । धैनुक्ताम् ॥

इष् उष् षक्, (उ उष्) और 'त्' इनमें से कोई एक ही अन्त में किस से उस से परे (१) ढ को का होने सामुक्ताम् ११२६, १ ६० (समूहों का समूह) सतुषी का समूह। वास्तिकम् (वस्तिनां समूह) ११२६, १ ६०। धैनुक्ताम् ११२६, १ ६० वेनुनां समूह। नौषी का समूह।

११२८ ॥ तद्धीते तद्धेद् ४ । २ । ५८ ॥

पश्चिते (पश् पश्ता है) और (वेद वद जानता है) इन शब्दों में द्वितीयान्त से परे पश् चादि प्रत्यय होने ॥

११२९ ॥ न उवाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् ० । ३ । ३

पदान्ताभ्यां यकारवकाराभ्यां परस्य न वृद्धिः किन्तु ताभ्यां पूर्वो क्रमा
देचावागमौ स्तः । व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः ॥

“पद को अन्त में होने वाले यकार ‘वा’ वकार से परे” अच् को वृद्धि न होवे किन्तु
उस यकार वा वकार से पूर्व ऐकार और औकार, का आगम (१) क्रम से होवे। वैयाकरणः
११२८, २५५ व्याकरण शास्त्र को पढ़ने वाला (वा) उस को जानने वाला ॥

११३० ॥ क्रमादिभ्यो वुन् ४ । २ । ६१ क्रमकः । पदकः । शिचकः ।
मीमांसकः ॥

११२८ सूत्र के अर्थ में क्रमादियों से वुन् प्रत्यय होवे। क्रमकः (क्रममधीते वेद वा) ८३०,
२५५ (२) क्रम को जानने वाला। पदकः ८३०, २५५ पद (वेद का प्रथम विकार) पदपाठ को
जानने वाला शिचकः, (३) शिच्चा के जानने वाला। मीमांसक = मीमांसा को जानने वाला।

११३१ ॥ तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ४ । २ । ६७ उदुम्बराः
सन्त्यस्मिन् देशे औदुम्बरो देशः ॥

“इस में है” इस अर्थ में प्रथमान्त से अण् आदि प्रत्यय होंगे, परन्तु यदि प्रकृति
(प्रथमान्त) और प्रत्यय (अण् आदि) के समुदाय से तन्नामकदेश का बोध होतो। औदुम्बरः
१०६३, २५५ जिस में गूलर के वृक्ष हों वह देश ॥

११३२ ॥ तेन निर्वृत्तम् ४ । २ । ६८ कुशाम्बेन निर्वृत्ता नगरी कौशाम्बी ।

“वनाया गया” इस अर्थ में तृतीयान्त से परे ‘अण्’ आदि प्रत्यय होंगे। कौशाम्बी
१०६३, २५५, १३३० = कुशाम्बे राजा से वनाई गई जो नगरी।

११३३ ॥ तस्य निवासः ४ । २ । ६९ शिवीनान्निवासो देशः शैवः ।

“निवास” अर्थ में षष्ठ्यन्त से परे अण् आदि प्रत्यय होंगे। शैवः (शिवि + अण्)
१०६३, २५५, १३३३, १३४, १२०, १०८ (४) (शिवियों के रहने का देश) ॥

११३४ ॥ अदूरभवश्च ४ । २ । ७० विदिशाया अदूरभवं वैदिशम् ।

“दूर नहीं है” इस अर्थ में षष्ठ्यन्त से परे अण् आदि प्रत्यय होंगे। वैदिशम् १०६३
२५५ (नगर जो विदिगा के दूर नहीं)।

११३५ ॥ जनपदे लुप् ४ । २ । ८१ जनपदे वाच्ये चातुरर्थिकस्य लुप् ।

जब जनपद (देश) वाच्य हो तब (५) चातुरर्थिक प्रत्यय का लुप् होवे ॥

(१) यहाँ “यकार से पूर्व ऐकार, और वकार से पूर्व औकार का आगम ही यह
क्रम है। (२) क्रम भी वेद का दूसरा विकार है। (३) शिच्चा वेदाङ्ग है। (४) किसी वृत्ति
जाति वार्ता का नाम है। (५) ११३१ सूत्र से ११३४ सूत्र पर्यन्त ४ चार सूत्रों से उक्त कहे
हुए चारों अर्थों की चातुरर्थिक सन्ना है ॥

११३६ ॥ क्षुपि युक्त्वद् व्यञ्जि वचने । १ । २ । ५१ । क्षुपि सति
प्रकृतिषष्टिद्वयवचने स्त । पञ्चाक्षानाम्निवासी जमपदः पञ्चाक्षाः ।
कुरवः । यज्ञाः । यज्ञा । कलिज्ञाः ॥

क्षुप् ११३६ के शोने पर प्रकृति का ही सिद्ध शीर वचन बना रहे । पञ्चाक्षा ११३६
११३६ (पञ्चाक्ष बंध यासी के रहने का देश) कुरव ११३६ ११३६ कुरवों का देश ।
यज्ञा - यज्ञों का देश । यज्ञा ११३६ ११६६ (यज्ञाय) ऋत्विजा (कृत्विजों का देश) ॥

११३७ ॥ वरषादिभ्यश्च ४ । १ । ८२ । अवनपदाय आरम्भ ।
वरषानामदूरभवन्नगरं वरषा ॥

वरषा पादि गण के अन्तगत शब्दों से परे चातुर्बिंदु प्रत्ययका क्षुप् शो । शीर
प्रकृति के ही सिद्ध वचन बने रहें । जो शब्द अगपद (देश) वाचक नहीं हैं उन के बिंदु
रस का आरम्भ बिना है । वरषा ११३७ ११३७ - जो शहर वरषा से दूर नहीं ॥

११३८ ॥ कुमुदमठवेतसेभ्यो ङ्मतुप् ४ । २ । ८३ ॥

कुमुद मठ शीर वेतस इन शब्दों से परे 'ङ्मतुप्' प्रत्यय होते ॥

११३९ ॥ भयः ८, ९, १० भयन्तात्मतोर्म्मस्य वा । कुमुधान् । मङ्वान् ।

भय (भ भ व ठ, ध ञ ष ग छ, ए ष ष छ ठ, घ ष ट त थ, प) प्रत्याशरण-
गंतो में से कोई एक है अन्त में जिस के उस के परे शो 'ङ्गुप्' ११३८ प्रत्यय उस के मू
को वृ होवे कुमुदान् ११३९ ११३९ १८१ ११ १८१ जिस देश में कुमुद बहुत ही । ऐसे
"मङ्वान् ११३९ ११३९ १८१ १२ १८१ यज्ञा गये बहुत ही ॥

११४० ॥ मादुपधायारचमतोर्वीज्यवादिभ्यः ८ । २ । ९ भवर्षी
वर्षान्ताम्भवर्षीवर्षीपधाश्च यवादिवञ्जितात् परस्य मतोम्मस्यवः ।
वितस्वान् ॥

'यवादि गण' को छोड़ कर जिस का 'अन्त अयय अतया उपचा में' गन्वार वा
अवच हो तिस से परे जो मतुप् उस के मू को वृ होवे । वेतरवान् ११४० ११३९ १८१ १२
१८१ जिस देश में वित (वित) बहुत ही ॥

११४१ ॥ नडगादाश्वसत् ४ । २ । ८८ मङ्गलः ॥

नड शीर माद (घास) इन शो शब्दों से परे "ङ्गुप्" प्रत्यय होते । नड्ग ११४१
(नडा से मरा हुआ देश) ॥

११४२ ॥ शिखाया वलच् ४ । २ । ८६ शिखावल ।

॥ इति चातुरर्थिकाः ॥

शिखा शब्द से परे "वलच्" प्रत्यय होते । शिखायल (सयूर) ॥

॥ चातुरर्थिक प्रत्यय समाप्त हुए ॥

११४३ ॥ शेषे ४ । २ । ६२ अपत्यादिचतुरर्थ्यन्तादन्योऽर्थः शेषस्त

चाणादयः स्युः । चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रूपम् । श्रावणः शब्दः । औपनि-
षद् पुरुषः । दृषदि पिष्टा दार्षदा सक्तवः । चतुर्भिरुह्यते चातुरं शक-
टम् । चतुर्दृश्यां दृश्यते चातुर्दृशं रक्षः । तस्य विकार इत्यतः प्राक्
शेषाधिकारः ॥

अपत्य १०७१ अर्थ से लेकर चातुरर्थिका ११२४ पर्यन्त जितने अर्थ हैं उन से भिन्न
जो अर्थ हैं वे शेष कहाते हैं उन में भी अण् आदि प्रत्यय होते हैं । चाक्षुषम् १०६३ = जो
आंख से जाना जावे (रूप) श्रावणः १०६३, २५५, जो कान से सुना जावे (शब्द) औपनि-
षद् १०६७, परमेश्वर । दार्षदा १०६३ दृषद् (पत्यर) पर जो पीसे जावे (सत्तु) । चातुरम्
१०६३, २५५ जो चारोंकरके उठाया जावे (गड्डा) । चातुर्दृशम् १०६३, २५५ जो चारोंदृश से
देखा जावे (राक्षस) यहा से ११८६ पर्यन्त शेषका अधिकार है ॥

११४४ ॥ राष्ट्रवारपाराद् घञौ । ४ । २ । ६३ राष्ट्र जातादिः
राष्ट्रियः । अवारपारीणः ॥

राष्ट्र और अवारपार इन दो शब्दों से परे क्रम से 'घ' और 'ञ' प्रत्यय होते हैं ।
राष्ट्रियः (१०८०, २५५) = राष्ट्र (देश) से जो उत्पन्न भया है । अवारपारीणः १०८०,
२५५, १५१ । जो उरार पार हो ।

११४५ ॥ अवारपाराद्विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम् । अवा-
रीणः । पारीणः । पारावारीणः । इहप्रकृतिविशेषाद् घादयष्टुयटुयल-
न्ता उच्यन्ते तेषां जातादयोऽर्थविशेषा समर्थविभक्तयश्च वक्ष्यन्ते ॥

अलग किये अवारपार ('अवार' और 'पार') और विपरीत (पारावार) से परे 'ख'
प्रत्यय होते ऐसा कहना चाहिये । अवारीणः (अवार + ख) १०८० । २५५ = उरार का ।
पारीणः (पार + ख) १०८०, २५५ = पारला । पारावारीणः (पारावार + ख) १०८०, २५५ ।
पार उरार होनेवाला । इस प्रकार में प्रकृति विशेष से परे घादिक (घ, से लेकर) टुघ, टुघल्

११६५ पर्यन्त की प्रत्यय लगे जाते हैं इन से जातादि चर्च विभेद और समर्थ विभक्तियें लक्ष्मी आवेंगी ॥

११४६ ॥ ग्रामाद्यस्त्वौ । ४ । २ । १४ । ग्राम्यः । ग्रामीण ॥

ग्राम शब्द से परे य वा 'स्त्व' प्रत्यय होते । ग्राम्य १४६ (वा) ग्रामीण १ ८० १४६, १४२ । जो ग्राम (पिण्ड) में रहता हो ॥

११४७ ॥ नद्यादिभ्यो ङक् ४ । २ । १४७ । नदीयम् । माहीयम् । वाराणसेयम् ॥

नद्यादि शब्द से परे 'ङक्' प्रत्यय होते । नदीयम् (नद्या मयम्) १ ८ १ ४७ १४६ जो नदी में बुझा हो । माहीयम् (मही (इन्दी) तत्र मयम्) १ ८ १ ४७, १४६ वाराणसेयम् (वाराणस्या मयम्) १ ८ १४६ - जो बनारस में हो ॥

११४८ ॥ दक्षिणापरचात्पुरसस्त्यक् । ४ । २ । १४८ । दक्षिणात्यः । पश्चिमात्यः । पौरस्त्य ।

दक्षिणा परचात् और पुरस इन से परे 'स्त्यक्' प्रत्यय होते । दक्षिणात्य (दक्षिणा मय) १ ४७ दक्षिण दिशा में होने वाला । पश्चिमात्य १ ४७ पश्चिम में जो होते । पौरस्त्य १ ४७ - जो पूर्व में हो ॥

११४९ ॥ द्युप्रागपागुद्व्यप्रतीचो यत् । ४ । २ । १०१ । द्विष्यम् । प्राच्यम् । अपाच्यम् । उत्दीच्यम् । प्रतीच्यम् ।

द्विष् प्राप् अपाप् उद्वप् और प्रतीप् इन शब्दों से परे 'यत्' प्रत्यय होते । द्विष्यम् (द्विष् मयम्) जो आकाश में हो । प्राच्यम् - जो पूर्व में हो । अपाच्यम् (जो दक्षिण में हो) उत्दीच्यम् (जो उत्तर में हो) प्रतीच्यम् जो पश्चिम में उत्पन्न मया हो ॥

११५० ॥ अच्ययात् त्यप् । ४ । २ । १०४ । अमेहववतसिच्येभ्य एव । अमात्य । ब्रह्मत्यः । जवत्यः । ततस्त्यः । तत्रत्यः ॥

अच्यय से परे त्यप् प्रत्यय होते । परन्तु "अमा" "ब्रह्म" "जव" और तत्रि (वा) च से अन्तिम में जिन से इन्हीं अच्ययी से परे त्यप् हो, और से परे न होते । अमात्य (अमा (मह) मय) जो साव रहे पकीर । ब्रह्मत्य (ब्रह्म मय) जवत्य (जव मय) ततस्त्य (ततोमय) तत्रत्य (तत्र मय) ॥

११५१ ॥ त्यन्नेर्धुवे । नित्यः ॥

धुव (तिवर) चर्च में नि अच्यय से परे "त्यप्" प्रत्यय होते । नित्य - जो सर्वदा विद्यमान हो ॥

११५२ ॥ वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्बृद्धम् । १ । १ । ७३ । यस्य
समुदायस्याचां मध्ये आदिर्वृद्धिस्तद्बृद्धसंज्ञं स्यात् ।

“जिस समुदाय के अर्चों का प्रथम (पहिला) अक्ष (स्वर) वृद्धि सज्ञा वाला होवे” वह
समुदाय वृद्ध सज्ञा वाला होवे ।

११५३ ॥ त्यदादीनि च १ । १ । ७४ वृद्धसंज्ञानि स्युः ॥

त्यद् आदि शब्द भी वृद्ध सज्ञा वाले होवे ॥

११५४ ॥ वृद्धाच्छः ४ । २ । ११४ शालीयः । तदीयः ॥

वृद्धि ११५२, ११५३ सज्ञक शब्दों से परे “छ” प्रत्यय होवे । शालीयः (शालायां भवः)
१०८०, २५५ जो शाना मे हो । तदीय (तस्यायम्) = जो तिस का हो इत्यादि ।

११५५ ॥ वा नामधेयस्य वृद्धसञ्ज्ञा । देवदत्तीयः । दैवदत्तः ॥

नामधेय (नाम) वाचक शब्द की वृद्ध सज्ञा विकल्प करके होवे । देवदत्तीयः (देव-
दत्तस्यायम्) १०८०, २५५ वा दैवदत्तः १०६३, २५५ (जो देवदत्तका हो) ॥

११५६ ॥ गहादिभ्यश्च ४ । २ । १३८ गहीयः ॥

(१) गहादिभ्यो से परे ‘छ’ प्रत्यय होवे । गहीयः (गहे भव) १०८०, २५५ ॥

११५७ ॥ युष्मदस्मदीरन्यतरस्याङ्गञ्च । ४ । ३ । १ चाच्छः ।

पक्षेऽण् । युवयोर्युष्माकांवायं । युष्मदीयः । अस्मदीयः ॥

युष्मद् और अस्मद् से परे विकल्प करके ‘खञ्’ प्रत्यय होवे । सूत्र में जो ‘च्’ है
उस का यह प्रयोजन है कि ‘छ’ भी होवे, विकल्प के पश्चात्तर में अण् प्रत्यय भी होवे ।
युष्मदीयः १०८० जो तुम दो का ‘वा’ तुम सभ का हो । अस्मदीयः १०८० (आवयोरस्माकं
वायम्) जो हम दो का (वा) हम सभ का हो ॥

११५८ ॥ तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ४ । ३ । २ युष्मदस्म
दीरेतावादेशौ स्तः खञ्जि अणि च । यौष्माकीणः । आस्माकीनः ।
यौष्माकः । आस्माकः ॥

युष्मद् और अस्मद् शब्द की ‘युष्माक’ और अस्माक आदेश क्रमसे होवे, जब ‘खञ्’
वा अण् प्रत्यय परे होवे तब । यौष्माकीणः (युवयोर्युष्माक वायम्) युष्मद् + खञ् १०८०
१०६३, २५५, १५१ । आस्माकीनः (आवयोरस्माक वायम्) १०८०, १०६३, २५५, हम,
दो का वा हम सभ का जो हो ।

(१) गहादि देश वाचक हैं, और यह गण आकृति गण है ॥

११५८ ॥ तवदासमखावेकवचने ष । इ । इ एकार्धवाचिनीर्युष्म
दस्मदीस्तवकममकौ स्त खञि अणि च । तावकीन । तावक । माम
कीन । मामक । छे तु ॥

'खम् वा अष् प्रत्यय परे जो तो एकार्धवाचक युष्मद् और अरमद् को क्रम से
तवक और ममक आदेश होंगे । तावकीन १ ८ १ ६२ २५३ (तवावम्) वा तावक
१ ६२ २५३ - तेरा । मामकीन (ममायम्) १ ८ १ ६२ २५३ वा मामक १ ६२ २५३
मेरा । 'ख' प्रत्यय के परे होते तो (पगले मूक का उदाहरण देंगे) ॥

११६ ॥ प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ७ । २ । ८८ मपर्यन्तधीरनुधीरे
आधवाचिनीस्त्वमी स्तः प्रत्यये उत्तरपदे च परत । त्वदीय । मदीयः
त्वत्पुत्र । मत्पुत्र ॥

प्रत्यय 'वा' उत्तरपद के परे होते एकार्धवाचक म् पर्यन्त युष्मद् (युष्म्) और
अरमद् (अरम्) को त्व और म आदेश क्रम से होंगे । प्रत्यय के परे होते जैसे 'त्वदीय'
(तवायम्) १ ८ तेरा । मदीय (ममायम्) १ ८ मेरा । उत्तरपद के परे होते जैसे
(त्वत्पुत्र) (तव पुत्र) ७६२ - "युष्मद् + पुत्र" ११६ - 'त्व + अद् + पुत्र' २८१ -
'अद् + पुत्र' ८७ (त्वत्पुत्र) - तेरा पुत्र । ऐसे मत्पुत्र (मेरा पुत्र) सिद्ध कर लेना ॥

११६१ ॥ मध्यात्म ४ । इ । ८ मध्यमः ॥

मध्य शब्द से परे 'म' प्रत्यय होंगे । मध्यमः - विचारात्ता (भीषका) ॥

११६२ ॥ काकादृञ् ४ । इ । ११ कालिकम् । मासिकम् । सावत्सरिकम् ॥

काक शब्द शब्द से परे ठम् प्रत्यय होंगे । कालिकम् १ ८३, १ ६२ २५३ (काके
मवम्) की समय में ही । मासिकम् १ ८३, १ ६२ २५३ (मासे मवम्) । सावत्सरिकम्
१ ८३, १ ६२ २५३ (संवत्सरे मवम्) की वरस में ही ॥

११६३ ॥ अययानां भमाच्चे टिक्षोपः । सार्यप्रातिक । पौनःपुनिकः ।

म संप्रावासे अययानां की ही टि का कोप होंगे । सार्यप्रातिक ११६२, १०८३ की
साम्प्रसारे ही । पौनःपुनिक की फिर फिर ही ॥

११६४ ॥ प्राहप एपयः ४ । इ । १० प्राहपेपय ॥

प्राहप शब्द से परे "एपय" प्रत्यय होंगे प्राहपेपय (प्राहपि मव) की बर्थावतु में ही

११६५ ॥ सार्यचिरप्राप्तेप्रगेय्येभ्यष्टुष्टुप्रसौ तुङ् च ४ । इ । २३
सायमित्यादिभ्यश्चतुर्भ्यो ऽप्येभ्यः कालवाचिभ्यष्टुष्टुप्रसौ स्तस्त

यीस्तुट् च । सायन्तनम् । चिरन्तनम् । प्राह्णेप्रगे अनग्रीरेदन्तत्वं निपा-
त्यते । प्राह्णेतनम् । प्रगेतनम् । दीघातनम् ॥

सायम्, चिर, प्राह्णे और प्रगे-इन ४ चारों से और काल वाचक अव्ययों से परे
'टु' और "टुङ्गल्" प्रत्यय होते हैं। और उन को टुट् भागम होते हैं। सामन्तनम् ८३० (साय
भवन्) जो सन्ध्या में होते हैं। चिरन्तनम् ८३० = जो चिर से होते हैं। प्राह्णे, और प्रगे, इन
का अन्त में एकार निपात से है। प्राह्णेतनम् (जो पूर्वाह्न काल में हो)। प्रगेतनम् = जो
प्रातः काल में हो। दीघातनम् ८३० जो रात्रि में हो ॥

११६६ ॥ लत्र जात. ४ । ३ । २५ सप्तमीसमर्थाञ्जात इत्यर्थे-
ऽणादयो षाड्यश्च स्युः । सुघ्ने जातः । सौघ्न । उत्से जातः । औत्सः ।
राष्ट्रट्टे जातः । राष्ट्रियः । अवारभारे जातः । अवारपारीणः ॥ इत्यादि ।

वहाँ "उत्पन्न हुआ" इस अर्थ में समर्थ सप्तम्यन्त से परे अण् आदि और च आदि
प्रत्यय होते हैं। सौघ्न' १०६३, २५५ (सुघ्ने जात') जो सुघ्न देश में उत्पन्न भया हो।
औत्सः १०६३, २५५ (उत्से जात) जो भरने में उत्पन्न भया हो। राष्ट्रियः (राष्ट्र + घ)
१०८०, २५५ जो किसी देश में उत्पन्न भया हो। अवारपारीणः ११४४ १०८०, २५५ जो
उरार पार उत्पन्न हो। इसी प्रकार और भी जान लेंगे ॥

११६७ ॥ प्राहृषष्ठम् ४ । ३ । २६ एणभापवादः । प्राहृषिकः ॥

११६६ सूत्र के अर्थ में प्राहृष् शब्द से परे ठप् प्रत्यय होते हैं। यह ११६४ का अप-
वाद है। प्राहृषिक १०८५ प्राहृषि जात. = जो वर्षा ऋतु में उत्पन्न हो ॥

११६८ ॥ प्रायभाव. ४ । ३ । ३८ तत्रेत्येव । सुघ्ने प्रायेण वाहु-
ल्येन भवति सौघ्न. ॥

"प्रायः होता है" इस अर्थ में समर्थ सप्तम्यन्त से परे अण् आदि प्रत्यय होते हैं।
सौघ्नः १०६३ । २५५ जो प्रायः सुघ्न देश में होते हैं ॥

११६९ ॥ सम्भूते ४ । ३ । ४१ सुघ्ने सम्भवति । सौघ्न. ॥

सम्भूत (सम्भव) अर्थ में सप्तम्यन्त समर्थ से परे अण् आदि प्रत्यय होते हैं।
सौघ्नः १०६३ । २५५ । जिस का सुघ्न देश में सम्भव हो।

११७० ॥ कौश्याङ्गम् ४ । ३ । ४२ कौशियं वस्त्रम् ॥

सप्तम्यन्त (१) कौश शब्द से परे ढक् प्रत्यय होते हैं। कौशियम् १०८० । १०६३ ।
२५५ (कौशे सम्भवति) रेशमी कपडा ॥

(१) कौश = जिस में रेशमीकीडे रक्षा करते हैं।

११०१ ॥ तत्र भवः ४ । ३ । ५३ सौष्णः । शीतसः । राष्ट्रियः ॥

'तत्र भव' इस शब्द में तमसं सप्तम्यन्त से परे भ्वादि प्रत्यय होते। सौष्ण (सुष्णे भव) १ ६३ । २५३ सुष्णदेश में जो हो। शीतस (तस्से भव) राष्ट्रिय ११०१ । १ ८ । २५३ । राष्ट्रिय भव ॥

११०२ ॥ दिगादिभ्यो यत् ४ । ३ । ५४ दिश्यम् । वर्ग्यम् ॥

११०२ पूष के भव में दिम् आदि शब्दों से परे यत् प्रत्यय होते। दिश्यम् (दिशि भवम्) जो दिगा में हो। वर्ग्यम् (वर्गे भवम्) २५३—जो समूह में हो ॥

११०३ ॥ मरीचापयवाश्च ४ । ३ । ५५ दन्त्यम् । क्कठञम् ।

अध्यात्मादेष्टञ्चिष्यते । अध्यात्मे भवमाध्यात्मिकम् ॥

११०३ सू शब्द में मरीच के अपयव वापञ्च शब्दों से परे 'यत्' प्रत्यय होते। दन्त्यम् २५३ (दन्तेषु भवम्) जो दातों में हो। क्कठञम् २५३ (क्कठे भवम्) जो कंठ में हो। अध्यात्मादिषीं से परे ठञ् प्रत्यय होते" यह भाष्यकार की इच्छा है। अध्यात्मिकम्—१ ८५, १ ६३ २५३ जो आत्मा विषे हो ॥

११०४ ॥ अनुगतिकाद्रीनाञ्च ७ । ७ । २ एषामुभयपदद्विः

श्रिति श्रिति किति च । आधिदैविकम् । आधिभौतिकम् । ऐहलौकिकम् ।
आकृतिगण्यम् ॥

'जित् वा श्रित् शौर' कित् प्रत्यय परे जो तत्र अनुगतिकादिषीं के दोनों (पूर्वशौर उत्तर) पदों के आदि पञ् की द्वि होवे। आधिदैविकम् ११०३ की दृष्टि से ठञ् प्रत्यय हुआ। शौर १ ८५, १ ६३, २५३—जो देव में हो। ऐसे आधिभौतिकम्। ऐहलौकिकम् (इह लोके भवम्) जो इह लोके में हो यह अध्यात्मादि आकृति गण्य है।

११०५ ॥ जिह्वामूलाङ्गुलीश्च । ४ । ३ । ६२ । जिह्वामूलीयम् ।

अङ्गुलीयम् ॥

जिह्वामूल शौर अङ्गुलि इत सप्तम्यन्त शब्दों से परे 'ञ्' प्रत्यय होते। जिह्वामूलीयम् (जिह्वामूले भवम्) १ ८० २५३ जो जिह्वामूल में हो। अङ्गुलीयम् १ ८० २५३ अङ्गुलि में जो हो ॥

११०६ ॥ वर्गान्ताञ्च ४ । ३ । ६३ क्यर्गीयम् ॥

(३) वर्गान्त शब्द से परे 'ञ्' प्रत्यय होते। क्यर्गीयम् १ ८ २५३ (क्यर्गे भवम्) क्यर्ग में जो हो ॥

(३) वर्ग शब्द है अन्त में जिह्व के।

११७७ ॥ तत आगतः ४ । ३ । ७४ सुधनादागतः स्त्रीघ्नः ॥

‘तहा से आया’ इस अर्थ में पञ्चम्यन्त से परे अण् आदि प्रत्यय होंगे । स्त्रीघ्नः १०६३, २५५ सुधन देश से आया ॥

११७८ ॥ ठगायस्यानेभ्यः । ४ । ३ । ७५ । शुल्कशालाया आगतः शौल्कशालिकः ॥

‘तत आगतः’ इस अर्थ में आयस्थान (राजा के कर ‘मामला’ लेने के स्थान) के वाचक पञ्चम्यन्त शब्दों से परे ‘ठक्’ प्रत्यय होंगे । शौल्कशालिकः १०८५, १०६७, २५५ (१) शुल्क शाला से जो आया ॥

११७९ ॥ विद्यायोनिःसम्बन्धेभ्यो बुञ् ४ । ३ । ७७ औपाध्यायकः पितामहकः ॥

विद्यासम्बन्ध वाले और योनि सम्बन्धी पञ्चम्यन्त शब्दों से परे “बुञ्” प्रत्यय होंगे । औपाध्यायकः (उपाध्यायादागतः) १०६३, ८३०, २५५ उपाध्याय से जो आया हो । पितामहकः (पितामहादागत) १०६३, ८३०, २५५ ॥

११८० ॥ हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः । ४ । ३ । ८१ समादागतं समरूप्यम् । पक्षे गहादित्वाच्छः । समीयम् । देवदत्तरूप्यम् । दैवदत्तम् ॥

हेतु और मनुष्य वाचक पञ्चम्यन्त शब्दों से परे विकल्प करके ‘रूप्य’ प्रत्यय होंगे समरूप्यम् (समान हेतु से जो आया) दूसरे पक्ष में ११५६ सूत्र से ‘छ’ प्रत्यय होता है । समीयम् १०८०, २५५ देवदत्तरूप्यम् वा दैवदत्तम् = देवदत्त से जो आया हो ।

११८१ ॥ मयट् च ४ । ३ । ८२ सममयम् । देवदत्तमयम् ॥

११७७ सूत्र के अर्थ में ११८० सूत्रकी प्रकृतियों से परे ‘मयट्’ प्रत्यय भी होंगे । सममयम् (समादागतम्) देवदत्तमयम् (देवदत्तादागतम्) ॥

११८२ ॥ प्रभवति ४ । ३ । ८३ हिमवतः प्रभवति हैमवती गङ्गा ॥

प्रभवति (प्रकाशित होता है) इस अर्थ में पञ्चम्यन्त से परे अण् आदि प्रत्यय होंगे । हैमवती १०६३, १३३७ हिमालय से जो प्रकाशित हो (गङ्गा) ॥

११८३ ॥ तद्गच्छति पयिदूतयोः ४ । ३ । ८५ सुधनं सद्गच्छति स्त्रीघ्नः पन्था दूतो वा ॥

(१) राजा के कर लेने का स्थान ।

तद्धत्वति (उस स्थल को जाता है) इस अर्थ में द्वितीयान्त से परे चच् प्रादि प्रत्यय होनें यदि जाने वाया भाग वा दूत हो तब । सौष्ण १ ३१ २११—को मार्ग वा दूत सुष्ण देय को जाता है ॥

११८४ ॥ अभिनिष्क्रामति द्वारम् ४ । ३ । ८६ सुष्णमभिनिष्क्रामति सौष्णहान्यकुष्णद्वारम् ॥

अभिनिष्क्रामति (सम्मुख (१) निकलता है) इस अर्थ में द्वितीयान्त से परे चच् प्रादि प्रत्यय होनें । यदि निकलने वाया द्वार ही तब । सौष्णम् (कम्भीजका द्वार (फाटक))

११८५ ॥ अधिक्त्वय कृते ग्रन्थे ४ । ३ । ८७ शारीरकमधिक्त्वय कृतो ग्रन्थ शारीरकीयः ॥

अभि विषय का प्रसङ्ग करके बियागया" इस अर्थ में द्वितीयान्त से परे चच् प्रादि प्रत्यय होनें हैं । यदि जो बिया गया वह ग्रन्थ ही तो । शारीरकीय ११४४ १ ८० २११ जो ग्रन्थ (२) जीव के विषय में बनाया गया है ॥

११८६ ॥ सोऽस्य निवासः ४ । ३ । ८८ सुष्णो निवासोऽस्य सौष्ण ।

"सो है निवास स्थान इसका" इस अर्थ में प्रथमान्त से परे चच् प्रादि प्रत्यय होनें । सौष्ण (सुष्ण + चच्) १ ३१ । २११—जिसका निवास स्थान सुष्ण हो ॥

११८७ ॥ तेन प्रोक्तम् ४ । ३ । १ पाश्चिनिना प्रोक्तं पाश्चिनीयम् ॥ तृतीयान्त से परे "कहा गया" इस अर्थ में चच् प्रादि प्रत्यय होनें । पाश्चिनीयम् १ ८ । २११ पाश्चिनि करके जो कहा गया है ॥

११८८ ॥ तस्यैदम् ४ । ३ । १२० उपगोरिदमौपगवम् ॥ -

॥ इति शैषिका ॥

'तस्यैदम्' (यह उसका है) इस अर्थ में षष्ठ्यन्त से परे चच् प्रादि प्रत्यय होनें । औपगवम् १ ३१ । १ ०२ । २६ जो उपगु का होनें ॥ वेय ११४१ का अधिकार समाप्त हुआ ॥

११८९ ॥ तस्य विकारः ४ । ३ । १३४ ॥

षष्ठ्यन्त से परे विकार अर्थ में चच् प्रादि प्रत्यय होनें ॥

११९ ॥ अश्वमनो विकारे टिषीपः । अश्वमनो विकार आश्वमः ।

मास्मन् । माशिकः ॥

(१) यहाँ सम्मुख निकलने का (दोष पड़ता है) यह अर्थ है । (२) निष्कृत शरीर को "शरीरक" कहते हैं उस का सम्बन्धी जीव 'शारीरक' कहाता है ॥

विकारार्थक प्रत्यय के परे होते अशमन् शब्द की टि का लोप होवे। आश्रयः १०६३ पत्थर का विकार। भस्मनः (भस्मनो विकारः) १०६२ = भस्म का विकार। मार्त्तिकः। १०६०। १०६५। २५५ (सृत्तिकाया विकारः) मिट्टी का विकार ॥

११६१ ॥ अवयवे च प्राण्योपधिहृत्तेभ्यः ४। ३। १३५ चाहिकारे मयूरस्यावयवो विकारो वा मायूरः। सौर्वम्। काण्डम्भस्म वा। पैप्यलम्।

प्राणी, ओपधि, और वृद्ध वाचक शब्दों से परे अवयव अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं। चकार से विकार अर्थ में भी। मायूरः १०६३। २५५ मीर का अवयव वा विकार। सौर्वम् (१) (सुर्वाया अवयवो विकारो वा)। पैपलम् (२) (पिपलस्यावयवो विकारो वा) ॥

११६२ ॥ मयड्वैतयोर्भाषायामभक्षाच्छादनयोः। ४। ३। १४३। प्रकृतिमात्रान्मयड् वा स्याहिकारावयवयोः। अशममयम्। आशमनम्। अभक्षेत्यादि किम्। सौह्रस्सूपः। कार्पासमाच्छादनम् ॥

भाषा में (३) (वेद से भिन्न) सस्कृत ग्रन्थों में प्रकृति (प्रातिपदिक) मात्र से परे विकार और अवयव अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होंगे, परन्तु यदि विकार और अवयव भक्ष (खाने योग्य) और वृद्ध वाचक न हो तब। अशममयम् वा आशमनम् पत्थर का विकार वा अवयव। ११६२ इस सूत्र में "अभक्षाच्छादनयोः" यह पद क्यों कहा? उत्तर देता है, सौहः (सुहस्य विकार) मुंग की दाल। और कार्पासम् (कार्पासस्य विकार) कपडा इन दोनों उदाहरणों से मयट् न हो जावे ॥

११६३ ॥ नित्यं वृद्धशरादिभ्यः ४। ३। १४४ आश्रमयम् ॥

वृद्ध ११५२। ११५३ सप्ता वाले शब्दों से परे और शरादिश्रों से परे विकार और अवयव अर्थ में मयट् प्रत्यय नित्य होवे। आश्रमयम् (आश्रमस्य विकारोऽवयवो वा) = आश्रम का विकार वा अवयव ॥

११६४ ॥ गोश्च पुरीषे ४। ३। १४५ गोमयम् ॥

'गाय का गोवर' इस अर्थ में गो शब्द से परे मयट् प्रत्यय होवे। गोमयम्, गौ का गोहा।

११६५ ॥ गोपयसोर्व्यत् ४। ३। १६० गव्यम्। पयस्यम् ॥

॥ इति प्राग्दीव्यतीयाः ॥

गो और पयस् इन शब्दों से परे विकार अर्थ में यत् प्रत्यय होवे। गव्यम् २८ गोर्विकारः) पयस्यम् (पयसो विकारः) = दूध का विकार ॥ प्राग्दीव्यतीय समाप्तं हुए ॥

(१) किमी लता का नाम है। (२) पीपल के वृक्ष का नाम है। (३) अवैदिक।

११८६ ॥ प्राग्वहतेष्ठक् ४ । ४ । १ तहङ्गतीत्यसः प्राक् ठगधिक्रियते ॥

यहाँ से खेकर १२१२ मूत्र पर्यन्त ठक् का अधिकार है ॥

११८७ ॥ तेन दौष्यति खनति जयति जितम् ४ । ४ । २ अघौर्ही
व्यति खनति जयति जित वा आधिक्यम् ॥

(उस करके) "खेकता है द्योदता है क्षीतता है और जो पदार्थ क्षीतामया" इन अघौ में तृतीयान्त से परे 'ठक्' प्रत्यय होते। आधिक्यम् १ ६० १ ८५, २५३ पाणिनी से जो खेकता है इत्यादि ॥

११८८ ॥ संस्कारम् ४ । ४ । ३ दध्ना संस्कारं दाधिक्यम् । मारीचिकम् ४

"संस्कार क्रियागका" इस अर्थ में तृतीयान्त से परे ठक् प्रत्यय होते। दाधिक्यम् १ ६० १ ८५, २५३ दधि (दही) करके जिस का संस्कार क्रिया गया। मारीचिकम् = मरिच से जिस का संस्कार क्रिया गया ॥

११८९ ॥ तरति ४ । ४ । ५ उहुपेम तरति । चीहुपिक ॥

'तरता है' इस अर्थ में तृतीयान्त से परे ठक् प्रत्यय होते। (१) चीहुपिकः १ ६०, १ ८५, २५३ ॥

१२०० ॥ चरति ४ । ४ । ८ इस्तिना चरति इस्तिवाः । दध्ना
चरति दाधिक्यः ॥

(२) 'जाता है वा खाता है' इन अर्थों में तृतीयान्त से परे ठक् प्रत्यय होते। इस्तिक् १ ६०, १ ८५ ८०३ हाथी करके जो जाता है। दाधिक्य १ ६०, १ ८५, २५३ जो दही करके खाता है ॥

१२ १ ॥ संसृष्टे ४ । ४ । २२ दध्ना संसृष्टं दाधिक्यम् ॥

संसृष्टम् (मिखाया गया) इस अर्थ में तृतीयान्त से परे ठक् प्रत्यय होते। दाधिक्यम् १ ६०, १ ८५, २५३ दही से जो मिखाया गया ॥

१२०० ॥ उञ्छति ४ । ४ । ३२ वदराण्युञ्छति दादरिक् ॥

"उप जो चुगता है" इस अर्थ में द्वितीयान्त से परे ठक् प्रत्यय होते। दादरिक् १ ६०, १ ८५, २५३ का बेरी जो चुगता है ॥

१२ ३ ॥ रघति ४ । ४ । ३७ ममार्षं रघति मामाधिक ॥

(१) तुल्य कर का जा तरता ५ । (२) यहाँ पर भातु जो गति और भयच दीर्घ अर्थों का पदच है ॥

“रक्षा करता है” इस अर्थ में द्वितीयान्त से परे ठक् प्रत्यय होवे। शाब्दिकः १०६७। १०८५। २५५ जो समाज का रक्षक हो ॥

१२०४ ॥ शब्ददुर्द्धरोति ४। ४। ३४ शब्ददुर्द्धरोति शाब्दिकः।
दुर्द्धरोति दार्दुरिक ॥

“करता है” इस अर्थ में द्वितीयान्त शब्द वा ‘दुर्द्धर’ शब्दों से परे ठक् प्रत्यय होवे। शाब्दिकः १०६७। १०८५। २५५ = जो शब्द करता है। दार्दुरिक. १०६७। १०८५। २५५ = जो डडुआ की करे (पहली वारम) ॥

१२०५ ॥ धर्मस्ञ्चरति ४। ४। ४१ धार्मिकः ॥

“धर्म को आचरण करता है” इस अर्थ में धर्म शब्द से परे ठक् प्रत्यय होवे। धार्मिकः १०६७। १०८५। २५५ जो धर्म को आचरण करता है ॥

१२०६ ॥ अधर्मस्ञ्चरेतिवज्ञायस्। अधर्मिकः ॥

अधर्म शब्द से भी ठक् प्रत्यय होवे ऐसा कहना चाहिये। अधर्मिक (अधर्म चरति) पापी ॥

१२०७ ॥ शिल्पम् ४। ४। ५५ शिल्पवादनं शिल्पसम्य साईद्विकः ॥

“इस का गिनप” इस अर्थ में प्रथमान्त से परे ठक् प्रत्यय होवे। साईद्विकः १०६७। १०८५। २५५ = शिल्प वाजाने से जिस का हस्त कुशल है ॥

१२०८ ॥ प्रहरणम् ४। ४। ५७ असिः प्रहरणसम्य आसिक.। धानुष्क.।

“इस का (१) प्रहरण (आयुध) है” इस अर्थ में प्रथमान्त से परे ठक् प्रत्यय होवे ॥ आसिक १०६७। १०८५। २५५ (स्वधारी)। धानुष्कः ११२७ (धनु. प्रहरणसम्य) = धनुषधारी ॥

१२०९ ॥ शीलम् ४। ४। ६१। अप्रभक्षणं शीलसम्य आपूपिकः।

“इस का स्वभाव है” इस अर्थ में प्रथमान्त से परे ठक् प्रत्यय होवे। आपूपिक. १०६७। १०८५। २५५ = जिसका पूडे खाने का स्वभाव है ॥

१२१० ॥ निकटे वसति ४। ४। ७३ नैकटिको भिक्षुकः।

॥ इति ठगधिकारः ॥

“निकट (नेडे) बसता है” इस अर्थ में सप्तम्यन्त निकट शब्द से परे ठक् प्रत्यय होवे। नैकटिक (निकटे वसति) १०६७। १०८५। २५५ = भिखारी जो निकट बसे।

ठक् ११८६ प्रत्यय का अधिकार समाप्त हुआ।

(१) जिस करके सारने हैं।

१२११ ॥ प्राग्घिताद्यत् । ४ । ४ । ७५ । तस्मै द्वितमित्यत प्राग्य
दधिक्रियते ॥

इस सूत्र से लकार १२२ सूत्र पयन्त यत् प्रत्यय का अधिकार है ॥

१२१२ ॥ तद्वद्वति रथयुगप्रासङ्गम् । ४ । ४ । ७६ । रथं वद्वति रथ्यः ।
युग्यः । प्रासङ्ग्य ॥

‘तद्वद्वति रथयुगप्रासङ्गम्’ इस अर्थ में द्वितीयान्त रथ युग और प्रासङ्ग इन शब्दों से परे यत् प्रत्यय जोड़े। रथ्य २१३ = जो रथ को लेजावे। युग्य (युगं वद्वति) २१३ जो युग को ले जावे। प्रासङ्ग २१३ जो (१)प्रासङ्ग को लेजावे।

१२१३ ॥ धुरीयसृक्कौ । ४ । ४ । ७७ । धुर्य्य । धौरेय ॥

द्वितीयान्त धुर ध्य से परे ‘तद्वद्वति रथयुगप्रासङ्गम्’ इस अर्थ में ‘यत्’ वा ‘ठप्’ प्रत्यय जोड़े। धुर्य्य वा धौरेय १ ६० १ = (धुरं वद्वति) = जो धुरा को ले जावे।

१२१४ ॥ नौषयोधर्मविषमूलमूलसीतातुषाम्यस्ताद्यर्षतुष्यप्राप्य
वध्यानाम्यसमसमितसम्मितेषु । ४ । ४ । ८१ । नावा तार्य्यमाध्यं क्लमम् ।
वयसा तुष्यो वयस्य । धर्मेष प्राप्यं घर्म्यम् । विषेष वध्यः विष्यः ।
मूलेन चानाम्यम्मूष्यम् । मूलेन समी मूष्यः । सीतया समित सीत्व
क्षेपम् । तुषया सम्मित्तुष्यम् ।

नौषयम् अम विष मूल मूल सीता और तुषा इन तृतीयान्त पाठ शब्दों से परे क्लम से तार्य्य (तारने योग्य) तुष्य (समान) प्राप्य (प्राप्त होने के योग्य) वध्य (मारने के योग्य) अनाम्य (भुक्ताने के योग्य) सम (समान) समित (समकिया गया) और सम्मित (तोड़ागवा) इन शब्दों में यत् प्रत्यय जोड़े। अथा नाव्यम २८ = वेदी से पार होने के योग्य (जब) वयस्य = अमर करके जो तुष्य (मिथ) घर्म्यम् २१३ (धर्म करके प्राप्त होने के योग्य) विष्य २१३ (विष करके मारने योग्य) मूष्यम् २१३ (जब से जो भुक्ताने योग्य) मूष्य = मोक्ष करके वस्तु के जो समान हो दास (मीच) सीतयम् सीता (दबकी चकीर) से जो समित हुआ (खेत)। तुष्यम् = तद्वदी से तोड़ा गया (समान) ॥

१२१५ ॥ तत्र साधु । ४ । ४ । ८८ । सामसु साधुस्तामन्यः ।
स्तम्नस्य । शरथ्यः ॥

“उस में निपुण है” इस अर्थ में सप्तम्यन्त से परे यत् प्रत्यय होवे । सामन्यः = सामवेद में जो निपुण हो । कर्मण्यः (कर्मसु साधुः) शरण्यः २५५ (शरणे साधुः) ॥

१२१६ ॥ सभाया य । ४ । ४ । १०५ । सभ्यः ॥ इति यतोऽवधिः ॥

१२१५ सूत्र के अर्थ में सभा शब्द से परे ‘य’ प्रत्यय होवे । सभ्यः २५५ (सभायां साधुः) ॥

॥ यत् १२११ प्रत्यय का अधिकार समाप्त हुआ ॥

१२१७ ॥ प्राक्क्रीताच्छः । ५, १, १ । तेन क्रीतमित्यतः प्राक्छोऽधिक्रियते ।

यहा से १२२५ सूत्र पर्यन्त छ प्रत्यय का अधिकार है ॥

१२१८ ॥ उगवादिभ्यो यत् । ५ । १ । २ । उवर्णान्ताङ्गवादिभ्य-

श्च यत् । छस्यापवादः । शङ्ख्यं दासु गव्यम् ।

उकारान्त से और गवादिभ्यो से परे यत् प्रत्यय होवे । यह सूत्र, १२१७ सूत्र का अपवाद है । शङ्ख्यम् (शङ्खवे हितम्) १०७२, २६ लकड़ी जो कीले की हितकारक (उस से कीला बनसके) हो । गव्यम् २८ (गवे हितम्) जो गौ के लिये हित कारक हो ॥

१२१९ ॥ नाभिनभञ्च । नभ्योऽञ्चः । नभ्यमञ्जनम् ॥

“नाभि” शब्द को नभ आदेश और उस से परे १२२० सूत्र अर्थ में ‘यत्’ प्रत्यय होवे । नभ्यः २५५ = अञ्च (धुरी) रथ के पहिये की नाभि के छेक में रहता है । (१) नभ्यम् २५५ (नाभये हितम्) = अञ्जन (तैलाभ्यङ्ग) ॥

१२२० ॥ तस्मै हितम् । ५ । १ । ५ । वत्सेभ्यो हितो वत्सीयो गोधुक् ।

तस्मै हितम् (उस के लिये हित) इस अर्थ में चतुर्थ्यन्त से परे छ प्रत्यय होवे । वत्सीयः १०८०, २५५ जो बकडेभ्यो को दूध छोड़े ऐसा गोधुक् (गौ चोने वाला) ॥

१२२१ ॥ शरीरावयवाद्यत् । ५ । १ । ६ । दन्त्यम् । कण्ठयम् । नस्यम् ।

चतुर्थ्यन्त शरीर के अवयव वाचक शब्द से परे ‘यत्’ प्रत्यय होवे । दन्त्यम् २५५ (दन्तेभ्यो हितम्) जो दान्तों को हित हो । कण्ठयम् २५५ (कण्ठाय हितम्) गले को जो हित हो । नस्यम् (नासिकायै हितम्) जो नाक के लिये हित कारक हो ॥

१२२२ ॥ आत्मन् विश्वजनभोगोत्तरपदात्खः । ५ । १ । ६ ॥

आत्मन् शब्द से परे और विश्वजन शब्द से परे और भोग शब्द जिस का उत्तर पद हो उस से परे ख प्रत्यय हो ॥

(१) यहा रथ की नाभि में ही ऐसा प्रयोग आता है, शरीर की नाभि में तो (नाभ्यम्) १२२१ ऐसा हीगा ।

१२२३ ॥ आत्मज्वाली खे । ६ । ४ । १६६ । एतौ खे प्रकृत्या
स्त । आत्मने हितमात्मनीमम् । विश्वजनानम् । मातृभोगीष ॥

॥ इति छयतो पूर्वोऽवधि ॥

ए प्रत्यय के परे जोते आत्मन् और अजन् इन दो शब्दों का (१) प्रकृतिमार्ब जो ।
आत्मनीमम् १ ८ जो अपने किये हित जो । विश्वजनानम् १ ८ २३३ जो संसार भर
के जना जो हित जो । मातृभोगीष (मातृभोगाय हित) १ ८ २३३ माता के शरीर
के किये हितकारक जो ॥ ए प्रत्यय और यत् प्रत्यय की अवधि समाप्त हुए ॥

१२२४ ॥ प्राक्वत्तेष्ठम् । ५ । १ । १८ । तेन तुष्ट्यमित्यत प्राक्
ठञ्चिक्रियते ॥

यहां से १२३१ सूत्र पर्यन्त ठक् प्रत्यय का अधिकार होवे ॥

१२२५ ॥ तेन क्रीतम् । ५ । १ । १७ । सप्तत्या क्रीत साप्ततिकम् ।
प्रास्थिकम् ॥

'उस करके खरीदा गया' इस अर्थ में कृतीयात् से परे ठक् प्रत्यय होवे । साप्ततिकम्
१ ६१ १ ८३ २३३ - सप्तर करके जो मोक्ष किया गया होवे । प्रास्थिकम् (प्रसेनक्रीतम्) ।

१२२६ ॥ तस्येश्वर । ५ । १ । ४२ । सर्वभूमिपृथिवीभ्रामण्यौ
स्तः । अमुद्यतिकादीनाञ्च । सर्वभूमेरीश्वरः सार्धभौमः । पार्थिव ।

'उस का इश्वर' इस अर्थ में पठ्यन्त सर्वभूमि और पृथिवी इन दो शब्दों से परे
क्रम से अच् और अन् प्रत्यय होंगे । ११७४ से पूर्व और उत्तर पद की हवि करकेनी ।
सार्धभौम २३३ - सारी पृथ्वी का पति । पार्थिव १ ६१ २३३ (पृथिव्या ईश्वरः) - राजा ।

१२२७ ॥ पङ्क्तिर्बिगतिर्बिगत्तत्वारिंशत्पञ्चाशत्पट्टिसप्तत्य
गौतमवतिशतम् । ५ । १ । ५६ । एते कूठशठ्ठा मिपात्यन्ते ।

(२) पङ्क्ति (छन्द) बिगति (बीस) बिगत् (तीस) चत्वारिंशत् (चाबीस) पञ्चाशत्

(१) जैसे के जैसे ही रहें अर्थात् ८०३ सूत्र से टि का शेष न हो ॥

(२) यहां 'पञ्च पदानि परिमाणस्य' ऐसे विषय से पञ्चन् शब्द की टि का शेष
और ति प्रत्यय पुन (जो कु) सूत्र से कृत् करके सं 'पङ्क्ति' ऐसा रूप सिद्ध होता है उच
का अर्थ भी जन्मोन्मियेय है यह काशिकाकार का मत है । इरदत्त ने कहा है कि यहां पञ
का अर्थ पाठ है ऐसे शीर्ष के यौगिक अर्थ तो हैं । परन्तु जब इन को यदि शब्द माना तो
पङ्क्ति शब्द दग संख्या का वाचक भी हुआ ।

(पञ्चास) षष्ठि (साठ) सप्तति (सत्तर) अशीति (अस्सी) नवति (नब्बे) शीर अंत (सी) ये रूढ शब्द निपात से सिद्ध होते हैं ॥

१२२८॥ तदर्हति । ५ । १ । ६३ । श्वेतच्छत्रमर्हति श्वेतच्छत्रिक् ॥

द्वितीयान्त से परे "तदर्हति" तिस के योग्य है इस अर्थ में ठञ् प्रत्यय हीवे। श्वेत-
च्छत्रिकः १०६३, १०८५, २५५ जो मुह्य च्छत्र के योग्य हो ॥

१२२९॥ दण्डादिभ्यो यः । ५ । १ । ६६ । एभ्यो यः । दण्डमर्हति

दण्डयः । अर्घ्यः । वधयः ॥

१२२८ सूत्र के अर्थ में दण्डादियों से परे 'यत्' प्रत्यय हीवे। दण्डयः २५५ जो दण्ड
के योग्य हो। अर्घ्यः २५५ (अर्घमर्हति) = पूज्य। वधयः २५५ (वधमर्हति) जो मारने योग्य हो।

१२३० ॥ तेन निर्वृत्तम् । ५ । १ । ७९ । अज्ञा निर्वृत्तमाह्निकम् ॥

॥ इति ठञ्जीवधिः ॥

"उस करके निष्पन्न हुआ" इस अर्थ में तृतीयान्त से परे ठञ् प्रत्यय हीवे।

(१) आह्निकम् = १०६३, १०८५, २६८ = जो दिन करके निष्पन्न हुआ।

॥ ठञ् १२२४ प्रत्ययकी अवधि समाप्त हुई ॥

१२३१ ॥ तेन तुल्यं क्रिया चेदतिः ५ । १ । ११५ । ब्राह्मणेन तुल्यं ब्राह्मण-
वदधीते । क्रिया चेत् किम् । गुणतुल्ये माभूत् । पुत्रेण तुल्यः स्थूलः ।

"उस करके तुलना क्रिया गया" इस अर्थ में तृतीयान्त से परे "वति" प्रत्यय हीवे।
परन्तु जिस धर्म से तुलना करे वह क्रिया ही तब। ब्राह्मणवत् ३९२ अधीते (वह ब्राह्मण
के तुल्य पढता है) इस सूत्र से "क्रिया चेत्" यह क्यों कहा? उत्तर देता है "पुत्रेण तुल्यः
स्थूलः" (पुत्र के तुल्य मोटा है) यहाँ गुण तुल्यता में पुत्र शब्द से वति प्रत्यय न ही जाये।

१२३२ ॥ तत्र तस्यैव । ५ । १ । ११६ । मथुरायामिव मथुरावत्
सुधने प्राकारः । चैत्रस्यैव चैत्रवन् मैत्रस्य गावः ॥

"उस में सदृश वा "उस के सदृश" इन अर्थों में सप्तम्यन्त शीर षष्ठ्यन्त शब्दों से
परे वति प्रत्यय हीवे। मथुरावत् = मथुरा में जैसा कोट वैसा सुधन देश का कोट।
चैत्रवत् = चैत्र धी सी मैत्र की गाए ॥

(१) यहाँ 'अह्निकम्' इस नियम से ६७३ सूत्र से टि का लोप नहीं होता।

१२३३ ॥ तस्य भावस्त्वतस्ती । ५ । १ । ११९ । प्रकृतिजन्यबोध
प्रकारो भावः । गोर्भावो गोत्वम् । त्वान्तं क्रीत्वम् ।

उक्त भाव इस धम में पठघन्त से परे 'त्व' वा तस् प्रत्यय होते । (१) प्रकृति
जन्य बोध में प्रकार (विशेष रूप से प्रतीयमान) को भाव कहते हैं । 'गोत्वम्' = गो
का को धर्म । त्व भिन्न से घन्त में जो बह अपुंसक सिद्ध होता है ॥

१२३४ ॥ आ च त्वात् । ५ । १ । १२० । ब्रह्मण्यस्त्य नृत्यतः
प्राक् त्वतस्त्वावधिक्रियेते । अपवादैः सह समावेशार्थमिदम् । चकारो
नञ्स्नञ्भ्यामपि समावेशार्थः । स्त्रिया भावस्त्रैश्चम् । शीत्वम् । शीता ।
पीस्मम् । पुंस्त्वम् । पुंस्ता ॥

'ब्रह्मण्यस्त्य' इस मूत्र के पूर त्व पीर तस् प्रत्यय का अधिकार है । 'अपवादों के
साथ इन प्रत्ययों का व्यवहार ही इस क्रिये यह मूत्र स्त्रिया गया है । नञ् पीर नरञ्
१० के साथ समावेश के लिये मूत्र में चकार पड़ा है । शैबम्, शीत्वम् शीता (शी का
धर्म) पीस्मम् पुंस्त्वम् पुंस्ता (पुरुष का धर्म) ॥

१२३५ ॥ पृथ्वादिभ्य इमभित्तया । ५ । १ । १२२ । वाचनम
यादिसमावेशार्थम् ॥

पठघन्त धनु यादि शब्दों से परे विभक्त्य कर्म के 'इमभित्' प्रत्यय होते । इस
मूत्र में वा का प्रथम धनु यादियों के समावेश के लिये है ॥

१२३६ ॥ र ऋतीह्रस्वादेशीषो । ६ । ४ । १६१ । इण्ठेमेयस्सु ॥
इण्ठन् इमन् पीर इयस् इम प्रत्ययों से परे होते इत्यादि लघु को लृ षस को
र आदेश होते ॥

१२३७ ॥ टे । ६ । ४ । १५५ । टेषीप इण्ठेमेयस्सु । पृथुमृदुमृगक्षमदृढ
परिहृठानामेव इत्वम् । पुथीर्भावः प्रथिमा । पायवम् । स्रदिमा । माह्ववम् ॥

इण्ठन् वा 'इमभित्' धमवा 'इयसुन् प्रत्यय जब परे रहें तब टि का लोप होते ।
पृथु मृदु मृग क्षम दृढ परिहृठ, (प्रसु) इण्ठी शब्दों के लकार को र १२३६ आदेश
होते । प्रथिमा १२३६ । १२३६ । १२३७ (वा) पायवम् १ ६३ । १००२ बह का भाव (पठार्थ) ।
स्रदिमा (वा) माह्ववम् = मृदु (लोमल) का भाव = लोमलता ॥

(१) प्रकृति (गो शब्द) से गो के बोध होने से विशेष रूप से प्रतीयमान को
गोत्व' इस को भाव कहते हैं ॥

१२३८ ॥ वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च । ५ । १ । १२३ । षादिमनिच् ।

शौक्ल्यम् । शुक्तिमा । दार्ढ्यम् । द्रढिमा ॥

वर्ण (रङ्ग) वाचक और दृढ आदि षष्ठ्यन्त शब्दों से परे भाव अर्थ में ष्यञ् प्रत्यय होवे चकार से इमनिच् भी होवे । शौक्ल्यम् १०६३ । २५५ (शुक्तस्य भावः) 'वा' शुक्तिमा (चिटयाई) । दार्ढ्यम् (वा) द्रढिमा (दृढस्य भावः) दृढता ॥

१२३९ ॥ गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च । ५ । १ । १२४ ।

चाह्मणे । जडस्य भावः कर्म वा जाड्यम् । मौढ्यम् । ब्राह्मण्यम् ॥
आकृतिगणोऽयम् ॥

गुणवाचक षष्ठ्यन्त शब्द से परे और ब्राह्मणादि षष्ठ्यन्त शब्दों से परे 'ष्यञ्' प्रत्यय होवे, क्रिया और भाव अर्थ में । जाड्यम् १०६३ । २५५ वा मौढ्यम् (मूढस्य कर्म भावो वा) = मूर्खता वा मूर्ख का कर्म । ब्राह्मण्यम् (ब्राह्मण का भाव वा आचार) ॥

॥ यह ब्राह्मणादिगण आकृतिगण है ॥

१२४० ॥ सख्युर्यः । ५ । १ । १२६ । सख्यम् ॥

भाव और क्रिया अर्थ में षष्ठ्यन्त सखि शब्द से परे य प्रत्यय होवे । सख्यम् २५५ (सख्युर्भावः कर्म) वा मैत्री ॥

१२४१ ॥ कपिज्ञात्योर्ढक् । ५ । १ । १२७ । कापेयम् । ज्ञातेयम् ॥

भाव और क्रिया अर्थ में षष्ठ्यन्त कपि और ज्ञाति शब्द से परे ढक् प्रत्यय होवे । कापेयम् १०८० । १०६७ । २५५ (कापेर्भावः कर्म वा) कपि (वानर) का भाव वा आचार । ज्ञातेयम् १०८० । २५५ ज्ञाति का आचार वा भाव ॥

१२४२ ॥ पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक् । ५ । १ । १२८ । सैनापत्यम् । पौरोहित्यम् ॥ इति नञ्स्नञ्जीरधिकारः ॥

भाव वा क्रिया अर्थ में षष्ठ्यन्त पत्यन्त और पुरोहितादि शब्दों से परे यक् प्रत्यय होवे । सैनापत्यम् (सैनापतेर्भाव) १०६७ । २५५ । पौरोहित्यम् १०६७ । २५५ (पुरोहितस्य भावः कर्म वा) पुरोहित का भाव वा कर्म ॥

॥ नञ् और स्नञ् प्रत्यय का अधिकार समाप्त हुआ ॥

१२४३ ॥ धान्यानाम्भवने ज्ञेचे खञ् । ५ । २ । १ । मुहानाम्भवनं ज्ञेचम्मौहीनम् ॥

धान्य जिस में उत्पन्न हो ऐसा खेत जब वाच्य हो तब षष्ठ्यन्त धान्यार्थक शब्द से परे खञ् प्रत्यय होवे । मौहीनम् १०८०, १०६३, २५५ खेत जिस में सुगी उत्पन्न हो ।

१२४४ ॥ त्रींशद्दशायोठक् । ५ । २ । २ । त्रैह्येयम् । घालेयम् ।

१२४३ सूत्र को चर्च में त्रींशद्दशायोठक् इन पठन्त मन्दी से परे ठक् प्रत्यय होवे ।
त्रैह्येयम् १ ३० । २३३ घालेयम् २३३ (घालीना भवन चेषम्) घालणी उत्पत्तिका को घेत ।

१२४५ ॥ त्रैह्येयवीनं संज्ञायाम् ५ । २ । २३ नवनीते निपातितोऽयम् ।

(१) 'त्रैह्येयवीनम्' (मछन) यह शब्द संज्ञा में निपात से सिद्ध होता है ॥

१२४६ ॥ तदस्य सञ्जातन्तारकादिभ्य इतच् । ५ । २ । ३६ ।

तारकास्सञ्जाता अस्य तारकितम्नभ । परिहृत । पाकृतिगणोऽयम् ।

'यह इस को उत्पन्न हुआ' इस चर्च में प्रथमान्त तारकादि शब्दों से परे इतच् प्रत्यय होवे । तारकितम् २३३ (पाकाम्) । परिहृत २३३ (पण्डा संज्ञाताऽस्य) सत् और चसत् को घान वाकी बुद्धि को पण्डा कहते हैं वह उत्पन्न हुई है जिस को । यह तारकादिभ्य पाकृतिगण है ॥

१२४७ ॥ प्रमाणे ह्यसदृशमञ्जाचच । ५ । २ । ३७ । अद् प्रमा

णमस्य अरुह्यसम् । अरुदणम् । अरुमाचम् ॥

'प्रमाच' चर्च में प्रथमान्त से परे ह्यसच् 'दणच्' वा 'माचच्' प्रत्यय होवे ।
अरुह्यसम् (वा) अरुदणम् (वा) अरुमाचम् - जांच जितना ॥

१२४८ ॥ यत्तदेतेभ्य परिमाणे वतुप् । ५ । २ । ३८ । यत् परि

माणमस्य यावान् । तावान् । एतावान् ॥

प्रथमान्त यत् तत् और एतद् इन शब्दों से परे वतुप् प्रत्यय होवे परिमाण चर्च में । यावान् ३०१ - जितना । तावान् ३०१ - उतना । एतावान् ३०१ - इतना ॥

१२४९ ॥ संख्याया अवयवे तयप् । ५ । २ । ४२ । पञ्चावयवा

अस्य पञ्चतयम् ॥

संख्यावाचक प्रथमान्त शब्द से परे तयप् प्रत्यय होवे अवयव चर्च में । पञ्चतयम् १८७ जिस को पञ्च अवयव होवे ॥

१२५० ॥ द्वित्रिभ्यान्तयस्यायञ्वा । ५ । ६ । ४३ । द्वयम् । द्वितयम् । त्रयम् । त्रितयम् ॥

द्वि और त्रि इन से परे तयप् को अयच् विकल्प करके होवे । द्वयम् २३३ वा द्वितयम्

१२५७ ॥ चै सम्प्रसारणञ्च । ५ । २ । ५५ । तृतीयः ।

वि शब्द को सम्प्रसारण और तीय प्रत्यय होने पर च अर्ध में । तृतीय (चपाच परच) - तीसरा ॥

१२५८ ॥ श्रीचिद्यंश्छन्दोऽधीते । ५ । २ । ८४ । श्रीचिय । वेत्यनुह

तिश्रृणन्दस ।

“वेद पठता चै” इस अर्ध में “श्रीचियन्” यह निपात से सिद्ध होता है । (१) ‘श्रीचिय’ श्रृणोऽधीते (को वेद पढ़े) यहाँ वा की अनुवृत्ति से दूसरे अर्ध में “श्रृणन्दस” १ ६५ (वेद पाठी) ऐसा रूप भी होता है ।

१२५९ ॥ पूर्वादिनि । ५ । २ । ८६ । पूर्वं ज्ञातमनेन पूर्वी ।

“अनेन” इस रूप से जब कर्ता विवक्षित हो तब प्रथमान्त पूर्व शब्द से परे इति प्रत्यय होने । पूर्वी १३३ पुनः पूर्वान् शब्द से प्रथमा के एक वचन में १० । १८२ १८३ इन से पूर्वी । वना - जिसने पढ़िने जाना ॥

१२६० ॥ सपूर्वाञ्च । ५ । २ । ८७ । कृतपूर्वी ।

विद्यमान है पूर्वपद जिसके ऐसे पूर्वशब्द से परे भी इति प्रत्यय होने । कृतपूर्वी - जिसने पूर्व भाष में किया ॥

१२६१ ॥ श्रृष्टादिभ्यश्च । ५ । २ । ८८ । श्रृष्टमनेन श्रृष्टी । अधीती ।

श्रृष्टादिभ्यो से परे इति प्रत्यय होने । श्रृष्टी - जिसने दृष्टि (यज्ञ) किया । अधीती (अधीतमनेन) जिसने पढ़ा ॥

१२६२ ॥ तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् । ५ । २ । ९४ । गावो

ऽस्यास्मिन् वा सन्ति गोमान् ॥

‘उष का ‘वा’ उष में यह चै” इस अर्ध में प्रथमान्त से परे मतुप् प्रत्यय होने । गोमान् - गौणां वाक्ता ॥

१२६३ । तसौ मत्पर्ये । १ । ४ । १९ । तान्तसागतौ मसञ्ची स्तो

मत्पर्ये प्रत्यये । सम्प्रसारणम् । विदुष्मान् ।

मत्तुप् १२६२ के अर्ध में श्लो १ प्रत्यय परे रहे तब त् (वा) सू चै अन्त में विन के यह म संज्ञाके वा पुनः १०६ से सम्प्रसारण श्रुत्या (२) विदुष्मान् ॥

(१) यहाँ श्रीचियन् वा न् (नकार) रहूँ है । (२) यहाँ विशाल पर्यायिभ्याऽदिति वेदे विपद्यसे जहाँ विद्वान् ऐसा रहे अर्थ होता है ॥

१२६४ ॥ गुणवाचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः । शुक्लो गुणोऽस्यास्तीति

शुक्लः पटः । कृष्णः ॥

पतञ्जलि महाराज को गुणवाचक शब्दों से परे मतुप् का लुक् इष्ट है । शुक्लः पटः (चिह्न कपडा), कृष्णः (कालः) ॥

१२६५ ॥ प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् । ५ । २ । ६६ । चूडालः ।

चूडावान् । प्राणिस्थात् किम् । शिखावान् दीपः । प्राणयज्ञादेव । नेह ।
मेधावान् ॥

प्राणी में नित्य सम्बन्ध से रहने वाले पदार्थ के वाचक आकारान्त शब्द से परे विकल्प करके लच् प्रत्यय होवे, मतुप् के अर्थ में । चूडालः वा चूडावान् १२६२ (चूडा-
ऽस्यास्ति) चूडा जिस को होवे । यहा "प्राणिस्थात्" यह क्यों कहा? उत्तर देता है "शिखा-
वान् दीपः" यहाँ दीप प्राणी नहीं इस लिये यहा पक्ष में लच् न हो जावे । "यह लच्
प्राणी के अङ्ग से परे ही होवे" इस लिये "मेधावान्" यहाँ पक्ष में लच् न हुआ ॥

१२६६ ॥ लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ५ । २ । १००

लोमादिभ्यः शः । लोमशः । लोमवान् । पामादिभ्यो नः । पामनः ।

लोमादि, पामादि, और पिच्छादि शब्दों से परे क्रम से श, न, और इलच् प्रत्यय
होवें । लोमन् आदि से परे श हो, उदा० लोमशः १८४ (वा) लोमवान् १२६२ जिस के शरीर
पर बहुत बाल हों । पामन् आदिकों से परे न प्रत्यय हो । उदा० पामनः = खुरक वाला ॥

१२६७ ॥ अङ्गात् कल्याणे । अङ्गना ॥

कल्याण अर्थ में अङ्ग शब्द से परे 'न' प्रत्यय होवे । अङ्गना १३३५ । (कल्याणानि
अङ्गानि यस्याः) = जिस के अङ्ग कल्याण वाले हों ॥

१२६८ ॥ लक्ष्म्या अच्च । लक्ष्मणः । पिच्छादिभ्य इलच् । पि-
च्छिलः । पिच्छवान् ॥

लक्ष्मी शब्द को अकार और न प्रत्यय हों । लक्ष्मणः (कल्याण चिन्ह वाला) ।
पिच्छ आदिकों से परे इलच् प्रत्यय हो । उदा० पिच्छिलः वा पिच्छवान् १२६२ दहीं ॥

१२६९ ॥ दन्त उन्नत उरच् ५ । २ । १०६ उन्नता दन्ता अस्य दन्तुरः ॥

उचे अर्थमें प्रथमान्त दन्त शब्द से परे उरच् प्रत्यय होवे । दन्तुरः = उचे दान्तों वाला ।

१२७० ॥ केशादीऽन्यतरस्याम् ५ । २ । १०६ । केशवः । केशवान् ।

प्रथमान्त लोभ शब्द से परे विकल्प करके व प्रत्यय होते। 'वेगव' (वेया सम्प्रसारण)
'वा' वेगवान् १२६२ = लोधी वासा ॥

१२०१ ॥ अन्येभ्योऽपि ह्रयते । मणिवः ।

अन्य (घोर) शब्दों से परे भी 'व' प्रत्यय दीर्घ पड़ता है। मणिवे = (मणिरस्यास्ति) घण ।

१२०२ ॥ अर्षसी लोपश्च । अथव ।

अर्षस् शब्द से परे व प्रत्यय होते। घोर छत्र के स् का लोप होते। अथव
(अर्षोऽस्त्यस्य) (सागर) ॥

१२०३ ॥ अत इनिठमौ । पू । २ । ११५ । दृष्टी । दृष्टिक् ।

१२६२ सूत्र के अर्थ में अकारान्त शब्दों से परे इनि वा ठन् प्रत्यय होते। दृष्टी (भा)
दृष्टिक् १ ८१ (दृष्टी ऽस्यास्ति) दृष्टवासा ॥

१२०४ ॥ त्रींशादिभ्यश्च । पू । २ । ११६ । त्रींशौ । त्रींशिक ।

त्रींश आदि शब्दों से परे इनि (वा) ठन् प्रत्यय होते। त्रींशौ (भा) त्रींशिक =
(त्रींशिरस्यास्ति) त्रिस में चापस हो ॥

१२०५ ॥ अस्मायामेघास्त्रलो विनि । पू । २ । १२१ । यशस्वी ।

मायावी । मेघावी । स्रग्वी ।

अस्त्र किस के अन्त में हो छत्र शब्द से परे, घोर माया मेघा घोर स्रग् इन शब्दों से
परे 'विनि' प्रत्यय होते। यशस्वी (यशोऽस्यास्ति) । मायावी = कृशिया (मायाऽस्यास्ति) ।
मेघावी (मेघाऽस्यास्ति) । पदिक्रम स्रग्वी (स्रगऽस्यास्ति) त्रिस के मासा हो ॥

१२०६ ॥ वाचो गिमनि । पू । २ । १२४ । वाग्मी ॥

वाच् शब्द से परे 'गिमनि' प्रत्यय होते। वाग्मी (प्रयस्ता वागस्य) प्रयस्त वाची वाच् ।

१२०७ ॥ अश आदिभ्यो ऽष् । पू । २ । १२० । अशस । आकृति

गणोऽयम् ॥ कृति मत्वर्थाया ॥

अशस् आदिषु से परे मनुष्य के अर्थ में 'अष्' प्रत्यय होते। अशस = अश (इवासीर)
रोग वासा । यह अशस् आदि गण आकृतिगण है ॥

॥ मनुष्य १२६२ के अर्थ में अश के प्रत्यय समाप्त हुए ॥

१२०८ ॥ प्राग्दिशो विभक्तिः । पू । २ । १ । दिक्शब्देभ्य कृत्यत

प्राग्दिशमासाः प्रत्यया विभक्तिसंज्ञा स्यु ॥

अश से "दिक् शब्देभ्य" सूत्र पर्यन्त कितने प्रत्यय हैं वे विभक्ति संज्ञावासे ही ॥

॥ अथ स्वार्थिकाः ॥

॥ अत्र स्वार्थिक प्रत्ययों का वर्णन किया जाता है ॥

१२७६ ॥ किंसर्वनामबहुभ्योऽद्वयादिभ्यः । ५ । ३ । २ । किमः

सर्वनाम्नो बहुशब्दाच्चेति प्राग्दिशोऽधिक्रियते ॥

किम्, सर्वनाम, और बहु, इन से परे विभक्ति सञ्चक १२७८ प्रत्यय होंगे । परन्तु जिन सर्वनाम सञ्चक शब्दों के आदि में द्वि शब्द है उन से परे नहीं होंगे । इस मूत्र का "दिक् शब्देभ्यः" इस सूत्र के पूर्व पर्यन्त अधिकार है ॥

१२८० ॥ पञ्चम्यास्तसिल् । ५ । ३ । ७ । पञ्चम्यन्तेभ्यः किमा-

दिभ्यस्तसिल् वा स्यात् ॥

पञ्चम्यन्त किमादि शब्दों से परे तसिल् प्रत्यय विकल्प करके होंगे ॥

१२८१ ॥ कु तिहोः । ७ । २ । १०४ । किमः कुस्तादौ हादौ च

विभक्तौ । कुतः कस्मात् ॥

तकार है आदि में जिस के और हकार है आदि में जिस के ऐसा विभक्ति सञ्चक १२७८ प्रत्यय परे ही तो किम् शब्द को कु आदेश होंगे । कुतः १२८० (वा) कस्मात् कहा से ।

१२८२ ॥ इदम् इश् । ५ । ३ । ३ । प्राग्दिशीये । इतः ॥

प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे होते इदम् को इश् होंगे । इतः १२८० (अस्मात्) ॥

१२८३ ॥ एतदोऽन् । ५ । ३ । ५ । प्राग्दिशीये । अनेकालत्वात्

सर्वादेशः । अतः । अमुतः । यतः । ततः । बहुतः । द्वाभ्याम् ॥

प्राग्दिशीय प्रत्यय के परे होते एतद् शब्द को अन् होंगे । अन् अनेकाल है इस लिये सारे एतद् को हुआ । अतः १२८० । अमुतः १२८० । यतः १०८० । ततः १२८० । बहुतः १२८० = बहुतों से । द्वि आदि सर्व नाम का तो "द्वाभ्याम्" ऐसा ही रूप होता है ॥

१२८४ ॥ पर्यभिभ्याञ्च । ५ । ३ । ६ । तसिल् । परितः सर्वत इत्यर्थः । अभितः उभयत इत्यर्थः ॥

परि और अभि से परे तसिल् प्रत्यय होंगे । परितः (चारों ओर से) अभितः (दोनों ओर से) ॥

१२८५ ॥ सप्तम्यास्चल् । ५ । ३ । १० । कुञ् । यञ् । बहुञ् ॥

सप्तम्यन्त किम् आदि १२०८ से परे चत् प्रत्यय विकल्प करके होते कुञ् (कस्मिन्) १२०९ कहाँ यह २ ० (यस्मिन्) कहाँ। बहवः। (बहुषु) बहुती में ॥

१२०६ ॥ इदमीह । ५ । ३ । ११ । चत्तोऽपवादः । इह ॥

सप्तम्यन्त इदम् मद् से परे 'इ' प्रत्यय विकल्प करके होते। यह चत् का अपवाद है। इह १२०२ यहाँ ॥

१२०७ ॥ किमीऽत् । ५ । ३ । १२ वा स्यात् ॥

किम् मद् से परे चत् प्रत्यय विकल्प करके होते ॥

१२०८ ॥ क्वाति । ० । २ । १०५ । किमः । क्व । कुञ् ॥

चत् प्रत्यय के परे होते किम् को क्व आदेश होते। क्व २३३ (वा) कुञ् १२०३ १२०९ (कस्मिन्) कहाँ ॥

१२०९ ॥ वृत्तराभ्योऽपि ह्ययन्ते । ५ । ३ । १४ । पञ्चमीसप्तमी

तरविभक्तवन्तादपि तसिष्ठादयो ह्ययन्ते । इमिषद्वाद् भवदादियोग एव । स भवान् । ततोभवान् । तच्चभवान् । ततोभवन्तम् । तच्चभवन्तम् । एवं दीर्घायु । देवानां प्रियः । आयुष्मान् ॥

पञ्चमी और सप्तमी इनके अन्य विकल्प है चन्त में चित्के लज के परे मी तसिष् आदि प्रत्यय दीर्घ पढ़ते हैं। इस पूरे में इमिष पद के चहच से 'भवत्' आदि अर्थों के योग में ही ये प्रत्यय होते हैं। प्रथमान्त से जैसे स भवान् (वा) ततो भवान् (को आप) तच्च भवान् = पूज्य आप । द्वितीयान्त से जैसे ततो भवन्तम् = वो जो आप तिस को। तच्च भवन्तम् (पूज्य जो आप तिस को) ऐसे ही 'दीर्घायु' और देवानांप्रियः, आयुष्मान् इन के योग में भी तसिष्वादि प्रत्यय होते हैं ॥

१२१ ॥ सर्वैकान्यकिञ्चन दः काक्षेदा । ५ । ३ । १५ । सप्तम्यन्तेभ्यः काक्षार्यं दा स्वात् ॥

काक्षार्यं में "सर्वं एव अन्य किम् यद् तद्" इन सप्तम्यन्त मर्द्धों से परे दा प्रत्यय आवे ॥

१२११ ॥ सर्वस्य सोऽन्यतरस्वां दि । ५ । ३ । ६ । दादौ प्राग्दि

श्रीये सर्वस्य सो वा । सर्वस्मिन् काक्षे सदा । सर्वदा । अन्यदा । कदा । यदा । तदा । काक्षे किम् । सर्वत्र देशे ॥

दृ ङे आदि में जिसके ऐसे प्राग्दिगीय प्रत्यय के परे होते सर्व शब्द की स आदेश विकल्प करके होंगे । सदा (वा) सर्वदा “सर्वस्मिन् काले” एकदा (एक समय) अन्यदा (अन्यस्मिन्काले) कदा (कस्मिन् काले) यदा (यस्मिन् काले) तदा (तस्मिन्काले) तव । १२६० सूत्र में “काले” यह क्यों कहा ? उत्तर देता है “सर्वत्र देशे” यहाँ देश की प्रतीति के होने पर ‘दा’ न ही जावे ॥

१२६२ ॥ इदमोर्हिंल् । ५ । ३ । १६ । सप्तम्यन्तात् ॥

सप्तम्यन्त इदम् शब्द से परे हिंल् प्रत्यय होंगे ॥

१२६३ ॥ एतेतौ रथो ५ । ३ । ४ इदम एत इत् एतौ स्तो रेफादौ यकारादौ च प्राग्दिशीये परे । अस्मिन् काले एतर्हिं । काले किम् ॥ इह देशे ॥

इकार है आदि में जिम के (वा) यकार है आदि में जिसके ऐसे प्राग्दिगीय प्रत्यय के परे होते कालार्थ में वर्तमान और सप्तम्यन्त इदम् शब्द की एत, वा इत् होंगे । एतर्हिं इस काल में । यहाँ “काले” क्यों कहा ? उत्तर देता है, “इह देशे” यहाँ देशार्थ में वर्तमान होने पर १२६३ सूत्र की प्राप्ति न ही जावे ॥

१२६४ ॥ अनद्यतने हिंलन्यतरस्याम् । ५ । ३ । २१ । कर्हिं । कदा । यर्हिं । यदा । तर्हिं । तदा ॥

अनद्यतन ४१७ काल में “हिंल्” प्रत्यय विकल्प करके होंगे । कर्हिं २६२ वा कदा (कस्मिन्काले) कत्र । यर्हिं वा यदा २०७ (यस्मिन्काले) जव । तर्हिं २०७ वा तदा । “तस्मिन्काले” (तव) ॥

१२६५ ॥ एतद्ः । ५ । ३ । ५ । एत इत् एतौ स्तो रेफादौ घादौ च प्राग्दिशीये । एतस्मिन् काले । एतर्हिं ॥

रेफादि वा घादि प्राग्दिशीय प्रत्यय परे ही तो, एतद् शब्द की एत (वा) इत् आदेश होंगे । एतर्हिं = इस काल में ॥

१२६६ ॥ प्रकारवचने थाल् । ५ । ३ । २३ । प्रकारवृत्तिभ्यः किमादिभ्यस्थाल् । तेन प्रकारेण तथा ॥

“प्रकार” अर्थ में किमादि १२७६ शब्दों से परे “थाल्” प्रत्यय होंगे । तथा २०७ तिस प्रकार से ॥

१२६७ ॥ इदमभ्यम्ः । ५ । ३ । २४ । थालोऽपवादः ॥

इदम् शब्द से परे वसु प्रत्यय होवे । यह वाक् का अणबाद है ॥

१२८८ ॥ एतदोऽपि वाच्यः । अनेम एतेन प्रकारेण वा वृत्त्यम् ।
ततोऽप्यन्त पतद् से परे भी वसु प्रत्यय होवे ऐसा कहना चाहिये । इत्थम् (१)

(इदम् + वसु) १२८९ ॥

१२८९ ॥ विमद्वच । ५ । ३ । २५ । केन प्रकारेण कथम् ॥

॥ इति प्राग्दिशौवा ॥

किम् शब्द से परे भी 'वसु' प्रत्यय होवे । इत्थम् १२९० — विषय प्रकार से ॥

॥ प्राग्दिशोय समाप्त इण ॥

१२९० ॥ अतिशयमे तमविच्छन्ती । ५ । ३ । ५५ । अतिशयवि

विच्छन्ती स्वय एतौ स्तः । अयमेवामतिशयेनाठम आठमस्तमः ।
सप्ततम । अविच्छन्ती ॥

अतिशय विच्छन्ती (पाठा) को अर्थ उस में वसुमान को प्रथमान्त शब्द उस से
परे स्वार्थ में तमप् और इच्छन्त् प्रत्यय होवे । आठमस्तमः — सप्त से बढ़ा घनी । सप्ततम
(वा) अविच्छन्ती १२९० (अतिशयेन सप्तु) सप्त से बढ़ का ॥

१२९१ ॥ तिष्ठद्वच । ५ । ३ । ५६ । तिष्ठन्तादतिशये शीत्ये तमप्स्यात् ॥

अतिशय अर्थ के प्रकार करने पर तिष्ठन्त से परे तमप् प्रत्यय होवे ॥

१२९२ ॥ तरप्तमपी घः । १ । १ । २९ ॥

तरप् और तमप् प्रत्यय 'च' संज्ञा वाले होवे ॥

१२९३ ॥ विनेतिच्छ्वयघादान्वद्रव्यप्रकर्षे । ५ । ४ । ११ । किम

एदन्तात् तिळोऽब्रह्मघाच यीघस्तदन्तादामुः स्वाण्ण तु द्रव्यप्रकर्षे ।
विन्तमाम् । पचतितमाम् । उच्यैस्तमाम् । द्रव्यप्रकर्षे तु । उच्यैस्तमस्तद

किम् प्रकारान्त, तिष्ठन्त और अश्वय इन से परे जो च ११ २ संज्ञक प्रत्यय
वच (च) है अन्त में किसे के अर्थ से परे आमु (याम्) प्रत्यय होवे परन्तु इव्य के प्रकर्ष
के प्रकार करने में न होवे । विन्तमाम् (१) केसा प्रकर्ष करने । पचति तमाम् — वच अति

(१) पतद् शब्द का भी 'इत्थम्' ऐसा रूप ही होता है नहींकि (एतद् + वसु)

१२८९ — (इत् + वसु) — इत्थम् — इत्थ प्रकार से ॥

(२) इन उदाहरणों में किसी क्रिया का अध्याहार कर लेना । जैसे 'विन्तमाम्'

में वर्णित था । और (उच्यैस्तमाम्) में 'पचति' था ॥

शय करके पकाता है। उच्चैस्तमाम्। द्रव्य के अतिशय में तो "उच्चैस्तम" तरः (उच्च-
को अत्यन्त ऊचा हो ॥

१३०४ ॥ द्विवचनविभक्त्योपपदे तरवीयसुनौ । ५ । ३ । ५७ ।

द्वयोरैकस्यातिशये विभक्त्ये चोपपदे सुप्तिङन्तादेतौ स्तः । पूर्वयोर-
पवादः । अयमनयोरतिशयेन लघुर्लघुतरः लघीयान् । उदीच्यः प्राच्येभ्यः
पटुतराः । पटीयांसः ॥

"जब द्विवचनान्त वा विभक्त्य (विभाग के योग्य) उपपद रहें, तब दो में से एक
(१) के अतिशय में 'सुबन्त' और 'तिङन्त' से परे तरप् और ईयसुन् प्रत्यय होंगे। यह
सूत्र पूर्व ले दो सूत्रों का अपवाद है। लघुतरः (वा) लघीयान् १२३७ इन दो में से यह बड़ा
हीला है। पटुतराः (वा) पटीयांसः = उदीच्य प्राच्यों से बड़े पण्डित होते हैं ॥

१३०५ ॥ प्रशस्यस्य श्रः । ५ । ३ । ६० । इच्छेयसीः परतः ॥

प्रशस्य शब्द को 'श्र' आदेश होवे, जब इच्छन् वा इयसुन् प्रत्यय परे ही तब ॥

१३०६ ॥ प्रकृत्यैकाच् । ६ । ४ । १६३ । इच्छादावैकाच् प्रकृत्या
स्यात् । श्रेष्ठः । श्रेयान् ॥

इच्छन् वा इयसुन् परे ही तो एक स्वर वाला प्रकृतिभाव की प्राप्त हो। श्रेष्ठः
(वा) श्रेयान् (अतिशयेन प्रशस्यः) ॥

१३०७ ज्य च । ५ । ३ । ६१ । प्रशस्यस्य ज्यादेश इच्छेयसीः । ज्येष्ठः ॥

इच्छन् और इयसुन् के परे होते प्रशस्य को 'ज्य' आदेश भी होवे। ज्येष्ठः (अति-
शयेन प्रशस्यः) सब से बड़ा ॥

१३०८ ॥ ज्यादादीयसः । ६ । ४ । १६० । आदेः परस्य । ज्यायान् ॥

ज्य १२०७ से परे इयसुन् को 'ज्या' आदेश होवे। यह ८५ के अनुसार ईकार की
हुआ तो "ज्यायान्" (अतिशयेन प्रशस्यः) ॥

१३०९ ॥ वहीर्लोपो भूच वहीः । ६ । ४ । १५८ । वहीः परयोरि-
मेयसीर्लोपः स्याद्वहीश्च भूरादेशः । भूमा ॥

वहु शब्द से परे जो इमन् और इयस् उनका लोप होवे। और वहु की 'भू' आदेश
होवे। यहा भी ८५ से प्रथम अक्षर का ही लोप होता है। भूमा (वहुताई) ॥

१३१० ॥ इच्छस्व चिट् च । ६ । ४ । १५६ । यद्वा परस्य इच्छस्व

क्षीपः स्याद्विष्ठागमश्च ॥ भूयिष्ठ ॥

बहु से परे इच्छन् के भादि पर वर्ण का क्षीप होने । और चिट् का आगम होने ।
भूयिष्ठः (अतिशयेन बहु) ॥

१३११ ॥ विष्मतीर्षुक् । ५ । ३ । ६५ । इच्छेयसोः । अतिशयेन

स्रग्वी स्रगिष्ठ । स्रग्वीयान् । अतिशयेन त्वरवान् । त्वचिष्ठ । त्वचीयान् ।

इच्छन् और इयसुन् प्रत्यय परे वीं तो चिन् और मत्तु का क्षीप होने । स्रग्वीयान् 'वा'
स्रग्वीयान् (अतिशयेन स्रग्वी) । त्वचिष्ठः, 'वा' त्वचीयान् (अतिशयेन त्वग्मान्) ॥

१३१२ ॥ इपदसमाप्ती कल्पद्वेष्टयदेशीयर । ५ । ३ । ६७ । ईप

दूनो विष्टान् । विष्टकल्पः । विष्टद्वेष्टय । विष्टदेशीयः । पचतिकल्पम् ॥

ईपत् (घोड़ी) पसमाप्ति के अर्थ में वर्तमान शब्द के परे "कल्पम्" "द्वेष्टय" और
देशीयत् ये प्रत्यय होने । विष्टकल्प' वा विष्टद्वेष्टय' 'वा विष्टदेशीय' (जिस के विष्टान्
होने में घोड़ी कपूर हो) । पचति कल्पम्—पचाने में बाबी कपूर रचता है ॥

१३१३ ॥ विभाषा सुपो बहुष् पुरस्तात् तु । ५ । ३ । ६८ । ईप

दून पटुः । बहुपटुः । पटुकल्पः । सुपः किम् । पचतिकल्पम् ॥

ईपत् पसमाप्ति अर्थ में विद्यमान सुष्मन्त के पूर्व भाग में "बहुष्" प्रत्यय विचक्षण
करके होने । बहुपटुः 'वा' पटुकल्प' (जिस के चतुर होने में घोड़ी सी कपूर हो) । यहाँ
'सुप' यह वर्ण कहां उत्तर देता है 'पचतिकल्पम्' यहाँ 'पचति' इस तिङन्त के पूर्व
बहुष् न हो पावे ॥

१३१४ ॥ प्रागिवात् कः । ५ । ३ । ७० । इवेप्रतिष्ठतावित्थतः प्राक्

काधिकारः ॥

यहाँ से १३२ पर्यन्त च प्रत्यय का अधिकार होने ॥

१३१५ ॥ अथयसर्वनाम्नामकप् प्राक् टेः । ५ । ३ । ७१ । कापवादः ।

अथय और सर्वनाम एन की टि के पूर्व अकप् प्रत्ययहोने । यह 'क' का अपवाद है ।

१३१६ ॥ अघ्राते । ५ । ३ । ७२ । कस्यायमश्वीऽश्वकः । उश्वकैः ।

गोश्वकैः । भवकैः ॥

अज्ञात (जो विदित न हो) इस अर्थ में वर्तमान शब्द से परे क प्रत्यय होवे ।

अश्वकः = यह घोड़ा किसका है । उच्चकैः १३१५ क्या यह ऊँचा है । नीचकैः = क्या यह नीचा है । सर्वकैः = नहीं विदित वे सब कितने हैं ॥

१३१७ ॥ कुत्सिते । ५ । ३ । ७४ । कुत्सितोऽश्वोऽश्वकः ॥

निन्दित अर्थ में विद्यमान शब्द (प्रातिपदिक) से परे क प्रत्यय होवे । अश्वकः = बुरा घोड़ा ॥

१३१८ ॥ किंयत्तदीनिर्द्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच् । ५ । ३ । ६२ ।

अनयोः कतरो वैष्णवः । यतरः । ततरः ॥

दो में से एक को निश्चय अर्थ में किम्, यत्, श्रीर तद्, से परे स्वार्थ में डतरच् प्रत्यय होवे । कतरः (इन दो में से वैष्णव कौन है) ऐसे "यतरः" वा "ततरः" ॥

१३१९ ॥ वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच् । ५ । ३ । ६३ । जाति परिप्रश्न इति प्रत्याख्यातमाकारे । कतमो भवतां कठः । यतमः । ततमः । वाग्रहणमकजर्थम् । यकः । सकः ॥

॥ इति प्राग्वीयाः ॥

बहुतों में से एक को निश्चय करने पर जातिके प्रश्न में किम् आदिकों से परे डतमच् प्रत्यय होवे । आकर (महाभाष्य) में "जातिपरिप्रश्ने" यह निमित्त खण्डन किया है । कतमो भवतां कठः (आप में कठशाखा के पढ़ने वाला कौन है) ऐसे यतमः । ततमः । यहाँ 'वा' ग्रहण पक्ष में अकच् के होने के लिये है । 'यकः' और 'सकः' ॥ प्राग्वीय प्रत्यय समाप्तहुए ॥

१३२० ॥ इवे प्रतिक्रतौ । ५ । ३ । ६६ । कन् स्यात् । अश्व इव प्रतिक्रतिः अश्वकः ॥

प्रतिक्रति (प्रतिनिधि) रूप अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से परे स्वार्थ में कन् प्रत्यय होवे । अश्वक (लकड़ी का घोड़ा) ॥

१३२१ ॥ सर्वप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन् । अश्वकः ॥

सब प्रातिपदिकों से परे स्वार्थ में कन् प्रत्यय होवे । अश्वकः (अश्व एव) घोड़ा ॥

१३२२ ॥ तत् प्रकृतवचने मयट् । ५ । ४ । २१ । प्राचुर्येण प्रस्तु-
तम्प्रकृततन्तस्य वचनम्प्रतिपादनम् । भावेऽधिकरणी वा ल्युट् । आद्ये
प्रकृतमन्नमन्नमयम् । अपूपमयम् । द्वितीये तु । अन्नमयो यज्ञः । अपूप-
पमयं पर्व ॥

१३१० ॥ इच्छस्व यिट् च । ६ । ४ । १५६ । वञ्चोः परस्य इच्छस्व
 लोपः स्याद्यिडागमश्च ॥ भूयिच्छः ॥

बहु से परे इच्छन् के आदि ५१ बर्ष का लोप होने । और यिट् का आगम होने ।
 भूयिच्छ' (प्रतिशयेन बहु) ॥

१३११ ॥ विभ्रमतीर्कृक् । ५ । ३ । ६५ । इच्छेयसीः । अतिशयेन
 स्रग्वी स्रविच्छः । स्रजीयान् । अतिशयेन त्वग्घान् । त्वविच्छः । त्वचीयान् ।

इच्छन् और ईयसुन् प्रत्यय परे हों तो विन् और मत्तु का लोप होने । स्रविच्छ 'वा'
 स्रजीयान् (प्रतिशयेन स्रग्वी) । त्वविच्छः, 'वा' त्वचीयान् (प्रतिशयेन त्वग्घान्) ॥

१३१२ ॥ ईषदसमाप्तौ कल्पद्वेष्टयदेशीयरः । ५ । ३ । ६० । ईष
 दूनो विद्यान् । विद्वत्कल्पः । विद्वद्वेष्टयः । विद्वद्वेष्टीयः । पञ्चतिकाल्पम् ॥

ईषत् (बीबी) पञ्चमाप्ति के अर्थ में वर्तमान शब्द से परे 'कल्पप्' "द्वेष्टय" और
 देशीयर्' ये प्रत्यय होने । विद्वत्कल्प' वा विद्वद्वेष्टय' वा विद्वद्वेष्टीय' (जिस के विद्यान्
 होने में बीबी कसर हो) । पञ्चतिकाल्पम्—पञ्चाने में बीबी कसर रहता है ॥

१३१३ ॥ विभाषा सुपो बहुष् पुरस्तात् तु । ५ । ३ । ६८ । ईष
 दूनः पटुः । बहुपटुः । पटुकल्प । सुपः किम् । पञ्चतिकाल्पम् ॥

ईषत् पञ्चमाप्ति अर्थ में विद्यमान सुबन्त के पूर्व भाग में 'बहुष्' प्रत्यय विद्वत्प
 कसर होने । बहुपटुः 'वा पटुकल्प' (जिस के चतुर होने में बीबी ही कसर हो) । यहाँ
 "सुप" वह बन्धो कक्षा! कसर देता है "पञ्चतिकाल्पम्" यहाँ 'पञ्चति' इस तिङन्त के पूर्व
 बहुष् न हो जाये ॥

१३१४ ॥ प्रागिवात् क । ५ । ३ । ७० । इवेप्रतिज्ञतावित्थतः प्राक्
 काधिकारः ॥

यहाँ से १३२ पर्यन्त के प्रत्यय का अधिकार होने ॥

१३१५ ॥ अथयसवनाम्नामकप् प्राक् टेः । ५ । ३ । ७१ । आपवादः ।
 अथय और सर्वनाम रन की टि के पूर्व अथय प्रत्यय होने । यह 'क' का अपवाद है ।

१३१६ ॥ अन्नाति । ५ । ३ । ७२ । कस्यायिसरवोऽरवकः । उच्यते ।
 नीच्यैः । सव्यैः ॥

यहां “अभूत तद्भावे” यह कहना चाहिये । विकार (रूपान्तर=और रूप) को प्राप्तभई प्रकृति में वर्त्तमान प्रातिपदिक से परे क्त, भू, अस् इन तीनों में से किसी एक के योग के होते विकल्प करके स्वार्थ में ‘चिव’ प्रत्यय होवे ॥

१३२७ ॥ अस्य च्वौ । ७ । ४ । ३२ । अवरणस्य ईत् स्याच्च्वौ ।

अक्षुण्णः क्षुण्णः सम्पद्यते तङ्करीति क्षुण्णीकरोति । ब्रह्मीभवति । गङ्गीस्यात् ॥

चिव प्रत्यय के परे रहते अवरण को ईकार होवे । क्षुण्णीकरोति (जो काला न हो उस को पीछे कोई काला करदे) ऐसे । ब्रह्मी भवति (१) गङ्गीस्यात् ॥

१३२८ ॥ अव्ययस्य च्वावीत्वन्नेति वाच्यम् । दीषाभूतमहः ।

दिवाभूता रात्रिः ॥

चिव प्रत्यय के परे होते अव्यय को ईकार १३२७ न हो ऐसा कहना चाहिये ।

“दीषाभूतमहः” (दिन जो रात हो गया) “दिवाभूता रात्रिः” रात जो दिन हो गई ॥

१३२९ ॥ विभाषा साति कात्स्न्ये । ५ । ४ । ५२ । चिविषये साति-

र्वा स्यात् साकल्ये ॥

जहां चिव की प्राप्ति हो वहां विकल्प करके साति प्रत्यय होवे साकल्य का बोध हो तो ॥

१३३० ॥ सात्पदाद्यौ । ८ । ३ । १११ । सस्य षत्वन्न । दधि-

सिञ्चति । कात्स्नं शस्त्रमग्निः सम्पद्यतेऽग्निसाद्भवति ॥

साति के स् को और पद के आदि के स् को ष न होवे “दधि सिञ्चति” यहां सिञ्चति के स को ष नहीं हुआ । अग्निसाद्भवति = सारा शस्त्र अग्नि होजाता है । यहां साति के स् को ष नहीं हुआ ॥

१३३१ ॥ च्वौ च । ७ । ४ । २६ । दीर्घः स्यात् । अग्नीभवति ॥

चिव प्रत्यय परे हो तो अच् को दीर्घ होवे । अग्नीभवति = वहसारा आगहोजाताहै ।

१३३२ ॥ अव्यक्तानुकरणाद्द्वयजवरार्द्धानितौ डाच् । ५ । ४ । ५७ ।

द्वयजवरं न्यूनन्न तु ततो न्यूनम् । अनेकाजिति यावत् । तादृशमर्द्धं

यस्य तस्माद्वाच् स्यात् क्त्वस्तिभिर्ध्यागि ॥

प्राच्य (बहुतार्थ) करके मारम्भ की गई वस्तु को प्रकृत कहते हैं। वह प्रतिपादन (वचन) को वचन कहते हैं। 'वचनम्' यहाँ भाव में वा अधिकार में स्वयं प्रत्यय आया है। इस विषे 'प्रकृत' को कहने में समर्थ प्रथमान्त से परे मयद् प्रत्यय होते। वा। प्रकृत का वचन जिस में ही उस अर्थ में वर्तमान प्रथमान्त से परे मयद् प्रत्यय होते। ये दो अर्थ सूत्र को होते हैं। प्राच्य (प्रथम) में जैसे—अन्नमयम् (अन्नका अधिकार)। अपूपमयम् (प्रस्तुतोऽपूप) (पूडे का अधिकार) द्वितीय में जैसे 'अन्नमय' (प्रकृत-अन्नमुच्यतेऽन्न) (जिस वच में अन्न का अधिकार हो)। अपूपमयम् (पर्व जिसमें पूडे का अधिकार ॥

१३२३ ॥ प्रज्ञादिभ्यश्च । ५ । ४ । १८ । अष् स्यात् । प्रज्ञ एव प्राञ्च । देवत ॥

प्रज्ञादिषु से परे स्वार्थ में अष् प्रत्यय होते। प्राञ्च १ ६१। २३३ (विद्याम्) देवत १ ६१। २३३ (देवतेषु) = देवता ॥

१३२४ ॥ वक्ष्णपायाँश्चस् कारकादन्यतरस्याम् । ५ । ४ । ४२ । वङ्नि ददाति वङ्गः । अक्षपद्यः ॥

"जो कारक बहुत वा छोटे अक्ष में विद्यमान हो उस से परे ङम् प्रत्यय विकल्प करके होते। वङ्ग्य = बहुत देता है। अक्षय' (अक्षपाणि ददाति) बोझ देता है ॥

१३२५ ॥ प्राद्यादिभ्यस्तसेसपर्सस्यामम् । प्रादी प्रादितः । मध्यतः अन्ततः । पृष्ठतः । पार्श्वतः । आकृतिगणोऽयम् । स्वरेषु स्वरतः । वक्षतः ॥

प्राद्यादिषु से परे तद्धि प्रत्यय हो। ऐसा कहना चाहिये। प्रादित (प्रादिमें) मध्यत (मध्ये) मध्यमें। अन्तत (अन्ते) अन्तमें। पृष्ठत (पृष्ठे) पीछे। पार्श्वत (पार्श्वयो) दहिने वा बाँप पासे। यह प्राद्यादिगण आकृतिगण है। स्वरतः = स्वरकारके। वक्षत (वक्षेण) ॥

१३२६ ॥ (१) क्तभ्यस्तिथीगे सम्प्रदाकर्त्तरि लिट् । ५ । ४ । ५० । अ भूततद्वाव दृति वक्ष्ण्यम् । विकारात्मताम्प्राप्नुवत्याम्प्रकृती वर्तमाना द्विकारगणदात् स्वार्थे चिन्वा स्यात् करोत्यादिभिर्योगे ॥

(१) इस अक्ष का तो एमा अक्ष है "अभूत (अभूतय) से तद्वाव से गन्धमान होने का भू अक्ष इन तीन धातुओं में से किसी एक के योग से होने पर अम् पूर्वक पद प्राप्ति के अर्थ में वर्तमान प्रातिपदिक से परे स्वार्थ में विकल्प करके 'चित् प्रत्यय होने" ॥

चटका । मूषिका । बाला । वत्सा । हीडा । मन्दा । विलाता । मेधा ।
इत्यादि । गङ्गा । सर्वा ॥

अज आदि गण का और अकारान्त का वाच्य जो स्त्रीत्व उस के प्रकाश करने में
“टाप्” प्रत्यय होवे । उदा० अजा १३४, १८३ ब्रकरो । पडका = भेड । अशवा (अश्व + टाप्)
चटका = चिडिया । मूषिका (मूषी) । बाला (लडकी) । वत्सा (वच्छी) । हीडा, वा मन्दा
वा विलाता = लडकी । इत्यादि और भी जानलेने । गङ्गा (भागीरथी) । सर्वा (सब स्त्री) ॥

१३३६ ॥ उगितश्च । ४ । १ । ६ । उगिदन्तात् प्रातिपदिकान्डीप् ।
भवन्ती । पचन्ती ॥

उक् है इत् जिस का ऐसे प्रातिपदिक से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में “डीप्” प्रत्यय
होवे । भवन्ती (भवतृ + डीप्) । पचन्ती (पचति) पचतृ + डीप् ॥

१३३७ ॥ टिट्टाणाञ्छयसञ्दधनञ्माञ्चत्तयपृठक्ठञ्कञ्क्वरपः ।
४ । १ । १५ । अनुपसर्जनं यद्विदादि तदन्तं यददन्तन्ततःस्त्रियां डीप् ।
कुरुचरी । नदट् नदी । देवट् देवी । सौपर्णयी । ऐन्द्री । औत्सी । जरु-
हयसी । जरुदधनी । जरुमाञ्ची । पञ्चतयी । आञ्चिकी । प्रास्थिकी ।
लावणिकी । यादृशी । इत्वरी ॥

अनुपसर्जन (प्रधान) जो “टित् आदि” (टित्, ठ, अण्, यञ्, हयसच्, दधनच्,
माञ्चच्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ्, और क्वरप्) प्रत्यय (१) “इन्तमें से कोई एक है, अन्त में
जिस के ऐसा जो अकारान्त” प्रातिपदिक उस से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में “डीप्” प्रत्यय
होवे । कुरुचरी । (कुरुषु चरति या सा) ८३८ । २५५ । पचादि गण में ‘नद’ के स्थान में
नदट् और ‘देव’ का देवट् लिखा है इस से उन से परे डीप् हुआ तो क्रम से नदी । देवी ।
उनके रूप हुए । सौपर्णयी (सुपर्णया अपत्यम् स्त्री चेत) १०८७ । ऐन्द्री (इन्द्रो देवताऽस्याः)
१११४ औत्सी १०६८ उत्स के वय की लडकी । जरुहयसी, ‘वा’ जरुदधनी, वा जरुमाञ्ची
१२४७ जाषभरप्रमाण वाली । पञ्चतयी १२४८ । आञ्चिकी ११८७ । प्रास्थिकी १२२५ ।
लावणिकी, लवण वेचने वाली । यादृशी ३७० जैसी । इत्वरी, जानेवाली ॥

१३३८ ॥ नञ्स्मजीकक्ख्युस्तस्मात्तलुनानामुपसंख्यानम् । स्त्रैणी
पौंस्नी । शाक्तीकी । आढ्यङ्करणी । तरुणी । तलुञ्जी ॥

नञ्, स्मञ्, ईकक् और ख्युन्, इन प्रत्ययों को और तरुण और तलुन इन प्राति

(१) इन का अवयव अकार है अन्त में जिस के ऐसा जो प्रातिपदिक’ ऐसा भी
पर्यं यहां हो सकता है ॥

छ मू और षच् के योम के होते (१) अव्यय का चतुर्वरच को अनेकाच् द्विव को पाठे म दो षचों से काम न हो उस से परे षच् प्रत्यय विकल्प करने होते । परन्तु इति मय्य परे हो तो नहीं ॥

१३३३ ॥ षाचि बहुलान्हेभवत् इति षाचि द्विवचिते द्वित्वम् ॥

षाच् प्रत्यय के जाने पर बहुल करने द्वित्व जाये । इस से षाच् विवक्षित होने पर द्वित्व हुआ ॥

१३३४ ॥ नित्यमाप्तेडिते षाचौति वक्तव्यम् । षाच्परं यदाप्ते डितन्तस्मिन् परे पूर्वपरयोर्वर्चयोः पररूपं स्यात् । इति तकारपकारयो पकार । पठपटाकरोति । अव्ययानुकरणात् किम् । इपत्करोति । इव अवराधात् किम् । अत्करोति । अयरेति किम् । खरटखरटाकरोति । अनितौ किम् । पठितिकरोति ॥ ॥ इति तद्धिताः ॥

षाच् परे है जिस के ऐसे आनेडित के परे होते पूर्ववर्च और परवर्च, के स्थान में पररूप नित्य होते । ऐसा कहना चाहिये । इस से तकार और पकार के स्थान में पकार हुआ (पठत् + पठत् + षाच् + करोति) १३३२ = पठपटाकरोति (बहु पठत् ऐसा मय्य करता है) १३३२ सूत्र में "अव्ययानुकरणात्" यह क्यों कहा ? उत्तर देता है—'इत् करोति यदा षाच् न हो जाये । पुन' यदा "इववराधात्" ऐसा क्यों कहा ? उत्तर देता है :— "अत् करोति" यदा अत् से परे षाच् न हो जाये । पुन' १३३२ में 'अयरे' ऐसा क्यों कहा ? उत्तर देता है—'खरटखरटाकरोति यदा दो से अधिक षच् है न्यून नहीं इस लिये यदा भी षाच् हुआ । पुन' यदा ही "अनितौ" यह क्यों कहा ? उत्तर देता है —

(२) 'पठितिकरोति' (बहु पठत् मय्य करता है) यदा षाच् न हो ॥

॥ तद्धित प्रत्ययों कि प्रक्रिया समाप्त हुई ॥

॥ अथ स्त्रीप्रत्ययाः ॥

॥ अब स्त्रीप्रत्ययों का वचन किया जाता है ॥

१३३५ ग अजाद्यतष्टाप् । ४ । १ । ४ । अजादीनामकारान्तस्व अ

वाच्यं यत् स्त्रीत्वन्तत्र दीप्त्ये टाप् स्यात् । अजा । एष्टका । अरवा ।

(१) यदा अव्यय का मनुष्य को जाती स सिद्ध मय्य" बहु वर्च है ।

(२) 'पठितिकरोति' यदा ("पठत् + इति + करोति") इस अधिक रूप में—'अव्ययानुकरणात् इति' । ३ । १ । ८८ । इस सूत्र से अत् को पर रूप हुआ है ।

चटका । मूषिका । बाला । वत्सा । हीडा । मन्दा । विलाता । मेधा ।
इत्यादि । गङ्गा । सर्वा ॥

अज आदि गण का और अकारान्त का वाच्य जो स्त्रीत्व उस के प्रकाश करने में
“टाप्” प्रत्यय होवे । उदा० अजा १३४, १८३ बकरी । एडका = भेड । अशवा (अश्व + टाप्)
चटका = चिडिया । मूषिका (मूषी) । बाला (लडकी) । वत्सा (बच्छी) । हीडा, वा मन्दा
वा विलाता = लडकी । इत्यादि और भी जानलेने । गङ्गा (भागीरथी) । सर्वा (सब स्त्री) ॥

१३३६ ॥ उगितश्च । ४ । १ । ६ । उगिटन्तात् प्रातिपदिकान्डीप् ।
भवन्ती । पचन्ती ॥

उक् है इत् जिस का ऐसे प्रातिपदिक से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में “डीप्” प्रत्यय
होवे । भवन्ती (भवतृ + डीप्) । पचन्ती (पचति) पचतृ + डीप् ॥

१३३७ ॥ टिट्ठाणञ्ज्वयसञ्ज्दणञ्माञ्चत्तयपृठक्ठञ्कञ्क्वरपः ।
४ । १ । १५ । अनुपसर्जनं यद्विदादि तदन्तं यददन्तन्ततस्त्रियां डीप् ।
कुरुचरी । नदट् नदी । देवट् देवी । सौपर्ण्यी । ऐन्द्री । श्रौत्सी । ऊरु-
ह्यसी । ऊरुदघ्नी । ऊरुमात्री । पञ्चतयी । आक्षिकी । प्रास्थिकी ।
लावणिकी । यादृशी । इत्वरी ॥

अनुपसर्जन (प्रधान) जो “टिट् आदि” (टिट्, ठ, अण्, अञ्, ह्यसच्, दघ्नच्,
माञ्च्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ्, और ववरप्) प्रत्यय (१) “इनसे से कोई एक है, अन्त में
जिस के ऐसा जो अकारान्त” प्रातिपदिक उस से परे स्त्रीत्वकी विवक्षा में “डीप्” प्रत्यय
होवे । कुरुचरी । (कुरुषु चरति या सा) ८३८ । २५५ । पचादि गण से ‘नद’ के स्थान में
नदट् और ‘देव’ का देवट् लिखा है इस से उन से परे डीप् हुआ तो क्रम से नदी । देवी ।
उनके रूप हुए । सौपर्ण्यी (मुपर्णया अपत्यम् स्त्री चत्) १०८७ । ऐन्द्री (इन्द्रो देवताऽस्याः)
१११४ श्रौत्सी १०६८ उत्स के वय की लडकी । ऊरुह्यसी, ‘वा’ ऊरुदघ्नी, वा ऊरुमात्री
१२४७ जाघभरप्रमाण वाली । पञ्चतयी १२४८ । आक्षिकी ११८७ । प्रास्थिकी १२२५ ।
लावणिकी, खवण वेचने वाली । यादृशी ३७० जैसी । इत्वरी, जानेवाली ॥

१३३८ ॥ नञ्स्नञ्जीकक्ख्युस्तरुणतलुनानामुपसंख्याजम् । स्त्रैषी
पौंसनी । श्राज्ञीकी । आढयङ्करणी । तरुणी । तलुनी ॥

नञ्, स्नञ्, ईकक् और ख्युन्, इन प्रत्ययों को और तरुण और तलुन इन प्राति

(१) इन का अवयव अकार है अन्त में जिस के ऐसा जो प्रातिपदिक’ ऐसा भी
अर्थ यहाँ हो सकता है ॥

पदिषीं को भी यहाँ गिन लेना। वृषी १ ० पौष्ठी १ ००। मात्सीकी (शक्ति प्रहरण मस्या) बरही पाठी। (१) भाठप्रहरणी (को भी यरीब को बनी करे)। तबची वा तकुनी = कुवान की ॥

१३३८ ॥ यञ्जश्च । ४ । १ । १६ । यञ्जन्तान्छीप् । अकारक्षापे कृति ॥

यञ्जन्त से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में छीप् होवे। १३३६ से अकार के छोप से धरने पर ॥

१३४० ॥ इक्षस्तद्वितस्य । ४ । ४ । १५ । इक्ष परस्य तद्वित यकारस्य छोप कृति परे। गार्गी ॥

इ के परे होते इक्ष् से परे तद्वित के यकार का छोप होवे। गार्गी १ ०६। १३३८ गम के वंश की लक्ष्मी ॥

१३४१ ॥ प्राचां छप्रस्तद्वित । ४ । १ । १७ । यञ्जन्तात् छ्प्रो वा स्यात् स च तद्वित ॥

यञ्जन्त से परे छ्प्र प्रत्यय विकल्प करके हीने और वह तद्वित माना जावे ॥

१३४२ ॥ यिद्गौरादिभ्यश्च । ४ । १ । ४१ । छीप् स्यात् । गार्ग्यायषी । नतकी । गौरी । अनहुषी । अनड्वाही । आकृतिगबोऽवम् ॥

यित् प्रत्ययान्त से परे और गौरादिषीं से परे छीप् प्रत्यय होवे। गार्ग्यायषी १३४१ १ ८ गर्ग ऋषि के वंश की लक्ष्मी। (२) नतकी (नाचने लकी) ॥

गौरी (गिवा)। अनहुषी वा (३) अनुषुषी (गौः) यह गौरादिगण आकृतिमचई ॥

१३४३ ॥ वयसि प्रथमे । ४ । १ । २ । प्रथमवयोवाचिनोऽदन्ता न्छीप् । कुमारी ॥

पदिषी वय (उमर) के वाचक अकारान्त से परे छीप् प्रत्यय होवे। कुमारी (कुवारी) लक्ष्मी ॥

१३४४ ॥ द्विगोः । ४ । १ । २१ । अदन्ताद्द्विगोर्छीप् । त्रिषोकी । अजादित्वात् त्रिप्रस्ता त्र्यनीका ॥

अकारान्त द्विगु से परे छीप् प्रत्यय होवे। त्रिषोकी (त्रयाणां लोकाणां समाहारः) तीनोंलोकों का समुह। 'त्रिप्रस्ता' वा 'त्र्यनीका' ये दो पद तो अजादि होने से टाबन्त हैं।

(१) यहाँ 'आठामुभगरबूक्षपठितनगान्धप्रियेषु ऋषीर्बेत्तव्यो हाम' करके ध्युम् । १ । २ । ३६ । इक्ष भूष करके ध्युम् हुआ है ॥

(२) यहाँ 'मिक्पिनि ऽवम्' । १ । १ । १४३ इस करके ध्युम् प्रत्यय हुआ है ॥

(३) गौरादि गण में अनुहुष् यम् धाम् चङित भी पदा है ॥

१३४५ ॥ वर्णाद्नुदात्तात् तोपधात् तीनः । ४ । १ । ३६ । वर्णवा-
ची योऽनुदात्तान्तस्तोपधस्तदन्ताद्नुपसर्जनाद्वा डीप् तकारस्य नः ।
एता । एनी । रोहिता । रोहिणी ॥

जिस के अन्त में अनुदात्त और उपधा में त् हो ऐसे वर्ण वाचक अनुपसर्जन से परे विकल्प करके डीप् प्रत्यय होवे, और त् को न् हीवे । एता 'वा' (एत+डीप्) एनी (चित्तरमितरी हरिणी) । रोहिता (वा) रोहित+डीप्=रोहिणी=नक्षत्र विशेष वा बालमृगी ॥

१३४६ ॥ वीतो गुणवचनात् । ४ । १ । ४४ । उदन्ताद्गुणवा-
चिनो वा डीष् । मृद्वी । मृदुः ॥

उकारान्त गुणवाचक शब्द से परे विकल्प करके डीष् प्रत्यय होवे । मृद्वी (वा) मृदुः=कोमल स्त्री ॥

१३४७ ॥ बह्नादिस्यश्च । ४ । १ । ४५ । वा डीष् । बह्वी । बहुः ।
बहु आदि शब्दों से परे विकल्प करके डीष् प्रत्यय होवे । बह्वी (वा) बहुः ॥

१३४८ ॥ क्त्वादिकारादक्तिनः । रात्री । रात्रिः ॥

क्तिन् प्रत्ययान्त को छोड़ कर क्तत् प्रत्यय का इकार है, अन्त में जिस के उस से परे विकल्प करके डीष् प्रत्यय होवे । रात्री 'वा' रात्रि' (रात) ॥

१३४९ ॥ सर्वतोऽक्तिन्नर्थीदित्येके । शकटी । शकटिः ।

केई आचार्य ऐसा कहते हैं कि अक्तिन्नर्थक क्तत् (वा) अक्तत् सव के इकार से परे डीष् प्रत्यय होवे । शकटी (वा) शकटि' (गाडी) ॥

१३५० ॥ पुंयोगादाख्यायाम् । ४ । १ । ४८ । या पुमाख्या पुंयो-
गात् स्त्रियां वर्तते ततो डीष् । गोपस्य स्त्री गोपी ।

जो पुवाचक शब्द पुलिङ्ग वाले पादार्थ के सम्बन्ध से स्त्रीलिङ्ग में वर्तमान हो तो उस से परे डीष् प्रत्यय होवे । गोपी २५५ (गोपस्य स्त्री) ग्वाक्त्विन ॥

१३५१ ॥ पालकान्तान्न । गोपालिका । अश्वपालिका ।

'पालक' है अन्त में जिस के उस से परे डीष् १३५० न हीवे । गोपालिका १३५५, १३५२=गवालकी स्त्री । अश्वपालिका १३५२ सहीस की स्त्री ॥

१३५२ ॥ प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्यात् इदाप्यसुप । ७ । ३ । ४४ ।
प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्याकारस्येकारः स्यादापि स आप् सुप. परी न

चेत् । सर्विका । कारिका । अतः किम् । मौका । प्रत्ययस्यात् किम् । शकनो
सौति शका । असुपः किम् । बहुपरित्राजका नगरौ ॥

“सुप् से परे न हो ऐसा जो भाप् उस के परे होते” प्रत्ययस्वित ककार से पहले
पकार जो इकार होते । सर्विका = निन्दित स्त्री । कारिका = करने वाली । यहां “अतः”
ऐसा क्यों कहा ? उत्तर देता है—‘मौका’ यहां भीकार जो न होजावे । पुन’ यहां “प्रत्य
यस्यात्” ऐसा क्यों कहा ? उत्तर देता है—‘शका’ यहां भातु के अवयव ककार से पहले
अकार जो इकार न हो जावे । पुन’ १३३२ में ‘असुप’ यह क्यों कहा ? उत्तर देता है
“बहुपरित्राजका” यहां ककार के उत्तर पकार जो इकार न हो जावे ॥

१३५३ ॥ सूर्याद्वेवतायाञ्चाप् । सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या ।
देवतायाङ्किम् ।

देवता शब्द में सूर्य शब्द से परे चाप् प्रत्यय होते । सूर्या (जो सूर्य की स्त्री देवता है)
यहां ‘देवतायाम्’ यह पद क्यों कहा ? उत्तर देता है ॥

“१३५४ ॥ सूर्यागस्त्ययोश्छेष ऋणाञ्च यक्षीपः । सूरौ कुन्ती ॥

सूर्य और अस्त्य इन शब्दों के अकार खोप होते जब (ह) प्रत्यय ‘वा’ की प्रत्यय
परे हो तब । ‘सूरौ’ २३३ (मानुषी = कुन्ती) यहां चाप् न हो जावे ॥

१३५५ ॥ इन्द्रवरुणभवर्षासुद्रस्तुठिमारपययवयवममातुलाचा-
र्याभामानुक् । ४ । १ । ४८ । ङीप् च । इन्द्रस्य स्त्री । इन्द्राणी । वरु
णानी । भवानी । वर्षाणी । सुद्राणी । सुडानी ।

इन्द्र, वरुण भव वर्ष इन्द्र इन्द्र हिम अस्त्य यव यवन मातुला और आचार्य
इन शब्दों से परे ङीप् प्रत्यय होते और इस के साथ ही आनुक् का आगम भी होते ।
इन्द्राणी (इन्द्र की स्त्री) । वरुणाणी (वरुण की स्त्री) भवानी (भव की स्त्री) ऐसे वर्षाणी
सुद्राणी सुडानी (नौती) ।

१३५६ ॥ हिमारपययोर्महत्वे । महद्भिर्म हिमानी । महद्रपवमर
पयानी ।

हिम और अस्त्य इन शब्दों को आनुक् का आगम और ङीप् प्रत्यय होते परन्तु
‘महत्वे’ शब्द में ही । हिमानी (बड़ी हिम) । अस्त्याणी (बड़ा अस्त्य) ॥

१३५७ ॥ यवाङ्गोपे । दुष्टो यवी यवानी ॥

दोप शब्द में यव शब्द से परे ङीप् प्रत्यय और आनुक् का आगम होते । यवानी =
अराव जो ॥

१३५८ ॥ यवगाणिलप्याम् । यवनामां लिपिर्भवनानी ।

लिपि अर्थ में यवन् शब्द से परे डीप् प्रत्यय और आनुक् का आगम होंगे । यद-
नानी स्नेच्छीं की लिखत ॥

१३५६ ॥ मातुलीपाध्याययीरानुग्वा । मातुलानी । मातुली ।
उपाध्यायानी । उपाध्यायी ॥

मातुल, और उपाध्याय इन दो शब्दों को अनुक् का आगम विकल्प करके होंगे ।
मातुलानी 'वा' मातुली १३५० (मातुलस्य स्त्री) मामी । उपाध्यायानी "वा" उपाध्यायी
(उपाध्यायस्य स्त्री) = गुरु की स्त्री ॥

१३६० ॥ आचार्यादणत्वञ्च । आचार्यानी ।

आचार्य शब्द से परे आनुक् १३५५ के नकार को णकार न होंगे । आचार्यानी
(आचार्य की स्त्री) ॥

१३६१ ॥ अर्थ्यञ्चित्रियाभ्यां वा स्वार्थे । अर्थ्याणी । अर्थ्या । च्चि-
याणी । च्चित्रिया ॥

अर्थ और च्चित्रिय इन शब्दों से परे स्वार्थ में डीप् और आनुक् इकट्ठे ही विकल्प
करके होंगे आर्याणी (वा) अर्था (वैश्य की स्त्री) । च्चित्रियाणी (वा) च्चित्रिया = खतरानी ॥

१३६२ ॥ क्रीतात् करणपूर्वात् । ४ । १ । ५० । डीप् । वस्त्रक्रीती ।
वचिन्न । धनक्रीता ।

करण वाचक शब्द पूर्व है जिसके ऐसा जो क्रीत शब्द वह है अन्त में जिसके उस
से परे डीप् प्रत्यय होंगे । वस्त्रक्रीती (वस्त्र से जो खरीदी गई स्त्री) । क्रीती नहीं भी होता ।
धनक्रीता = धन से खरीदी गई ॥

१३६३ ॥ स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् । ४ । १ । ५४ ।
असंयोगोपधमुपसर्जनं यत् स्वाङ्गन्तदन्तान्डीप् वा । केशानतिक्रान्ता ।
प्रतिकेशी अतिकेशा । चन्द्रमुखी । चन्द्रमुखा । असंयोगोपधात् किम् ।
सुगुल्फा । उपसर्जनात् किम् । सुशिखा ॥

जिसकी उपधा संयोग नहीं ऐसा जो उपसर्जन स्याद्ग (शरीर के अङ्ग का वाचक)
यह जिस प्रतिपादिक के अन्त में हो उस से परे विकल्प करके डीप् प्रत्यय होंगे । अति-
केशी (वा) अतिकेशा । चन्द्रमुखी (वा) चन्द्रमुखा (चन्द्रवन्मुखं यस्या) । इस सूत्र में
"असंयोगोपधात्" यह पद क्यों कहा ? उत्तर देता है— "सुगुल्फा" यहा पक्ष में डीप् न
हो जावे । पुनः यहा "उपसर्जनात्" यह क्यों कहा ? उत्तर देता है "सुशिखा" यहा शिखा
उपसर्जन नहीं इस से परे पक्ष में डीप् न हो जावे ॥

१३६४ ॥ न क्रीडादिवचनः । ४ । १ । ५६ । क्रीडादेर्वचनपरच
स्वाहान्न ङीप् । कस्याचक्रीडा । आकृतिगणोऽयम् । सुगचना ॥

क्रीडादि स्वाह वाचक शब्दों से परे, और अनेकाच् स्वाह वाचक शब्दों से परे
ङीप् न होते। कस्याचक्रीडा—जिस स्त्री की छाती सुन्दर हो। यह क्रीडादिगण
आकृतिगण है। “सुगचना” यह अनेकाच् का उदाहरण है ॥

१३६५ ॥ नखमुखात् सञ्ज्ञायाम् । ४ । १ । ५८ । न ङीप् ।

सञ्ज्ञा पद में नख और मुख इन शब्दों से परे ङीप् प्रत्यय न होते।

१३६६ ॥ पूर्वपदात् सञ्ज्ञायाम् । ८ । ४ । ३ । पूर्वपदस्याग्नि
मितात् परस्य नस्य च स्यात् सञ्ज्ञायाम् न त गकारव्यवधाने । शूर्प
पखा । गौरमुखा । सञ्ज्ञायाम् । ताम्बमुखी कन्या ।

पूर्वपद में स्थित जो निमित्त (५ वा ५) उस से परे न् को न् होते ‘सञ्ज्ञा पद में’
परन्तु गकार का व्यवधान हो तो नहीं। शूर्पपखा (राज्य की भमनी)। गौरमुखा । यहाँ
‘सञ्ज्ञायाम्’ ऐसा क्यों कहा ? उत्तर देता है “ताम्बमुखी” (जिस कन्या का मुख ताम्बे
के समान बाल हो) यहाँ ङीप् का नियम न हो जाने ॥

१३६७ ॥ जातेरस्त्रीविषयाद्योपधात् । ४ । १ । ६३ । जातिवाचि
यन्म च स्थियाग्नियतसयोपधन्ततो ङीप् । तटी । द्वपत्नी । कठी ।
वह्वषी । जाते किम् । मुरडा । अस्त्रीविषयात् किम् । बलाका । अयो
पधात् किम् । अचिया ॥

‘जाति वाचक जो नियम करके स्त्रीलिङ्ग न हो और उस जो उपधा में बकार
भी न हो ऐसा जो शब्द उस से परे स्त्रीलिङ्ग की विषया हो तो ङीप् प्रत्यय होते। तटी
२३३ (तीर) । द्वपत्नी (मूढ़ की स्त्री) कठी कठ शाब्दा पदने बालों की स्त्री। वह्वषी
(अग्नेदीयों की स्त्री)। यहाँ ‘जाते’ यह क्यों कहा ? उत्तर देता है ‘मुरडा’ (सिरमुग्नी)
यहाँ ङीप् न हो जाने। पुनः यहाँ “अस्त्रीविषयात्” यह क्यों कहा ? उत्तर देता है बलाका
(बमुनों की पत्नी) यह सदा स्त्रीलिङ्ग में रहता है इस से परे ङीप् न हो जाने। पुनः
यहाँ ही ‘अयोपधात्’ यह पद क्यों कहा ? उत्तर देता है ‘अचिया’ यहाँ ङीप् न हो जाने।

१३६८ ॥ योपधप्रतिषेधे गवयश्चयमुकयमत्स्यमनुष्याणामप्रति
षेध । गवयी । इयी । मुकयी । इषस्तद्वितस्येति यक्षोपः । मनुषी ।
मत्स्यस्य ह्या यक्षोपः । मत्सी ॥

१३६७ योपधो के प्रतिषेध में गवय, हय, मुकय, मत्स्य, मनुष्य, इन पाँचों से डीष् का प्रतिषेध नहीं है। हयी (घोडी)। मुकयी = मुकय (जन्तु विशेष) की स्त्री। १३४० से यकार का लोप हुआ तो 'मनुषी' सिद्ध हुआ। मत्स्य शब्द के यकार का डी के परे होते लोप होता है मत्सी (मच्छी) ॥

१३६६ ॥ इती मनुष्यजाते । ४ । १ । ६५ । डीष् । दाक्षी ।

मनुष्य जाति वाचक जो इकारान्त शब्द उस से परे डीष् प्रत्यय होवे। दाक्षी १०८१।

१३७० ॥ ऊङुतः । ४ । १ । ६६ । उदन्तादयोपधान्मनुष्यजाति-

वाचिन. स्त्रियाम्बुङ् । कुरुः । अयोपधात् किम् । अध्वर्युर्ब्राह्मणी ।

जिस मनुष्यजाति वाची उकारान्त शब्द की उपधा में यून ही उस से परे स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय होवे। कुरुः (कुरुवश की स्त्री)। यहां "अयोपधात्" ऐसा क्यों कहा ? उत्तर देता है। "अध्वर्युः" यहां ऊङ् न ही जावे ॥

१३७१ ॥ पङ्गोश्च । पङ्गुः ॥

स्त्रीत्व के कहने की इच्छा में पङ्गु शब्द से परे भी ऊङ् प्रत्यय होवे। पङ्गुः (पङ्गली स्त्री) ॥

१३७२ ॥ श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च । श्वश्रूः ॥

श्वशुर शब्द के उकार और अकार का लोप होवे और ऊङ् प्रत्यय भी होवे। श्वश्रूः (श्वशुर + ऊङ्) श्वश्रूः = सास ॥

१३७३ ऊरूत्तरपदादौपम्ये । ४ । १ । ६६ । उपमानवाचि पूर्व-

पदमूरूत्तरपदं यत् प्रातिपदिकान्तस्मादूङ् । करभोरूः ॥

उपमान वाचक कोई शब्द है पूर्व पद जिस का और ऊरु शब्द है उत्तर पद जिस का ऐसा जो प्रातिपदिक उस से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय होवे। करभोरूः (करभवदूरु यस्या) करभ (मणिवन्ध (बीषी) से लेकर चीची के मूल तक हाथ का बाहर का भाग) के समान हैं जाघ जिस स्त्री की ॥

१३७४ ॥ संहितशफलक्षणवामादेश्च । ४ । १ । ७० । अनौपम्या-
र्थं सूत्रम् । संहितोरूः । शफोरूः । लक्षणोरूः । वामोरूः ।

संहित, शफ, लक्षण, और वाम, इन में से कोई एक है आदि में जिस के और ऊरु शब्द है उत्तरपद जिस का ऐसे शब्द से परे भी ऊङ् प्रत्यय होवे स्त्रीत्व की विवक्षा में। जहा उपमान पूर्व पद नहीं इसी लिये यह सूत्र है। संहितोरूः (संहितावरू यस्या)।

मिहीं दुर जाव पाकी) गफोः (गफौ (धुरी) ता विवो यस्या) । लघुशोः (जिघ श्री जावमें तिज हो) । वामोः (वामापूर्क यस्या) मुन्दर जाव पाकी ॥

१३०५ ॥ शार्ङ्गरवादाओः ४ । १ । ०६ शार्ङ्गरवादाओ योऽकार स्तदन्ताच्च आतिवाचिमो ङीन् । शार्ङ्गरवी । वैदी । ब्राह्मणी ॥

शार्ङ्गर वादि जाति वाचक शब्दों से परे शौर चम् का अकार किम से चन्त में हो उस से परे स्त्री लिङ्ग में 'ङीन्' प्रत्यय होवे । शार्ङ्गरवी (मुद्गरोरपत्यं स्त्री) मुद्गश् चयि के वंशकी कन्या । वैदी १ - ८३ - विद के मोच की लक्ष्मी । ब्राह्मणी (ब्राह्मण जातिकी स्त्री) ।

१३०६ ॥ नूनरयोर्वृद्धिश्च । मारी ॥

ङीन् । १३०५ परे हो तो नू शौर नर इन दो शब्दों को उचितोवे । मारी (स्त्री) ॥

१३०७ ॥ युनस्ति । ४ । १ । ०७ । युवन्शब्दात् स्त्रियां तिः स्यात् । युवति ॥ ॥ इति श्रीप्रत्यया ॥

युवन् शब्द जब स्त्री वाचक हो तब उस से परे 'ति' प्रत्यय होवे । युवति १८३ - युवान स्त्री ॥ ॥ श्रीप्रत्यय समाप्त हुए ॥

शास्त्रान्तरे प्रविष्टानां वासानां शेषकारिका ।

कृता वरदराखेन लघुसिद्धान्तकौमुदी ॥

इति श्रीवरदराखकृता लघुसिद्धान्तकौमुदी समाप्ता ॥

वरदराख ने जो व्याकरण से बिना अन्य शास्त्रों में प्रविष्ट हैं शौर व्याकरण को नहीं जानते उन के शौर वाचकों के उपकार करने वाली यह "लघुसिद्धान्त कौमुदी" बनाई ।

॥ श्री वरदराख महि की बनाई हुई लघुसिद्धान्तकौमुदी समाप्त हुए ॥

मुच्यते च वेदभेदे गङ्गाविष्णुकृता लघोः । श्रीमुद्याशौतारार्थस्य विवृति पूर्वतामनात् ॥ १ ॥ यस्मादियं धिमुचिता साविष्वाक्य(शब्द)प्रस्तते । यत एव कृता वाचयानुषां विवृतेषु कृत्ये । २ ॥ यच्च यच्च व्युत्तिर्जाता मन्त' संशोभयन्तु ताम् । प्राचये तानिति जामाओऽप्याशितमन्तान् १ ॥

इति श्रीमहोस्वामिबंशमुपच श्रीमुत्पदिङ्गतममवान्सासात्मज पन्थनदीबमहाविद्या-
लयवाच्यापत्र परिङ्गत मङ्गलविष्णुमारिचकृता लघुश्रीमुद्युत्तरार्थभाषा

विवृति' समाप्ता' ।

॥ लघुश्रीमुदी के उत्तरार्थ की भाषा टीका समाप्त हुई ॥

